

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

पद्मचरितम्

(प्रथम खण्ड)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री रविषेण जी महाराज

संशोधक
दरबारीलाल जी जैन

प्रकाशक
माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति
मुम्बई (महाराष्ट्र)

(परम्परानायक)



परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

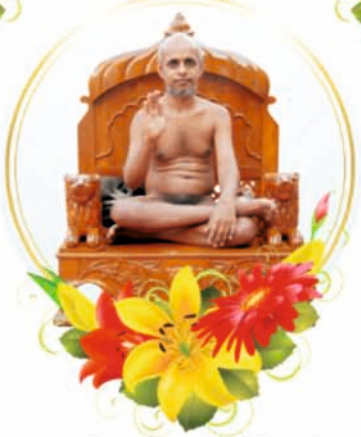

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार



माणिक[illegible]-दिगम्बर-जैन-[illegible]

२९

पद्मचरितम् ।

माणिकचन्द्र-दि०-जैनग्रन्थमालायारेकोनत्रिंशतितमो ग्रन्थः ।

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतं पद्मचरितम् ।

(प्रथमखण्डं ।)

न्यायतीर्थपण्डितदरबारीलालेन साहित्यरत्नेन संशोधितम् ।

132

प्रकाशिका—माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला-समितिः ।

ज्येष्ठ, वीर नि० २४५४, वि० स० १९८५

मूल्यं सार्द्धरूप्यकम् ।

प्रकाशकः—
नाथूराम प्रेमी, मन्त्री—
माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।



सिर्फ प्राक्कथन और अनुक्रमणिका आदिके मुद्रक—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस,
३१८ ए, ठाकुद्वार, बम्बई।
और शेष सम्पूर्ण पुस्तकके मुद्रक—
विनायक बाळकृष्ण परांजपे
नेटिव ओपीनियन प्रेस,
आँग्रेवाडी, गिरगाँव, बम्बई।

प्राक्कथन ।

यह ग्रन्थ यद्यपि 'पद्मपुराण' नामसे ही सर्वत्र प्रसिद्ध है; परन्तु इसका वास्तविक नाम 'पद्मचरित' है, क्योंकि इसमें पद्ममुनिका—जो कि पुरुषोत्तम रामचन्द्रका नामान्तर है—चरित निबद्ध किया गया है×।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायके उपलब्ध कथासाहित्य या प्रथमानुयोगमें 'पद्मचरित' सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। जहाँ तक हम जानते हैं, अब तक इसके पहलेका कोई भी कथाग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। भावनगरकी जैनधर्मप्रसारक सभाने जो 'पउमचरिय*' नामका प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित किया है, वह इससे बहुत पहलेका है; परन्तु अभी तक यह बात विवाद-ग्रस्त ही है कि उसके कर्त्ता दिगम्बरसम्प्रदायके थे या श्वेताम्बरके।

'पद्मचरित' भगवान् महावीरके निर्वाणके १२०३ वर्ष बाद लिखा गया था जैसा कि उसके निम्नलिखित पद्यसे प्रकट होता है:—

द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥

यदि वीर निर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रम संवतका प्रारंभ माना जाय, तो इस ग्रन्थका रचनाकाल विक्रम संवत् ८३४ समझना चाहिए।

पुन्नाटसंघी आचार्य जिनसेनका हरिवंशपुराण विक्रम संवत् ८४० (शक संवत् ७०५) में समाप्त हुआ है, अर्थात् वह इससे लगभग ६ वर्ष पीछेकी रचना है। इसी कारण उसमें इस ग्रन्थका उल्लेख मिलता है:—

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्त्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥ ३४ ॥—सर्ग १

× 'चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ।'—अन्तिम सर्ग, श्लोक १८५

* इस ग्रन्थके सम्बन्धमें मेरा एक विस्तृत नोट जैनहितैषी भाग ११, अंक ३, पृष्ठ १३२ में प्रकाशित हो चुका है।

रविषेणाचार्यने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है—

आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्यचार्हन्मुनिः
तस्माँल्लक्ष्मणसेनसम्मुनिरदः शिष्यो रविस्तस्मृतं ॥ ६९ ॥

अर्थात् इन्द्रगुरु—दिवाकरयति—अर्हन्मुनि—लक्ष्मणसेन और रविषेण।

इन्होंने अपने किसी संघ या गणका उल्लेख नहीं किया है जिससे मालूम होता है कि उस समय तक दिगम्बर सम्प्रदायमें देव, नन्दि, सेन, सिंह संघोंकी उत्पत्ति नहीं हुई थी; कमसे कम ये भेद बहुत स्पष्ट नहीं हुए थे। शक संवत् १३५५ के लिखे हुए मंगराज कविके शिलालेख*में इस बातका उल्लेख किया गया है कि भट्टाकलंकदेवके स्वर्गवासके बाद यह संघभेद हुआ।—

तस्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षौ दिवःपतिं नर्तुमिवप्रकृष्टां।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि संघभेदाः ॥ १९ ॥

आचार्य रविषेणका यद्यपि इस समय केवल यही ग्रन्थ उपलब्ध है; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इसके सिवाय उनके और भी कुछ ग्रन्थ होंगे जिनमेंसे वरांगचरितका उल्लेख हरिवंशपुराणके प्रारंभमें इस प्रकार किया गया है:—

वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक्।
कस्यनोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३५ ॥

श्वेताम्बर-सम्प्रदायके आचार्य उद्योतनसूरिने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रन्थमें भी जो शकसंवत् ७०० (वि० सं० ८३५) की रचना है रविषेणके पद्मचरित और वरांगचरितका उल्लेख किया है:—

---

* यह विस्तृत शिलालेख जैनसिद्धान्तभास्करके अंक २-३ में प्रकाशित हुआ है।

जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाणचरितवित्थारे ।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जइय रविसेणो ॥

अर्थात् जिसने रमणीय वरांगचरित और पद्मचरितका विस्तार किया उस कवि रविषेणकी कौन सराहणा नहीं करेगा ? अभी तक इनके वरांगचरितका किसी भी पुस्तकभंडारमें पता नहीं लगा है ।

पद्मपुराणका हिन्दी अनुवाद (वचनिका) अब तक चार पाँच बार छप चुका है; परन्तु मूल ग्रन्थ एक बार भी नहीं छपा है जिससे विद्वानोंको प्रमाणादि संग्रह करनेमें बहुत कष्ट होता है । यह देखकर हमने इसे ग्रन्थमालामें प्रकाशित कर के सबके लिए सुलभ कर देना उचित समझा ।

लगभग ५०० पृष्ठोंका यह प्रथम खण्ड प्रकाशित हो रहा है । शेष ग्रन्थ लगभग इतने ही बड़े दो खण्डोंमें समाप्त होगा। सम्पूर्ण ग्रन्थका मूल्य लगभग पाँच रुपया होगा । हमें आशा है कि जैनसाहित्यप्रेमी सज्जन इसके प्रचारमें हमारा हाथ अवश्य बँटावेंगे जिससे इसमें लगा हुआ रुपया शीघ्र उठ आवे और वह दूसरे ग्रन्थोंके उद्धारमें लगने लगे । यह बतलाने-की आवश्यकता नहीं कि इस कार्यमें लगभग पाँच हजार रुपया लग जावेगा और ग्रन्थमाला के फण्डमें जो रुपया है वह प्रायः सभी निःशेष हो जावेगा । प्रत्येक मन्दिरके भंडारमें इसकी एक एक प्रति मँगा रखनी चाहिए ।

ग्रन्थ समाप्त हो जाने पर हमारा विचार है कि किसी विद्वानसे इसकी एक विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका लिखवाई जाय । इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा है ।

एक वर्ष भरके भीतर ग्रन्थके शेष दोनों खण्ड निकल जायँगे, ऐसी आशा की जाती है । १३-५-२८

—नाथूराम प्रेमी ।

पर्व-सूची ।

प्रथमं पर्व—सूत्रविधानं	पृष्ट	१
द्वितीयं पर्व—श्रेणिकचिंताभिधानं	,,	१०
तृतीयं पर्व—विद्याधरलोकाभिधानं	,,	३०
चतुर्थं पर्व—ऋषभमाहात्म्याभिधानं	,,	५६
पञ्चमं पर्व—राक्षसवंशाभिधानं	,,	६७
षष्ठं पर्व—वानरवंशाभिधानं	,,	९८
सप्तमं पर्व—दशग्रीवाभिधानं	,,	१४३
अष्टमं पर्व—दशग्रीवाभिधानं	,,	१७४
नवमं पर्व—वालिनिर्वाणाभिधानं	,,	२१५
दशमं पर्व—दशग्रीवप्रस्थाने सहस्ररश्म्यनरण्यश्रामण्याभिधानं	,,	२३३
एकादशं पर्व—मरुत्तयज्ञध्वंसनपदानुगाभिधानं	,,	२४७
द्वादशं पर्व—इन्द्रपराभिधानं	,,	२७७
त्रयोदशं पर्व—इन्द्रनिर्वाणाभिधानं	,,	३०६
चतुर्दशं पर्व—अनन्तबलधर्माभिधानं	,,	३१६
पञ्चदशं पर्व—अञ्जनासुन्दरीविवाहाभिधानं	,,	३४५

षोडशं पर्व—पवनांजनासंभोगाभिधानं ... ... पृष्ठ ३६३
सप्तदशं पर्व—हनूमत्संभवाभिधानं ... ... ,, ३८२
अष्टादशं पर्व—पवनांजनासमागमाभिधानं ... ... ,, ४१४
एकोनविंशतितमं पर्व—रावणसाम्राज्याभिधानं ... ... ,, ४२५
विंशतितमं पर्व—तीर्थंकरादिभवानुकीर्तनं ... ... ,, ४४०
एकविंशतितमं पर्व—सुव्रतवज्रबाहुकीर्तिमाहात्म्यवर्णनं ... ... ,, ४६०
द्वाविंशतितमं पर्व—सुकोशलमाहात्म्ययुक्तदशरथोपत्यभिधानं ... ... ,, ४७५
त्रयोविंशतितमं पर्व—बिभीषणव्यसनवर्णनं ... ... ,, ४८९
चतुर्विंशतितमं पर्व—केकयावरप्रदानं ... ... ,, ४९५
पञ्चविंशतितमं पर्व—चतुर्भ्रातृसंभवाभिधानं... ... ... ,, ५०६



श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतं

पद्मपुराणम् ।

मंगलाचरणम् ।

सिद्धं संपूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमं । प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनं ॥ १ ॥
सुरेंद्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरं । प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलं ॥ २ ॥
प्रथमं चावसर्पिण्यामृषभं जिनपुंगवं । योगिनं सर्वविद्यानां विधातारं स्वयंभुवं ॥ ३ ॥
अजितं विजिताशेषबाह्यशारीरशात्रवं । शंभवं शं भवत्यस्मादित्यभिख्यामुपागतं ॥ ४ ॥

अभिनंदिततिनिःशेषभुवनं चाभिनंदनं । सुमतिं सुमतिं नाथं मतांतरनिराशिनं ॥ ५ ॥
उद्यदर्ककरालीढपद्माकरसमप्रभं । पद्मप्रभं सुपार्श्वं च सुपार्श्वं सर्ववेदिनं ॥ ६ ॥
शरत्सकलचंद्राभं परं चंद्रप्रभं प्रभुं । पुष्पदंतं च संफुल्लकुंदपुष्पप्रभद्विजं ॥ ७ ॥
शीतलं शीतलध्यानदायिनं परमेष्ठिनं । श्रेयांसं भव्यसत्त्वानां श्रेयांसं धर्मदेशिनं ॥ ८ ॥
वासुपूज्यं सतामीशं वसुपूज्यं जितद्विषं । विमलं जन्ममूलानां मलानामतिदूरगं ॥ ९ ॥
अनंतं दधतं ज्ञानमनंतं कांतदर्शनं । धर्मं धर्मध्रुवाधारं शांतं शांतिजिनाहितं ॥ १० ॥
कुंथुप्रभृतिसत्त्वानां कुंथुं हितनिरूपितं । अशेषक्लेशनिर्मोक्षपूर्वसौख्यारणादरं ॥ ११ ॥
संसारस्य निहंतारं मल्लं मल्लिं मलोज्झितं । नमिं च प्रणताशेषं सुरासुरगुरुं विभुं ॥ १२ ॥
अरिष्टनेमिमन्यूनारिष्टनेमिं महाद्युतिं । पार्श्वं नागेंद्रसंसक्तपरिपार्श्वं विशां पतिं ॥ १३ ॥
सुव्रतं सुव्रतानां च देशकं दोषदारिणं । यस्य तीर्थे समुत्पन्नं पद्मस्य चरितं शुभं ॥ १४ ॥
अन्यानपि महाभागान् मुनीन् गणधरादिकान् । प्रणम्य मनसा वाचा कायेन च पुनः पुनः १५
पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिंगितवक्षसः । प्रफुल्लपद्मवक्त्रस्य गुरुपुण्यस्य धीमतः ॥ १६ ॥
अनंतगुणगेहस्य तस्योदारविचेष्टितः । गदितुं चरितं शक्तः केवलं श्रुतकेवली ॥ १७ ॥

मादृशोपि वदत्येव चरितं यस्य यत्पुमान् । तच्चरितं क्रमायातं परमं देशदेशनात् ॥ १८ ॥
मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजंति हरिणाः पथि । प्रविशंति भटा युद्धं महाभटपुरस्सराः ॥ १९ ॥
भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जनः । सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणिं विशति सूत्रकं ॥२०॥
बुधपंक्तिक्रमायातं चरितं रामगोचरं । भक्त्या प्रणोदिता बुद्धिः प्रष्टुं मम समुद्यता ॥ २१ ॥
विशिष्टचिंतयायातं यच्च श्रेयः क्षणान्महत् । तेनैव रक्षितायाता चारुतां मम भारती ॥ २२ ॥
व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लंभिता या न सत्कथां । सा तस्य निष्फला जंतोः पापादानाय केवलं२३
वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलं । प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् ॥ २४ ॥
अल्पकालमिदं जंतोः शरीरं रोगनिर्भरं । यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चंद्रार्कतारकं ॥ २५ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना । शरीरं स्थास्नु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनं ॥ २६ ॥
लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जंतुना । यो विधत्ते कथां रम्यां सज्जनानंददायिनीं ॥ २७ ॥
सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम । अन्यौ विदूषकश्चैव श्रवणाकारधारिणौ ॥ २८ ॥
सच्चेष्टावर्णनावर्णा घूर्णते यत्र मूर्द्धनि । अयं मूर्द्धान्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरंकवत् ॥ २९ ॥
सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतं । अन्यच्च दुर्वचोधारं कृपाणदुहितुः फलं ॥ ३० ॥

श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ । न शम्बूकास्य संभुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥ ३१ ॥
दंतास्तएव ये शांतकथासंगमरंजिताः । शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबंधाय केवलं ॥ ३२ ॥
मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतं । अन्यत्तु मलसंपूर्णं दंतकीटाकुलं बिलं ॥ ३३ ॥
वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः । पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ३४
गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णंति साधवः । क्षीरवारिसमाहारे हंसः क्षीरमिवाखिलं ॥ ३५ ॥
गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णंत्यसाधवः । मुक्ताफलानि संत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥३६॥
अदोषामपि दोषोक्तां पश्यंति रचनां खलाः । रविमूर्त्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकां ॥ ३७ ॥
सरो-जलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः । धारयंति सदा दोषान् गुणबंधनवर्जिताः ॥ ३८ ॥
स्वभावमिति संचिंत्य सज्जनस्येतरस्य च । प्रवर्तते कथाबंधे स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥ ३९ ॥
सत्कथाश्रवणाद्यच्च सुखं संपद्यते नृणां । कृतिनां स्वार्थ एवासौ पुण्योपार्जनकारणं ॥ ४० ॥
वर्द्धमानजिनेंद्रोक्तः सोयमर्थो गणेश्वरं । इंद्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मं धारिणीभवं ॥ ४१ ॥
प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोनुत्तरवाग्मिनं । लिखितं तस्य संप्राप्य रवेर्यत्नोयमुद्गतः ॥ ४२ ॥
स्थितिर्वंशसमुत्पत्तिः प्रस्थानं संयुगं ततः । लवणांकुशसंभूतिर्भवोक्तिः परिनिर्वृतिः ॥ ४३ ॥

भवांतरभवैर्भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः । युक्ताःसप्त पुराणेस्मिन्नाधिकारा इमे स्मृताः ॥ ४४ ॥
पद्मचेष्टितसंबंधकारणं तावदत्र च । त्रैशलादिगतं वक्ष्ये सूत्रं संक्षेपि तद्यथा ॥ ४५ ॥
वीरस्य समवस्थानं कुशाग्रगिरिमूर्द्धनि । श्रेणिकस्य परिप्रश्नमिंद्रभूतेर्महात्मनः ॥ ४६ ॥
तत्र प्रश्ने युगेयत्रामुत्पत्तिं कुलकारिणीं । भीतीश्च जगतो दुःखकारणाकस्मिकेक्षणात् ॥ ४७ ॥
ऋषभस्य समुत्पत्तिमाभिषेकं नगाधिपे । उपदेशं च विविधं लोकस्यावृत्तिविनाशनं ॥ ४८ ॥
श्रामण्यं केवलोत्पत्तिमैश्वर्यं विष्टपातिगं । सर्वामराधिपायानं निर्वाणसुखसंगमं ॥ ४९ ॥
प्रधनं बाहुबलिनो भरतेन समं महत् । समुद्भवं द्विजातीनां कुतीर्थिकगणस्य च ॥ ५० ॥
इक्ष्वाकुप्रभृतीनां च वंशानां गुणकीर्तनं । विद्याधरसमुद्भूतिं विद्युदंष्ट्रसमुद्भवं ॥ ५१ ॥
उपसर्गं जयंतस्य केवलज्ञानसंपदं । नागराजस्य संक्षोभं विद्याहरणसर्जने ॥ ५२ ॥
अजितस्यावतरणं पूर्णाबुदसुतासुखं । विद्याधरकुमारस्य शरणं प्रतिसंश्रयं ॥ ५३ ॥
रक्षोनाथपरिप्राप्तिं रक्षोद्वीपसमाश्रयं । सगरस्य समुद्भूतिं दुःखदीक्षणनिर्वृतिं ॥ ५४ ॥
अतिक्रांत महारक्षो जन्मनः परिकीर्तनं । शाखामृगध्वजानां च प्रज्ञप्तिमतिविस्तरां ॥ ५५ ॥
तडित्केशस्य चरितमुदधेरमरस्य च । किष्किंधांध्र खगोत्पादं श्रीमालाखेचरागमं ॥ ५६ ॥

वधाद्विजयसिंहस्य कोपं चाशनिवेगजं । अंधकांतमरिप्राप्तिं पुरसुंदरवेशनं ॥ ५७ ॥
किष्किंधपुरविन्यासं मधुपर्वतमूर्द्धनि । सुकेशनंदनादीनां लंकाप्राप्तिनिरूपणं ॥ ५८ ॥
निर्घातवधहेतुंच मालिनः संपदं परां । दक्षिणे विजयार्द्धस्य भागे च रथनूपुरे ॥ ५९ ॥
पुरे जननमिंद्रस्य सर्वविद्याभृतां विभोः । मालिनः पंचतावाप्तिं जन्म वैश्रवणस्य च ॥ ६० ॥
पुष्पांतकसमावेशं तनयस्य सुमालिनः । कैकस्या सह संयोगं चारुस्वप्नावलोकनं ॥ ६१ ॥
दशाननस्य प्रजनं विद्यानां समुपासनं । अनावृतस्य संक्षोभमागमं च सुमालिनः ॥ ६२ ॥
मंदोदर्याः परिप्राप्तिं कन्यकानां निरीक्षणं । चेष्टितैर्भानुकर्णस्य कोपं वैश्रवणोद्भवम् ॥ ६३ ॥
यक्षराक्षससंग्रामं धनदस्य तपस्यनं । लंकागमं दशास्यस्य प्रश्नचैत्यावलोकने ॥ ६४ ॥
श्रीमतो हरिषेणस्य माहात्म्यं पापनाशनं । त्रिजगद्भूषणाभिख्यं द्विरदेंद्रविलोकनं ॥ ६५ ॥
यमस्थानच्युतिं चार्करजः किष्किंधसंगमं । चारणं कैकसेयाश्च खरालंकारसंश्रयं ॥ ६६ ॥
अनुराधामहादुःखं चंद्रोदयवियोगतः । विराधितपुरभ्रंशं सुग्रीवश्रीसमागमं ॥ ६७ ॥
वालेःप्रव्रजनं क्षोभमष्टापदमहीभृतः । सुग्रीवस्य सुतारायां लाभं साहसगामिनः ॥ ६८ ॥
संतापं विजयार्द्धाद्रिगमनं रावणस्य च । अनरण्यसहस्रांशुवैराग्यं यज्ञनाशनं ॥ ६९ ॥

मधुपूर्वभवाख्यानमुपरंभाभिभाषणं । विद्यालाभं महेंद्रस्य राज्यलक्ष्मीपरिक्षयं ॥ ७० ॥
दशास्यमेरुगमनं पुनश्च विनिवर्तनं । अनंतवीर्यकैवल्यं दशास्यनियमग्रहं ॥ ७१ ॥
हनूमतः समुत्पत्तिं कपिकेतोर्महात्मनः । अष्टापदे महेंद्रेण प्रह्लादस्याभिभाषणं ॥ ७२ ॥
वायोः कोपं प्रसादं च तज्जायाप्रजनोज्झने । दिगंबरेण कथनं हनूमत्पूर्वजन्मनः ॥ ७३ ॥
सूतिस्तनूरुहप्राप्तिं प्रतिसूर्येण कारितं । भूताटवीं प्रविष्टस्य वायोरिभविलोकने ॥ ७४ ॥
विद्याधरसमायोगमंजनादर्शनोत्सवं । वायुपुत्रसहायत्वं दारुणं परमं रणं ॥ ७५ ॥
रावणस्य महाराज्यं जैनमुत्सेधमंतरं । रामकेशवतच्छत्रुषट्खंडपरिवेष्टितं ॥ ७६ ॥
दशस्यंदनसंभूतिं कैकय्या वरसंपदं । पद्मलक्ष्मणशत्रुघ्नभरतानां समुद्भवं ॥ ७७ ॥
सीतोत्पत्तिं प्रभाचक्रदूतं तन्मातृशोचनं । नारदालिखितां सीतां दृष्ट्वा भ्रातुर्विमूढतां ॥ ७८ ॥
स्वयंवराय वृत्तांतं चापरत्नस्य चोद्भवं । सर्वभूतशरण्यस्य दशस्यंदनदीक्षणं ॥ ७९ ॥
भाचक्रान्यभवज्ञानं विदेहायाश्च दर्शनं । कैकय्या वरतो राज्यप्रापणं भरतस्य च ॥ ८० ॥
वैदेही पद्मसौमित्रिगमनं दक्षिणाशया । चेष्टितं वज्रकरणस्य लाभं कल्याणयोषितः ॥ ८१ ॥
रुद्रभूतिवशीकारं वालिखिल्यविमोचनं । निकारमरुणग्रामे रामपुर्याभिवेशनं ॥ ८२ ॥

संगमं वनमालाया अतिवीर्यसमुन्नतिं । प्राप्तिं च जितपद्मायाः कौलदेशविभूषणं ॥ ८३ ॥
चरितं कारणं रामं चैत्यानां वंशपर्वते । जटायुर्नियमप्राप्तिं पात्रदानफलोदयं ॥ ८४ ॥
महानागरथारोहं शंककविनिपातनं । कैकसेय्याश्च वृत्तांतं खरदूषणविग्रहं ॥ ८५ ॥
सीताहरणशोकं च शोकं रामस्य दुर्द्धरं । विराधितस्यागमनं खरदूषणपंचतां ॥ ८६ ॥
विद्यानां रत्नजटिनः छेदं सुग्रीवसंगमं । निधनं साहसगतेः सीतोदंतं विहायसा ॥ ८७ ॥
यानं बिभीषणायानं विद्याप्तिं हरिपद्मयोः । इंद्रजित्कुंभकर्णाब्दस्वरपन्नगबंधनं ॥ ८८ ॥
सौमित्रिशक्तिनिर्भेदविशल्याशल्यताकृतिं । रावणस्य प्रवेशं च जिनशांतिगृहं शुभं ॥ ८९ ॥
लंकाभिभवनं प्रातिहार्यं देवैः प्रकल्पितं । चक्रोत्पत्तिं च सौमित्रः कैकसेयस्य हिंसनं ॥ ९० ॥
विलापं तस्य नारीणां केवल्यागमनं ततः । दीक्षामिंद्रजिदादीनां सीतया सह संगमं ॥ ९१ ॥
नारदस्य च संप्राप्तिमयोध्याया निवेशनं । पूर्वजन्मानुचरितं गजस्य भरतस्य च ॥ ९२ ॥
तत्प्रव्रज्यां महाराज्यं सीरचक्रप्रहारिणः । लाभं मनोरमायाश्च लक्ष्म्यालिंगितवक्षसः ॥ ९३ ॥
संयुगे मरणप्राप्तिं सुमाधोर्लवणस्य च । मथुरायां सदेशायामुपसर्गविनाशनं ॥ ९४ ॥
सप्तर्षिसंश्रयात्सीतानिर्वासपरिदेवने । वज्रजंघपरित्राणं लवणांकुशसंभवं ॥ ९५ ॥

अन्यराज्यपराभूतिः पित्रा सह महाहवं । सर्वभूषणकैवल्यसंप्राप्तावमरागमं ॥ ९६ ॥
प्रातिहार्यं च वैदेह्या विभीषणभवांतरं । तपः कृतांतवक्त्रस्य परिक्षोभं स्वयंवरे ॥ ९७ ॥
श्रमणत्वं कुमाराणां प्रभामंडलदुर्मतिं । दीक्षां पवनपुत्रस्य नारायणपरासुतां ॥ ९८ ॥
रामात्मजतपःप्राप्तिं पद्मशोकं च दारुणं । पूर्वाप्तदेवजनिताद्बोधान्निर्ग्रंथताश्रयं ॥ ९९ ॥
केवलज्ञानसंप्राप्तिं निर्वाणपदसंगतिं । एतत्सर्वं समाधाय मनः शृणुत सज्जनाः ॥ १०० ॥
सिद्धास्पदपरिप्राप्तेः सोपानमभिसौख्यदं ।
पद्मादीन्मुनिसत्तमान् स्मृतिपथे तावन्नृणां कुर्वतां । दूरंभावभरानतेन मनसा मोक्षं परं विभ्रतां ॥
पापं याति भिदां सहस्रगणनैः खंडैश्चिरं संचितं । निःशेषं चरितं तु चंद्रधवलं किं श्रृण्वतामुच्यते १०१
एतद्यैः कृतमुत्तमं परिहृतं तैश्चेदमेनस्करं । कर्मात्यंतविवेकचित्तचतुराः संतः प्रशस्ता जनाः ॥
सेवध्वं चरितं पुराणपुरुषैरासेवितं सर्वतः । सन्मार्गप्रकटीकृते हि रविणा कश्चारुदृष्टिः स्खलेत् १०२

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सूत्रविधानं नाम प्रथमं पर्व ।

अथ द्वितीयं पर्व ।

अथ जंबूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि । मगधाभिख्ययाख्यातो विषयोस्ति समुज्वलः ॥ १ ॥
निवासः पूर्णपुण्यानां वासवावाससन्निभः । व्यवहारैरसंकीर्णैः कृतलोकव्यवस्थितिः ॥ २ ॥
क्षेत्राणि दधते यस्मिन्नुत्खातानूलांगलाननैः । स्थलाब्जमूलसंघातान्महीसारगुणानिव ॥ ३ ॥
क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मदानिलचलद्दलैः । पुंड्रेक्षुवाटसंतानैर्व्याप्तानंतरभूतलः ॥ ४ ॥
अपूर्वपर्वताकारैर्विभक्तैः खलधामभिः । सस्यकूटैः सुविन्यस्तैः सीमांता यस्य संकटाः ॥ ५ ॥
उद्धाटकघटीसिक्तैर्यत्र जीरकजूटकैः । नितांतहरितैरुर्वी जटालेव विराजते ॥ ६ ॥
उर्वरायां वरीयोभिः यः शालेयैरलंकृतः । मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशान्कपिलत्विषा ॥ ७ ॥
तापस्फुटितकोशीकैराजमाषैर्निरंतराः । उद्देशा यत्र किर्मीरानिक्षेत्रियतृणोद्गमाः (?) ॥ ८ ॥
अधिष्ठितेस्थलीपृष्टे श्रेष्ठगोधूमधामभिः । प्रशस्यैरन्यशस्यैश्च युक्तप्रत्यूहवर्जितैः ॥ ९ ॥
महामहिषपृष्टस्थगायद्गोपालपालितैः । कीटातिलंपटोद्ग्रीववलाकानुगतध्वनिः ॥ १० ॥
विवर्णसूत्रसंबंधघंटारटितहारिभिः । क्षरद्भिरजस्रासत्पीतक्षीरोदवत्पयः ॥ ११ ॥
सुस्वादरससंपन्नैर्बाष्पच्छेद्यैरनंतरैः । तृणैस्तृप्तिं परिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षपूः ॥ १२ ॥

सारीकृतसमुद्देशः कृष्णसारैर्विसारिभिः । सहस्रसंख्यैर्गीर्वाणस्वामिनो लोचनैरिव ॥ १३ ॥
केतकीधूलिधवलाः यस्य देशाः समुन्नताः । गंगापुलिनसंकाशो विभांति जिनसेविताः ॥ १४ ॥
शाककंदलवाटेन श्यामलश्रीधरः क्वचित् । वनपालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजितः ॥ १५ ॥
कोटिभिः शुकचंचूनां तथा शाखामृगाननैः । संदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिः दाडिमीवनैः ॥१६॥
वत्सपालीकराघृष्टमातुलिंगीफलांभसा । लिप्ताः कुंकुमपुष्पाणां प्रकरैरुपशोभिताः ॥ १७ ॥
फलस्वादपयःपानसुखसंसुप्तमार्गगाः । वनदेवीप्रपाकाराः द्राक्षाणां यत्र मंडपाः ॥ १८ ॥
विलुप्यमानैः पथिकैः पिंडखर्जूरपादपैः । कपिभिश्च कृताचोटैर्मोचानां निचितः फलैः ॥ १९ ॥
तुंगार्जुनवनाकीर्णतटदेशैर्महोदरैः । गोकुलाकलितादारस्वरवत्कूलधारिभिः ॥ २० ॥
विस्फुरच्छफरीनालैर्विकसल्लोचनैरिव । हसद्भिरिव शुक्लानां पंकजानां कदंवकैः ॥ २१ ॥
तुंगैस्तरंगसंघातैर्नर्तनप्रसृतैरिव । गायद्भिरिव संसक्तः हंसानां मधुरस्वनैः ॥२२॥ (त्रिभिर्विशेषकं)
सामोदजनसंघातसमासितसरित्तटैः । सरोमिसारसाकीर्णैर्वनरंध्रेषु भूषितः ॥ २३ ॥
संक्रीडनैर्वपुष्मद्भिराविकोष्ट्रकतार्णकैः । कृतसंबाधसर्वाशा हितपालकपालकैः ॥ २४ ॥
दिवाकररथाश्वानां लोभनार्थमिवोचितैः । पृष्टैः कुंकुमपंकेन चलत्प्रोथपुटैर्मुखैः ॥ २५ ॥

उदरस्थकिशोराणां जवायैव प्रभंजनं । स्वच्छंदमापिबंतीनां वडवानां गणैश्चितः ॥२६॥ (युग्मम्)
चरद्भिर्हंससंघातैर्धनैर्जनगुणैरिव । रवेणाकृष्टचेतोभिरत्यंतधवलः क्वचित् ॥ २७ ॥
संगीतस्वनसंयुक्तैर्मयूरख मिश्रितैः । यस्मिन्पुरजनिर्घोषैर्मुखरं गगनं सदा ॥ २८ ॥
शरन्निशाकरस्वेतवृत्तैर्मुक्ताफलोपमैः । आनंददानचतुरैर्गुणवद्भिः प्रसाधितः ॥ २९ ॥
तर्पिताध्वगसंघातैः फलैर्वरतरूपमैः । महाकुटंबिभिर्नित्यं प्राप्तोभिगमनीयतां ॥ ३० ॥
सारंगमृगसद्वंधमृगरोमाभिरावृतैः । हिमवत्पाददेशीयैः कृतस्थैर्यो महत्तरैः ॥ ३१ ॥
हताः कुदृष्टयो यस्मिन् जिनप्रवचनांजनैः । पापकक्षं च निर्दग्धं महामुनितपोग्निभिः ॥ ३२ ॥
तत्रास्ति सर्वतः कांतं नाम्ना राजगृहं पुरं । कुसुमामोदसुभगं भुवनस्यैव यौवनं ॥ ३३ ॥
महिषीणां सहस्रैर्यत्कुंकुमांचितविग्रहैः । घर्मांतःपुरनिर्मासं धत्ते मानसकर्षणं ॥ ३४ ॥
मरुद्धूतचमरैर्वालव्यजनशोभितैः । प्रांतैरमरराजस्य छायां यदवलंबते ॥ ३५ ॥
संतापमपरैः प्राप्तैः कृतमीश्वरमार्गणैः । मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुतां ॥ ३६ ॥
सुधारससमासंगपांडुरागारपंक्तिभिः । टंककल्पितशीतांशुशिलाभिरिवकल्पितं ॥ ३७ ॥
मदिरामत्तवनिताभूषणस्वनसंभृतं । कुवेरनगरस्येव द्वितीयं सन्निवेशनं ॥ ३८ ॥

तपोवनं मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममंदिरं । लासकैर्नृत्तभवनं शत्रुभिर्यमपत्तनं ॥ ३९ ॥
शस्त्रिभिर्वीरनिलयोऽभिलाषमणिरार्थिभिः । विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म बंदिभिर्धूर्तपत्तनं ॥ ४० ॥
गंधर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः । विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मंदिरं विश्वकर्मणः ॥ ४१ ॥
साधूनां संगमः सद्भिर्भूमिलाभस्य वाणिजैः । पंजरं शरणप्राप्ते वज्रदारुविनिर्मितं ॥ ४२ ॥
वार्तिकैरसुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमंडली । परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवार्तीभिः ॥ ४३ ॥
चारणैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरः पुरं । सर्वलोकश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥ ४४ ॥
यत्र मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः । श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥४५॥
चंद्रकांतशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः । भुजंगानामगम्याश्च कंचुकावृतविग्रहाः ॥ ४६ ॥
महालावण्ययुक्ताश्च मधुरालापतत्पराः । प्रसन्नोज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहितेहिताः ॥ ४७ ॥
कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मीं दधतेथचतुर्विधाः । मनोज्ञा नितरां मध्ये सुवृत्ताश्चायतिं गताः ॥ ४८ ॥
लोकांतपर्वताकारं यत्र प्राकारमंडलं । समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनं ॥ ४९ ॥
आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः । देवेंद्र इव विश्राणः सर्ववर्णधरं धनुः ॥ ५० ॥
कल्याणप्रकृतित्वेन यश्च पर्वतराजवत् । समुद्र इव मर्यादालंघनत्रस्तचेतसा ॥ ५१ ॥

कलानां ग्रहणे चंद्रो लोकधृत्या धरामयः । दिवाकरः प्रतापेन कुबेरो धनसंपदा ॥ ५२ ॥
शौर्यरक्षितलोकोपि तयानुगतमानसः । लक्ष्म्यापि कृतसंबंधो न गर्वग्रहदूषितः ॥ ५३ ॥
जितजेयोपि नो शस्त्रव्यायामेषु पराङ्मुखः । विधुरेष्वप्यसंभ्रांतः प्रणतेष्वपि पूजकः ॥ ५४ ॥
रत्नभूतिरभूद्यस्य मलमुक्तेषु साधुषु । पृथिवीभेदविज्ञानं पाषाणशकलेषु तु ॥ ५५ ॥
क्रियासु दानयुक्तासु महासाधनदर्शनं । वृहत्कीटपरिज्ञानं मदोत्कटगजेषु तु ॥ ५६ ॥
सर्वस्याग्रेसरे प्रीतिर्यशस्यत्यंतपुन्नता । जरत्तृणसमावृद्धिर्जीविते तु विनश्वरे ॥ ५७ ॥
प्रसाधनमतिः प्राप्तकराश्वासासु संततं । आत्मीयासु तु भार्यासु विबोधाश्चान्यपुत्रिका ॥ ५८ ॥
गुणावनमिते चापे प्रतिपत्तिसहायजा । न पिंडमात्रसंतुष्टे भृत्यवर्गेपचारिणि ॥ ५९ ॥
वातोपि नाहरत्किंचिद्यत्र रक्षति मेदिनीं । प्रावर्तत न हिंसायां क्रूरा पशुगणा अपि ॥ ६० ॥
वृषघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव । नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गितापि पिनाकिवत् ॥ ६१ ॥
गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव । नातिदंडग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥ ६२ ॥
वरुणस्येव न द्रव्यं निस्त्रिंशग्राहरक्षितं । निःफला सन्निधिप्राप्तिर्नोत्तराशापतेरिव ॥ ६३ ॥
बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनं । न श्री बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव ॥ ६४ ॥

त्यागस्य नार्थिनो यस्य पर्याप्तिं समुपागताः । प्रज्ञायाश्च न शास्त्राणि कवित्वस्य न भारती ६५
साहसानि महिम्नो न नोत्साहस्य च चेष्टितं । दिगाननानि नो कीर्तिर्न संख्यागुणसंपदः ॥६६॥
चित्तानि नानुरागस्य जनस्याखिलभूतले । कला न कुशलत्वस्य न प्रतापस्य शात्रवः ॥ ६७ ॥
कथमस्मद्विधेस्तस्य शक्यंते गदितुं गुणाः । यस्येंद्रसदसि ज्ञातं सम्यग्दर्शनमुत्तमं ॥ ६८ ॥
उद्धतेषु सता तेन वज्रदंडेन शत्रुषु । तपोधनसमृद्धेषु न मता चेतसायति ॥ ६९ ॥
रक्षिता बाहुदंडेन सकला तस्य मेदिनी । पुरस्य स्थितिमात्रं तु प्राकारपरिखादिकं ॥ ७० ॥
तत्पत्नी चेलनानामा शीलांबरविभूषणा । सम्यग्दर्शनसंशुद्धा श्रावकाचारवेदिनी ॥ ७१ ॥
एकदा तु पुरस्यास्य समीपं जिनसत्तमः । श्रीमान्प्राप्तो महावीरः सुरासुरनतक्रमः ॥ ७२ ॥
मातुरप्युदरे यस्य दिक्कुमारी विशोधिते । ज्ञानत्रयसमेतस्य सुखमासीत्सुरेंद्रजं ॥ ७३ ॥
जन्मनोर्वाक्पुरस्ताच्च यस्य शक्रनिदेशतः । अशयत्पितुःसद्म धनदो रत्नवृष्टिभिः ॥ ७४ ॥
जननाभिषवे यस्य नगराजस्य मूर्द्धनि । चक्रे महोत्सवो देवैराखंडलसमन्वितैः ॥ ७५ ॥
पादांगुष्टेन यो मेरुमनायासेन कंपयत् । लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात् ॥ ७६ ॥
अमृतेन निषिक्तेन यस्यांगुष्टेऽमरेशिना । वृत्तिरासीच्छरीरस्य बालस्याबालकर्मणः ॥ ७७ ॥

सुत्रामाप्रहितैर्यस्य कांतैः सुरकुमारकैः । कुमारचेष्टितैश्चारुविनीतैरिव सेवितं ॥ ७८ ॥
आनंदः परमां वृद्धिं येन सार्थमुपागतः । पित्रोर्बंधुसमूहस्य त्रयस्य भुवनस्य च ॥ ७९ ॥
यत्र जाते पितुः सर्वे नृपाश्चिरविरोधिनः । महाप्रभावसंपन्नाः जाताः प्रणतमस्तकाः ॥ ८० ॥
रथैर्मत्तगजेंद्रैश्च वायुवेगैश्च वाजिभिः । प्राभृतद्रव्यसंयुक्तैः क्रमेलककुलैस्तथा ॥ ८१ ॥
उद्भृष्टचामरच्छत्रवाहनादिपरिच्छदैः । कांक्षद्भिः प्रतिसामंतैराजेंद्रालोकनोत्सवं ॥ ८२ ॥
नानादेशसमायातैर्महत्तरगणैस्तथा । पितुर्यस्यानुभावेन चुक्षोभ भवनाजिरं ॥ ८३ ॥
अल्पकर्मकलंकत्वाद्यस्य भोगेषु हारिषु । चित्तं न संगमायातैः पयःस्विव सरोरुहं ॥ ८४ ॥
विद्युद्विलसिताकारं ज्ञात्वा यः सर्वसंपदं । प्रवव्राज स्वयंबुद्धः कृतलौकांतिकागमः ॥ ८५ ॥
सम्यग्दर्शनसंबोधचारित्रत्रितयं प्रभुः । यः समाराध्य चिच्छेद घातिकर्मचतुष्टयं ॥ ८६ ॥
संप्राप्य केवलज्ञानं लोकालोकावलोककं । धर्मतीर्थं कृतं येन लोकार्थं कृतिना मता ॥ ८७ ॥
अवाप्तप्रापणीयस्य कृतनिष्ठात्मकर्मणः । भास्करस्येव यस्याभूत्परकृत्याय चेष्टितं ॥ ८८ ॥
मलस्वेदविनिर्मुक्तं क्षीरसप्रभशोणितं । स्वाकारसंघसंघातं शक्त्या युक्तमनंतया ॥ ८९ ॥
चारुलक्षणसंपूर्ण हितसंमतभाषणं । अप्रमेयगुणाधारं यो बभार परं वपुः ॥ ९० ॥

यस्मिन् विहरणप्राप्ते योजनानां शतद्वये । दुर्भिक्षपरपीडानामीतीनां च न संभवः ॥ ९१ ॥
विद्यानां यः समस्तानां परमेश्वरतां गतः । विशुद्धस्फटिकच्छायं छायामपनयद्वपुः ॥ ९२ ॥
पक्ष्मस्पंदविनिर्मुक्ते प्रशांते यस्य लोचने । समा नखा महानीलस्निग्धच्छायाश्च मूर्द्धजाः ॥९३॥
मैत्री समस्तविषया विहारानुगवायुना । विभूतिश्च प्रभोर्यस्य भुवनानंदकारणं ॥ ९४ ॥
सर्वर्तुफलपुष्पाणि धारयंति महीरुहाः । यस्मिन्नासन्नमायाते धरणी दर्पणायते ॥ ९५ ॥
सुगंधिमरुतो यत्र योजनांतरभूतलं । कुर्वते पांसुपाषाणकंदकादिभिरुत्थितं ॥ ९६ ॥
विद्युन्माला कृताभिख्यैस्तदेवस्तनितामरैः । सुगंधिसलिलैः सिक्तं सोत्साहैर्यस्य सादरैः ॥९७॥
अप्रमेयमृदुत्वानि यस्य पद्मानि गच्छतः । धरण्यामुपजायंते यस्य व्योमविहारिणः ॥ ९८ ॥
अत्यंतफलसंपत्तिनम्रशाल्यादिभूषिता । धरिणी जायते तस्मिन्समेते सस्यकारणं ॥ ९९ ॥
शरत्सरःसमाकारं जायते विमलं नभः । धूमकादिविनिर्मुक्ता दिशस्तु सुखदर्शना ॥ १०० ॥
स्फुरितारसहस्रेण प्रभामंडलचारुणा । यत्पुरो धर्मचक्रेण स्थीयते जिनभानुना ॥ १०१ ॥
अवस्थानं चकारासौ विपुले विपुलाह्वये । नानानिर्झरनिस्पंदमधुरारावहारिणि ॥ १०२ ॥
पुष्पोपशोभितोद्देशे लतालिंगितपादपे । अधित्यका सुविस्रब्धनिर्वैरव्यालसेविते ॥ १०३ ॥

नमतीव सदा यातधूर्णितादरपादपैः । हसतीव समुत्सर्पन्निर्भरामलशीकरैः ॥ १०४ ॥
कूजितैः पक्षिसंघानां जल्पतीव मनोहरं । भ्रमराणां निनादेन गायतीव मदश्रितां ॥ १०५ ॥
आलिंगतीव सर्वाशा समीरणसुगंधिना । नानाधातुप्रभाजालमंडितोत्तुंगशृंगके ॥ १०६ ॥
गुहामुखसुखासीनं दृष्ट्राननमृगाधिपे । घनपादपखंडाधःस्थितयूथपतिद्विपे ॥ १०७ ॥
महिम्ना सर्वमाकाशसंच्छाद्येव व्यवस्थिते । पर्वतेष्टापदे रम्ये भगवानिव नाभिजः ॥ १०८ ॥
तत्रास्य जगती जाता योजनं परिमाणतः । नाम्ना समवपूर्वेण सरणेन प्रकीर्तिता ॥ १०९ ॥
आसनाभिमुखे तत्र जिने जितभवद्विषि । चुक्षोभ त्रिदशेंद्रस्य मृगेंद्रैरूढमासनं ॥ ११० ॥
प्रभावात्कस्य मे कंपं सिंहासनमिदं गतं । इत्यालोक्य विबुधोसौ ज्ञानेनावधिना ततः ॥१११॥
आज्ञापयदनुज्ञातक्षणायातं कृतांजलिं । सेनापतिं यथा देवाः क्रियंतामितिवेदिनः ॥ ११२ ॥
जिनेंद्रो भगवान् वीरः स्थितो विपुलभूधरे । तद्वंदनाय युष्माभिः समेतैर्गम्यतामिति ॥ ११३ ॥
ततः शारदजीमूतमहानिचयसन्निभं । जंबूनदतटाघातपिंगकोटिमहारदं ॥ ११४ ॥
सुवर्णकच्छया युक्तं कैलाशमिव जंगमं । सरितारसजाब्जानां पिंजरांतं ततो यया ॥ ११५ ॥
मदांधमधुपश्रेणीश्रितगंडविराजितं । धूलीकदंबसंवादिसौरभ्यव्याप्तविष्टपं ॥ ११६ ॥

कर्णतालसमासक्तसमीपालक्ष्यशंखकं । वमंतमिव पद्मानां वनान्यरुणतालुना ॥ ११७ ॥
दलंतमिव दर्पेण श्वसंतमिव शौर्यतः । मदान्मूर्छामिवायांतं मुद्यंतमिव यौवनात् ॥ ११८ ॥
स्निग्धं नखप्रदेशेषु परुषं रामगोचरे । सच्छिष्यं विनयावाप्तौ परमं गुरुमानने ॥ ११९ ॥
मृदुमूर्द्धानमत्यंतदृढं परिचयग्रहे । दीर्घमायुषि ह्रस्वत्वं दधंतं स्कंधबंधने ॥ १२० ॥
दरिद्रमुदरे नित्यं प्रवृत्तं दानवर्त्मनि । नारदं कलहप्रीतौ गरुडं नागशासने ॥ १२१ ॥
प्रदोषमिव राजंतं चारुनक्षत्रमालया । महाघंटाकृतारावं रक्तचामरमंडितं ॥ १२२ ॥
सिंदूरारुणितोत्तुंगकुंभकूटमनोहरं । पारावतं समासाद्य प्रावर्तत सुराधिपः ॥ १२३ ॥
प्राप्तश्च सहितो देवैरारूढनिजवाहनैः । जिनेंद्रदर्शनोत्साहफुल्लाननसरोरुहैः ॥ १२४ ॥
कमलायुधमुख्याश्च नभश्चरजनाधिपाः । संप्राप्ताः सहपत्नीकाः नानालंकारधारिणः ॥ १२५ ॥
ततस्तुष्टाव देवेंद्रो वचसाश्चर्यमीयुषा । गुणैरवितथैर्दिव्यैरत्यंतविमलैरिति ॥ १२६ ॥
त्वया नाथ जगत्सुप्ते महामोहनिशागतं । ज्ञानभास्करबिंबेन बोधितं पुरुतेजसा ॥ १२७ ॥
नमस्ते वीतरागाय सर्वज्ञाय महात्मने । यतोद्य दुर्गमं कूलं संसारोदन्वतः परं ॥ १२८ ॥
भवता सार्थवाहेन भव्यचेतनवाणिजाः । यास्यंति वितनुस्थानं दोषचौरैरलुंटिताः ॥ १२९ ॥

प्रवर्तितस्त्वया पंथा विमलः सिद्धगामिनां । कर्मजालं च निर्दग्धं ज्वलितध्यानवन्हिना ॥१३०॥
निर्बंधूनामनाथानां दुःखाग्निपरिवर्तिनां । बंधुर्नाथश्च जगतां जातोसि परमोदयः ॥ १३१ ॥
कथं कुर्यास्तव स्तोत्रं यस्यांतपरिवर्जिताः । उपमानेन निर्मुक्ता गुणाः केवलिगोचराः ॥१३२॥
इति स्तुतिं प्रयुज्यासौ विधाय च नमस्कृतिं । मूर्द्धजानुकरांभोजमुकुलप्राप्तभूतलः ॥ १३३ ॥
विस्मयं प्राप्तवान् दृष्ट्वा स्थानं तज्जैनपुंगवं । इति यस्य समासेन कथ्यते रूपवर्णनं ॥ १३४ ॥
इंद्रस्य पुरुषैरस्य प्राकारत्रितयं कृतं । नानावर्णमहारत्नसुवर्णमयमुत्तमं ॥ १३५ ॥
प्रधानाशामुखैस्तुंगैर्महावापीसमन्वितैः । चतुर्भिर्गोपुरैर्युक्तं रत्नछायापटैर्वृतैः ॥ १३६ ॥
आवृतं तेन तत्स्थानमष्टमंगलकान्वितं । वचसां गोचरातीतामदधत्कामपि श्रियं ॥ १३७ ॥
तत्र स्फटिकभित्त्यंगा विभागा द्वादशाभवन् । प्रादक्षण्यपथत्यक्तप्रदेशसमवस्थिताः ॥ १३८ ॥
तस्थुरेकत्र निर्ग्रंथा गणनाथैरधिष्ठिताः । अन्यत्रसेंद्रपत्नीकाः कल्पवासिसुरांगनाः ॥ १३९ ॥
अपरत्रार्यिकासंघो गणपालीसमन्वितः । ज्योतिषां योषितोन्यत्र वैयंतार्याः परत्र च ॥ १४० ॥
एकत्र भावनस्त्रीणामन्यत्र ज्योतिषां गणः । व्यंतराणां गणोन्यत्र गणोन्यत्र च भावनः ॥१४१॥
कल्पवासिन एकस्मिन्नपरत्र च मानुषाः । वैरानुभवनिर्मुक्तास्तिर्यंचोन्यत्र सुस्थिताः ॥ १४२ ॥

ततो मगधराजापि निश्चक्राम महाबलः । संपतत्सुरसंघातजातविस्मयमानसः ॥ १४३ ॥
दूरादेव हि संत्यज्य वाहनादिपरिच्छदं । स्तुतिपूर्वं जिनं नत्वा स्वदेशे समुपाविशत् ॥ १४४ ॥
अक्रूरो वारिषेणोथ कुमारोऽभयपूर्वकः । विजयवाह नामाच तथान्यनृपसूनवः ॥ १४५ ॥
स्तुतिं कृत्वा प्रणामं च मस्तकन्यस्तपाणयः । उपविष्टा यथादेशं दधाना विनयं परं ॥ १४६ ॥
वैडूर्यविटपस्याधो मृदुपल्लवशोभिनः । पुष्पस्तवकभाजालव्याप्ताशस्य विलासिनः ॥ १४७ ॥
कल्पपादपरम्यस्य जनशोकापहारिणः । हरिद्धनपलाशस्य नानारत्नगिरेरिव ॥ १४८ ॥
अशोकपादपस्याधो निविष्टः सिंहविष्टरे । नानारत्नसमुद्योतजनितेंद्रायुधोद्गमे ॥ १४९ ॥
दिव्यांशुकपरिच्छन्ने मृदुस्पर्शमनोहरे । अमरेंद्रशिरोरत्नप्रभोत्सर्पिविघातिनि ॥ १५० ॥
त्रिलोकेश्वरताचिन्हछत्रत्रितयराजिते । सुरपुष्पसमाकीर्णे भूमिमंडलवर्तिनि ॥ १५१ ॥
यक्षराजकरासक्तचलच्चामरचारुणि । दुंदुभिध्वनितोद्भूतप्रशांतप्रतिशब्दके ॥ १५२ ॥
गतित्रयगतप्राणिभाषारूपविवृतया । घनाघनघनध्वानधीरनिर्घोषया गिरा ॥ १५३ ॥
परिभूतरविद्योतप्रभामंडलमध्यगः । लोका येत्य वदद्धर्मं पृष्टो गणभृता जिनः ॥ १५४ ॥
सत्तैका प्रथमं तत्त्वं जीवाजीवौ ततः परं । सिद्धाः संसारवंतश्च जीवाश्च द्विविधाः स्मृताः १५५

पाक्यापाक्यतया माषसस्यवत्प्रविभागतः । भव्याभव्यद्वयेनात्र जीवार्थः परिकीर्तितः ॥१५६॥
धर्माधर्मादिभिर्भेदैर्द्वितीयो भिद्यते पुनः । सेत्स्यंतो गदिता भव्या अभव्यास्तु ततोन्यथा १५७
जिनदेशिततत्त्वानां श्रद्धाश्रद्धानमेतयोः । लक्षणं तत्प्रभेदाश्च पुनरेकेंद्रियादयः ॥ १५८ ॥
गत्या कायैस्तथा योगै र्वेदै र्लेश्याकषायतः । ज्ञानदर्शनचारित्रैर्गुणश्रेण्यधिरोहणैः ॥ १५९ ॥
निसर्गशास्त्रसम्यक्त्वैर्नामादिन्यासभेदतः । सदाद्यष्टानुयोगैश्च भिद्यते चेतनः पुनः ॥१६०॥
तत्र संसारिजीवानां केवलं दुःखवेदिनां । सुखसंज्ञावमूढानां तत्रैव विषयोद्भवे ॥ १६१ ॥
चक्षुषः पुटसंकोचो यावन्मात्रेण जन्यते । तावंतमपि नोकालं नारकाणां सुखासनं ॥ १६२ ॥
दमनैस्ताडनैर्दोहवाहादिभिरुपद्रवैः । तिरश्चां सततं दुःखं तथा शीतातपादिभिः ॥ १६३ ॥
प्रियाणां विप्रयोगेन तथानिष्टसमागमात् । ईप्सितानामलाभाच्च दुःखं मानुषगोचरं ॥ १६४ ॥
यथोत्कृष्टसुराणां च दृष्ट्वा भोगं महागुणं । च्यवनाच्च परं दुःखं देवानामुपजायते ॥ १६५ ॥
तत्र दुःखावनद्धेषु चतुर्गतिगतेष्विति । कर्मभूमिं समासाद्य धर्मोपार्जनमुत्तमं ॥ १६६ ॥
मनुष्यभावमासाद्य सुकृतं ये न कुर्वते । तेषां करतलप्राप्तममृतं नाशमागतं ॥ १६७ ॥
संसारंपर्यटन् जंतुर्बहुयोनिसमाकुलं । मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यंतदुःखतः ॥ १६८ ॥

तत्र लब्धेषु पापेषु शवरादिषु जायते । आर्यदेशेपि संप्राप्ते दुःकुलेषूपजायते ॥ १६९ ॥
लब्धेपि सुकुले काणकुंठादितनुसंभवः । संपूर्णकायबंधेपि दुर्लभा हि निरोगता ॥ १७० ॥
एवं सर्वमपि प्राप्य प्रशस्तानां समागमं । दुर्लभो धर्मसंवेगो विषयास्वादलोभतः ॥ १७१ ॥
ततः केचिद्वृतिं कृत्वा जठरस्यापि पूरणं । कुर्वतेत्यंतदुःखेन दूरतो विभवोज्झवः ॥ १७२ ॥
रक्तकर्दमवीभत्सं शस्त्रसंपातभीषणं । केचिद्विशंति संग्रामं जिह्वाकामवशीकृताः ॥ १७३ ॥
अनंतजंतुसंबंधं कृत्वान्ये भूमिकर्षणं । कुटुंबभरणं क्लेशात्कुर्वंति नृपपीडिताः ॥ १७४ ॥
एवं यद्यत्प्रकुर्वंति कर्मसौख्याभिलाषिणः । तत्र तत्र प्रपद्यंते जंतवो दुःखमुन्नतं ॥ १७५ ॥
अवाप्यापि धनं क्लेशाच्चौराग्निजलराजतः । पालयन् परमं दुःखमवाप्नोत्याकुलः सदा ॥१७६॥
संप्राप्तं रक्षितं द्रव्यं भुंजानस्यापि नो शमः । प्रतिवासरसं वृद्धगर्भाग्निपरिवर्तनात् ॥ १७७ ॥
प्राप्नोति धर्मसंवेगं कथंचित्पूर्वकर्मतः । संसारपदवीमेव नीयतेन्यैर्दुरात्मभिः ॥ १७८ ॥
अन्यैस्ते नाशिताः संतो नाशयंत्यपरान् जनान् । धर्मसामान्यशब्देन सेवमानाः परस्परं॥१७९॥
कथं चेतोविशुद्धिः स्यात्परिग्रहवतां सतां । चेतो विशुद्धिमूलाच्च तेषां धर्मे स्थितिः कुतः॥१८०॥
यावत्परिग्रहासक्तिस्तावत्प्राणिनिपीडनं । हिंसा च संसृतेर्मूलं दुःखं संसारसंज्ञकं ॥ १८१ ॥

परिग्रहपरिष्वंगाद्द्वेषो रागश्च जायते । रागद्वेषौ च संसारदुःखस्योत्पत्तिकारणं ॥ १८२ ॥
लब्ध्वापि दर्शनं सम्यक् प्रशमाद्दर्शनावृतेः । चारित्रं न प्रपद्यंते चारित्रावरणावृताः ॥ १८३ ॥
चारित्रमपि संप्राप्ताः कुर्वतः परमं तपः । परीषहैः पुनर्भंगं नीयते दुरतिक्रमैः ॥ १८४ ॥
अणुव्रतानि सेवंते केचिद्भंगमुपागताः । केचिद्दर्शनमात्रेण भवंति परितोषिणः ॥ १८५ ॥
केचिद्भंभीरसंसारकूपहस्तावलंबनं । सम्यग्दर्शनमुत्सृज्य मिथ्यादृष्टिमुपासते ॥ १८६ ॥
मिथ्यादर्शनसंयुक्तास्ते पुनर्भवसंकटे । भ्राम्यंति सततं जीवा दुःखाग्निपरिवर्तिनः ॥ १८७ ॥
केचित्तु पुण्यकर्माणश्चारित्रमविलंबितं । निर्वहंति महाशूरा यावत्प्राणविसर्जनं ॥ १८८ ॥
ते समाधिं समासाद्य कृत्वा देहविसर्जनं । वासुदेवादितां यांति निदानकृतदोषतः ॥ १८९ ॥
ते पुनः परपीडायां रता निर्दयचेतसः । नरकेषु महादुःखं प्राप्नुवंति सुदुस्तरं ॥ १९० ॥
केचित्तु सुतपः कृत्वा यांति गीर्वाणनाथतां । अपरे बलदेवत्वमन्ये तूत्तरवासितां ॥ १९१ ॥
केचित्प्राप्य महासत्त्वा जिनकर्माणि षोडश । तीर्थकृत्त्वं प्रपद्यंते त्रैलोक्यक्षोभकारणं ॥ १९२ ॥
केचिन्निरंतरायेण त्रितयाराधने रताः । द्वित्रैर्भवैर्विमुच्यंते कर्माष्टककलंकतः ॥ १९३ ॥
संप्राप्ता परमं स्थानं मुक्तानामुपमोज्झितं । अनंतं निःप्रतिद्वंद्वं लभंते सुखमुत्तमं ॥ १९४ ॥

ततस्ते निर्गतं धर्मं जिनवक्त्रारविंदतः । श्रुत्वा हर्षं परं जग्मुस्तिर्यक्त्रिदशमानवाः ॥ १९५ ॥
अणुव्रतानि संप्राप्ताः केचित्केचिन्निरंबरं । तपश्चरितुमारब्धाः संसारोद्विग्नमानसाः ॥ १९६ ॥
सम्यग्दर्शनमायाताः केचित्केचित्स्वशक्तितः । विरतिं जगृहुः पापसमुपार्जनकर्मतः ॥ १९७ ॥
श्रुत्वा धर्मं जिनं स्तुत्वा प्रणम्य च यथाविधि । धर्मसुस्थितचित्तास्ते याताःस्थानं यथायथं १९८
श्रेणिकोपि महाराजो राजमानो नृपश्रिया । धर्मश्रवणहृष्टात्मा प्रविवेश निजं पुरं ॥ १९९ ॥
अथ तीर्थकरोदारतेजोमंडलदर्शनात् । विलक्ष इव तिग्मांशुरस्तमैच्छन्निषेवितुं ॥ २०० ॥
अस्ताचलसमीपस्थसरोसहरुचामिव । मणीनां किरणैश्छन्नो जगामात्यंतशोणतां ॥ २०१ ॥
अमंदायंत किरणा नित्यमस्यानुयायिनः । कस्य वा तेजसो वृद्धिः स्वामिन्यापदमागते ॥२०२॥
ततो विलोचनैः साश्चैरीक्षिताः कोकयोषितां । अदर्शनं ययौ मंदं कृपयेव विरोचनः ॥ २०३ ॥
धर्मश्रवणतो मुक्तो यो रागः प्राणिनां गणैः । संध्याछलेन तेनैव ककुभां चक्रमाश्रितं ॥२०४॥
उपकारे प्रवृत्तोयमस्मान्स्वप्रार्थितः परं । इतीव चक्षुर्लोकस्य मित्रेणेव समं गतं ॥ २०५ ॥
व्रजतो दिननाथस्य रागं प्रलयगामिनं । संकुचंत्यरविंदानि कवलैरिवगृह्णते ॥ २०६ ॥
समीकृततटोत्तुंगं निरूपणविवर्जितं । ततः प्रकटतामारेर्जनस्येव चेष्टितं ॥ २०७ ॥

विदधे सांध्यमुद्योतं सकलं वहलं तमः । पटलं धूमसंबंधि प्रशाम्यंतमिवानलं ॥ २०८ ॥
चंपकः कारिकाकारप्रदीपप्रकरोगमत् । कंपितो मंदवातेन यामिनी कर्णपूरतां ॥ २०९ ॥
तृप्ता रसेनपद्मानां धूतपक्षा मृणानलकैः । कृत्वा कंडूयनं निद्रां राजहंसाः सिषेविरे ॥ २१० ॥
धम्मिल्लमल्लिकाबंधग्राही सायंतनो मरुत् । वातुं प्रववृते मंदं निशा निश्वाससन्निभः ॥ २११ ॥
उच्चकेसरकोटीनां संकटेषु कदंबकैः । कुशेशयकुटीरेषु शिश्ये षट्पदसंहतिः ॥ २१२ ॥
नितांतविमलैश्चक्रे रम्यं तारागणैर्नभः । त्रैलोक्यं जिननाथस्य सुभाषितचयैरिव ॥ २१३ ॥
तमोथ विमलैर्भिन्नं शशांककिरणांकुरैः । एकांतवादिनां वाक्यं नयैरिव जिनोदितैः ॥ २१४ ॥
उज्जगाम च शीतांशुर्लोकनेत्राभिनंदितः । वपुर्बिभ्रत्कृताकंपध्वांतकोपादिवारुणं ॥ २१५ ॥
चंद्रालोके ततो लोककरग्राह्यत्वमागते । आरेभे तमसा खिन्नः क्षीरोदांक इवासितुं ॥ २१६ ॥
आमृष्टानि करैरिंदोर्वहंत्या मोदमुत्तमं । सहसातीव यातानि कुमुदानि विकासतां ॥ २१७ ॥
इति स्पष्टे समुद्भूते प्रदोषे जनसौख्यदे । प्रवृत्तदंपतिप्रीतिप्रवृद्धमदनोत्सवे ॥ २१८ ॥
तरंगभंगुराकारगंगापुलिनसन्निभे । रत्नच्छायापरिष्वक्तनिःशेषभुवनोदरे ॥ २१९ ॥
गवाक्षमुखनिर्यातकुसुमोत्तमसौरभे । पार्श्वस्थवारवनिताकलगीतमनोरमे ॥ २२० ॥

ज्वलन्नातिसमीपस्थस्फटिकच्छन्नदीपके । अप्रमत्तशिरोरक्षिगणकल्पितरक्षणे ॥ २२१ ॥
प्रसूनप्रकरावाप्तमंडनक्ष्मातलस्थिते । उपयातसुविन्यस्ततनुविस्तीर्णपट्टके ॥ २२२ ॥
विधाय भूभुजः कृत्यं कृतजैनेंद्रसंकथः । शयनीये सुखं शिश्ये कुशाग्रनगराधिपः ॥ २२३ ॥
जिनेंद्रमेव चापश्यत्स्वप्नेपि च पुनः पुनः । पर्यपृच्छच्च संदेहं पपाठ च जिनोदितं ॥ २२४ ॥
ततो मदकलेभेंद्रनिद्रां विद्रावकारिणा । गेहकक्षातिगंभीरगुहागोचरगामिना ॥ २२५ ॥
महाजलदसंघातधीरघोषानुहारिणा । प्रभाततूर्यनादेन विबुद्धो मगधाधिपः ॥ २२६ ॥
अचिंतयच्च वीरेण भाषितं धर्महेतुकं । चक्रवर्त्यादिवीराणां संभवं प्रणिधानतः ॥ २२७ ॥
अथास्य चरिते पद्मसंबधिनि गतं मनः । संबंध इव चेत्यासीद्रक्षस्सु प्लवगेषु च ॥ २२८ ॥
कथं जिनेंद्रधर्मेण जाता संतो नरोत्तमाः । महाकुलीना विद्वांसो विद्योद्योतितमानसाः ॥२२९॥
श्रूयंते लौकिके ग्रंथे राक्षसा रावणादयः । वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥ २३० ॥
रावणस्य किल भ्राता कुंभकर्णो महाबलः । घोरनिद्रापरीतः षण्मासान् शेते निरंतरं ॥ २३१ ॥
मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दनं यदि । तप्ततैलकटाहैश्च पूर्येते श्रवणौ यदि ॥ २३२ ॥
भेरीशंखनिनादेपि सुमहानपि जन्यते । तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धतां ॥ २३३ ॥

क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्वासौ विबुद्धःसन्महोदरः । भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धरः ॥ २३४ ॥
तिर्यग्भिर्मानुषैर्देवैः कृत्वा तृप्तिं ततः पुनः । स्वपित्येव विमुक्तान्यनिःशेषपुरुषस्थितिः ॥२३५॥
अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याधरकुमारकः । अभ्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रंथकच्छकैः ॥ २३६ ॥
एवंविधं किल ग्रंथं रामायणमुदाहृतं । शृण्वतां सकलं पापं क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥ २३७ ॥
तापश्च जनचित्तस्य सोयमग्निसमागमः । सीतापनोदकामस्य तुषारानिलसंगमः ॥ २३८ ॥
हैयंगवीनकामस्य तदिदं जलमंथनं । सिकतापीडनं तैलमवाप्नुमभिवांछतः ॥ २३९ ॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु । पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमतिः कृता ॥ २४० ॥
अमराणां किलाधीशो रावणेन पराजितः । आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तैर्वार्णैर्मर्मविदारिभिः ॥ २४१ ॥
देवानामधिपः क्वासौ वराकः क्वैष मानुषः । तस्य चिंतितमात्रेण यायाद्यो भस्मराशितां ॥२४२॥
ऐरावतो गजो यस्य यस्य वज्रं महायुधं । समेरुवारिधिं क्षोणीं योऽनायासात्समुद्धरेत् ॥ २४३ ॥
सोयं मानुषमात्रेण विद्याभाजालपशक्तिना । आनीयते कथं भंगं प्रभुः स्वर्गनिवासिनां ॥२४४॥
बंदीग्रहगृहीतोसौ प्रभुणा रक्षसां किल । लंकायां निवसन्कारागृहे निगडसंयतः ॥ २४५ ॥
मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः । वधो गंडूपदेनाहेर्गजेंद्रशासनं शुना ॥ २४६ ॥

व्रतप्राप्तेन रामेण सौवर्णो रुरुराहतः । सुग्रीवस्याग्रजः स्वत्वर्थं जनकेन समस्तथा ॥ २४७ ॥
अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः । भगवंतं गणाधीशं सोहं प्रष्टास्मि गौतमं ॥ २४८ ॥
एवं चिंतयतस्तस्य महाराजस्य धीमतः । वंदिभिस्तूर्यनादांते जयशब्दो महान् कृतः ॥२४९॥
कुलपुत्रेण चासन्नस्वामिना बोधमीयुषा । निसर्गेणैव पठितः श्लोकोयं जठरायुषा ॥ २५० ॥
पृष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयं । स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परमं सुखं ॥ २५१ ॥
एतदानंदयंश्चारु निमित्तं मगधाधिपः । शयनीयात्समुत्तस्थौ स्वस्त्रीभिः कृतमंगलः ॥ २५२ ॥
अथकुसुमपटांतः सुप्तनिःक्रांतभृंग । प्रहितमधुरनादाभ्यंतरस्यैकदेशात् ॥
जडपवनविधूताकंपिता पांडुदीपात् । निरगमदवनीशः श्रीमतो वासगेहात् ॥ २५३ ॥
रदनशिखरदष्टस्पष्टविंबोष्टपुष्ट । प्रतिहतजयनाद श्रीसमानद्युतीनां ॥
करमुकलनिबद्धव्यक्तपद्माकराणां । श्रवणपथमनैषीच्चैष वारागनानां ॥ २५४ ॥
अतिशयशुभचिंतासंगनिष्कंपचेता । नरपतिरुपनीताशेषतत्कालभावः ॥
धवलकमलभासो वासगेहादपेतो । रविरिवशरदभ्रो दारवृंदादभासीत् ॥ २५५ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते श्रेणिकचिंताभिधानं नाम द्वितीयं पर्व ।

अथ तृतीयं पर्व ।

आस्थानमंडपेऽथासौ कृताशेषतनुस्थितिः । सर्वालंकारसम्पन्नो निविष्टो भद्रविष्टरे ॥ १ ॥
सामंतैश्च प्रतीहारदत्तद्वारैरुपागतैः । केयूरकोटिसंघट्टपाटितप्रवरांशुकैः ॥ २ ॥
पतद्भ्रमरसंगीतमौलिमालावतंसकैः । कटकांशुचयैश्छन्नकराग्रस्पष्टभूतलैः ॥ ३ ॥
ललत्प्रालंबतरलप्रभापटलसारितैः । प्रणतः सद्गुणग्रामसमावर्जितमानसैः ॥ ४ ॥
ततस्तैरनुयातोसावारूढवरवाहनैः । प्रष्ठाहितकुथाशोभां भद्रामारुह्य वासितां ॥ ५ ॥
गृहीतमंडलाग्रेण बद्धसायकधेनुना । प्रकोष्टे दधता वामे कटकं हेमनिर्मिते ॥ ६ ॥
दूरमुड्डीयमानेन वायुमार्गे मुहुर्मुहुः । मृगाणामिव यूथेन नभस्वदनुगामिना ॥ ७ ॥
याहि याहि पुरोमार्गादर्पसर्प व्रज व्रज । चल किं स्तंभितोसीति पादातेन कृतध्वनिः ॥ ८ ॥
निश्चक्राम पुरो राजा वंदिनः पठतोग्रतः । आकर्णयन्समाधानन्यस्तचित्तः सुभाषितं ॥ ९ ॥
प्राप्तश्च तमसौ देशं यस्मिन्मुनिरावृतः । सर्वश्रुतजलस्नाननिर्मलीकृतचेतनः ॥ १० ॥
शुद्धध्यानशमाविष्टस्तत्त्वाख्यानपरायणः । उपविष्टःसुखस्पर्शे लब्ध्युत्पन्ने मसूरके ॥ ११ ॥

कांत्या तारापतेस्तुल्यो दीप्त्या भास्करसन्निभः । अशोकपल्लवच्छायपाणिपादोंबुजेक्षणः ॥१२॥
प्रशांतेन शरीरेण भुवनं शमयन्निव । पतिर्गणस्य साधूनां गौतमाख्योवतिष्ठते ॥ १३ ॥
दूरादेवावतीर्णश्च करेणोश्वरणायनः । प्रमोदोत्फुल्लनयनो ड्ढौके विनयानतः ॥ १४ ॥
ततस्तं त्रिपरीत्यासौ प्रणम्य च कृतांजलिः । दत्ताशीर्गणनाथेन धरायां समुपाविशत् ॥ १५ ॥
अथ दंतप्रभाजालधवलीकृतभूतलः । पर्यपृच्छदिदं राजा कुशलप्रश्नपूर्वकं ॥ १६ ॥
भगवन्पद्मचरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । उत्पादितान्यथैवास्मिन् प्रसिद्धिः कुमतानुगैः ॥१७॥
राक्षसोपि हि लंकेशो विद्यावान् मानवोपि वा । तिर्यग्भिः परिभूतोसौ कथं क्षुद्रकवानरैः॥१८॥
अतिचात्यंतदुर्गंधं कथं मानुषविग्रहं । कथं वा रामदेवेन वालिश्छिद्रेण नाशितः ॥ १९ ॥
गत्वा वा देवनिलयं भंक्त्वापवनमुत्तमं । वंदीग्रहं कथं नीतो रावणेनामराधिपः ॥ २० ॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलो रोगवर्जितविग्रहः । शेते च स कथं मासान् षडेतस्य वरोनुजः ॥ २१ ॥
कथं चात्यंतगुरुभिः पर्वतैरलमुन्नतैः । सेतुः शाखामृगैर्बद्धो य सुरैरपि दुर्घटः ॥ २२ ॥
प्रसीद भगवन्नेतत्सर्वं कथयितुं मम । उत्तरय बहून् भव्यान् संशयोदारकर्दमात् ॥ २३ ॥
एवमुक्तो गणेशस्य निर्गतैर्दशनांशुभिः । क्षालयन्निव निःशेषं कुसुमैर्मलिनं जगत् ॥ २४ ॥

लताभवनमध्यस्थान्नर्तयन्नुरगद्विपः । गंभीरांभोदनिर्घोषं धीरयोदाहरद्गिरा ॥ २५ ॥
शृण्वायुष्मन्महीपाल ! देवानां प्रिययत्नतः । मम वाक्यं जिनेंद्रोक्तं तत्त्वशंसनतत्परं ॥ २६ ॥
रावणो राक्षसो नैव नचापि मनुजाशनः । अलीकमेव तत्सर्वं यद्वदंति कुवादिनः ॥ २७ ॥
न विना पीठबंधेन विधातुं सद्म शक्यते । कथा प्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकं ॥ २८ ॥
यतः शृणु ततस्तावत्क्षेत्रकालोपवर्णनं । महतां पुरुषाणां च चरितं पापनाशनं ॥ २९ ॥
अनंतालोकनभसो मध्ये लोकस्त्रिधा स्थितः । तालोलूखलसंकाशो वलिभिस्त्रिभिरावृतः ॥३०॥
तिर्यग्लोकस्य मध्येस्मिन्संख्यातिक्रममागतैः । वेष्टितो वलयाकारैः द्वीपैरंभोधिभिस्तथा ॥ ३१ ॥
कुलालचक्रसंस्थानो जंबूद्वीपोयमुत्तमः । लवणांभोधिमध्यस्थः सर्वतो लक्षयोजनः ॥ ३२ ॥
तस्य मध्ये महामेरुर्मूले वज्रमयोऽक्षयः । ततो जांबूनदमयो मणिरत्नमयस्ततः ॥ ३३ ॥
संध्यानुरक्तमेघौघसदृशोत्तुंगशृंगकः । वालाग्रमात्रविवरास्पृष्टसौधर्मभूमिकः ॥ ३४ ॥
योजनानां सहस्राणि नवतिर्नव चोच्छ्रितः । सहस्रमवगाढश्च स्थितो वज्रमयः क्षितौ ॥ ३५ ॥
विपुलः शिखरे चैकं धरण्यां दश संगतं । राजते तिर्यगाकाशं मानदंड इवोच्छ्रितः ॥ ३६ ॥
द्वौ च तत्र कुरू द्वीपे क्षेत्रैः सप्तभिरन्विते । षट् क्षेत्राणां विभक्तारो राजंते कुलपर्वताः ॥ ३७ ॥

द्वौ महापादपौ ज्ञेयौ विद्याधरपुरीशतं । अधिकं दशभिस्तत्र विजयार्द्धेश्वनैकशः ॥ ३८ ॥
त्रिंशच्चतसृभिर्युक्ता राजधान्यः प्रकीर्तिताः । चतुर्दश महानद्यो जंबूवृक्षे जिनालयः ॥ ३९ ॥
षड्भोगक्षितयः प्रोक्ता अष्टौ जिनगृहाणि च । अष्टषष्टिर्गुहामानं भवनानां च तत्स्मृतं ॥ ४० ॥
सिंहासनानि चत्वारि त्रिंशच्च गदितानि तु । विजयार्द्धनगौ द्वौ च राजतौ परिकीर्तितौ ॥४१॥
वक्षारगिरियुक्तेषु समस्तेषु नगेषु च । भवनानि जिनेंद्राणां राजंते रत्नरश्मिभिः ॥ ४२ ॥
जंबूभरतसंज्ञायां क्षोण्यां दक्षिणयाशया । सुमहान् राक्षसो द्वीपो जिनबिंबसमन्वितः ॥ ४३ ॥
महाविदेहवर्षस्य जगत्यां पश्चिमाशया । विशालःकिन्नरद्वीपो जिनबिंबोज्ज्वलः शुभः ॥ ४४ ॥
तथैरावतवर्षस्य क्षित्यामुत्तरया दिशा । गंधर्वो नामतो द्वीपः सचैत्यालयभूषितः ॥ ४५ ॥
मेरोः पूर्वविदेहस्य जगत्यां पूर्वयाशया । रराज धरणद्वीपो जिनायतनसंकुलः ॥ ४६ ॥
भरतैरावतक्षेत्रे वृद्धिहानिसमन्विते । शेषास्तु भूमयः प्रोक्तास्तुल्यकालव्यवस्थिताः ॥ ४७ ॥
जंबूवृक्षस्य भवने सुरोऽनावृतशब्दितः । शतैः किल्विषिकाख्यानामास्ते बहुभिरावृतः ॥ ४८ ॥
अस्मिंश्च भरतक्षेत्रं पुरोत्तरकुरूपमं । कल्पपादपसंकीर्णं सुखमायां विराजते ॥ ४९ ॥
तरुणादित्यसंकाशा गव्यूतित्रयमुच्छ्रिताः । सर्वलक्षणसंपूर्णाः प्रजा यत्र विरेजिरे ॥ ५० ॥

युग्ममुत्पद्यते तत्र पल्यानां त्रयमायुषा । प्रेमबंधनबद्धं च म्रियते युगलं समं ॥ ५१ ॥
कांचनेन चिता भूमीरत्नैश्च मणिभिस्तथा । कालानुभावतश्चित्रैः सर्वकामफलप्रदा ॥ ५२ ॥
चतुरंगुलमानैश्च चित्रैर्गंधेन चारुभिः । विमलातिमृदुस्पर्शैस्तृणैश्छन्ना विराजते ॥ ५३ ॥
सर्वर्तुफलपुष्पैश्च तरवो रेजुरुज्ज्वलाः । स्वतंत्राश्च सुखेनास्थुः गोमहिष्याविकादयः ॥ ५४ ॥
कल्पवृक्षसमुत्पन्नं भक्षयंतो यथेप्सितं । अन्नं सिंहादयः सौम्या हिंसां तत्र न चक्रिरे ॥ ५५ ॥
पद्मादिजलजच्छन्नाः सौवर्णमणिरोधसः । संपूर्णा रेजिरे वाप्यो मधुक्षीरघृतादिभिः ॥ ५६ ॥
गिरयोऽत्यंतमुत्तंगाः पंचवर्णसमुज्ज्वलाः । नानारत्नाकरच्छन्नाः सर्वप्राणिसुखावहाः ॥ ५७ ॥
नद्यो निर्जंतुका रम्याः क्षीरसर्पिर्मधूदकाः । अत्यंतसुरसास्वादा रत्नोद्योतितरोधसः ॥ ५८ ॥
नातिशीतं नचात्युष्णं तीव्रमारुतवर्जितं । सर्वप्रतिभयैर्मुक्तं नित्योद्भूतसमुत्सवं ॥ ५९ ॥
ज्योतिःक्रमप्रभाजालछिन्नेंदुरविमंडलं । सर्वेंद्रियसुखास्वादप्रदकल्पमहातरुः ॥ ६० ॥
प्रासादास्तत्र वृक्षेषु विपुलोद्यानभूमयः । शयनासनमेष्वेव स्वादुपानाशनानि च ॥ ६१ ॥
वस्त्रानुलेपनादीनि तूर्यशब्दा मनोहराः । आमोदिनस्तथागन्धः सर्वं चान्यत्तरूद्भवं ॥ ६२ ॥
दश भेदेषु तेष्वेवं कल्पवृक्षेषु चारुषु । रेमिरे तत्र युग्मानि सुरलोक इवानिशं ॥ ६३ ॥

एवं प्रोक्ते गणेशेन पुनः श्रेणिकभूपतिः । भोगभूमौ समुत्पत्तेः कारणं परिपृष्टवान् ॥ ६४ ॥
कथितं च गणेशेन तत्र ये प्रगुणा जनाः । साधुदानसमायुक्ता भवंत्येते सुमानुषाः ॥ ६५ ॥
ये पुनः कुत्सिते दानं ददते भोगतृष्णया । तेपि हस्त्यादितां गत्वा भुंजंते दानजं फलं ॥६६॥
नितांतं मृदुनि क्षेत्रे दूरं कृष्टे हलाननैः । क्षिप्तं बीजं यथानंतगुणं शस्यं प्रयच्छति ॥ ६७ ॥
यथा चेक्षुषु निक्षिप्तं माधुर्यं वारि गच्छति । पीतं च धेनुभिस्तोयं क्षीरत्वेन निवर्तते ॥ ६८ ॥
एवं साधौ तपोगारे व्रतालंकृतविग्रहे । सर्वग्रंथविनिर्मुक्ते दत्तं दानं महाफलं ॥ ६९ ॥
खले गतं यथा क्षेत्रे बीजमल्पफलं भवेत् । निंबेषु च तथा क्षिप्तं कटुत्वं वारि गच्छति ॥ ७० ॥
यथा च पन्नगैः पीतं क्षीरं संजायते विषं । कुपात्रेषु तथा दत्तं दानं कुफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥
एवं दानस्य सदृशो धरेंद्र फलसंभवः । यद्यदा धीयते वस्तु दर्पणे तस्य दर्शनं ॥ ७२ ॥
यथा शुक्लं च कृष्णं च पक्षद्वयमनंतरं । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेवं क्रमसमुद्भवः ॥ ७३ ॥
अथ कालांतरोत्पत्त्या हानिं यातेष्वनुक्रमात् । कल्पपादपखंडेषु शृणु कौलकरीं स्थितिं ॥ ७४ ॥
प्रतिश्रुतिरिति ज्ञेयः आद्यः कुलकरो महान् । श्रुत्वा तस्य वचः सर्वाः प्रजाः सौस्थित्यमागताः ॥
जन्मत्रयमतीतं यो जानाति स निजं विभुः । शुभचेष्टासमुद्युक्तो व्यवस्थानां प्रदेशकः ॥ ७६ ॥

ततो वर्षसहस्राणामतिक्रांतासु कोटिषु । वह्नीषु स मनुः प्राप्तो जन्म सन्मतिसंज्ञितः ॥ ७७ ॥
ततः क्षेमंकरो जातः क्षेमभृत्तदनंतरं । अभूत्सीमंकरस्तस्मात्सीमधृच्च ततः परं ॥ ७८ ॥
चक्षुष्मानपरस्तस्मात्तं गत्वा सभयाः प्रजाः । अपृच्छन्नाथ कावेतौ दृश्येते गगनार्णवे ॥ ७९ ॥
ततो जगाद चक्षुष्मान् विदेहे यच्छ्रुतं जिनात् । युक्तो जन्मांतरस्मृत्या यथाकालपरिक्षये ॥ ८० ॥
क्षीणेषु द्युतिवृक्षेषु समुद्भूतप्रभाविमौ । चंद्रादित्याविति ख्यातौ ज्योतिर्देवौ स्फुटौ स्थितौ ८१
ज्योतिषो भावनाः कल्पाः व्यंतराश्च चतुर्विधाः । देवा भवंति योग्येन कर्मणा जंतवो भवे ॥८२॥
तत्रायं चंद्रमाः शीतस्तीव्रगुरेष भास्करः । एतौ कालस्वभावेन दृश्येते गगनामरौ ॥ ८३ ॥
भानावस्तंगते तीव्रे कांतिर्भवति शीतगोः । व्योम्नि नक्षत्रचक्रं च प्रकटत्वं प्रपद्यते ॥ ८४ ॥
स्वभावमिति कालस्य ज्ञात्वा त्यजत भीतितां । इत्युक्तास्तं समाभ्यर्च्य प्रजा याता यथागतं ८५
चक्षुष्मति ततोऽतीते यशस्वीति समुद्गतः । विज्ञेयो विपुलस्तस्मादभिचंद्रः परस्ततः ॥ ८६ ॥
चंद्राभः परतस्तस्मान्मरुदेवस्तदुत्तरः । ततः प्रसेनजिज्जातो नाभिरंत्यस्ततोऽभवत् ॥ ८७ ॥
एते पितृसमा प्रोक्ताः प्रजानां कुलकारिणः शुभैः कर्मभिरुत्पन्नाः चतुर्दश समाधियः ॥ ८८ ॥
अथ कल्पद्रुमो नाभेरस्य क्षेत्रस्य मध्यगः । स्थितः प्रासादरूपेण विभात्यत्यंतमुन्नतः ॥ ८९ ॥

मुक्तादामचितो हेमरत्नकल्पितभित्तिकः । क्षितौ स एक एवासीद्वाप्युद्यानविभूषितः ॥ ९० ॥
गृहीतहृदया तस्य बभूव वनितोत्तमा । प्रचलत्तारका भार्या रोहिणीव कलावतः ॥ ९१ ॥
गंगेव वाहिनीशस्य महाभूभृत्कुलोद्गता । हंसीव राजहंसस्य मानसानुगमक्षमा ॥ ९२ ॥
अरुन्धतीव नाथस्य नित्यं पार्श्वानुवर्तिनी । हंसीव गमने वाचि परपुष्टवधूसमा ॥ ९३ ॥
चक्राह्वेव पतिप्रीतावित्यादिसमुदाहृतं । यां प्रति प्रतिपद्येत सर्वं हीनोपमानतां ॥ ९४ ॥
पूजिता सर्वलोकस्य मरुदेवीति विश्रुता । यथा त्रिलोकवंद्यस्य धर्मस्य श्रुतदेवता ॥ ९५ ॥
ऊष्माभावेन या चंद्रकलाभिरिव निर्मिता । दर्पणश्रीजिगीषेव प्रतिप्राणिगृहीतिषु ॥ ९६ ॥
निर्मितात्मस्वरूपेव परचित्तप्रतीतिषु । सिद्धजीवस्वभावेव त्रिलोकव्यापकर्मणि ॥ ९७ ॥
पुण्यवृत्तितया जैन्या श्रुत्येव परिकल्पिता । अमृतात्मेव तृप्यत्सु भृत्येषु वसुवृष्टिवत् ॥ ९८ ॥
सखीषु निर्वृतेस्तुल्या विलासान्मादिरात्मिका । रूपस्य परमावस्था रतेरिव तनुस्थितिः ॥ ९९ ॥
मंडनं मुंडमालाया यस्याश्चक्षुरभूद्वरं । असितोत्पलदामानि केवलं भारमात्रकं ॥ १०० ॥
अलकभ्रमरा एव भूषा भालांतयोः सदा । दलानि तु तमालस्य पुनरुक्तानि केवलं ॥ १०१ ॥
प्राणेशसंकथा एव सुभगं कर्णभूषणं । डंबरो रत्नकनककुंडलादिपरिग्रहः ॥ १०२ ॥

कपोलावेव सततं स्फुटालोकस्य कारणं । रत्नप्रभाप्रदीपास्तु विभवायैव केवलं ॥ १०३ ॥
हासा एव च सद्गंधाः पटवासाः सितत्विषः । कर्पूरपांशवः कांतिव्याघातायैव केवलं ॥ १०४ ॥
वाण्येव मधुरा वीणा वाद्यश्रुतिकुतूहलं । कृतं तु परिवर्गेण तंत्रीनिकरताडनं ॥ १०५ ॥
कांतिरेवाधरोद्भूता रागोंगस्य समुज्ज्वलः । निर्गुणः कौंकुमः पंको लावण्यस्य कलंकनं ॥१०६॥
परिहासप्रहाराय भुजावेव सुकोमलौ । प्रयोजनमतीतानि मृणालशकलानि तु ॥ १०७ ॥
यौवनौष्मसमुद्भूता मंडनं स्वेतबिंदवः । कुचयो हारभारस्तु वृथैव परिकल्पितः ॥ १०८ ॥
शिलातलविशाला च श्रोणी विस्मयकारणं । निर्मितेन विना जाता भवने मणिवेदिका ॥१०९॥
भूषणं भ्रमरा एव निलीनाः कमलाशया । पादयोरैंद्रनीले च नूपुरे निःप्रयोजने ॥ ११० ॥
तस्या नाभिसमेताया भोगं कल्पतरूद्भवं । भुंजाना या दुराख्यानं ग्रंथकोटिशतैरपि ॥ १११ ॥
इंद्राज्ञापरितुष्टाभिर्दिक्कुमारीभिरादरात् । कस्मिंश्चित्समये प्राप्ते परिचर्या प्रवर्तिता ॥ ११२ ॥
नंदाज्ञापय जीवेति कृतशब्दाः ससंभ्रमं । प्रतीयुः शासनं तस्या लक्ष्मीश्रीधृतिकीर्तयः ॥११३॥
स्तुवंति काश्चित्तत्काले तां गुणैर्हृदयंगमैः । काश्चित्परमविज्ञाना उपगायंति वीणया ॥ ११४ ॥
अत्यंतमद्भुतं काश्चिद्गायंति श्रवणामृतं । पादयोर्लोटनं काश्चित्कुर्वते मृदुपाणिकाः ॥ ११५ ॥

तांबूलदायिनी काचित्काचिदासनदायिनी । मंडलाग्रकरा काचित्सततं पालनोद्यताः ॥ ११६ ॥
काश्चिदभ्यंतरद्वारे बाह्यद्वारे तथापरा । गृहीतकुंतसौवर्णवेत्रदंडासिहेतयः ॥ ११७ ॥
चामरग्रहिणी काचित्काचिच्छत्रस्य धारिका । आनेत्री वाससां काचिदभूषणानां ततः परा ११८
शयनीयविधौ काचित्सक्ता सन्मार्जने परा । पुष्पप्रकरणे काचित्काचिद्गंधानुलेपने ॥ ११९ ॥
पानाशनविधौ काचित्काचिदाह्वानकर्मणि । एवं कर्तव्यतां तस्याः सर्वाः कुर्वंति देवताः॥१२०॥
चिंताया अपि न क्लेशं प्रपेदे नृपवल्लभा । अन्यदा शयनीये स्वे सुप्ता सात्यंतकोमले ॥१२१॥
पट्टांशुकपरिच्छन्ने प्रांतयोः सोपधानके । तस्या मध्ये सुखं लब्धा स्वपुण्यपरिपाकतः ॥ १२२ ॥
गृहीतामलशस्त्राभिर्देवीभिः पर्युपासिता । अद्राक्षीत्षोडश स्वप्नानिति श्रेयोविधायिनः ॥ १२३ ॥
वृषभं दुंदुभिस्कंधं दधतं ककुभं शुभं । नदंतं शरदंभोदसंघाताकारधारिणं ॥ १२४ ॥
करटच्युतदानांबुगंधं संबंधषट्पदं । वारणं चंद्रधवलं मंद्रगर्जितकारणं ॥ १२५ ॥
शीतांशुकिरणस्वेतकेशरालीविराजितं । शशिरेखासदृग्दंष्ट्राद्वंद्वयुक्तं मृगाधिपं ॥ १२६ ॥
सिच्यमानां श्रियं नागैः कुंभैः सौवर्णराजितैः । उत्फुल्लपुंडरीकस्थ स्थितामुपरिनिश्चलां ॥१२७॥
पुन्नागमालतीकुंदचंपकादिप्रकल्पिते । नितांतं दामिनीदीर्घे सौरभाकृष्टषट्पदे ॥ १२८ ॥

उदयाचलमूर्द्धस्थं प्रध्वस्ततिमिरोद्भवं । विश्रब्धदर्शनं भानुं मुक्तं मेघाद्युपद्रवैः ॥ १२९ ॥
बंधुं कुमुदखंडानां मंडनं रात्रियोषितः । धवलीकृतसर्वाशं किरणैस्तारकापतिं ॥ १३० ॥
अन्योन्यप्रेमसंबंधं प्रस्फुरद्विमले जले । विद्युद्दंडसमाकारं मीनयोर्युगलं शुभं ॥ १३१ ॥
हारोपशोभितग्रीवं पुष्पमालापरिष्कृतं । मणिभिः कलशं पूर्णं पंचवर्णैः समुज्ज्वलं ॥ १३२ ॥
पद्मेंदीवरसंच्छन्नं विमलांबुमहासरः । नानापक्षिगणाकीर्णं चारुसोपानमंडितं ॥ १३३ ॥
चलन्मीनमहानक्रजनितोत्तुंगवीचिकं । मेघपंक्तिसमासक्तं नभस्तुल्यं नदीपतिं ॥ १३४ ॥
साटोपहरिभिर्युक्तं नानारत्नसमुज्ज्वलं । चामीकरमयं चारु विष्टरं दूरमुन्नतं ॥ १३५ ॥
सुमेरुशिखाराकारं सुमानं रत्नराजितं । विमानं बुद्बुदाकारं चामरादिविभूषितं ॥ १३६ ॥
कल्पद्रुमगृहाकारं भावनं बहुभूमिकं । मुक्तादामकृतच्छायं रत्नांशुपटलावृतं ॥ १३७ ॥
पंचवर्णमहारत्नराशिमत्यंतमुन्नतं । अन्योन्यकिरणोद्योतजनितेंद्रशरासनं ॥ १३८ ॥
ज्वालाजटालमनलं धूमसंभववर्जितं । प्रदक्षिणकृतावर्तमनिंधनसमुद्भवं ॥ १३९ ॥
अनंतरं च स्वप्नानां दर्शनाच्चारुदर्शना । सा प्रबोधं समायाता जयमंगलनिस्वनैः ॥ १४० ॥
त्वद्वक्त्रकांतिसंभूतत्रपयेव निशाकरः । एष संप्रति संजातः छायया परिवर्जितः ॥ १४१ ॥

अयं भाति सहस्रांशुरुदयाचलमस्तके । कलशो मंगलार्थं च सिंदूरेणैव गुंठितः ॥ १४२ ॥
संप्रति त्वत्सितेनैव तिमिरं यास्यति क्षयं । इतीव स्वस्य वैयर्थ्यात्प्रदीपाः पांडुतां गताः॥१४३॥
कुलमेतच्छकुंतानां कलकोलाहलाकुलं । मंगलं ते करोतीव निजनीडमुखस्थितं ॥ १४४ ॥
अमी प्रभातवातेन जडमंदेन संगताः । निद्राशेषादिवेदानीं घूर्णंते गृहपादपाः ॥ १४५ ॥
एषा त्वद्गृहवाप्यं ते भानुबिंबविलोकनात् । हृष्टाह्वयति जीवेशं चक्रवाकी कलस्वनैः ॥ १४६ ॥
त्वद्गतिप्रेक्षणेनैते कृतोत्कंठा इवाधुना । कुर्वंति कूजितं हंसा निद्रानिर्वासकारणं ॥ १४७ ॥
उल्लिख्यमानकंसोत्थनिःस्वनप्रतिमो महान् । अलं सारसचक्राणां झंकारोयं विराजितः ॥ १४८ ॥
निशांत इत्ययं स्पष्टो ज्योतिर्निर्मलचेष्टितं । देवि मुंचाधुना निद्रामितिबंदिकृतस्तवा ॥ १४९ ॥
अमुंचच्छयनीयं च समुद्भूततरंगकं । सुमनोभिः समाकीर्णं साभ्रतारानभःसमं ॥ १५० ॥
वासगेहाच्च निष्क्रांता[1] प्रत्यात्मकृतकर्मिका । ययौ नाभिसमीपं सा दिनश्रीरिव भास्करं ॥१५१॥
भद्रासननिविष्टाय तस्मै खर्वासनस्थिता । कराभ्यां कुड्मलं कृत्वा क्रमात्स्वप्नान्यवेदयत्॥१५२॥
इति चिंताप्रमोदेन परायत्तीकृतः पतिः । जगाद त्वयि संभूतस्त्रैलोक्यस्य गुरुः शुभे ॥ १५३ ॥

१ निष्क्रम्य इति क पुस्तके पाठः ।

इत्युक्ता सा परं हर्षं जगाम कमलेक्षणा । मूर्तिरिंदोरिवोदारा दधती कांतिसंहतीः ॥ १५४ ॥
संभविष्यति षण्मासाज्जिने शक्राज्ञयामुचत् । रत्नवृष्टिं धनाधीशो मासात्पंचदशादितः ॥१५५॥
तस्मिन्गर्भस्थिते यस्माज्जाता वृष्टिर्हिरण्मयी । हिरण्यगर्भनाम्नासौ स्तुतस्तस्मात्सुरेश्वरैः ॥१५६॥
ज्ञानैर्जिनस्त्रिभिर्युक्तः कुक्षौ तस्याश्चचाल न । माभूत्संचलनादस्याः पीडेतिकृतमानसः ॥१५७॥
यथा दर्पणसंक्रांतछायामात्रेण पावकः । आधाता न विकारस्य तथा तस्या बभूव सः ॥१५८॥
निश्चक्राम ततो गर्भात् पूर्णे काले जिनोत्तमः । मलस्पर्शविनिर्मुक्तः स्फटिकादिव सद्व्रतः ॥१५९॥
ततो महोत्सवश्चक्रे नाभिना सुतजन्मनि । समानंदितनिःशेषजनो युक्त्या यथोक्तया ॥१६०॥
त्रैलोक्यं क्षोभयायातमैंद्रं कंपितमासनं । सुरासुराश्च संजाताः किं किमेतदितिस्वनाः ॥१६१॥
अनाघ्मातस्ततः शंखो दध्वान भवनश्रितां । व्यंतराधिपतेर्गेहे रराट पटहः स्वयं ॥ १६२ ॥
ज्योतिषां निलये जातमकस्मात्सिंहवृंहितं । कल्पाधिपगृहे स्पष्टं घटारत्नं रराण च ॥ १६३ ॥
एवंविधशुभोत्पातैः ज्ञाततीर्थकरोद्भवः । प्रचलद्भिः किरीटैश्च प्रयुक्तावधयस्ततः ॥ १६४ ॥
प्रातिष्ठंत महोत्साहा इंद्रा नाभीयमालयं । वारणेंद्रसमारूढाः कृतमंडनविग्रहाः ॥ १६५ ॥
ततः कंदर्पिणः केचित्सुरा नृत्तं प्रचक्रिरे । चक्रुरास्फोटनं केचिद्ध्वलानं केचिदुन्नतं ॥ १६६ ॥

केचित्केसरिणो नादां मुमुचुर्व्योमविष्टपान् । विकुर्वंति बहून् वेषान् केचित्केचिज्जगुर्वरां ॥१६७॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च ततो देवैरिदं जगत् । महारावसमापूर्णं स्थानभ्रंशमिवागतं ॥ १६८ ॥
ततः साकेतनगरं धनदेन विनिर्मितं । विजयार्द्धनगाकारप्राकारेण समावृतं ॥ १६९ ॥
पातालोदरगंभीरपरिखाकृतवेष्टनं । तुंगगोपुरकूटाग्रदूरनष्टांतरिक्षकं ॥ १७० ॥
नानारत्नकरोद्योतपटप्रावृतसद्मकं । इंद्राःक्षणेन संप्रापुर्महाभूतिसमन्विताः ॥ १७१ ॥
पुरं प्रदक्षिणीकृत्य त्रिः शक्रः सहितोमरैः । प्रविष्टः प्रसवागारात्पौलोम्यानापयज्जिनं ॥१७२॥
जिनमातुस्ततः कृत्वा मायाबालं प्रणामिनी । बालमानीय शक्रस्य शची चक्रे करद्वये ॥१७३॥
रूपं पश्यन् जिनस्यासौ सहस्रनयनोपि सन् । तृप्तिमिंद्रो न संप्राप त्रैलोक्यातिशयस्थितं॥१७४॥
ततस्तमंकमारोप्य समारुह्य गजाधिपं । गृहीतचामरच्छत्रो भक्त्या परमया स्वयं ॥ १७५ ॥
अवाप मेरुशिखरं सर्वैर्देवैः समन्वितः । वैडूर्यादिमहारत्नमरीचिनिचयोज्ज्वलं ॥ १७६ ॥
पांडुकंबलसंज्ञायां शिलायां सिंहविष्टरे । ततो जिनः सुरेशेन स्थापितः पृष्टवर्तिना ॥ १७७ ॥
ततः समाहिता भेर्यः क्षुब्धसागरनिःस्वनाः । मृदंगशंखशब्दाश्च साट्टहासाः कृताः सुरैः ॥१७८॥
यक्षकिन्नरगंधर्वाः सह तुंबरनारदाः । विश्वावसुसमा युक्ताः कुर्वाणा मूर्छना वराः ॥ १७९ ॥

गायंति सह पत्नीभिः मनःश्रोत्रहरं तदा । वीणावादनमारब्धा कर्तुं लक्ष्मींश्च सादराः ॥१८०॥
हावभावसमेताश्च नृत्यंत्यप्सरसो वरं । अंगहारं यथा वस्तु कुर्वाणाः कृतभूषणाः ॥ १८१ ॥
एवं तत्र महातोद्ये जनितेऽमरसत्तमैः । अभिषेकाय देवेंद्रो जग्राह कलशं शुभं ॥ १८२ ॥
ततः क्षीरार्णवांभोभिः पूर्णैः कुंभैर्महोदरैः । चामीकरमयैः पद्मच्छन्नवक्त्रैः सपल्लवैः ॥ १८३ ॥
अभिषेकं जिनेंद्रस्य चकार त्रिदशाधिपः । कृत्वा वैक्रियसामर्थ्यादात्मानं बहुविग्रहं ॥ १८४ ॥
यमो वैश्रवणः सोमो वरुणोन्ये च नाकिनः । मेघवक्त्रादयः सर्वे चक्रुर्भक्त्याभिषेचनं ॥ १८५ ॥
इंद्राणीप्रमुखा देव्यः सद्गंधैरनुलेपनैः । चक्रुरुद्वर्तनं भक्त्या करैः पल्लवकोमलैः ॥ १८६ ॥
महीध्रमिव तं नाथं कुम्भैर्जलधरैरिव । अभिषिच्य समारब्धाः कर्तुमस्य विभूषणं ॥ १८७ ॥
चंद्रादित्यसमेतस्य कर्णयोः कुंडले कृते । तत्क्षणं सुरनाथेन वज्रसूचीविभिन्नयोः ॥ १८८ ॥
पद्मरागमणिः शुद्धः चूडायां विनिवेशितः । जटालमिव संपन्नं शिरो यस्य मरीचिभिः॥१८९॥
अर्धचंद्राकृतिर्न्यस्ता चंदनेन ललाटिका । बाहुमूले कृते जात्यहेमकेयूरमंडिते ॥ १९० ॥
नक्षत्रस्थूलमुक्ताभिः कल्पितेन मयूखिना । हारेण भूषितं वक्षः श्रीवत्सकृतभूषकं ॥ १९१ ॥
हरिन्मणिसरोजश्रीरत्नस्थूलमरीचिभिः । संजातपल्लवेनैव प्रालंबेन विराजितः ॥ १९२ ॥

लक्षणाभरणश्रेणौ प्रकोष्ठौ दधतुः श्रियं । मणिबंधनचारुभ्यां कटकाभ्यां सुसंहती ॥ १९३ ॥
पट्टांशुकोपरिन्यस्तकटिसूत्रेण राजितं । नितंबफलकं संध्यादास्नेवावनिभृत्तटं ॥ १९४ ॥
सर्वांगुलीषु विन्यस्तं मुद्रिकाभूषणं वरं । नानारत्नपरिष्वक्तचामीकरविनिर्मितं ॥ १९५ ॥
भक्त्या कृतमिदं देवैः सर्वमंडनयोजनं । त्रैलोक्यमंडनस्यास्य कुतोन्यन्मंडनं परं ॥ १९६ ॥
चंदनेन समालभ्य रोचनाः स्थासकाः कृताः । रेजुस्ते स्फटिकक्षोण्यां कनकांवूद्गमा इव ॥१९७॥
उत्तरीयं च विन्यस्तमंशुकं कृतपुष्पकं । अत्यंतनिर्मलं रेजे सतारमिव तन्नभः ॥ १९८ ॥
पारिजातकसंतानकुसुमैः परिकल्पितं । षट्पदालीपरिष्वक्तं पिनद्धं स्थूलशेखरं ॥ १९९ ॥
तिलकेन भुवोर्मध्यं सद्बंधेन विभूषितं । तिलकत्वं त्रिलोकस्य विभ्रतश्चारुचेष्टितः ॥ २०० ॥
ततस्तं भूषितं संतं त्रिलोकस्य विभूषणं । तुष्टास्तुष्टुवुरित्थं ते देवाः शक्रपुरस्सराः ॥ २०१ ॥
नष्टधर्मे जगत्यस्मिन्नज्ञानतमसावृते । भ्राम्यतां भव्यसत्त्वानामुदितस्त्वं दिवाकरः ॥ २०२ ॥
किरणैर्जिनचंद्रस्य विमलैस्तव वाङ्मयैः । प्रबोधं यास्यतीदानीं भव्यसत्त्वकुमुद्वती ॥ २०३ ॥
भव्यानां तत्त्वदृष्ट्यर्थं केवलानलसंभवः । ज्वलितस्त्वं प्रदीपोसि स्वयमेव जगद्गृहे ॥ २०४ ॥
पापशत्रुनिघाताय जातस्त्वं सितसायकः । कर्ता भवाटवी दाहं त्वमेवध्यानवन्हिना ॥ २०५ ॥

दुष्टेंद्रियमहानागदमनाय त्वमुद्यतः । वैनतेयो महावायुः संदेहघनसंपदां ॥ २०६ ॥
धर्मांबुबिंदुसंप्राप्तितृषिता भव्यचातकाः । उन्मुखास्त्वामुदीक्षंते नाथामृतमहाघनं ॥ २०७ ॥
नमस्ते त्रिजगद्गीतनितांतामलकीर्तये । नमस्ते गुणपुष्पाय तरवे कामदायिने ॥ २०८ ॥
कर्मकाष्ठकुठाराय तीक्ष्णधाराय ते नमः । नमस्ते मोहतुंगाद्रिभंगवज्रात्मने सदा ॥ २०९ ॥
विध्यापकाय दुःखाग्नेर्नमस्ते सलिलात्मने । रजःसंगविहीनाय नमस्ते गगनात्मने ॥ २१० ॥
इति स्तुत्वा विधानेन प्रणम्य च पुनः पुनः । तमारोप्य गजं जग्मुरयोध्याभिमुखाः सुराः २११
मातुरंके ततोलेखः कृत्वा शच्या जिनार्भकं । विधाय परमानंदं स्वस्थानं ससुरोगमत् ॥२१२॥
ततस्तमंबरैर्दिव्यैरलंकारैश्च भूषितं । लिप्तं च परमामोदघ्राणहार्यानुलेपनैः ॥ २१३ ॥
तुष्टाः संवीक्ष्य तनयमंकस्थं जननी तदा । निजच्छायापरिष्वंगपिंजरीकृतदिग्मुखं ॥ २१४ ॥
आलिंगती मृदुस्पर्शैः कौतुकव्याप्तमानसा । दुराख्यानपरावस्थामवतीर्णा सुखार्णवं ॥ २१५ ॥
अंकप्राप्तेन सा तेन रराज प्रमदोत्तमा । नवोदितेन पूर्वाशा बिंबेन सवितुर्यथा ॥ २१६ ॥
नाभिश्च तत्सुतं दृष्ट्वा दिव्यालंकारधारिणं । त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुक्तं मेने स्वं परमद्युतिं ॥ २१७ ॥
सुतगात्रसमासंगसंजातसुखसंपदः । मीलिताक्षत्रिभागस्य मनोस्य द्रवतां गतं ॥ २१८ ॥

सुरेंद्रपूजया प्राप्तः प्रधानत्वं जिनो यतः । ततस्तमृषभाभिख्यां निन्यतुः पितरौ सुतं ॥ २१९ ॥
तयोरन्योन्यसंबद्धं प्रेम यद्वृद्धिमागतं । तज्जातमधुना बाले पूर्ववच्च तयोरपि ॥ २२० ॥
करांगुष्टे ततो न्यस्तममृतं वज्रपाणिना । पिबन् क्रमेण संप्राप देहस्योपशयं जिनः ॥ २२१ ॥
ततः कुमारकैर्युक्तो वयस्यैरिंद्रनोदितैः । अनवद्यां चकारासौ क्रीडां पित्रोः सुखावहां ॥ २२२ ॥
आसनं शयनं यानं भोजनं वसनानि च । चारणादिकमन्यच्च सकलं तस्य शक्रजं ॥ २२३ ॥
कनीयसैव कालेन परां वृद्धिमवाप सः । मेरुभित्तिसमाकारं विभ्रद्वक्षः समुन्नतं ॥ २२४ ॥
आशास्तवेरमालानस्तंभसंस्थानतां गतौ । बाहू तस्य समस्तस्य जगतः कल्पपादपौ ॥ २२५ ॥
उरुदंडद्वयं दधे स्वकांतिकृतचर्चनं । त्रैलोक्यगृहधृत्यर्थं स्तंभद्वयसमुच्छ्रितं ॥ २२६ ॥
द्वयं बभार तद्वक्त्रमन्योन्यस्य विरोधकं । कांत्या जितनिशानाथं दीप्त्या च जितभास्करं २२७
करौ तस्यारुणच्छायौ पल्लवादपि कौमलौ । धूलीकारे समस्तानां भूभृतामथ च क्षमौ ॥ २२८ ॥
निविडःकेशसंघातः स्निधोत्यंतं बभूव च । नीलांजनशिलाकारो मूर्द्धि हेमगिरेरिव ॥ २२९ ॥
धर्मात्मनापि लोकस्य तेन सर्वस्य लोचने । उपमानमतीतेन हृते रूपेण शम्भुना ॥ २३० ॥
तस्मिन्काले प्रनष्टेषु कल्पवृक्षेष्वशेषतः । अकृष्टपच्यशस्येन मही सर्वा विराजते ॥ २३१ ॥

वाणिज्यव्यवहारेण शिल्पैश्च रहिताः प्रजाः । अभावाद्धर्मसंज्ञायाः पाखंडैश्च विवर्जिताः॥२३२॥
आसीदिक्षुरसस्तासामाहारः षड्रसान्वितः । स्वयं छिन्नच्युतः कांतिवीर्यादिकरणक्षमः ॥२३३॥
सोपि कालानुभावेन स्वयं गलति नो यदा । यंत्रनिष्पीडनज्ञश्च न लोकोनुपदेशतः ॥ २३४ ॥
पश्यंतोपि तदा सस्यं तत्संस्कारविधौ जडाः । क्षुधा संतापिताः सद्यः प्रजाः व्याकुलतां गताः॥
ततः शरणमीयुस्ताः नाभिं संघातमागताः । ऊचुश्चेति वचः स्तुत्वा प्रणम्य च महार्तयः॥२३६॥
नाथ! याताः समस्तास्ते प्रक्षयं कल्पपादपाः । क्षुधासंतापितानस्मांस्त्रायस्व शरणागतान् २३७
भूमिजं फलसंपन्नं किमप्येतच्च दृश्यते । विधिमस्य न जानीमः संस्कारे भक्षणोचितं ॥ २३८ ॥
स्वच्छंदचारिणामेतद्गोकुलानां स्तनांतरात् । क्षरन् भक्ष्यमभक्ष्यं किं कथं चेति वद प्रभो॥२३९॥
व्याघ्रसिंहादयः पूर्वं क्रीडास्वालिंगनोचिताः । अधुना त्रासयंत्येते प्रजाः कलहतत्पराः॥२४०॥
मनोहराणि दिव्यानि स्थलानि जलजानि च । दृश्यंते न तु जानीमः सुखमेभिर्यथा भवेत् २४१
अतः संस्करणोपायमेतेषां वद देव नः । यतः सुखेन जीवामस्त्वत्प्रसादेन रक्षिताः ॥ २४२ ॥
एवमुक्तः प्रजाभिः सन्नाभिः कारुण्यसंगतः । जगाद वचनं धीरो वृत्तेर्दर्शनकारणं ॥ २४३ ॥
उत्पत्तिसमये यस्य रत्नवृष्टिरभूच्चिरं । आगमश्च सुरेंद्राणां लोकक्षोभनकारणं ॥ २४४ ॥

महातिशयसंपन्नं तमुपेत्य समं वयं । ऋषभं परिपृच्छामः कारणं जीवनप्रदं ॥ २४५ ॥
तस्य देवस्य लोकेस्मिन्सदृशो नास्ति मानवः । सर्वेषां तमसामंते तस्यात्मा संप्रतिष्ठितः॥२४६॥
इत्युक्तास्तेन साकं ते नाभेयस्यातिकं गताः । दृष्ट्वा च पितरं देवो विधिं चक्रे यथोचितं ॥२४७॥
उपविष्टस्ततो नाभिर्नाभेयश्च यथासनं । अथैनं स्तोतुमारब्धाः प्रजाःप्रणतिपूर्वकं ॥ २४८ ॥
लोकं सर्वमतिक्रम्य तेजसा ज्वलितं वपुः । सर्वलक्षणसंपूर्णं तवैतन्नाथ शोभते ॥ २४९ ॥
गुणैस्तव जगत्सर्वं व्याप्तमत्यंतनिर्मलैः । प्रल्हादकरणोद्युक्तैः शशांककिरणैरिव ॥ २५० ॥
वयं प्रभुं समायाता पितरं तत्र कार्यिणः । गुणान् ज्ञानसमुद्भूतान् स चैष तव भाषते ॥२५१॥
सत्त्वं कोपि महासत्त्वो महात्मातिशयान्वितः । एवंविधोपि यं गत्वा निश्चयार्थं निषेवते ॥२५२॥
स त्वमेवंविधो भूत्वा रक्ष नः क्षुत्पीडितान् । उपायस्योपदेशेन सिंहादिभयतस्तथा ॥ २५३ ॥
ततः कृपासमासक्तहृदयो नाभिनंदनः । शशास चरणप्राप्ता बद्धांजलिपुटाः प्रजाः ॥ २५४ ॥
शिल्पानां शतमुद्दिष्टं नगराणां च कल्पनं । ग्रामादिसन्निवेशाश्च तथा वेश्मादिकारणं ॥ २५५ ॥
क्षतित्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः । क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धिं गुणतो गताः २५६
वाणिज्यकृषिगोरक्षाप्रभृतौ ये निवेशिताः । व्यापारे वैश्यशब्देन ते लोके परिकीर्तिताः ॥२५७॥

ये तु श्रुत्वा हृतिं प्राप्ता नीचकर्मविधायिनः । शूद्रसंज्ञामवापुस्ते भेदैः प्रेष्यादिभिस्तथा ॥२५८॥
युगं तेन कृतं यस्मादित्थमेतत्सुखावहं । तस्मात्कृतयुगं प्रोक्तं प्रजाभिः प्राप्तसंमदं ॥ २५९ ॥
नाभेयस्य सुनंदाभून्नंदाच वनिताद्वयं । भरतादय उत्पन्नास्तयोः पुत्रा महौजसः ॥ २६० ॥
शतेन तस्य पुत्राणां गुणसंबंधचारुणा । अभूदलंकृता क्षोणी नित्यप्राप्तसमुत्सवा ॥ २६१ ॥
तस्यानुपममैश्वर्यं भुंजानस्य जगद्गुरोः । प्रयातः सुमहान् कालो नाभेयस्यामितत्विषः ॥२६२॥
अथ नीलांजनाख्यायां नृत्यंत्यां सुरयोषिति । इयं तस्य समुत्पन्ना बुद्धिर्वैराग्यकारणं ॥२६३॥
अहो जना विडंब्यंते परितोषणचेष्टितैः । उन्मत्तचरिताकारैः स्ववपुःखेदकारणैः ॥ २६४ ॥
अत्र कश्चित्पराधीनो लोके भृत्यत्वमागतः । आज्ञां ददाति कश्चिच्च तस्मै गर्वस्खलद्वचः॥२६५॥
एवं धिगस्तु संसारं यस्मिन्नुत्पाद्यते परैः । दुःखमेव सुखाभिख्यां नीतं संमूढमानसैः ॥ २६६ ॥
तस्मादिदं परित्यज्य कृत्रिमं क्षयवत्सुखं । सिद्धसौख्यसमावाप्त्यै करोम्याशु विचेष्टितं ॥२६७॥
यावदेवं मनस्तस्य प्रवृत्तं शुभचिंतने । तावल्लौकांतिकैर्देवैरिदमागत्य भाषितं ॥ २६८ ॥
साधु नाथाववुद्धं ते त्रैलोक्ये हितकारणं । विच्छिन्नस्य महाकालो मोक्षमार्गस्य वर्तते ॥२६९॥
एते विपरिवर्तंते भवदुःखमहार्णवे । उपदेशस्य दातारमंतरेणासुधारिणः ॥ २७० ॥

व्रजंतु सांप्रतं जीवा देशितेन यथा त्वया । युक्तमक्षयसौख्येन लोकाग्रेव स्थितं पदं ॥ २७१ ॥
इति तस्य प्रबुद्धस्य स्वयमेव महात्मनः । सुरैरुदाहृता वाचः प्रयाताः पुनरुक्ततां ॥ २७२ ॥
इति निष्क्रमणे तेन चिंतिते तदनंतरं । आगताः पूर्ववद्देवाः पुरंदरपुरस्सराः ॥ २७३ ॥
आगत्य च सुरैः सर्वैस्तुतः प्रणतिपूर्वकं । चिंतितं साधु नाथेति भाषितं च पुनः पुनः ॥२७४॥
ततो रत्नप्रभाजालजटिलीकृतदिग्मुखां । चंद्रांशुनिकराकारप्रचलच्चारुचामरां ॥ २७५ ॥
पूर्णचंद्रनिभादर्शकृतशोभां सुबुद्धदां । अर्द्धचंद्रकसंयुक्तामंशुकध्वजभूषितां ॥ २७६ ॥
दिव्यसृग्भिः कृतामोदां मुक्ताहारविराजितां । सुदर्शनां विमानाभां किंकिणीभिःकृतस्वनां २७७
सुरनाथार्पितस्कंधां देवशिल्पिविनिर्मितां । आरुह्य शिविकां नाथो निर्जगाम निजालयात्॥२७८॥
ततः शब्देन तूर्याणां नृत्यतां च दिवौकसां । त्रिलोकविवरापूरश्चक्रे प्रतिनिनादिना ॥ २७९ ॥
ततोऽत्यंतमहाभूत्या भक्त्या देवैः समन्वितः । तिलकाह्वयमुद्यानं संप्राप जिनपुंगवः ॥ २८० ॥
प्रयाग इति देशोसौ प्रजाभ्योस्मिन् गतो यतः । प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः ॥
आपृच्छनं ततः कृत्वा पित्रोर्बंधुजनस्य च । नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा श्रामण्यं प्रतिपद्यत॥२८२॥
अलंकारैः समं त्यक्त्वा वसनानि महामुनिः । चकारासौ परित्यागं केशानां पंचमुष्टिभिः २८३

ततो रत्नपटे केशान् प्रतिपद्य सुराधिपः । चिक्षेप मस्तके कृत्वा क्षीरकूपारवारिणि ॥ २८४ ॥
महिमानं ततः कृत्वा जिनदीक्षानिमित्तकं । यथा यातं सुरा जग्मुर्मनुष्याश्च विचेतसः॥ २८५ ॥
सहस्राणि च चत्वारि नृपाणां स्वामिभक्तितः । तदाकृतमजानंति प्रतिपन्नानि नग्नतां ॥ २८६ ॥
ततो वर्षार्द्धमात्रं स कायोत्सर्गेण निश्चलः । धराधरेंद्रवत्तस्थौ कृतेंद्रियसमास्थितिः ॥ २८७ ॥
वातोद्धूता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः । धूमाल्य इव सद्ध्यानवह्निशक्तस्य कर्मणः ॥ २८८ ॥
ततः षडपि नो यावन्मासा गच्छंति भूभृतां । भग्नस्तावदसौ संघः परीषहमहाभटैः ॥ २८९ ॥
केचिन्निपतिता भूमौ दुःखानिलसमाहताः । केचित्सरसवीर्यत्वादुपविष्टा महीतले ॥ २९० ॥
कायोत्सर्गं परित्यज्य गताः केचित्फलाशनं । संतप्तमूर्तयः केचित्प्रविष्टाः शीतलं जलं ॥२९१॥
केचिन्नागा इवोद्धता विविशुर्गिरिगह्वरं । परावृत्यमनाः केचित्प्रारब्धा जिनमीक्षितुं ॥ २९२ ॥
मानी तत्र मरीचिस्तु दधत्काषायवाससी । परिव्राट्शासनं चक्रे वल्किभिः प्रत्यवस्थितः॥२९३॥
ततः फलादिकं तेषां नग्नरूपेण गृह्णतां । विचेरुर्गगने वाचो दर्शनानां सुधाभुजां ॥ २९४ ॥
अनेन नग्नरूपेण न वर्तत इदं नृपाः । समाचरितुमत्यर्थं दुःखहेतुरयं हि वः ॥ २९५ ॥
ततः परिदधुः केचित्पत्राण्यन्ये तु वल्कलं । चर्माणि केचिदन्ये तु वासः प्रथममुज्झितं ॥२९६॥

लज्जिताः स्वेन रूपेण केचित्तु कुशचीवरं । प्राप्यामीभिस्ततस्तृप्तिं फलैः शीतजलेन च ॥२९७॥
संभूय ते ततो भग्नाः दुर्दशाचारवर्तिनः । विश्रब्धाः कर्तुमारब्धा दूरं कृत्वा प्रधारणं ॥ २९८ ॥
तेषां केनचिदित्युक्तास्ततो भूपेन ते नृपाः । एतेन कथितं किंचित्कस्मैचिद्भवतामिति ॥ २९९ ॥
नैतेन कथितं किंचिदस्मभ्यमिति ते ध्रुवं । ततोन्येनोदितं वाक्यमिति भोगाभिलाषिणः॥३००॥
उत्तिष्ठत निजान्देशान् व्रजामोत्र स्थितेन किं । प्राप्नुमः पुत्रदारादिवक्त्रालोकनजं सुखं ॥३०१॥
अपरेणेति तत्रोक्तं व्रजामो विह्वला वयं । नहि किंचिदकर्तव्यं विद्यतेस्माकमार्तितः ॥ ३०२ ॥
नाथेन तु विना यातान्निरीक्ष्य भरतो रुषा । मारयिष्यति नोऽवश्यं देशान्वापहरिष्यति॥३०३॥
नाभेयो वा पुनर्यस्मिन्काले राज्यं प्रपत्स्यते । तदास्य दर्शयिष्यामो निस्त्रपाः कथमाननं ३०४
तस्मादत्रैव तिष्ठामो भक्षयंतः फलादिकं । सेवामस्यैव कुर्वाणा भ्राम्यंतः सुखमिच्छया ॥३०५॥
प्रतिमास्थस्य तस्याथ नमिश्च विनमिस्तथा । तस्थुतः पादयोर्नत्वा भोगयाचनतत्परौ ॥३०६॥
याच्यमानौ विदित्वा तावासनस्य प्रकंपनात् । आयातो धरणो नाम्ना नागराजस्त्वरान्वितः३०७
विकृत्य जिनरूपं स ताभ्यां विद्ये वरे ददौ । प्राप्य विद्ये वरे यातौ विजयार्द्धनगे क्षणात्॥३०८॥
योजनानि दशारुह्य तत्र विद्या मृदालयाः । नानादेशपुराकीर्णाः भोगैर्भोगक्षितैः समाः ॥३०९॥

उपर्यथ समारुह्य योजनानि पुनर्दश । गंधर्वकिन्नरादीनां नगराणि सहस्रशः ॥ ३१० ॥
अतोपि समतिक्रम्य पंचयोजनमंतरं । अर्हद्भवनसंछन्नो भाति नंदीश्वराद्रिवत् ॥ ३११ ॥
भवनेष्वर्हतां तेषु स्वाध्यायगतचेतसः । मुनयश्चारणा नित्यं तिष्ठंति परमौजसः ॥ ३१२ ॥
दक्षिणे विजयार्द्धस्य भागे पंचाशदाहिताः । रथनूपुरसंध्याभ्रप्रभृतीनां पुरां ततः ॥ ३१३ ॥
उत्तरेण तथा षष्टिर्नगराणां निवेशिता । आकाशवल्लभादीनि यानि नामानि बिभ्रति ॥ ३१४ ॥
देशग्रामसमाकीर्णं मटंबाकारसंकुलं । सखेटकर्वटाटोपं तत्रैकैकं पुरोत्तमं ॥ ३१५ ॥
उदारगोपुराट्टालं हेमप्राकारतोरणं । वाप्युद्यानसमाकीर्णं स्वर्गभोगोत्सवप्रदं ॥ ३१६ ॥
अकृष्टसर्वसस्याढ्यं सर्वपुष्पफलद्रुमं । सर्वौषधिसमाकीर्णं सर्वकामप्रसादनं ॥ ३१७ ॥
भोगभूमिसमं शश्वद्राजते यत्र भूतलं । मधुक्षीरघृतादीनि वहंते तत्र निर्झराः ॥ ३१८ ॥
सरांसि पद्मयुक्तानि हंसादिकलितानि च । मणिकांचनसोपानाः स्वच्छमिष्टमधूदकाः ॥३१९॥
सरोरुहरजश्छन्ना विरेजुस्तत्र दीर्घिकाः । सवत्सकामधेनूनां संपूर्णेंदुसमत्विषां ॥ ३२० ॥
सुवर्णखुरशृंगाणां संघाः शालासु तत्र च । नेत्रानंदकरीणां च वसंति यत्र धेनवः ॥ ३२१ ॥
यासां वर्चश्च मूत्रं च सुगंधं तु सरुष्कवत् । कांतिवीर्यप्रदं तासां पयः केनोपमीयते ॥ ३२२ ॥

नीलनीरजवर्णानां तथा पद्मसमत्विषां। महिषीणां सपुत्राणां सर्वासामत्र पंक्तयः ॥ ३२३ ॥
धान्यानां पर्वताकाराः पल्यौघाः क्षयवर्जिताः। वाप्युद्यानपरिक्षिप्ताः प्रासादाश्च महाप्रभाः ३२४
रेणुकंटकनिर्मुक्ताः रथ्यामार्गाः सुखावहाः। महातरुकृतच्छायाः प्रपाः सर्वरसान्विताः ॥३२५॥
मासांश्च चतुरस्तत्र श्रोत्रानंदकरध्वनिः। देशे काले च पर्जन्यः कुरतेऽमृतवर्षणं ॥ ३२६ ॥
हिमानिलविनिर्मुक्तो हेमंतः सुखभागिनां। यथेप्सितपरिप्राप्तवाससां साधु वर्तते ॥ ३२७ ॥
मृदुतापो निदाघेपि शंकावानिव भास्करः। नानारत्नः प्रभाक्रांतो बोधकः पद्मसंपदां ॥ ३२८ ॥
ऋतवोन्येपि चेतःस्थवस्तुसंप्रापणोचिताः। नीहारादिविनिर्मुक्ताः शोभंते निर्मला दिशः ॥३२९॥
न कश्चिदेकदेशोपि तस्मिन्नस्त्यसुखालयः। रमंतं सततं सर्वा भोगभूमिष्विव प्रजाः ॥ ३३० ॥
योषितः सुकुमारांगाः सर्वाभरणभूषिताः। इंगितज्ञानकुशलाः कीर्तिश्रीह्रीधृतिप्रभाः ॥ ३३१ ॥
काचित्कमलगर्भाभा काचिदिंदीवरप्रभा। काचिच्छिरीषसंकाशा काचिद्विद्युत्समद्युतिः ॥ ३३२ ॥
नंदनस्येव वातेन निर्मितास्ताः सुगंधतः। वसंतादिव संभूताश्चारुपुष्पविभूषणात् ॥ ३३३ ॥
चंद्रकांतिविनिर्माणशरीरा इव चापराः। कुर्वंति सततं रामा निजज्योत्स्ना सरस्तरं ॥ ३३४ ॥
त्रिवर्णनेत्रशोभिन्यो गत्या हंसवधूसमाः। पीनस्तन्यः कृशोदर्यः सुरस्त्रीसमविभ्रमाः ॥ ३३५ ॥

नराश्चंद्रमुखाः शूराः सिंहोरस्का महाभुजाः । आकाशगमने शक्ताः सुलक्षणगुणक्रियाः ॥३३६॥
न्यायवर्तनसंतुष्टाः स्वर्गवासिसमप्रभाः । विचरंति सनारीका यथेष्टं कामरूपिणः ॥ ३३७ ॥
श्रेण्योरेवं रम्ययोस्तन्नितांतं । विद्याजायासंपरिष्वक्तचित्ताः ॥
इष्टान्भोगान्भुंजते भूमिदेवाः । धर्मासक्तानंतरायेण मुक्ताः ॥ ३३८ ॥
एवंरूपा धर्मलाभेण सर्वे । संप्राप्यंते प्राणिनो भोगलाभाः ।
तस्मात्कर्तुं धर्ममेकं यतध्वं । नष्टं ध्वांतं स्वं रवेस्तुल्यचेष्टं ॥ ३३९ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते विद्याधरलोकाभिधानं नाम तृतीयं पर्व ।

अथ चतुर्थं पर्व ।

अथासौ भगवान् ध्यानी शातकौंभप्रभः प्रभुः । हिताय जगते कर्तुं दानधर्मं समुद्यतः ॥ १ ॥
निःशेषदोषनिर्मुक्तो मौनमांश्रित्य नैष्ठिकं । संहृत्य प्रतिमां धीरो जगाम धरणीतलं ॥ २ ॥
ददृशुस्तं प्रजा देवं भ्राम्यंतं तुंगविग्रहं । देहप्रभापरिच्छन्नं द्वितीयमिव भास्करं ॥ ३ ॥
यत्र यत्र पदन्यासमकरोत्स जिनेश्वरः । तस्मिन्विकचपद्मानि भवंतीव महीतले ॥ ४ ॥

मेरुकूटसमाकारभासुरांशः समाहितः । स रेजे भगवान् दीर्घजटाजालहृतांशुमान् ॥ ५ ॥
अन्यदा हास्तिनपुरं विहरन्स समागतः । अविशच्च दिनस्यार्द्धे गते मेरुरिव श्रिया ॥ ६ ॥
मध्याह्नरविसंकाशं दृष्ट्वा तं पुरुषोत्तमं । सर्वे नराश्च नार्यश्च मुमूर्च्छुरतिविस्मयात् ॥ ७ ॥
नानावर्णानि वस्त्राणि रत्नानि विविधानि च । हस्त्यश्वरथयानानि तस्मै ढौकितवान् जनः॥८॥
मुग्धाः पूर्णेंदुवदनाः कन्यास्तामरसेक्षणाः । उपनिन्युर्नराः केचिद्विनीताकारधारिणः ॥ ९ ॥
तस्मै न रुचिताः सत्यः स्वस्याप्यप्रियतां गताः । कन्यास्ता निरलंकारा ध्यायंत्यस्तं व्यवस्थिताः॥
अथ प्रासादशिखरे स्थितः श्रेयान् महीपतिः । दृष्ट्वैनं स्निग्धया दृष्ट्या पूर्वजन्म समस्मरत्॥११॥
उत्थाय च नृसिंहोसौ सांतःपुरसुहृज्जनः । कृतांजलिपुरः स्तोत्रव्यग्रोष्टपुटपंकजः ॥ १२ ॥
तस्य प्रदक्षिणां कुर्वन् रराज स नराधिपः । मेरोर्नितंबमंडल्यां भ्राम्यन्निव दिवाकरः ॥ १३ ॥
ततः कुंतलभारेण प्रमृज्य चरणद्वयं । तस्यानंदाश्रुभिःपूर्वं क्षालितं तेन भूभृता ॥ १४ ॥
रत्नपात्रेण दत्त्वार्घं कृततत्पादमार्जनः । शुचौ देशे स्थितायास्मै विधिना परमेण सः ॥ १५ ॥
रसमिक्षोः समादाय कलशस्थं सुशीतलं । चकार परमं श्राद्धं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥ १६ ॥
ततः प्रमुदितैर्देवैः साधु शब्दौघमिश्रितः । नभो यैर्दुंदुभिध्वानश्चक्रे दिक्चक्रपूरणः ॥ १७ ॥

पुष्याणां पंचवर्णानां वृष्टीश्च प्रमथाधिपाः । अहोदानमहोदानमित्युक्त्वा ववृषुर्मुदा ॥ १८ ॥
अनिलोतिसुखस्पर्शो दिशः सुरभयन् ववौ । पूरयंती नभोभागं वसुधारा पपात च ॥ १९ ॥
संप्राप्तः सुरसन्मानं त्रिजगद्विस्मयप्रदं । पूजितो भरतस्यापि श्रेयान् प्रीतिसमुत्कटं ॥ २० ॥
अथ प्रवर्तनं कृत्वा पाणिपात्रव्रतस्य सः । शुभध्यानं समाविष्टो भूयोपि विजितेंद्रियः ॥ २१ ॥
ततस्तस्य सितध्यानाद्गते मोहे परिक्षयं । उत्पन्नं केवलज्ञानं लोकालोकावलोकनं ॥ २२ ॥
तेनैव च समं जातं तेजसो मंडलं महत् । कालस्य विकरद्भेदं रात्रिवासरसंभवं ॥ २३ ॥
तद्देशे विपुलस्कंधो रत्नपुष्पैरलंकृतः । अशोकपादपोभूच्च विकसद्रक्तपल्लवः ॥ २४ ॥
प्रकीर्णा सुमनोवृष्टिरामोदाकृष्टषट्पदा । नभस्थैरमरैर्नानारूपसंभवगामिनी ॥ २५ ॥
महादुंदुभयो नेदुः क्षुब्धसागरनिःस्वनाः । अदृष्टविग्रहैर्देवैराहताः करपल्लवैः ॥ २६ ॥
यक्षौ पद्मपलाशाक्षौ सर्वालंकारभूषितौ । चालयांचक्रतुः स्वैरं चामरे चंद्रहासिनी ॥ २७ ॥
मेरुमस्तकसंकाशं मुकुटं भूमियोषितः । सिंहासनं समुत्पन्नं कराहतदिवाकरं ॥ २८ ॥
त्रिलोकविश्रुताचिन्हं मुक्ताजालकभूषितं । छत्रत्रयं समुद्भूतं तस्येव विमलं यशः ॥ २९ ॥
सिंहासनस्थितस्यास्य सरणं समवान्वितं । प्राप्तस्य गदितुं शोभां केवली केवलं प्रभुः ॥ ३० ॥

ततस्तमवधिज्ञानादवगम्य सुराधिपाः । वंदितुं सपदि प्राप्ताः परिवारसमन्विताः ॥ ३१ ॥
ख्यातो वृषभसेनोस्य संजातो गणभृत्ततः । अन्ये च श्रमणा जाता महावैराग्ययोगिनः ॥ ३२ ॥
यथास्थानं ततस्तेषु सरणे समवान्विते । यत्यादिषु निविष्टेषु गणेशेन प्रचोदितः ॥ ३३ ॥
छादयंतीं स्वनादेन देवदुंदुभिनिःस्वनां । जगाद भगवान् वाचं तत्त्वार्थपरिशंसिनीं ॥ ३४ ॥
अस्मिन्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छतां । शरणं परमो धर्मस्तस्माच्च परमं सुखं ॥ ३५ ॥
सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकं । एवं ज्ञात्वा जना यत्नात्कुरुध्वं धर्मसंग्रहं ॥ ३६ ॥
वृष्टिर्विना कुतो मेघैः क सस्यं बीजवर्जितं । जीवानां च विना धर्मात्सुखमुत्पद्यते कुतः॥ ३७ ॥
गंतुंकामो यथा पंगुर्मूको वक्तुं समुद्यतः । अंधो दर्शनकामश्च तथा धर्मादृते सुखं ॥ ३८ ॥
परमाणोः परं स्वल्पं न चान्यन्नभसो महत् । धर्मादन्यश्च लोकेस्मिन्सुहृन्नास्ति शरीरिणः॥३९॥
मनुष्यभोगः स्वर्गश्च सिद्धसौख्यं च धर्मतः । प्राप्यते यत्तदन्येन व्यापारेण कृतेन किं ॥ ४० ॥
अहिंसा निर्मलं धर्मं सेवंते ये विपश्चितः । तेषामेवोर्द्धगमनं यांति तिर्यगधोन्यथा ॥ ४१ ॥
यद्यप्युर्ध्वं तपःशक्त्या व्रजेयुः परलिंगिनः । तथापि किंकरा भूत्वा ते देवान्समुपासते ॥ ४२ ॥
देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः । स्वर्गच्युताः पुनस्तिर्यग्योनिमायांति दुःखिनः ॥४३॥

सम्यग्दर्शनसंपन्नाः स्वभ्यस्तजिनशासनाः । दिवं गत्वा च्युता बोधिं प्राप्य यांति परं शिवं ४४
सागाराणां यतीनां च धर्मोसौ द्विविधः स्मृतः । तृतीयं ये तु मन्यंते दग्धास्ते मोहवन्हिना ४५
अणुव्रतानि पंच स्युः त्रिप्रकारं गुणव्रतं । शिक्षाव्रतानि चत्वारि धर्मोयं गृहसेविनां ॥ ४६ ॥
सर्वारंभपरित्यागं कृत्वा देहेपि निःस्पृहाः । कालधर्मेण संयुक्ता गतिं ते यांति शोभतां ॥ ४७ ॥
महाव्रतानि पंच स्युस्तथा समितयो मताः । गुप्तयस्तिस्र उद्दिष्टा धर्मोयं व्योमवाससां ॥ ४८ ॥
धर्मेणानेन संयुक्ताः शुभध्यानपरायणाः । यांति नाकं च मोक्षं च हित्वा पूतिकलेवरं ॥ ४९ ॥
येपि जातस्वरूपाणां परमब्रह्मचारिणां । स्तुतिं कुर्वंति भावेन तेपि धर्ममवाप्नुयुः ॥ ५० ॥
तेन धर्मप्रभावेन कुगतिं न व्रजंति ते । लभंते बोधिलाभं च मुच्यंते येन किल्विषात् ॥ ५१ ॥
इत्यादि देवदेवेन भाषितं धर्ममुत्तमं । श्रुत्वा देवमनुष्याश्च परमं मोदमागताः ॥ ५२ ॥
केचित्सम्यग्मतिं भेजुर्गृहिधर्ममथापरे । अनगारव्रतं केचित्स्वशक्तेरनुगामिनः ॥ ५३ ॥
ततः समुद्यताः गंतुं जिनं नत्वा सुरासुराः । स्तुत्वा च निजधामानि गता धर्मविभूषिताः॥५४॥
यं यं देशं स सर्वज्ञः प्रयाति गतियोगतः । योजनानां शतं तत्र जायते स्वर्गविभ्रमं ॥ ५५ ॥
स भ्रमन् बहुदेशेषु भव्यराशीनुपागतान् । रत्नत्रितयदानेन संसारादुदतीतरन् ॥ ५६ ॥

तस्यासीद्गणपालानामशीतिश्चतुरुत्तरा । सहस्राणि च तावंति साधूनां च तपोभृतां ॥ ५७ ॥
अत्यंतशुद्धचित्तास्ते रविचंद्रसमप्रभाः । एभिः परिवृतः सर्वां जिनो विहरते महीं ॥ ५८ ॥
चक्रवर्तिश्रियं तावत्प्राप्तो भरतभूपतिः । यस्य क्षेत्रमिदं नाम्ना जगत्प्रकटतां गतं ॥ ५९ ॥
ऋषभस्य शतं पुत्रास्तेजस्कांतिसमन्विताः । भ्रमणव्रतमास्थाय संप्राप्ताः परमं पदं ॥ ६० ॥
तन्मध्ये भरतश्चक्री बभूव प्रथमो भुवि । विनीतानगरे रम्ये साधुलोकनिषेविते ॥ ६१ ॥
अक्षया निधयस्तस्य नवरत्नादिसंभृताः । आकराणां सहस्राणि नवतिर्नवसंयुताः ॥ ६२ ॥
त्रयं सुरभिकोटीनां हलकोटिस्तथोदिताः । चतुर्भिरधिकाशीतिर्लक्षाणां वरदंतिनां ॥ ६३ ॥
कोट्यश्चाष्टौदशोद्दिष्टा वाजिनां वातरंहसां । द्वात्रिंशच्च सहस्राणि पार्थिवानां महौजसां ॥ ६४ ॥
तावंत्येव सहस्राणि देशानां पुरसंपदां । चतुर्दश च रत्नानि रक्षितानि सदा सुरैः ॥ ६५ ॥
पुरंध्रीणां सहस्राणि नवतिः षड्भिरन्विताः । ऐश्वर्यं तस्य निःशेषं गदितुं नैव शक्यते ॥ ६६ ॥
पौतनाख्ये पुरे तस्य स्थितो बाहुबली नृपः । प्रतिकूलो महासत्त्वस्तुल्योत्पादकमानसः ॥६७॥
तस्य युद्धाय संप्राप्तो भरतश्चक्रगर्वितः । सैन्येन चतुरंगेण छादयन्धरणीतलं ॥ ६८ ॥
तयोर्गजघटाटोपसंघट्टरवसंकुलं । संजातं प्रथमं युद्धं बहुसत्त्वक्षयावहं ॥ ६९ ॥

अथोवाच विहस्यैवं भरतं बाहुविक्रमी । किं वराकेन लोकेन निहतेनामुनावयोः ॥ ७० ॥
यदि निःस्पंदया दृष्ट्या भवताहं पराजितः । ततो निर्जितएवास्मि दृष्टियुद्धे प्रवर्त्यतां ॥ ७१ ॥
दृष्टियुद्धे ततो भग्नस्तथा बाहुरणादिषु । वधार्थं भरतो भ्रातुश्चक्ररत्नं विसृष्टवान् ॥ ७२ ॥
तत्तस्यांत्यशरीरत्वादक्षमं विनिपातने । तस्यैव पुनरायातं समीपं विफलक्रियं ॥ ७३ ॥
ततो भ्रात्रा समं वैरमवबुध्य महामनाः । संप्राप्तो भोगवैराग्यं परमं भुजविक्रमी ॥ ७४ ॥
संत्यज्य सततो भोगान भूत्वा निर्वस्त्रभूषणः । वर्ष प्रतिमया तस्थौ मेरुवन्निःप्रकंपकः ॥ ७५ ॥
वल्मीकविवरोघातैरत्युग्रैःसमहोरगैः । श्यामादीनां च वल्लीभिः वेष्टितः प्राप केवलं ॥ ७६ ॥
ततः शिवपदं प्रापदायुषः कर्मणः क्षये । प्रथमं सोवसर्पिण्यां मुक्तिमार्गं व्यशोधयत् ॥ ७७ ॥
भरतस्त्वकरोद्राज्यं कंटकैः परिवर्जितं । षड्भिर्मार्गैर्विभक्तायां सर्वस्यां भरतक्षितौ ॥ ७८ ॥
विद्याधरपुराकारा ग्रामाः सर्वसुखावहाः । देवलोकप्रकाराश्च पुरःपरमसंपदः ॥ ७९ ॥
देवा इव जनास्तेषु रेजुः कृतयुगे सदा । मनोविषयसंप्राप्तविचित्रांबरभूषणाः ॥ ८० ॥
देशा भोगभुवा तुल्या लोकपालोपमा नृपाः । अप्सरःसदृशो नार्यो मदनावासभूमयः ॥ ८१ ॥
एवमेकातपत्रायां पृथिव्यां भरताधिपः । आखंडल इव स्वर्गे भुंक्ते कर्मफलं शुभं ॥ ८२ ॥

रक्षितं यस्य यक्षाणां सहस्रेण प्रयत्नतः । सर्वेंद्रियसुखं रत्नं सुभद्राख्यं विराजते ॥ ८३ ॥
पंचपुत्रशतान्यस्य यैरिदं भरताह्वयं । क्षेत्रं विभागतो भुक्तं पित्रा दत्तमकंटकं ॥ ८४ ॥
अथैवं कथितं तेन गौतमेन महात्मना । श्रेणिकः पुनरप्याह वाक्यमेतत्कुतूहली ॥ ८५ ॥
वर्णत्रयस्य भगवन्संभवो मे त्वयोदितः । उत्पत्तिं सूत्रकंठानां ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतं ॥ ८६ ॥
प्राणिघातादिकं कृत्वा कर्म साधु जुगुप्सितं । परं वहंत्यमी गर्वं धर्मप्राप्तिनिमित्तकं ॥ ८७ ॥
तदेषां विपरीतानां उत्पत्तिं वक्तुमर्हसि । कथं चैषां गृहस्थानां भक्तो लोकः प्रवर्तते ॥ ८८ ॥
एवं प्रष्टो गणेशोसाविदं वचनमब्रवीत् । कृपांगनापरिष्वक्तहृदयोद्गतमत्सरः ॥ ८९ ॥
श्रेणिक श्रूयतामेषां यथा जातः समुद्भवः । विपरीतप्रवृत्तीनां मोहावष्टब्धचेतसां ॥ ९० ॥
साकेतनगरासन्ने प्रदेशे प्रथमो जिनः । आसांचक्रेऽन्यदा देवस्तिर्यग्मानववेष्टितः ॥ ९१ ॥
ज्ञात्वा तं भरतस्तुष्टो ग्राहयित्वा सुसंस्कृतं । अन्नं जगाम यत्यर्थं बहुभेदप्रकल्पितं ॥ ९२ ॥
प्रणम्य च जिनं भक्त्या समस्तांश्च दिगंबरान् । भ्रमौ करद्वयं कृत्वा वाणीमेतां प्रभाषत ॥९३॥
प्रसादं भगवंतो मे कर्तुमर्हथ याचिताः । प्रतीच्छत मया भिक्षां शोभनामुपपादितां ॥ ९४ ॥
इत्युक्ते भगवानाह भरतेयं न कल्पते । साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसंस्कृता ॥ ९५ ॥

एते हि तृष्णया मुक्ता निर्जितेंद्रियशत्रवः । विधायापि बहून्मासानुपवासं महागुणाः ॥ ९६ ॥
भिक्षां परगृहे लब्धां निर्दोषां मौनमास्थिताः । भुंजते प्राणधृत्यर्थं प्राणा धर्मस्य हेतवः ॥ ९७ ॥
धर्मं चरंति मोक्षार्थं यत्र पीडा न विद्यते । कथंचिदपि सत्त्वानां सर्वेषां सुखच्छिदां ॥ ९८ ॥
श्रुत्वा तद्वचनं सम्राडचिंतयदिदं चिरं । अहो बत महाकष्टं जैनेश्वरमिदं व्रतं ॥ ९९ ॥
तिष्ठंति मुनयो यत्र स्वस्मिन् देहेपि निःस्पृहाः । जातरूपधरा धीराः शांतप्रशममूर्तयः ॥१००॥
इदानीं भोजयाम्येतान्सागारव्रतमाश्रितान् । लक्षणं हेमसूत्रेण कृत्वैतेनमहांधसा ॥ १०१ ॥
प्रकाममन्यदप्येभ्यो दानं यच्छामि भक्तितः । कनीयान्मुनिधर्मस्य धर्मोऽमीभिः समाश्रितः ॥ १०२
सम्यग्दृष्टिजनं सर्वं ततोसौ धरणीतले । न्यमंत्रयन्महावेगैः पुरुषैः स्वस्य सस्मतैः ॥ १०३ ॥
महान्कलकलो जातः सर्वस्यामत्रणौ ततः । भो भो नैरा महादानं भरतः कर्तुमुद्यतः ॥ १०४ ॥
उत्तिष्ठताशु गच्छामो वस्त्ररत्नादिकं धनं । आनयामो नरा ह्येते प्रेषितास्तेन सादराः ॥ १०५ ॥
उक्तमन्यैरिदं तत्र पूजयत्येष सम्मतान् । सम्यग्दृष्टिजनान् राजा गमनं तत्र नो वृथा ॥ १०६ ॥
ततः सम्यग्दृशो याता हर्षं परममागताः । समं पुत्रैः कलत्रैश्च पुरुषा विनयस्थिताः ॥ १०७ ॥
मिथ्यादृशोपि संप्राप्ता मायया वसुतृष्णया । भवनं राजराजस्य शक्रप्रासादसन्निभं ॥ १०८ ॥

अंगणोत्थयवव्रीहिमुद्गमाषांकुरादिभिः । उचित्यलक्षणैः सर्वान्सम्यग्दर्शनसंस्कृतान् ॥ १०९ ॥
अलक्षयत्सरत्नेन सूत्रचिन्हेन चारुणा । चामीकरमयेनासौ प्रावेशयदथो गृहं ॥ ११० ॥
मिथ्यादृशोपि तृष्णार्त्ताश्चिंतया व्याकुलीकृताः । जल्पंतो दीनवाक्यानि प्रविष्टाः दुःखसागरं ॥ १११
ततो यथेप्सितं दानं श्रावकेभ्यो ददौ नृपः । पूजितानां च चिंतेयं तेषां जाता दुरात्मनां ॥ ११२ ॥
वयं केपि महापूता जगते हितकारिणः । पूजिता यन्नरेंद्रेण श्रद्धयात्यंततुंगया ॥ ११३ ॥
ततस्ते तेन गर्वेण समस्ते धरणीतले । प्रवृत्ता याचितुं लोकं दृष्ट्वा द्रव्यसमन्वितं ॥ ११४ ॥
ततो मतिसमुद्रेण भरताय निवेदितं । यथाद्येति मया जैने वचनं सदसि श्रुतं ॥ ११५ ॥
वर्द्धमानजिनस्यांते भविष्यंति कलौ युगे । एते ये भवता सृष्टाः पाखंडिनो महोद्धताः ॥ ११६ ॥
प्राणिनो मारयिष्यंति धर्मबुध्या विमोहिताः । महाकषायसंयुक्ताः सदा पापक्रियोद्यताः ॥ ११७ ॥
कुग्रंथं वेदसंज्ञं च हिंसाभाषणतत्परं । वक्ष्यंति कर्तृनिर्मुक्तं मोहयंतोखिलाः प्रजाः ॥ ११८ ॥
महारंभेषु संसक्ताः प्रतिग्रहपरायणाः । करिष्यंति सदा निंदां जिनभाषितशासने ॥ ११९ ॥
निर्ग्रंथमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधं यास्यंति पापिनः । उपद्रवाय लोकस्य विषवृक्षांकुरा इव ॥ १२० ॥
तच्छ्रुत्वा भरतः क्रुद्धः तान्सर्वान् हंतुमुद्यतः । त्रासितास्ते ततस्तेन नाभेयं शरणं गताः ॥ १२१ ॥

यस्मान्मा हननं पुत्र कार्षीरिति निवारितः । ऋषभेण ततो याता 'माहना'इति ते श्रुतिं ॥१२२॥
रक्षितास्ते यतस्तेन जिनेन शरणागताः । त्रातारमिंद्रमित्युच्चैस्ततस्तं विबुधा जगुः ॥ १२३ ॥
ये च ते प्रथमं भग्ना नृपा नाथानुगामिनः । व्रतांतरममी चक्रुः स्वबुद्धिपरिकल्पितं ॥ १२४ ॥
तेषां शिष्याः प्रशिष्याश्च मोहयंतः कुहेतुभिः । जगद्गर्वपरायत्ताः कुशास्त्राणि प्रचक्रिरे ॥१२५॥
भृगुरंगोंगिरा वन्हिः कपिलोत्रिर्विदस्तथा । अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसाः १२६
स्त्रियं दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुच्छिगं प्राप्तविक्रियं । पिदधुर्मोहसंछन्नाः कोपीनेन नराधमाः ॥१२७॥
सूत्रकंठाः पुरा तेन ये सृष्टाश्चक्रवर्त्तिना । बीजवत्प्रसृतास्तेत्र संतानेन महीतले ॥ १२८ ॥
प्रस्तावगतमेतत्ते कथितं द्विजकल्पनं । इदानीं प्रकृतं वक्ष्ये राजन् शृणु समाहितः ॥ १२९ ॥
अथासौ लोकमुत्तार्य प्रभूतं भवसागरात् । कैलाशशिखरे प्राप निर्वृतिं नाभिनंदनः ॥ १३० ॥
ततो भरतराजोपि प्रव्रज्यां प्रतिपन्नवान् । साम्राज्यं तृणवत्त्यक्त्वा लोकविस्मयकारणं ॥ १३१ ॥
स्थित्यधिकारोयं ते, श्रेणिक गदितः समासतस्त्वेनं । वंशाधिकारमधुना पुरुषरवे विद्धि सादरं वक्ष्मि ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते ऋषभमाहात्म्याभिधानं नाम चतुर्थं पर्व ।

अथ पंचमं पर्व ।

जगत्यस्मिन्महावंशाश्चत्वारः प्रथिता नृप । एषां रहस्यसंयुक्ताः प्रभेदा बहुधोदिताः ॥ १ ॥
इक्ष्वाकुः प्रथमस्तेषामुन्नतो लोकभूषणः । ऋषिवंशो द्वितीयस्तु शशांककरनिर्मलः ॥ २ ॥
विद्याभृतां तृतीयस्तु वंशोत्यंतमनोहरः । हरिवंशो जगत्ख्यातश्चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ ३ ॥
तस्यादित्ययशाः पुत्रो भरतस्योदपद्यत । ततः सितयशा जातो बलांकस्तस्य चाभवत् ॥ ४ ॥
जज्ञे च सुबलस्तस्मात्ततश्चापि महाबलः । तस्मादतिबलो जातस्ततश्चामृतशब्दितः ॥ ५ ॥
सुभद्रः सागरो भद्रो रविते जास्तथा शशी । प्रभूततेजाः तेजस्वी तपनोथ प्रतापवान् ॥ ६ ॥
अतिवीर्यः सुवीर्यश्च तथोदितपराक्रमः । महेंद्रविक्रमः सूर्य इंद्रद्युम्नो महेंद्रजित् ॥ ७ ॥
प्रभुर्विभुरविध्वंसो वीतभीर्वृषभध्वजः । गरुडांको मृगांकश्च तथान्ये पृथिवीभृतः ॥ ८ ॥
राज्यं सुतेषु निक्षिप्य संसारार्णवभीरवः । शरीरेष्वपि निःसंगा निर्ग्रंथव्रतमाश्रिताः ॥ ९ ॥
अयमादित्यवंशस्ते कथितः क्रमतो नृपः । उत्पत्तिः सोमवंशस्य सांप्रतं परिकीर्त्यते ॥ १० ॥
ऋषभस्याभवत्पुत्रो नाम्ना बाहुबलीति यः । ततः सोमयशा नाम सौम्यःसूनुरजायत ॥ ११ ॥
ततो महाबलो जातस्ततोस्य सुबलोभवत् । स्मृतो भुजबली तस्मादेवमाद्या नृपाधिपाः ॥ १२ ॥

शशिवंशसमुत्पन्नाः क्रमेण सितचेष्टिताः । श्रामण्यमनुभूयाशु संप्राप्ताः परमं पदं ॥ १३ ॥
केचित्तु तनुकर्माणो भुंजानास्तपसः फलं । स्वर्गे चक्रुरवस्थानमासन्नभवनिर्गमाः ॥ १४ ॥
एष ते सोमवंशोपि कथितः पृथिवीपते । वैद्याधरमतो वंशं कथयामि समासतः ॥ १५ ॥
नमेर्विद्याधरेंद्रस्य रत्नमाली सुतोभवत् । रत्नवज्रस्ततो जातस्ततो रत्नरथोभवत् ॥ १६ ॥
रत्नचित्रोभवत्तस्माज्जातश्चंद्ररथस्ततः । जज्ञेऽतो वज्रसंघाख्यो वज्रसेनश्रुतिस्ततः ॥ १७ ॥
उद्भूतो वज्रदंष्ट्रोतस्ततो वज्रध्वजोभवत् । वज्रायुधश्च वज्रश्च सुवज्रो वज्रभृत्तथा ॥ १८ ॥
वज्राभो वज्रबाहुश्च वज्रांको वज्रसंज्ञकः । वज्रास्यो वज्रपाणिश्च वज्रजातुश्च वज्रवान् ॥ १९ ॥
विद्युन्मुखः सुवक्त्रश्च विद्युद्दंष्ट्रश्च तत्सुतः । विद्युत्वान् विद्युदाभश्च विद्युद्वेगोथ वैद्युतः ॥ २० ॥
इत्याद्या बहवः शूरा विद्याधरपुराधिपाः । गता दीर्घेण कालेन चेष्टितोचितमांश्रमं ॥ २१ ॥
सुतेषु प्रभुतां न्यस्य जिनदीक्षामुपाश्रिताः । हित्वा द्वेषं च रागं च केचित्सिद्धिमुपागताः ॥२२॥
केचिद्विनाशमप्राप्ते समस्ते कर्मबंधने । संकल्पकृतसान्निध्यं सुरभोगमभुंजत ॥ २३ ॥
केचित्तु कर्मपाशेन बद्धाः स्नेहगरीयसा । तत्रैव निधनं याता वागुरायां मृगा इव ॥ २४ ॥
अथ विद्युद्दंष्ट्रो नाम्ना प्रभुः श्रेण्योर्द्वयोरपि । विद्यावलसमुन्नद्धो बभूवोन्नतविक्रमः ॥ २५ ॥

अन्यदा स गतोऽपश्यद्विदेहं गगनस्थितः । निर्ग्रंथं योगमारूढं शैलनिश्चलविग्रहं ॥ २६ ॥
स्थापितस्तेन नीत्वासौ नाम्ना पंचगिरौ गिरौ । कुरुध्वं बधमस्येति विद्यावंतश्च चोदिताः ॥२७॥
तस्य लोष्टुभिरन्यैश्च हन्यमानस्य योगिनः । बभूव समचित्तस्य संक्लेशो न मनागपि ॥ २८ ॥
ततोस्य सहमानस्य संजयंतस्य दुःस्सहं । उपसर्गं, समुत्पन्नं केवलं सर्वभासनं ॥ २९ ॥
धरणेन ततो विद्या हृता विद्युदृढस्थिताः । ततोसौ हृतविद्यः सन् ययावुपशमं परं ॥ ३० ॥
ततोनया पुनर्लब्धा विद्यानेन व्यवस्थया । प्रणतेनांजलिं कृत्वा संजयंतस्य पादयोः ॥ ३१ ॥
तपः क्लेशेन भवतां विद्याः सेत्स्यंति भूरिणा । सिद्धा अपि तथासत्यः छेदं यास्यंति दुःकृतात् ॥
अर्हद्बिंबसनाथस्य चैतस्योपरि गच्छतां । साधूनां च प्रमादेपि विद्या नंक्ष्यंति वः क्षणात् ॥३३॥
धरणेन ततः पृष्टः संजयंतः कुतूहलात् । विद्युद्दृढेन भगवन् कस्मादेवं विचेष्टितं ॥ ३४ ॥
उवाच भगवानेवं संसारेस्मिन् चतुर्गतौ । भ्राम्यन्नहं समुत्पन्नो ग्रामे शकटनामनि ॥ ३५ ॥
वणिग्घितकरो नाम्ना प्रियवादी दयान्वितः । स्वभावार्जवसंपन्नः साधुसेवापरायणः ॥ ३६ ॥
कालधर्मं ततः कृत्वा राजा श्रीवर्द्धनाह्वयः । अभवत्कुमुदावत्यां व्यवस्थापालनोद्यतः ॥ ३७ ॥
ग्रामे तत्रैव विप्रोभूत्स कृत्वा कुत्सितं तपः । कुदेवोत्र ततश्च्युत्वा राज्ञः श्रीवर्द्धनस्य तु ॥ ३८ ॥

ख्यातो वन्हिशिखो नाम्ना सत्यवादीति विश्रुतः । अभूत्पुरोहितो रौद्रो गुप्ताकार्यकरो महान् ३९
वणिग्नियमदत्तस्य स च द्रव्यमपान्हुत । राज्ञा द्यूतं ततः कृत्वा निर्जितः सोंगुलीयकं ॥ ४० ॥
तेनाभिज्ञानदानेन दास्या गत्वा तदालयं । उपनीतानि रत्नानि वाणिजे दुःखवर्तिने ॥ ४१ ॥
ततो गृहीतसर्वस्वः खलीकृत्य द्विजाधमः । पुरो निर्वासितो दीनस्तपः परममाचरन् ॥ ४२ ॥
मृत्वा कल्पं स माहेंद्रं प्राप्तस्तस्मान्परिच्युतः । खेचराणामधीशोयमभूद्विद्युद्दृढध्वनिः ॥ ४३ ॥
श्रीवर्द्धनस्तपः कृत्वा मृत्वा कल्पमुपागतः । संजयंतश्च्युतिर्जाता विदेहेहं ततश्च्युतः ॥ ४४ ॥
तेन दोषानुबंधेन दृष्ट्वा मां क्रोधमूर्छितः । उपसर्गं व्याधादेष कर्मणां वशतां गतः ॥ ४५ ॥
योसौ नियमदत्तोभूत्स कृत्वा तपसोर्जनं । राजा नागकुमाराणां जातस्त्वं शुभमानसः ॥ ४६ ॥
अथ विद्युद्दृढस्याभून्नाम्ना दृढरथः सुतः । तत्र राज्यं स निक्षिप्य तपः कृत्वा गतो दिवं॥४७॥
अश्वधर्माभवत्तस्मादश्वायुरभवत्ततः । अश्वध्वजस्ततो जातस्ततो पद्मनभोभवत् ॥ ४८ ॥
पद्ममाली ततोभूतोऽभवत्पद्मरथस्ततः । सिंहयानो मृगद्वर्मा मेघास्त्रः सिंहसप्रभुः ॥ ४९ ॥
सिंहकेतुः शशांकास्यश्चंद्राहश्चंद्रशेखरः । इंद्रचंद्ररथाभिख्यौ चक्रधर्मा तदायुधः ॥ ५० ॥
चक्रध्वजो मणिग्रीवो मण्यंको मणिभासुरः । मणिस्यंदनमण्यास्यौ बिंबोष्ठो लवितांधरः॥ ५१ ॥

रक्तोष्ठो हरिचंद्रश्च पूश्चंद्रः पूर्णचंद्रमाः । बालेंदुश्चंद्रमश्चूडो व्योमेंदुरुडुपातनः ॥ ५२ ॥
एकचूडो द्विचूडश्च त्रिचूडश्च ततोभवत् । वज्रचूडस्ततस्तस्माद्धरिचूडार्कचूडकौ ॥ ५३ ॥
तस्माद्वन्हिजटीजातो वन्हितेजास्ततोभवत् । बहवश्चैवमन्येपि कालेन क्षयमागताः ॥ ५४ ॥
पालयित्वा श्रियं केचिन्न्यस्य पुत्रेषु तां पुनः । कृत्वा कर्मक्षयं याताः सिद्धैरध्यासितां महीं ५५
एवं वैद्याधरोयं ते राजन् वंशः प्रकीर्तितः । अवतारो द्वितीयस्य युगस्यातः प्रचक्ष्यते ॥ ५६ ॥
अस्य नाभेयचिन्हस्य युगस्य विनिवर्तते । हीनाः पुरातना भावाः प्रशस्ता अत्र भूतले ॥ ५७ ॥
शिथिलायितुमारब्धाः परलोकक्रियारतिः । कामार्थयोः समुत्पन्ना जनस्य परमा मतिः ॥ ५८ ॥
अथेक्ष्वाकुकुलोत्थेषु तेष्वतीतेषु राजसु । पुत्रश्रियं समुत्पन्नो धरणीधरनामतः ॥ ५९ ॥
अयोध्यानगरे श्रीमान् प्रख्यातस्त्रिदशंजयः । इंदुरेखा प्रिया तस्य जितशत्रुस्तयोः सुतः ॥ ६० ॥
पुरे पोदनसंज्ञेथ व्यानंदस्य महीपतेः । जातामंभोजमालायां नामतो विजयां सुतां ॥ ६१ ॥
जितशत्रोः समायोज्य प्रव्रज्यास्त्रिदशंजयः । निर्वाणं च परिप्राप्तः कैलाशधरणीधरे ॥ ६२ ॥
अथाजितजिनो जातस्तयोः पूर्वविधानतः । अभिषेकादि देवेंद्रैः कृतं नाभेयवर्णितं ॥ ६३ ॥
तस्य पित्रा जिताः सर्वे तज्जन्मनि यतो द्विषः । ततोसावजिताभिख्यां संप्राप्तो धरणीतले॥६४॥

आसन्सुनयनानंदेत्यादयस्यस्य योषितः । यासां शच्यपि रूपेण शक्ता नानुकृतिं प्रति ॥ ६५ ॥
अन्यदा रम्यमुद्यानं गतः शांतः पुरोजितः । पूर्वाह्णे फुल्लमैक्षिष्ट पंकजानां वनं महत् ॥ ६६ ॥
तदेव संकुचद्वीक्ष्य भास्करेस्तं यियासति । अनित्यतां श्रियो मत्वा निर्वेदं परमंगतः ॥ ६७ ॥
ततः पितरमापृच्छ्य मातरंसबांधवान् । नाथःपूर्वविधानेन प्रव्रज्यां प्रतिपन्नवान् ॥ ६८ ॥
क्षत्रियाणां सहस्राणि दशानेन समं ततः । निष्क्रांतानि परित्यज्य राज्यबंधुपरिग्रहं ॥ ६९ ॥
षष्ठोपवासयुक्ताय तस्मै नाथाय पारणं । ब्रह्मदत्तो ददौ भक्त्या साकेतनगरोद्भवः ॥ ७० ॥
चतुर्दशस्वतीतेषु वर्षेष्वस्य ततोभवत् । केवलज्ञानमार्हंत्यं तथा विश्वस्य पूजितं ॥ ७१ ॥
ततश्चातिशयास्तस्य चतुस्त्रिंशत्समुत्थिताः । अष्टौ च प्रातिहार्याणि द्रष्टव्यानीह पूर्ववत् ॥७२॥
नवतिस्तस्य संजाता गणेशाः पादसंश्रिताः । साधूनां चोदितं लक्षं दिवाकरसमत्विषां ॥ ७३ ॥
कनीयान् जितशत्रोस्तु ख्यातो विजयसागरः । पत्नी सुमंगला तस्य तत्सुतः सगरोभवत् ॥७४॥
बभूवासौ शुभाकारो द्वितीयश्चक्रवर्तिनां । निधानैर्नवभिः ख्यातिं यो गतो वसुधातले ॥ ७५ ॥
अस्मिन्यदंतरे वृत्तं श्रेणिकेदं निशम्यतां । अस्तीह चक्रवालाख्यं पुरं दक्षिणगोचरं ॥ ७६ ॥
तत्र पूर्णघनो नाम विभुर्व्योमविचारिणां । महाप्रभावसंपन्नो विद्याबलसमुन्नतः ॥ ७७ ॥

विहाय तिलकेशं स ययाचे वरकन्यकां । नैमित्तकाज्ञया दत्ता सगराय तु तेन सा ॥ ७८ ॥
युद्धं सुलोचनस्योग्रं यावत्पूर्णघनस्य च । गृहीत्वा भगिनीं तावत्सहस्रनयनोगमत् ॥ ७९ ॥
निषूद्य च सुनेत्रं स पुरं पूर्णघनोविशत् । अदृष्ट्वा च स तां कन्यां स्वपुरं पुनरागतः ॥ ८० ॥
ततः पितृवधात्क्रुद्धः सहस्रनयनो बलः । अरण्ये शरभाक्रांते स्थितः छिद्रेक्षणादृतः ॥ ८१ ॥
ततश्चक्रधरोऽश्वेन हृतस्तं देशमागतः । दिष्ट्या चोत्पलमत्यासौ दृष्ट्वा भ्रात्रे निवेदितः ॥ ८२ ॥
तुष्टेन तेन सा तस्मै दत्ता सगरचक्रिणे । चक्रिणाप्ययमानीतो विद्याधरमहीशतां ॥ ८३ ॥
स्त्रीरत्नं तदसौ लब्ध्वा परं तोषमुपागतः । षट्खंडाधिपतिः सर्वैः पार्थिवैः कृतशासनः ॥ ८४ ॥
प्राप्तविद्याभृदैश्येन पुरं पौर्णघनं ततः । रुद्धं सहस्रनेत्रेण प्राकारेणेव सर्वतः ॥ ८५ ॥
ततो महति संग्रामे प्रवृत्ते जनसंक्षये । नीतः सहस्रनेत्रेण पूर्णमेघः परासुतां ॥ ८६ ॥
पुत्रः पूर्णघनस्याथ नाम्ना तोयदवाहनः । परैरुद्वासितश्चक्रवालाद्भ्राम्यन्नभोंगणे ॥ ८७ ॥
खेचरैर्बहुभिः क्रुद्धैरुनुयातः सदुःखितः । अजितं शरणं यातस्त्रैलोक्यसुखकारणं ॥ ८८ ॥
ततो वज्रधरेणासौ पृष्टस्त्रासककारणं । अब्रवीत्सगरं प्राप्य मम बंधुः क्षयं कृतः ॥ ८९ ॥
अस्मत्पित्रोरभूद्वैरं नैकजीवविनाशनं । तेनानुबंधदोषेण नितांतक्रूरचेतसा ॥ ९० ॥

सहस्रनयनेनाहं त्रासितः शत्रुणा भृशं । हंसैः समं समुत्पत्य प्रासादादागतो द्रुतं ॥ ९१ ॥
ततो जिनसमीपे तं गृहीतुमसहैर्नृपैः । निवेदिते सहस्राक्षः संप्रतस्थे स्वयं रुषा ॥ ९२ ॥
कोपरेस्ति मदुद्वीर्यो येनासौ परिरक्ष्यते । इति संचिंतयन् प्राप्तो जिनस्य धरणीमसौ ॥ ९३ ॥
प्रभामंडलमेवासौ दृष्ट्वा दूरे जिनोद्भवम् । सर्वं गर्वं परित्यज्य प्रणनामाजितं विभुं ॥ ९४ ॥
जिनपादसमीपे तौ मुक्तवैरौ ततः स्थितौ । तत्पित्रोश्चरितं पृष्टो गणिना च जिनाधिपः ॥९५॥
इदं प्रोवाच भगवान् जंबूद्वीपस्य भारते । पुरे सदत्तुसंज्ञाके भावनो नाम वाणिजः ॥ ९६ ॥
आतकीर्त्यंगना तस्य हरिदासश्च तत्सुतः । चतुःकोटीश्वरो भूत्वा यात्रोद्युक्तः स भावनः ॥९७॥
पुत्राय सकलं द्रव्यं न्यासत्वेन समर्पयन् । द्यूतादिवर्जनार्थं च शिक्षामस्मै ददौ परं ॥ ९८ ॥
सहेतुसर्वदोषेभ्यः उपदिश्य निवर्तनं । पुत्राय वणिजो यातः पोतेन धनतृष्णया ॥ ९९ ॥
उपचारेण वेश्याया मासया द्यूतमंडले । सुरायामभिमानेन चतुःकोट्योपि नाशिताः ॥ १०० ॥
यदासौ निर्जितो द्यूते तदा राज्ञो गृहं गतः । हरिदासो दुराचारो द्रविणार्थं सुरंगया ॥ १०१ ॥
आनीयासौ ततो द्रव्यं क्रियाः सर्वाश्चकार सः । भावनोन्यदा गेहमागतो नेक्षते सुतं ॥१०२॥
हरिदासः गतः क्वेति तेन पृष्टा कुटुंबिनी । साऽवोचदनया यातश्चौर्यार्थं च सुरंगया ॥१०३॥

ततौसौ तस्य मरणं शंकमानः सुरंगया । प्रस्थितश्चौर्यशांत्यर्थं गृहाभ्यंतरदत्तया ॥ १०४ ॥
आगच्छता च पुत्रेण कोपि वैरी ममेत्यसौ । मंडलाग्रेण पापेन वराको विनिपातितः ॥ १०५ ॥
विज्ञातोसौ ततस्तेन नखस्मश्रुसटादिभिः । स्पृष्ट्वा मम पितेत्येष प्राप्तो दुःखं च दुस्सहं ॥१०६॥
जनकस्य ततो मृत्युं कृत्वा सोऽभयविद्रुतः । पर्यटन्दुःखतो देशान् यातः कालेन पंचतां॥१०७॥
कौलेयकौ श्रृगालौ च वृषदंशौ वृषौ तथा । नकुलौ महिषावेतौ जातौ च वृषभौ पुनः ॥१०८॥
अन्योन्यस्य ततो घातं कृत्वा तौ भवसंकटे । विदेहे पुष्कलावत्यां मनुष्यत्वमुपागतौ ॥ १०९ ॥
उग्रं कृत्वा तपस्तस्मिन्नुत्तरानुत्तराद्वयौ । गत्वा सतारमायातौ जनकौ भवतोरिमौ ॥ ११० ॥
योसौ भावननामासीज्जातोसौ पूर्णतोयदः । आसीत्तस्य तु यः पुत्रः संजातः स सुलोचनः १११
पित्रोरेवं परिज्ञाय भवदुःखविवर्तनं । भजतः शममुज्झित्वा वैरं संसारकारणं ॥ ११२ ॥
चक्रवर्ती ततोपृच्छदेतयोः पूर्वजन्मनि । वैरकारणमेवं च भाषितं धर्मचक्रिणा ॥ ११३ ॥
जंबूद्वीपस्य भरते पुरे पद्मकनामनि । शंखिकोरंभनामासीद्विषये प्रथितो धनी ॥ ११४ ॥
शश्यावलिसमाह्वानौ तस्य मैत्रीसमन्वितौ । शिष्यावत्यंतविख्यातौ धनवंतौ गुणोत्कटौ ॥११५॥
माभूदाभ्यां ममोद्धर्तः संहताभ्यामिति द्रुतं । तयो संभेदमकरोन्नयशास्त्रविचक्षणः ॥ ११६ ॥

गोपालकेन सन्मंत्र्य शशी मूल्यार्थमन्यदा । चिक्रीषुर्गां गृहं यावदायातो निजलीलया ॥११७॥
क्रीत्वा देवनियोगात्तामागच्छन्नावली पुरं । गच्छता शशिना क्रोधान्निहतो म्लेच्छतामितः ११८
मृतः शशी बलीवर्दो जातो म्लेच्छेन तेन च । हत्वा वैरानुबंधेन भक्ष्यतामुपपादितः ॥ ११९ ॥
तिर्यग्नरकपांथः सन्म्लेच्छो मूषकतां गतः । अभूच्छश्यपि मार्जारस्तेन हत्वा स भक्षितः॥१२०॥
पापकर्मनियोगेन प्राप्तौ नरकभूमिषु । प्राप्यते सुमहद्दुःखं जंतुभिर्भवसागरे ॥ १२१ ॥
भूयः संसृत्य काश्यां तौ दासौ जातौ सहोदरौ । दास्याः संभ्रमदेवस्य कूटकार्पटिकाह्वयौ १२२
जिनवेश्मनि तौ तेन नियुक्तौ प्रेत्यपुण्यतः । रूपानंदसुरूपश्च जातौ भूतगणाधिपौ ॥ १२३ ॥
शशिपूर्वोरजोवाल्यां च्युत्वाभूत्कुलपुत्रकः । कुलंधरो परः पुष्पभूतिः पुत्रः पुरोधसः ॥ १२४ ॥
मित्रौ तौ सैरिकास्यार्थे प्राप्तौ वैरं ततः स्थितौ । पुष्यभूतिं ततो हंतुं प्रावर्तत कुलंधरः ॥१२५॥
वृक्षमूलस्थसाधोश्च धर्मंश्रुत्वा प्रशांतवान् । राज्ञा परीक्षितश्चाभूत्सामंतः पुण्ययोगतः ॥ १२६ ॥
पुष्पभूतिरिमं दृष्ट्वा धर्माद्विभवमागतं । जैनो भूत्वा मृतो जातस्तृतीये सुरविष्टपे ॥ १२७ ॥
कुलंधरोपि तत्रैव च्युतौ तौ मंदरावरे । विदेहे धातकीखंडे जयावत्यामरिंजये ॥ १२८ ॥
सहस्राशिरसो भृत्यौ क्रूरामरधनश्रुती । जातावत्यंतविक्रांतावतरंगौ सुविश्रुतौ ॥ १२९ ॥

अन्यदैषः समं ताभ्यां बद्धुं प्रातिष्ठत द्विषं । प्रीतिमैक्षिष्ट सत्त्वानां जन्मनैव विरोधिनां ॥१३०॥
शमिनोमी कथं व्याला इति विस्मयमागतः । अविशत्स महारण्यमपश्यच्च महामुनिं ॥ १३१ ॥
ततो राजा समं ताभ्यां तस्य केवलिनोंतिके । प्रव्रज्य निर्वृतिं प्रापच्छतारं तु गताविमौ॥१३२॥
शशिपूर्वस्ततश्च्युत्वा जातोयं मेघवाहनः । आवली तु सहस्राक्षो वैरं तेनानयोरिदं ॥ १३३ ॥
प्रीतिर्ममाधिका कस्मात्सहस्रनयने विभो । इति पृष्ठो जिनोवोचत्सगरेण ततः पुनः ॥ १३४ ॥
भिक्षादानेन साधूनां रंभोमरकुरंगतः । सौधर्मे च ततश्च्युत्वा जातश्चंद्रपुरे हरेः ॥ १३५ ॥
नरेंद्रस्य धरादेव्यां दयितव्रतकीर्तनः । श्रामण्यान्नाकमारुह्य विदेहेत्ववरे च्युतः ॥ १३६ ॥
महाघोषेण चंद्रिण्यामुत्पन्नो रत्नसंचये । पयोबलो मुनीभूय प्राणतं कल्पमाश्रितः ॥ १३७ ॥
प्रच्युत्य भरते जातो नगरे पृथिवीपुरे । यशोधरनरेंद्रेण जयायां जयकीर्तनः ॥ १३८ ॥
प्रव्रज्य च पितुः पार्श्वे मृत्वा विजयमाश्रितः । च्युत्वा ततो भवान् जातः सगरश्चक्रलांच्छनः ॥
रंभस्य भवतो यस्मादावली दयितोभवत् । तत्पूर्वोयं प्रियोद्यापि सहस्राक्षस्ततस्तव ॥ १४० ॥
अवगम्य जिनेंद्रास्यादात्मपित्रोर्भवांतरं । उत्पन्नो धर्मसंवेगस्तयोरत्यंतमुन्नतः ॥ १४१ ॥
महतो धर्मसंवेगाज्जातौ जातिस्मृतौ ततः । श्रद्धावंतौ समारब्धौ स्तोतुं तावजितं जिनं ॥१४२॥

वालिशानामनाथानां सत्त्वानां कारणाद्विना । उपकारं करोषि त्वं आश्चर्यं किमतः परं ॥१४३॥
उपमामुक्तरूपस्य वीर्येणाप्रमितस्य ते । निरीक्षणेन कस्तृप्तो विद्यतेस्मिन् जगत्त्रये ॥ १४४ ॥
लब्धार्थः कृतकृत्योपि सर्वदर्शी सुखात्मकः । अचिंत्यो ज्ञातविज्ञेयस्तथापि जगते हितः ॥१४५॥
सारधर्मोपदेशाख्यं जीवानां त्वं जिनोत्तम । पततां भवपाताले हस्तालंबं प्रयच्छसि ॥ १४६ ॥
इति तौ गद्गदालापौ वाष्पविप्लुतलोचनौ । परमं हर्षमायातौ प्रणम्य विधिवत्स्थितौ ॥ १४७ ॥
शक्राद्या देववृषभाः सगराद्या नृपाधिपाः । साधवः सिंहवीर्याद्या ययुः परममद्भुतं ॥ १४८ ॥
सदस्यथ जिनेंद्रस्य रक्षसामधिपाविदं । ऊचतुर्वचनं भीमसुभीमाविति विश्रुतौ ॥ १४९ ॥
खेचरार्भक धन्योसि यस्त्वं शरणमागतः । सर्वज्ञमजितं नाथं तुष्टावावामतस्तव ॥ १५० ॥
शृणु संप्रति ते स्वास्थ्यं यथा भवति सर्वतः । तं प्रकारं प्रवक्ष्यावः पालनीयस्त्वमावयोः १५१
संत्यत्र लवणांभोधावत्युग्रग्राहसंकटे । अत्यंतदुर्गमारम्या मही द्वीपा सहस्रशः ॥ १५२ ॥
क्वचित्क्रीडंति गंधर्वाः किन्नराणां क्वचिद्गणाः । क्वचिच्च यक्षसंघाताःक्वचित्किंपुरुषामराः ॥१५३॥
तत्रमध्येस्ति सद्द्वीपो रक्षसां क्रीडनः शुभः । योजनानां शतान्येषः सर्वतः सप्त कीर्तितः॥१५४॥
तन्मध्ये मेरुवद्भाति त्रिकूटाख्यो महागिरिः । अत्यंतदुःप्रवेशो यः शरणः सद्गुहागृहैः ॥१५५॥

शिखरं तस्य शैलेंद्रचूडाकारं मनोहरं । योजनानि नवोत्तुंगं पंचाशद्विपुलत्वतः ॥ १५६ ॥
नानारत्नप्रभाजालच्छन्नहेममहातटं । चित्रवल्लीपरिष्वक्तकल्पद्रुमसमाकुलं ॥ १५७ ॥
त्रिंशद्योजनमानाधः सर्वतस्तस्य राक्षसी । लंकेति नगरी भाति रत्नजांबूनदालया ॥ १५८ ॥
मनोहारिभिरुद्यानैः सरोभिश्च सवारिजैः । महद्भिश्चैत्यगेहैश्च सा महेंद्रपुरीसमा ॥ १५९ ॥
गच्छतां दक्षिणाशायां मंडनत्वमुपागतां । समं बांधववर्गेण विद्याधर सुखी भव ॥ १६० ॥
एवमुक्त्वा ददावस्मै हारं राक्षसपुंगवः । देवताधिष्ठितं ज्योत्स्नां कुर्वाणं करकोटिभिः ॥ १६१ ॥
जन्मांतरसुतप्रीत्या भीमश्चैवं तमब्रवीत् । हारोयं तेंत्यदेहस्य युगश्रेष्ठस्य चोदितः ॥ १६२ ॥
धरण्यतर्गतं चान्यद्दत्तं स्वाभाविकं पुरं । विस्तीर्णभरतार्द्धार्द्धमधः षड्योजनीगतं ॥ १६३ ॥
दुःप्रवेशमरातीनां मनसापि महद्गृहं । अलंकारो दयाभिख्यं स्वर्गतुल्यमभिख्यया ॥ १६४ ॥
परचक्रसमाक्रांतः कदाचिच्चेद्भवेरसि । आश्रित्य तत्तदा तिष्ठेरहस्यं वंशसंततेः ॥ १६५ ॥
इत्युक्तो राक्षसेशाभ्यां प्राप पूर्णघनात्मजः । प्रमोदं परमं देवं प्रणनाम च सोऽजितं ॥ १६६ ॥
लब्ध्वा च राक्षसीं विद्यां आरुह्येप्सितगत्वरं । विमानं कामगं नाम प्रस्थितस्तां पुरीमसौ ॥१६७॥
ज्ञात्वा लब्धवरं चैतं रक्षोभ्यां सर्वबांधवाः । याता विकाशमंभोजसंघा इव दिवानने ॥ १६८ ॥

विमलामलकांत्याद्या विद्याभाजस्तमृद्धिभिः । सुप्रीता शीघ्रमायाता नंदयंतः सुभाषितैः ॥१६९॥
वेष्टितोसौ ततस्तुष्टैः पार्श्वतः पृष्टतोग्रतः । कैश्चिद्द्विरदपृष्टस्थैः कैश्चित्तुरगयायिभिः ॥ १७० ॥
जयशब्दकृतारावैः प्राप्तदुंदुभिनिःस्वनैः । श्वेतच्छत्रकृतच्छायैर्ध्वजमालाविभूषितैः ॥ १७१ ॥
विद्याधराणां संघातैः कृताशीर्नमनक्रियाः । गच्छन्नभस्तले पश्यंल्लवणार्णवमाकुलं ॥ १७२ ॥
आकाशमिव विस्तीर्णं पातालमिव निस्तलं । तमालवनसंकाशं ऊर्मिमालासमाकुलं ॥ १७३ ॥
अयं जलगतः शैलो ग्राहोयं प्रकटो महान् । चलितोयं महामीनः समीपैरिति भाषितः ॥१७४॥
त्रिकूटशिखराधस्तान्महाप्राकारगोपुरं । संध्यामिव विलंपंतीं छायया रुणया नभः ॥ १७५ ॥
कुंदशुभ्रैः समुत्तुंगैः वैजयंत्युपशोभितैः । मंडितां चैत्यसंघातैः सप्राकारैः सतोरणैः ॥ १७६ ॥
प्रविष्टो नगरीं लंकां प्रविश्य च जिनालयं । वंदित्वा स्वोचितागारमध्युवास समंगलं ॥ १७७ ॥
इतरेपि यथासन्न निविष्टास्तस्य बांधवाः । रत्नशोभासमाकृष्टमनोनयनपंक्तयः ॥ १७८ ॥
अथ किंनरगीताख्ये पुरे रतिमयूखतः । अनुमत्यां समुत्पन्नां सुप्रभानामकन्यकां ॥ १७९ ॥
चक्षुर्मानसयोश्चौरीं वसतिं पुष्पधन्वनः । कौमुदीं श्रीकुमुद्वत्यां लावण्यजलदीर्घिकां ॥ १८० ॥
संपदा परयोवाह भूषणानां विभूषणीं । हृषीकाणामशेषाणां प्रमोदस्य विधायिकां ॥ विशेषकम् ॥

ततः खेचरलोकेन मस्तकोपात्तशासनः । पुरंदर इव स्वर्गे तत्रासाववसच्चिरं ॥ १८२ ॥
अथ तस्याभवत्पुत्रः पुत्रजन्माभिकांक्षिणः । महारक्ष इति ख्यातिं योगतः कौलदेवतां ॥१८३॥
वंदनायान्यदा यातोजितं तोयदवाहनः । वंदित्वा च निजस्थाने स्थितो विनयसन्नतः ॥१८४॥
तावदन्यकथाच्छेदे प्रणम्य सगरोऽजितं । पृच्छतीदं शिरः कृत्वा पाणिपंकजदंतुरं ॥ १८५ ॥
भगवन्नवसर्पिण्यां भवद्विधजिनेश्वराः । स्वामिनो धर्मचक्रस्य भविष्यंत्यपरे कति ॥ १८६ ॥
कति वा समतिक्रांता जगत्त्रयसुखप्रदा । भवद्विधनरोत्पत्तिराश्चर्यं भुवनत्रये ॥ १८७ ॥
कति वा रत्नचक्रांका लक्ष्मीभाजः प्रकीर्तिताः । हलिनो वासुदेवाश्च कियंतस्तद्विषस्तथा ॥१८८॥
एवं पृष्टो जिनो वाक्यमुवाच सुरदुंदुभेः । तिरस्कुर्वन्महाध्वानं जनितश्रवणोत्सवं ॥ १८९ ॥
भाषार्द्धमागधी तस्य भाषमाणस्य नाधरौ । चकार स्पंदसंयुक्तावहो चित्रमिदं परं ॥ १९० ॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्धर्मतीर्थप्रवर्तिनः । चतुर्विंशतिसंख्यानाः प्रत्येकं सगरोदिताः ॥ १९१ ॥
मोहांधध्वांतसंछन्नं कृत्स्नमासीदिदं जगत् । धर्मसंचेतनामुक्तं निष्पाखंडमराजकं ॥ १९२ ॥
यदा तदा समुत्पन्नो नाभेयो जिनपुंगवः । राजन् तेन कृतः पूर्वः कालः कृतयुगाभिधः॥१९३॥
कल्पिताश्च त्रयो वर्णाः क्रियाभेदविधानतः । शस्यानां च समुत्पत्तिर्नायते कल्पतोयतः॥१९४॥

सृष्टाः काले च तस्यैव माहनाः सूत्रधारिणः । सुतेन भरताख्येन तस्य तत्समतेजसा ॥ १९५ ॥
आश्रमश्च समुत्पन्नाः सागारेतरभेदतः । विज्ञानानि कलाश्चैव नाभेयेनैव देशिताः ॥ १९६ ॥
दीक्षामास्थाय तेनैव जन्मदुःखानलाहताः । भव्याः कृतात्मकृत्येन नीताः सौख्यं शमांबुना १९७
त्रैलोक्यमपि संभूय यस्यौपम्यादपेयुषां । गुणानामशकं गंतुमंतमात्मसमुद्यतेः ॥ १९८ ॥
अष्टापदनगारूढो यः शरीरविसृष्टये । दृष्टः सुरासुरैर्हेमकूटाकारः सविस्मयैः ॥ १९९ ॥
शरणं प्राप्य तं नाथं मुनयो भरतादयः । महाव्रतधरा याताः पदं सिद्धेः समाश्रिताः ॥ २०० ॥
पुण्यं केचिदुपादाय स्वर्गसौख्यमुपागताः । स्वभावार्जवसंपन्नाः केचिन्मानुष्यकं परं ॥ २०१ ॥
नितांतोज्ज्वलमप्यन्ये ददृशुस्तस्य नो मतं । कुदृष्टिरागसंयुक्ताः कौशिका इव भास्करं ॥२०२॥
ते कुधर्मं समास्थाय कुदेवत्वं प्रपद्य च । पुनस्तिर्यक्षु दुश्चेष्टा भ्रमंति नरकेषु च ॥ २०३ ॥
अनेकेत्र ततोतीते काले रत्नालयोपमे । नाभेययुगविच्छेदे जाते नष्टसमुत्सवे ॥ २०४ ॥
अवतीर्य दिवो मूर्ध्नः कर्तुं कृतयुगं पुनः । उद्भूतोसि हिताधार्या जगतामजितो जिनः॥२०५॥
आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च संपदा । धर्मे ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयंते जिनोत्तमाः ॥ २०६ ॥
ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बांधवमुत्तमं । प्रपद्यंते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः ॥ २०७ ॥

ततो मयि गते मोक्षमुत्पत्स्यंते जिनाधिपाः । द्वाविंशति क्रमादन्ये त्रिलोकोद्योतकारिणः २०८
ते च मत्सदृशाः सर्वे कांतिवीर्यादिभूषिताः । त्रैलोक्यपूजनप्राप्तेर्ज्ञानदर्शनरूपतः ॥ २०९ ॥
चक्रांकितां श्रियं भुक्त्वा तेषां मध्ये त्रयो जिनाः । प्राप्स्यंति ज्ञातसाम्राज्यमनंतसुखकारणं २१०
तेषां नामानि सर्वेषां मंगलानि जगत्त्रये । महात्मनामहं वक्ष्ये मनःशुद्धिकराणि ते ॥ २११ ॥
ऋषभो वृषभः पुंसामतीतः प्रथमो जिनः । वर्तमानोजितश्चाहं परिशेषा सु भाविनः ॥ २१२ ॥
संभवः संभवो मुक्तेः भव्यानंद्यभिनंदनः । सुमतिः पद्मतेजाश्च सुपार्श्वश्चंद्रसन्निभः ॥ २१३ ॥
पुष्पदंतोष्टकर्मांतः शीतलः शीलसागरः । श्रेयान् श्रेयान्सुचेष्टासु वासुपूज्योर्चितः सतां ॥२१४॥
विमलानंतधर्माश्च शांतिकुंथ्वरकीर्तिताः । मल्लिसुव्रतनामानौ नमिनेमी च विश्रुतौ ॥ २१५ ॥
पार्श्वो वीरजिनेंद्रश्च जिनशैली धुरंधरः । देवाधिदेवता एते जीवस्वात्मव्यवस्थिताः ॥ २१६ ॥
जन्मावतारः सर्वेषां रत्नवृष्ट्याभिनंदितः । मेरौ जन्माभिषेकश्च सुरैः क्षीरोदवारिणा ॥ २१७ ॥
उपमानविनिर्मुक्तं तेजोरूपं सुखं बलं । सर्वे जन्मरिपोर्लोके विध्वंसनविधायिनः ॥ २१८ ॥
अस्तं याते महावीरजिनतिग्मांशुमालिनि । लोके पाखंडखद्योतास्तेजः प्राप्स्यंति भूरयः ॥२१९॥
चतुर्गतिकसंसारकूपे ते पतिताः स्वयं । पातयिष्यंति मोहांधानन्यानप्यसुधारिणः ॥ २२० ॥

एकस्त्वत्सदृशोऽतीतश्चक्रचिन्हश्रियःपतिः । भवानेको महावीर्यो जनिष्यंति दशापरे ॥ २२१ ॥
प्रथमो भरतोतीतस्सगरस्त्वं च वर्तते । चक्रलांच्छितभोगेशा भविष्यंति परे नृपाः ॥ २२२ ॥
सनत्कुमारविख्यातिर्मघवा नामतो परः । शांतिकुंथ्वरनामानः सुभूमध्वनिकीर्तितः ॥ २२३ ॥
महापद्मः प्रसिद्धश्च हरिषेणध्वनिस्तथा । जयसेननृपश्चान्यो ब्रह्मदत्तो भविष्यति ॥ २२४ ॥
वासुदेवा भविष्यंति नव सार्द्धं प्रतीश्वरैः । बलदेवाश्च तावंतो धर्मविन्यस्तचेतसः ॥ २२५ ॥
प्रोक्ता ऐतेवसर्पिण्यां जिनप्रभृतयस्तथा । तथैवोत्सर्पिणीकाले भरतैरावताख्ययोः ॥ २२६ ॥
एवं कर्मवशं श्रुत्वा जीवानां भवसकटं । महापुरुषभूतिं च कालस्य च विवर्तनं ॥ २२७ ॥
अष्टकर्मविमुक्तानां सुखं चोपमयोज्झितं । जीमूतवाहनश्चक्रे चेतसीदं विचक्षणः ॥ २२८ ॥
कष्टं यैरेव जीवोयं कर्मभिः परितप्यते । तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहितः कर्ममायया ॥ २२९ ॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद्दुःखदायिषु । विषयेषु रतिः का वा दुःखोत्पादनवृत्तिषु ॥ २३० ॥
कृत्वापि हि चिरं संगं धने कांतासु बंधुषु । एकाकिनैव कर्तव्यं संसारे परिवर्तनं ॥ २३१ ॥
तावदेव जनः सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते । दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा ॥ २३२ ॥
इयता चापि कालेन को गतः सह बंधुभिः । परलोकं कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बांधवेन वा ॥ २३३ ॥

नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः । तेषु कुर्यान्नरः संगं को वा यः स्यात्सचेतनः २३४
अहो परमिदं चित्रं सद्भावेन पदाश्रितान् । लक्ष्मी प्रतारयत्येव दुष्टत्वं किमतः परं ॥ २३५ ॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद्बंधुसमागमः । इंद्रचापसमानं च क्षणमात्रं च तैः सुखं ॥ २३६ ॥
जलबुद्बुदवत्कायः सारेण परिवर्जितः । विद्युल्लताविलासेन सदृशं जीवितं चलं ॥ २३७ ॥
तस्मात्सर्वमिदं हित्वा संसारावासकारणं । सहायं परिगृह्णामि धर्ममव्यभिचारिणं ॥ २३८ ॥
महारक्षसि निक्षिप्य राज्यभारं ततः कृती । प्राव्रजत्सोजितस्यांते महावैराग्यकंकटः ॥ २३९ ॥
दशाधिकं शतं तेन साकं खेचरभोगिनां । निर्वेदमाप्य निष्क्रांतं गेहचारकवासतः ॥ २४० ॥
महारक्षः शशांकोपि विश्राणनकरोत्करैः । पूरयन्बांधवांभोधिं रेजे लंकानभोंगणे ॥ २४१ ॥
प्राप्य स्वप्नेपि तस्याज्ञां महाविद्याधराधिपाः । संभ्रमाद्बोधमायांति कृतमस्तकपाणयः ॥२४२॥
प्रथिता विमलाभस्य जाता प्राणसमप्रिया । यस्यानुवर्तनं चक्रे छायैव सततानुगा ॥ २४३ ॥
अमरोदधिभानुभ्य परां रक्षःश्रुतिं श्रिता । तस्य तस्यां समुत्पन्नाः पुत्रा सर्वार्थसम्मिताः ॥२४४॥
विचित्र कर्मसंपूर्णाः तुंगा विस्तारभाजिनः । प्रसिद्धास्तस्य ते पुत्रास्त्रयो लोका इवाभवन्॥२४५॥
प्रवृत्याजितनाथोपि भव्यानां मुक्तिगामिनां । पंथानं प्राप्य सम्मेदे निजां प्रकृतिमात्मनः २४६

सगरस्य च पत्नीनां सहस्राणां षडुत्तराः । नवतिः शक्रपत्नीनामभवन् तुल्यतेजसां ॥ २४७ ॥
सुपुत्राणां च पुत्राणां बिभ्रतां शक्तिमुत्तमां । जाताः षष्टिसहस्राणां रत्नस्तंभसमन्विषां ॥२४८॥
ते कदाचिदथो याताः कैलाशं वंदनार्थिनः । कंपयतां पदन्यासैर्वसुधां पर्वता इव ॥ २४९ ॥
विधाय सिद्धबिंबानां वंदनां प्रश्रयान्विताः । गिरेस्ते दंडरत्नेन परिक्षेपं प्रचक्रिरे ॥ २५० ॥
आरसातलमूलांतां दृष्ट्वा खातां वसुधरां । तेषामालोचनं चक्रे नागेंद्रः क्रोधदीपितः ॥ २५१ ॥
क्रोधवन्हेस्ततस्तस्य ज्वालाभिर्लीढविग्रहाः । भस्मसाद्भावमायाताः सुतास्ते चक्रवर्तिनः ॥२५२॥
तेषां मध्ये न दग्धौ द्वौ कथमप्यनुकंपया । जीवितात्मकया शक्त्या विषतो जातया यथा॥२५३॥
सागरीणामिमं मृत्युं दृष्ट्वा युगपदागतं । दुःखितौ सगरस्यांतं यातौ भीमभगीरथौ ॥ २५४ ॥
अकस्मात्कथितेनायं प्राणांस्त्याक्षीत्क्षणादिति । पंडितैरिति संचित्य निषिद्धौ तौ निवेदने॥२५५॥
ततः संभूय राजानो मंत्रिणश्च कुलागताः । नानाशास्त्रविबुद्धाश्च विनोदज्ञा मनीषिणः ॥ २५६ ॥
अविभिन्नमुखच्छायाः पूर्ववेषसमन्विताः । विनयेन यथा पूर्वं सगरं समुपागताः ॥ २५७ ॥
नमस्कृत्योपविष्टैस्तैर्यथास्थानं प्रचोदितां । संज्ञया प्रवयाः कश्चिदिदं वचनमब्रवीत् ॥ २५८ ॥
राजन् सगर पश्य त्वं जगतीमामनित्यतां । संसारं प्रति यां दृष्ट्वा मानसं न प्रवर्तते ॥ २५९ ॥

राजासीद्भरतो नाम्ना त्वया समपराक्रमः । दासीव येन षट्खंडा कृता वश्या वसुंधरा ॥ २६० ॥
तस्यादित्ययशाः पुत्रो बभूवोन्नतविक्रमः । प्रसिद्धो यस्य नाम्नायं वंशः संप्रति वर्तते ॥ २६१ ॥
एवं तस्याप्यभूत्पुत्रस्तस्याप्यन्योपरस्ततः । गतास्ते चाधुना सर्वे दर्शनानामगोचरं ॥ २६२ ॥
आसतां तावदेते वा नाकलोकेश्वरा अपि । ज्वलिता विभवैर्याताः क्षणाद्दुःखेन भस्मतां॥२६३॥
येपि तीर्थकरा नाम त्रैलोक्यस्याभिनंदकाः । शरीरं तेपि संत्यज्य गच्छंत्यायुःपरिक्षये ॥२६४॥
महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनीं पुनः । प्रभाते प्रतिपद्यंते ककुभो दश पक्षिणः ॥ २६५ ॥
एवं कुटुंब एकस्मिन् संगमं प्राप्य जंतवः । पुनः स्वां स्वां प्रपद्यंते गतिं कर्मवशानुगाः ॥२६६॥
कैश्चित्तच्चेष्टितं तेषां वपुश्चात्यंतशोभनं । विषयीकृतमक्षिभ्यामस्माकं तु कथागतं ॥ २६७ ॥
बलवद्भ्यो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः । आनीता निधनं येन बलवंतो बलीयसा ॥ २६८ ॥
कथं स्फुटति नो वक्षः स्मृत्वा तेषां महात्मनां । विनाशं भरतादीनामहो चित्रमिदं परं ॥२६९॥
फेनोर्मींद्रधनुःस्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभाः । संपदः प्रियसंपर्का विग्रहाश्च शरीरिणां ॥ २७० ॥
नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो व्रजेदुपमानतां । यथायममरस्तद्वद्वयं मृत्यूज्झिता इति ॥ २७१ ॥
येपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं ग्राहसंकुलं । कुर्युर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरं ॥ २७२ ॥

उद्धर्तुं धरणीं शक्ताः ग्रसितुं चंद्रभास्करा । प्रविष्टास्तेपि कालेन कृतांतबदनं नराः ॥ २७३ ॥
मृत्योर्दुर्लंघितस्यास्य त्रैलोक्ये वशतां गते । केवलं व्युच्छिताः सिद्धाः जिनधर्मसमुद्भवाः॥२७४॥
यथा ते बहवो याताः कालेन निधनं नृपाः । यास्यामो वयमप्येवं सामान्यं जगतामिदं ॥२७५॥
तत्र त्रिलोकसामान्ये वस्तुन्यस्मिन् समागते । शोकं कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणं २७६
कथायामिति जातायां वीक्ष्यापत्यद्वयं पुनः । मानसे चक्रवर्तीदं चकारेंगितकोविदः ॥ २७७ ॥
सर्वदा युगपत्सर्वे मां नमंति स्म देहजाः । अथ द्वौ दीनवदनौ नूनं शेषा गताः क्षयं ॥ २७८ ॥
एते चान्यापदेशेन कथयंति समागताः । नृपाः कथयितुं साक्षादुदारं दुःखमक्षमाः ॥ २७९ ॥
ततः शोकोरगेणासौ दष्टोपि न समत्यजत् । प्राणान् सभ्यवचोमंत्रैः प्रतिपद्य प्रतिक्रियां॥२८०॥
कदलीगर्भनिःसारमवेत्य भवजं सुखं । भगीरथे श्रियं न्यस्य दीक्षां स समशिश्रियत् ॥ २८१ ॥
त्यजतोस्य धरित्रीयं नगराकरमंडिता । मनस्युदात्तलीलस्य चरत्तृणसमाभवत् ॥ २८२ ॥
सार्द्धं भीमरथेनासौ प्रतिपद्याजितं विभुं । केवलज्ञानमुत्पाद्य सिद्धानां पदमाश्रयत् ॥ २८३ ॥
तनयः सागरेर्जन्होः कुर्वन् राज्यं भगीरथः । श्रुतसागरयोगीन्द्रं पृष्टवानेवमन्यदा ॥ २८४ ॥
पितामहस्य मे नाथ तनया युगपत्कुतः । कर्मणो मरणं प्राप्ता मध्ये तेषामहं तु न ॥ २८५ ॥

अवोचद्भगवान्संघो वंदनार्थं चतुर्विधः । सम्मेदं प्रस्थितोवापदंतिकग्रामदर्शनं ॥ २८६ ॥
दृष्ट्वा तमंतिकग्रामो दुर्वचाः सकलोऽहसत् । कुंभकारस्तु तत्रैको निषिध्य कृतवान् स्तुतिं॥२८७॥
तद्ग्रामवासिनैकेन कृते चौर्ये स भूभृता । परिवेष्ट्याखिलो दग्धो ग्रामो भूर्यपराधकः ॥ २८८ ॥
भस्मसाद्भावमापन्नो यस्मिन् ग्रामोत्र वासरे । कुंभकारो गतः क्वापि मध्यचेता निमंत्रितः २८९
कुंभकारोभवन्मृत्वा वाणिजः सुमहाधनः । वराटकसमूहस्तु ग्रामः प्राप्तश्च तेन सः ॥ २९० ॥
कुंभकारोभवद्राजा ग्रामोसौ मातृवाहकाः । हस्तिना चूर्णितास्तस्य ते चिरं भवमभ्रमन् ॥२९१॥
राजा च श्रमणो भूत्वा देवीभूय च्युतो भवान् । भगीरथः समुत्पन्नो ग्रामस्तु सगरांगजाः॥२९२॥
संघस्य निंदनं कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे । तेनासौ युगपद्ग्रामो जातःस्तुत्या त्वमीदृशः॥२९३॥
श्रुत्वा पूर्वभवानेवमुपशांतो भगीरथः । बभूव मुनिमुख्यश्च तपोयोग्यं पदं ययौ ॥ २९४ ॥
वृत्तांतागतमेतत्ते चरितं सगराश्रितं । कथितं प्रस्तुतं वक्ष्ये श्रृणु श्रेणिक सांप्रतं ॥ २९५ ॥
योऽसौ तत्र महारक्षो नाम विद्याधराधिपः । लंकायां कुरुते राज्यं कंटकैः परिवर्जितं ॥ २९६ ॥
सोन्यदा कमलच्छन्नदीर्घिकाकृतमंडनं । नानारत्नप्रभोत्तुंगक्रीडापर्वतकारितं ॥ २९७ ॥
आमोदिकुसुमोद्भासितरुखंडविराजितं । कलकूजितविभ्रांतशकुंतगणसंकुलं ॥ २९८ ॥

रत्नभूमिपरिक्षिप्तं विकाशिविविधद्युतिं । घनपल्लवसच्छायलतामंडपमंडितं ॥ २९९ ॥
अगमत्प्रमदोद्यानमंतःपुरसमन्वितः । महत्या संपदा युक्तो विद्याबलसमुच्छ्रयः ॥ ३०० ॥
तत्र क्रीडितुमारेभे वनिताभिरसौ समं । कुसुमैः ताड्यमानश्च ताडयंश्च यथोचितं ॥ ३०१ ॥
कांचित्पादप्रणामेन कुपितामीर्षया स्त्रियं । सांत्वयन्नन्ययातेन सांत्वमानः सुलीलया ॥ ३०२ ॥
उरसा प्रेरयन् कांचित्त्रिकूटतटशोभिना । पीवरस्तनरम्येण प्रेर्यमाणस्तथान्यया ॥ ३०३ ॥
पश्यन्प्रच्छन्नगात्राणि क्रीडाव्याकुलयोषितां । रतिसागरमध्यस्थो नंदनेऽमरराजवत् ॥ ३०४ ॥
अथ चक्रे त्रियामायाः परं संकोचमीयुषि । राजीवसंपुटे पश्यद्द्विरेफं स निपीडितं ॥ ३०५ ॥
दृष्ट्वा चास्य समुत्पन्ना चिंतेयं भवनाशिनी । कर्मणो मोहनीयस्य याते शिथिलतां गुणे ॥३०६॥
मकरंदरसासक्तो मूढस्तृप्तिमनागतः । मृतिं मधुकरः प्राप्तो धिगिच्छामंतवर्जितां ॥ ३०७ ॥
यथायमत्र संशक्तः प्राप्तो मृत्युं मधुव्रतः । प्राप्स्यामो वयमप्येवं शक्ताः स्त्रीमुखपंकजे ॥३०८॥
यदि तावदयं ध्वस्तो घ्राणेन रसनेन च । कैव वार्ता तदास्मासु पंचेंद्रियवशात्मसु ॥ ३०९ ॥
तिर्यग्जातिसमेतस्य युक्तं वास्येदमीहितुं । वयं तु ज्ञानसंपन्नाः संगमत्र कथं गताः ॥ ३१० ॥
मधुदग्धासिधारायां लेहने कीदृशं सुखं । रसनं प्रत्युतायाति शतधा यत्र खंडनं ॥ ३११ ॥

विषयेषु तथा सौख्यं कीदृशं नाम जायते । यत्र प्रत्युत दुःखानां उपर्युपरिसंततिः ॥ ३१२ ॥
किंपाकफलतुल्येभ्यो विषयेभ्यः पराङ्मुखाः । ये नरास्तान्नमस्यामि कायेन वचसा धिया ३१३
हा कष्टं वंचितः पापो दीर्घकालमहं खलैः । विषयैर्विषमासंगैर्विषवन्मारणात्मकैः ॥ ३१४ ॥
अथात्र समये प्राप्तस्तमुद्यानं महामुनिः । अर्थानुगतया युक्तः श्रुतसागरसंज्ञया ॥ ३१५ ॥
पूर्णः परमरूपेण ह्रेपयन् कांतितो विधुं । तिरस्कुर्वन् रविं दीप्त्या जयं स्थैर्येण मंदरं ॥ ३१६ ॥
धर्मध्यानप्रशक्तात्मा रागद्वेषविवर्जितः । भग्नस्त्रिदंडसंपर्कः कषायाणां समे रतः ॥ ३१७ ॥
वशीकर्ता हृषीकाणां षट्कायप्राणिवत्सलः । भीतिभिः सप्तभिर्मुक्तो मदाष्टकविवर्जितः ॥ ३१८ ॥
साक्षादिव शरीरेण धर्मसंबंधमागताः । सहितो यतिसंघेन महता चारुचेष्टिना ॥ ३१९ ॥
स तत्र विपुले शुद्धे भूतले जंतुवर्जिते । उपविष्टस्तनुच्छायास्थगिताशेषदिग्मुखः ॥ ३२० ॥
तत्रासीनं विदित्वैनं मुखेभ्यो वनरक्षिणां । अभीयाय महारक्षो विभ्रदुत्कंठितं मनः ॥ ३२१ ॥
अथास्यांघ्रिप्रसन्नास्यकांतितोयेन पादयोः । कुर्वन् प्रक्षालनं राजा पपात शिवदायिनोः ॥३२२॥
प्रणम्य शेषसंघं च पृष्ट्वा क्षेमं च धर्मगं । अवस्थाय क्षणं धर्मं पर्यपृच्छत्सभक्तितः ॥ ३२३ ॥
अथोपशमचंद्रस्य चित्तस्थस्येव निर्मलैः । दंतांशुपटलैः कुर्वन् ज्योत्स्नां मुनिरभाषत ॥ ३२४ ॥

अहिंसा नृप सद्भावो धर्मस्योक्तो जिनेश्वरैः । परिवारोस्तु शेषोस्य सत्यभाषादिरिष्यते ॥३२५॥
यां यां जीवाः प्रपद्यंते गतिं कर्मानुभावतः । तत्र तत्र रतिं यांति जीवनं प्रतिमोहितः ॥३२६॥
त्रैलोक्यं परित्यज्य लाभं मरणभीरवः । इच्छंति जीवनं जीवा नान्यदस्ति ततः प्रियं ॥३२७॥
किमत्र बहुनोक्तेन स्वसंवेद्यमिदं नतु । यथा स्वजीवितं कांतं सर्वेषां प्राणिनां तथा ॥ ३२८ ॥
तस्मादेवंविधं मूढा जीवितं ये शरीरिणां । हरंति रौद्रकर्माणः पाप तैर्न च किं कृतं ॥ ३२९ ॥
जंतूनां जीवितं नीत्वा कर्मभारगुरूकृताः । पतंति नरके जीवा लोहपिंडवदंभसि ॥ ३३० ॥
मधु श्रवंति ये वाचा हृदये विषदारुणाः । वशे स्थिता हृषीकाणां त्रिसंध्यादग्धमानसाः ॥३३१॥
साध्वाचारविनिर्मुक्ता यथाकामविधायिनः । ते भ्रमंति दुरात्मानस्तिर्थग्गर्भपरंपरां ॥ ३३२ ॥
दुर्लभं सति जंतुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणां तस्मादपि सुरूपत्वं ततो धनसमृद्धता ॥ ३३३ ॥
ततोप्यार्यत्वसंभूतिस्ततो विद्यासमागमः । ततोप्यर्थज्ञता तस्माद्दुर्लभो धर्मसंगमः ॥ ३३४ ॥
कृत्वा धर्मं ततः केचित्सुखं प्राप्य सुरालये । देव्यादिपरिवारेण कृतं मानसगोचरं ॥ ३३५ ॥
च्युत्वा गर्भगृहे भूयोविड्मूत्रकृतलेपने । चलत्कृमिकुलाकीर्णे दुर्गंधेत्यंतदुस्सहे ॥ ३३६ ॥
चर्मजालकसंछन्नाः पित्तश्लेष्मादिमध्यगाः । जनन्याहारनिस्पंदं लिहंतो नाडिकाच्युतं ॥३३७॥

पिंडीकृतसमस्तांगा दुःखभारसमार्दिताः । उषित्वा निर्गता लब्ध्वा मनुष्यत्वमनिंदितं ॥३३८॥
जन्मनः प्रभृति क्रूरा नियमाचारवर्जिताः । सद्दृष्टिरहिताः पापा विषयान्समुपासते ॥ ३३९ ॥
ये कामवशतां याताः सम्यक्त्वपरिवर्जिताः । प्राप्नुवंतो महादुःखं ते भ्रमंति भवार्णवे ॥३४०॥
परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः । हिंसायाः कारणं तद्धि सा च संसारकारणं ॥ ३४१ ॥
तथास्तेयं स्त्रियाः संगं महाद्रविणवांच्छनं । सर्वमेतत्परित्याज्यं पीडाकरणतां गतं ॥ ३४२ ॥
श्रुत्वा धर्मं समाविष्टो वैराग्यं खेचराधिपः । पप्रच्छ प्रणतिं कृत्वा व्यतीतं भवमात्मनः॥३४३॥
चतुर्ज्ञानोपगूढात्मा विनयेनोपसेदुषे । इति तस्मै समासेन जगाद श्रुतसागरः ॥ ३४४ ॥
भरते पोदनस्थाने हितो नाम नरोभवत् । माधवीति च भार्यास्य प्रीत्याख्यस्त्वं तयोः सुतः३४५
अथ तत्रैव नगरे नृपोऽभूदुदयाचलात् । अर्हच्छ्रियां समुत्पन्नो नाम्ना हेमरथो महान् ॥ ३४६ ॥
प्रासादे सोन्यदा जैने श्रद्धया परयान्वितः । चकार महतीं पूजां लोकविस्मयकारिणीं ॥३४७॥
तस्मादुत्थितमाकर्ण्य जयशब्दं जनैः कृतं । जयेत्यानंदपूर्णेन त्वयापि परिघोषितं ॥ ३४८ ॥
अमाते च ततस्तस्मिन् गृहाभ्यंतरतो मुदा । शिखिनेव घनध्वानान्नर्तनं कृतमंगणे ॥ ३४९ ॥
तस्मादुपात्तकुशलो गतः कालेन पंचतां । अजायत महान् यक्षो यक्षनेत्रसमुत्सवः ॥ ३५० ॥

अवरस्मिन् विदेहेथ पुरे कांचननामनि । साधूनां शत्रुभिः कर्तुमुपसर्गः प्रवर्तितः ॥ ३५१ ॥
निर्घाटय तान् त्वया शत्रून् मुनीनां धर्मसाधनं । शरीरं रक्षितं तस्मात्पुण्यराशिरुपार्जितः ३५२
विजयार्द्धे ततश्च्युत्वा तडिदंगदखेचरात् । श्रीप्रभायां समुद्भूत उदितो नाम विश्रुतः ॥ ३५३ ॥
वंदनाय समायातं नाम्ना चामरविक्रमं । दृष्टवानसिविद्येशं निदानमकरोत्ततः ॥ ३५४ ॥
ततो महत्तपस्तप्त्वा कल्पमैशानमुत्थितः । एष प्रच्युत्य भूतोसि सांप्रतं घानवाहनिः ॥ ३५५ ॥
भास्करस्यंदनस्येव चक्रेण परिवर्तनं । कृतं त्वया तु संसारे स्त्रीजिह्वावशवर्तिना ॥ ३५६ ॥
यावंतः समतिक्रांतास्तव देहा भवांतरे । पिंड्यंते यदि ते लोके संभवेयुर्न जातुचित् ॥ ३५७ ॥
कल्पानां कोटिभिस्तृप्तिं सुरभोगैर्न योगतः । खेचराणां च भोगेन स्वेच्छाकल्पितवृत्तिना ३५८
अष्टभिर्दिवसैः स त्वं कथं प्राप्स्यसि तर्पणं । स्वप्नजालोपमैर्भोगैरधुना भज्यतां शमः ॥३५९॥
ततस्तस्य विषादोऽभून्नायुःक्षयसमुत्थितः । किंतु संसारचक्रस्थजन्मांतरविवर्तनात् ॥ ३६० ॥
स्थापयित्वा ततो राज्ये तनयं देवरक्षसं । युवराजप्रतिष्ठायां तथा भास्कररक्षसं ॥ ३६१ ॥
त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं परमार्थपरायणः । स्तंभतुल्यो महारक्षलोभेनाभवदुज्झितः ॥ ३६२ ॥
पानाहारादिकं त्यक्त्वा सर्वं देहस्य पालनं । समः शत्रौ च मित्रे च मनः कृत्वा सुनिश्चलं॥३६३॥

मौनव्रतं समास्थाय जिनप्रासादमध्यगः । कृत्वा सुमहतीं पूजामर्हतामभिषेकिणीं ॥ ३६४ ॥
अर्हत्पदपरिध्यानपवित्रीकृतचेतनः । कृत्वा समाधिना कालं स बभूव सुरोत्तमः ॥ ३६५ ॥
अथ किंनरनादाख्ये पुरे श्रीधरनामतः । विद्याजातामरिंजायां देवरक्षः प्रपन्नवान् ॥ ३६६ ॥
गंधर्वगीतनगरे सुरसन्निभनामतः । गांधारी गर्भसंभूतां गंधर्वां भानुरूढवान् ॥ ३६७ ॥
सुता दश समुत्पन्ना मनोज्ञा देवरक्षसः । देवांगनासुरूपाश्च षट्कन्या गुणभूषणाः ॥ ३६८ ॥
तावंतएव चोत्पन्ना सुताःकन्याश्च तत्समाः । आदित्यरक्षसो राज्ञः कीर्तिंव्याप्तदिंगंतराः॥३६९॥
स्वनामसहनामानि महांति नगराणि तैः । निवेशितानि रम्याणि श्रेणिकैतानि जित्वरैः॥३७०॥
संध्याकारः सुवेलश्च मनोल्हादो मनोहरः । हंसद्वीपो हरिर्योधः समुद्रः कांचनस्तथा ॥ ३७१ ॥
अर्धस्वर्गोदिशश्चापि निवेशा स्वर्गसन्निभाः । गीर्वाणरक्षसः पुत्रैर्महाबुद्धिपराक्रमैः ॥ ३७२ ॥
आवर्तविघटांभोदा उत्कटस्फुटदुर्ग्रहाः । तटतोयावलीरत्नद्वीपाश्चाभांति राक्षसैः ॥ ३७३ ॥
नानारत्नकृतोद्योता हेमभित्तिप्रभा सुराः । राक्षसानां बभूवुस्ते निवासाः क्रीडनार्थिनां॥३७४॥
तत्रैव खेचरैरेभिर्द्वीपांतरसमाश्रितैः । सन्निवेशा महोत्साहैर्नगराणां प्रकल्पिताः ॥ ३७५ ॥
ततस्तौ पुत्रयोः राज्यं दत्वा दीक्षां समाश्रितौ । महातपोधनौ भूत्वा पदं यातौ सनातनं॥३७६॥

एवं महति संताने प्रवृत्ते यानवाहने । महापुरुषनिर्व्यूढराज्यप्राव्राज्यवस्तुनि ॥ ३७७ ॥
राक्षसस्तनयो जातो मनोवेगांगधारिणः । राक्षसो नाम यस्यायं नाम्ना वंशः प्रकीर्त्यते ॥३७८॥
तस्यादित्यगतिर्यातो वृहत्कीर्तिश्च नंदनः । योषायां सुप्रभाख्यायां रविचंद्रसमप्रभौ ॥ ३७९ ॥
वृषभौ तौ समासज्य राज्यस्यंदनजे भरे । श्रमणत्वं समाराध्य देवलोकं समाश्रितः ॥ ३८० ॥
जाता सदनपद्माख्या भार्यादित्यगतेर्वरा । वृहत्कीर्तेस्तथापुष्पनखेति परिकीर्तिता ॥ ३८१ ॥
अथादित्यगतेः पुत्रो नाम्ना भीमप्रभोऽभवत् । सहस्रं यस्य पत्नीनामभूद्देवांगनारुचां ॥ ३८२ ॥
आसीदष्टोत्तरं तस्य पुत्राणां शतमूर्जितं । स्तंभैरिव निजं राज्यं धारितं यैः समंततः ॥ ३८३ ॥
आत्मजाय ततो राज्यं वितीर्य ज्यायसे प्रभुः । भीमप्रभः प्रवव्राज प्राप्तश्च परमं पदं ॥ ३८४ ॥
देवेन राक्षसेंद्रेण राक्षसद्वीपमंडले । कृतानुकंपना ऊषुः सुखेनांवरगामिनः ॥ ३८५ ॥
रक्षंति रक्षसां द्वीपं पुण्येन परिरक्षिताः । राक्षसानामतो द्वीपं प्रसिद्धिं तदुपागतं ॥ ३८६ ॥
एष राक्षसवंशस्य संभवः परिकीर्तितः । वंशप्रधानपुरुषान्कीर्तियिष्याम्यतः परं ॥ ३८७ ॥
पुत्रो भीमप्रभस्याद्यः पूजार्हो नाम विश्रुतः । प्रवव्राज श्रियं न्यस्य तनये जितभास्करे ॥३८८॥
सोपि संपरिकीर्त्याख्ये स्थापयित्वा श्रियं सुते । प्राव्रजत्सोपि सुग्रीवे निधाय प्राप दीक्षणं ३८९

सुग्रीवोपि हरिग्रीवं सन्निवेश्य निजे पदे । उग्रं तपः समाराध्य बभूव सुरसत्तमः ॥ ३९० ॥
हरिग्रीवोपि निक्षिप्य श्रीग्रीवे राज्यसंपदं । गृहीतश्रमणाचारो वनांतरमशिश्रियत् ॥ ३९१ ॥
आरोप्य सुमुखे राज्यं श्रीग्रीवो जनकाश्रितं । मार्गमाश्रितवान् वीरः सुव्यक्ते सुमुखस्तथा ३९२
सुव्यक्तोमृतवेगाख्ये न्यस्तवान् राक्षसीं श्रियं । स चापि भानुगत्याह्वे स च चिंतागतौ सुते ३९३
इंद्र इंद्रप्रभो मेघो मृगारिदमनः पविः । इंद्रजिद्भानुवर्मा च भानुर्भानुसमप्रभः ॥ ३९४ ॥
सुरारिस्त्रिजटो भीमो मोहनोद्वारको रविः । चकारो वज्रमध्यश्च प्रमोदः सिंहविक्रमः ॥ ३९५ ॥
चामुंडो मारणो भीष्मो द्विपवाहोरिमर्दनः । निर्वाणभक्तिरुग्रश्रीरर्हद्भक्तिरनुत्तरः ॥ ३९६ ॥
गतभूमोनिलश्चंडो लंकाशोको मयूरवान् । महाबाहुर्मनोरम्यो भास्कराभो बृहद्गतिः ॥ ३९७ ॥
बृहत्कांतोरिसंत्रासश्चंद्रावर्तो महारवः । मेघध्वान ग्रहक्षोभ नक्षत्रदमनादयः ॥ ३९८ ॥
संख्यैवं कोटिशस्तेषां द्रष्टव्यांबरचारिणां । मायावीर्यसमेतानां विद्याबलमहारुचां ॥ ३९९ ॥
विद्यानुयोगकुशलाः सर्वे श्रीशक्तवक्षसः । लंकायां स्वामिनः कांताः प्रायशः स्वर्गतश्च्युताः४००
स्वेषु पुत्रेषु निक्षिप्य लक्ष्मीं वंशक्रमागतां । संविग्ना राक्षसाधीशा महाप्राव्राज्यमाश्रिताः॥४०१॥
कोचित्कर्मावशेषेण त्रिलोकशिखरं गताः । दिवमीयुः परे केचित्पुण्यपाकानुभावतः ॥ ४०२ ॥

एवं तेष्वप्यतीतेषु घनप्रभसुतोभवत् । लंकायामधिपः कीर्तिधवलो नाम विश्रुतः ॥ ४०३ ॥
पद्मगर्भे समुद्भूतः खेचरैः कृतशासनः । संभुक्ते परमैश्वर्यं सुनासीरो यथा दिवि ॥ ४०४ ॥
एवं भवांतरकृतेन तपोबलेन । संप्राप्नुवंति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ॥
देवेषु चोत्तमगुणागुणभूषितांगाः । निर्दग्धकर्मपटलाश्च भवंति सिद्धाः ॥ ४०५ ॥
दुष्कर्मशक्तमतयः परमां लभंते । निंदां जना इहभवे मरणात्परं च ॥
दुःखानि यांति बहुधा पतिताः कुयोनौ । ज्ञात्वेति पापतमसो रवितां भजध्वं ॥ ४०६ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते राक्षसवंशाधिकारः पंचमं पर्व ।

अथ षष्ठं पर्व ।

वंशो रक्षोनभोगानां मया ते परिकीर्तितः । शृणु वानरकेतूनां संतानमधुना नृप ॥ १ ॥
विजयार्द्धगिरेर्भागे दक्षिणे स्वर्गसन्निभे । पुरं मेघपुरं नाम्ना तुंगप्रसादशोभितं ॥ २ ॥
विद्याभृतां पतिस्तस्मिन्नतींद्रो नाम विश्रुतः । अतिक्रम्य च यः शक्रं स्थितो भोगादिसंपदा ॥३॥
श्रीमती नाम तस्यासीत्कांता श्रीसमविभ्रमा । यस्याः सति मुखे पक्षो ज्योत्स्नयेव सदाभवत् ४

तयोः श्रीकंठनामाभूत्सुतः श्रुतिविशारदः । यस्य नाम्नि गते कर्णं हर्षमीयुर्विचक्षणाः ॥ ५ ॥
स्वसा तस्याभवच्चार्वी देवी नाम कनीयसी । वाणतां नयने यस्या गते कुसुमधन्विनः ॥ ६ ॥
अथ रत्नपुरं नाम पुरं तत्र मनोहरं । तत्र पुष्पोत्तरो नाम विद्याधारी महाबलः ॥ ७ ॥
पद्माभासीत्सुता तस्य मनोल्हादनकारिणी । देवकन्येव सर्वेषां रूपलावण्यसंपदा[1] ॥ ८ ॥
तस्य पद्मोत्तराभिख्यः सुतो येन विलोचने । विषयांतरसंबंधाज्जनानां विनिवर्तते ॥ ९ ॥
तस्मै पुष्पोत्तरः कन्यां बहुशस्तामयाचत । श्रीकंठेन न सा तस्मै दत्ता कर्मानुभावतः ॥ १० ॥
सा तेन कीर्तिशुभ्राय दत्ता बांधववाक्यतः । विवाहं च परेणास्याः विधिर्न निरवर्तयत् ॥ ११ ॥
न मेऽभिजनतो दोषो न मे दारिद्र्यसंभवः । न च पुत्रस्य वैरूप्यं न किंचिद्वैरकारणं ॥ १२ ॥
तथापि मम पुत्राय वितीर्णा तेन न स्वसा । इति पुष्पोत्तरो ध्यात्वा कोपावेशं परं गतः ॥ १३ ॥
चैत्यानां वंदनां कर्तुं श्रीकंठः सुरपर्वतं । गतो यदा विमानेन वायुवेगेन चारुणा ॥ १४ ॥
तस्मान्निवर्तमानोसौ चेतःश्रोत्रापहारिणं । भृंगाराणामिव झंकारमशृणोद्गीतनिःस्वनं ॥ १५ ॥
रम्यप्रक्वणमिश्रेण तेन गीतस्वनेन सः । धृतो ऋजुगुणेनेव वध्वा निश्चलविग्रहः ॥ १६ ॥

---

१ 'ग' पुस्तके नास्त्ययं श्लोकः ।

आलोकनमथो चक्रे ततोऽपश्यत्स कन्यकां । गुरुणाधिष्ठितां कांतां संगीतकगृहांगणे ॥ १७ ॥
तस्या रूपसमुद्रेऽसौ निमग्नं मानसं द्रुतं । न शशाक समुद्धर्तुं धर्तुं नांगानि च प्रभुः ॥ १८ ॥
स्थितश्चैषोतिकव्योम्नि तया नीलोत्पलाभया । वध्वेव पीवरस्कंधो दृष्ट्याकृष्टो मनोमुषा ॥१९॥
ततो दर्शनमन्योन्यं तयोर्माधुर्यपेशलं । चकार वरणं प्रेमबद्धभावस्य सूचनं ॥ २० ॥
ततस्तामिंगिताभिज्ञो भुजपंजरमध्यगां । कृत्वा नभस्तले यातः स्पर्शामीलितलोचनः ॥ २१ ॥
परिवर्गस्ततस्तस्याः प्रलापमुखरीकृतः । पुष्पोत्तराय कन्यायाः श्रीकंठेन हृतिं जगौ ॥ २२ ॥
सर्वोद्योगेन संनह्य ततः पुष्पोत्तरो रुषा । तस्यानुपदवीं यातो दंतदष्टरदच्छदः ॥ २३ ॥
तेनानुधावमानेन व्रजता सुनभस्तले । शशीव घनवृंदेन श्रीकंठः शुशुभेऽधिकं ॥ २४ ॥
आयांतं पृष्टतो दृष्ट्वा श्रीकंठस्तं महाबलं । त्वरितं प्रस्थितो लंकां नीतिशास्त्रविशारदः ॥ २५ ॥
तत्र स्वसुःपतिं गत्वा शरणं स समाश्रयत् । कालप्राप्तं नयं संतो युंजाना यांति तुंगतां ॥ २६ ॥
सोदरो मम कांताया इति सस्नेहनिर्भरं । संभ्रमेण परिष्वज्य तं चकाराप्तपूजनं ॥ २७ ॥
तयोः कुशलवृतांतप्रश्नो यावत्प्रवर्तते । तावत्पुष्पोत्तरः प्राप्तो महाबलसमन्वितः ॥ २८ ॥
कीर्तिशुक्लस्ततोऽपश्यद्गगनं सर्वतश्चितं । विद्याधरसमूहेन प्रदीप्तपुरुतेजसा ॥ २९ ॥

असिकुंतादिभिः शस्त्रैर्विकरालं महारवं । स्थानभ्रंशमिवागच्छद्बलं खेचरसंगमात् ॥ ३० ॥
वाजिभिर्वायुरंहोभिर्गजैश्च जलदोपमैः । विमानैश्च महामानैः सिंहैश्च प्रचलत्सटैः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वोत्तरां दिशं व्याप्तां विहस्य क्रोधमिश्रितं । सचिवानां समादेशं कीर्तिशुक्लो युधे ददौ ॥३२॥
अकार्येण ततः स्वेन श्रीकंठो यंत्रपानतः । कीर्तिशुभ्रमिदं वाक्यं जगाद त्वरयान्वितं ॥ ३३ ॥
एतं बंधुजनं रक्ष त्वं मदीयमिहाधुना । करोमि निर्जितं यावत् प्रतिपक्षं तवाश्रयात् ॥ ३४ ॥
एवमुक्तो जगादासौ वचनं नयसंगतं । तवायुक्तमिदं वक्तुं प्राप्य मां भीतिभेदनं ॥ ३५ ॥
यदि नामैष नो साम्ना शमं यास्यति दुर्जनः । ततः पश्य प्रविष्टोयं मृत्योर्वक्त्रं मदीरितः॥३६॥
स्थापयित्वेति विश्रब्धं प्रियायाः सोदरं नृपः । उत्कृष्टवयसो धीरो दूतान् द्रुतमजीगमत् ॥३७॥
उपर्युपरि ते गत्वा क्रमेणेदं वभाषिरे । पुष्पोत्तरं महाप्राज्ञा मधुरालापकोविदाः ॥ ३८ ॥
पुष्पोत्तर वदत्येतद्भवंतं कीर्तिनिर्मलः । अस्मद्वदनविन्यस्तैः पदैरादरसंगतैः ॥ ३९ ॥
महाकुलसमुत्पन्नो भवान् विमलचेष्टितः । सर्वस्मिन् जगति ख्यातिं गतः शास्त्रार्थकोविदः॥४०॥
आगता गोचरं का ते न मर्यादा महामते । कर्णजाहे निधीयेत यास्माभिरधुना तव ॥ ४१ ॥
श्रीकंठोपि कुले जातः शशांककरनिर्मले । वित्तवान् विनयोपेतः कांतः सर्वकलान्वितः ॥ ४२ ॥

तस्य योग्या गुणैः कन्या रूपेण च कुलेन च । समानयोः समायोगं करोतु विधिरिष्यतां ॥४३॥
न चास्ति कारणं किंचित्सेनयोः संक्षये कृते । स्वभाव एष कन्यानां यत्परागारसेवनं ॥ ४४ ॥
दूतो यावद्ब्रवीत्येवं तावद्दूती समागता । पद्मया प्रेषिता तस्य दुहित्रेदमभाषत ॥ ४५ ॥
ब्रवीति देव पद्मेदं कृत्वा चरणवंदनं । स्वयं ते गदितुं शक्ता त्रपया नेति नागता ॥ ४६ ॥
तात स्वल्पापि नास्त्यत्र श्रीकंठस्यापराधिता । मया कर्मानुभावेन स्वयमेव प्रचोदितः ॥ ४७ ॥
यतः सत्कुलजातानां गतिरेषैव योषितां । विमुच्यैनमतोऽन्यस्य नरस्य नियमो मम ॥ ४८ ॥
इति विज्ञापितो दूत्या चिन्तामेतामसौ श्रितः । किं कर्तव्यं विमूढेन चेतसा विक्लवीकृतः॥४९॥
श्रद्धाभिजनिता मुख्या गुणानां वरभाजिनां । तस्मिंश्च संभवत्येषा पक्षं च बलिनं श्रिता ॥५०॥
अभिमानात्तथाप्येनं विनेतुं शक्तिरस्ति मे । स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किं ॥ ५१ ॥
अभिप्रायं ततस्तस्य ज्ञात्वा ते हर्षनिर्भराः । समं दूत्या गता दूता शशाशुश्च यथोदितं ॥ ५२ ॥
सुताविज्ञापनात्त्यक्तक्रोधभारोभिमानवान् । पुष्पोत्तरो गतःस्थानमात्मीयं परमार्थवित् ॥ ५३ ॥
शुक्लायां मार्गशीर्षस्य पक्षतावथ शोभने । मुहूर्त्ते विधिना वृत्तं पाणिग्रहणमेतयोः ॥ ५४ ॥
इति श्रीकंठमाहेदं प्रीत्यात्यंतमुदारया । प्रेरितः कीर्तिधवलो वचनं कृतनिश्चयं ॥ ५५ ॥

वैरिणो बहवः संति विजयार्द्धगिरौ तव । अप्रमत्ततया कालं कियंतं गमियिष्यसि ॥ ५६ ॥
अतस्तिष्ठ त्वमत्रैव रम्ये रत्नालयांतरे । निजाभिरुचिते स्थाने स्वेच्छया कृतचेष्टितः ॥ ५७ ॥
पर्याप्तोतिपरित्यक्तुं न च त्वां मम मानसं । मत्प्रीतिवागुरां छित्वा कथं वा त्वं गमिष्यसि॥५८॥
श्रीकंठमभिधायैवं सचिवं निजमब्रवीत् । पितामह क्रमायातमानंदाख्यं महामतिं ॥ ५९ ॥
सारासारं त्वया दृष्टं मदीयानां चिरं पुरां । उद्दिश्यतामतः सारं श्रीकंठायात्र यत्पुरं ॥ ६० ॥
इत्युक्तः सचिवः प्राह सितेन हृदयस्थितं । कूर्चेन स्वामिनं भक्त्या चामरेणेव वीजयन् ॥६१॥
नरेंद्र तव नास्त्येव पुरं यन्न मनोहरं । तथापि स्वयमन्विष्य गृह्णातु रुचिदर्शनं ॥ ६२ ॥
मध्येसागरमेतस्मिन् द्वीपाः संत्यतिभूरयः । कल्पद्रुमसमाकारैः पादपैर्व्याप्तदिग्मुखाः ॥ ६३ ॥
आचिता विविधैरत्नैस्तुंगशृंगा महौजसः । गिरयो येषु देवानां संति क्रीडनहेतवः ॥ ६४ ॥
भीमातिभीमदाक्षिण्यात्ते चान्यैरपि वः कुले । अनुज्ञाताः सुरैः सर्वैः पूर्वमित्येवमागमः ॥६५॥
पुराणि तेषु रम्याणि संति कांचनसद्मभिः । संपूर्णानि महारत्नैः करदृष्टदिवाकरैः ॥ ६६ ॥
संध्याकारो मनोल्हादः सुवेलः कांचनो हरिः । योधनो जलधिध्वानो हंसद्वीपो भरक्षमः ॥६७॥
अर्द्धस्वर्गोत्कटावर्तो वैघटो रोधनो मलः । कांतः स्फुटत्तरोरत्नद्वीपस्तोयावलीसरः ॥ ६८ ॥

अलं घनो नभो भानुः क्षेममित्येवमादयः । आसन् ये रमणोद्देशा देवानां निरुपद्रवाः ॥ ६९ ॥
त एव सांप्रतं जाता भूरिपुण्यैरुपार्जिताः । पुराणां सन्निवेशा वो नानारत्नवसुंधराः ॥ ७० ॥
इतो वरोत्तरे भागे समुद्रपरिवेष्टिते । शतत्रयमतिक्रम्य योजनानामलं पृथुः ॥ ७१ ॥
अस्ति शाखामृगद्वीपः प्रसिद्धो भुवनत्रये । यस्मिन्नवांतरद्वीपाः संति रम्याः सहस्रशः ॥ ७२ ॥
पुष्परागमणिभाभिः क्वचित्प्रज्वलतीव यः । सस्यैरिव क्वचिच्छन्नो हरिन्मणिमरीचिभिः॥७३॥
इंद्रनीलप्रभाजालैस्तमसेव चितः क्वचित् । पद्माकरश्रियं धत्ते पद्मरागचयैः क्वचित् ॥ ७४ ॥
भ्रमता यत्र वातेन गगने गंधचारुणा । हृता जानंति नो यस्मिन्पताम इति पक्षिणः ॥ ७५ ॥
स्फटिकांतरविन्यस्तैः पद्मरागैः समत्विषः । ज्ञायंते चलनाद्यत्र सरःसुकमलाकराः ॥ ७६ ॥
मत्तैर्मध्वासवास्वादच्छकुंतैः कलनादिभिः । संभाषत इति द्वीपान् यः समीपव्यवस्थितान् ॥७७॥
यत्रौषधप्रभाजालैस्तमो दूरं निराकृतं । चक्रे बहुलपक्षेपि समावेशं न रात्रिषु ॥ ७८ ॥
यत्र छत्रसमाकाराः फलपुष्पसमन्विताः । पादपा विपुलस्कंधाः कलस्वनशकंतयः ॥ ७९ ॥
सस्यैः स्वभावसंपन्नैर्वीर्यकांतिवितारिभिः । चलद्भिर्मंदवातेन मही यत्र सकुंचुका ॥ ८० ॥
विकचेंदीवरैर्यत्र षट्पदौघसमन्वितैः । नयनैरिव वीक्ष्यंते दीर्घिका भ्रूविलासिभिः ॥ ८१ ॥

पवनाकंपनाद्यस्मिन् सीत्कारश्रोत्रहारिभिः । पुंड्रेक्षोर्विपुलैर्वाटैः प्रदेशाः पवनोज्झिताः ॥ ८२ ॥
रत्नकांचनविस्तीर्णशिलासंघातशोभनः । मध्ये तस्य महानस्ति किष्कुर्नाम महीधरः ॥ ८३ ॥
त्रिकूटेनेव तेनासौ शृंगबाहुभिरायतैः । आलिंगता दिशः कांता श्रियमारोपितः परां ॥ ८४ ॥
आनंदवचनादेवमानंदं परमं गतः । श्रीकंठः कीर्तिधवलं प्राहैवमिति भारतीं ॥ ८५ ॥
ततश्चैत्रस्य दिवसे प्रथमे मंगलार्चिते । ययौ सपरिवारोसौ द्वीपं वानरलांछितं ॥ ८६ ॥
पश्यन्नीलमणिच्छायं गतं नभ इव क्षितिं । महाग्राहकृताकंपं समुद्रं विस्मयाकुलः ॥ ८७ ॥
ततश्च तं वरद्वीपं प्राप्तस्वर्गमिवापरं । व्याहरंतमिवात्युच्चैः स्वागतं निर्झरस्वनैः ॥ ८८ ॥
निर्झराणामतिस्थूलैः शीकरैर्व्योमगामिभिः । हसंतमिव तोषेण श्रीकंठागमजन्मना ॥ ८९ ॥
विचित्रमणिसंभूतप्रभाजालेन चारुणा । इच्छता इव संघातास्तोरणानां समुन्नताः ॥ ९० ॥
ततस्तमवतीर्णोसौ द्वीपमाश्चर्यसंकुलं । चिक्षिपन् दिक्षु सर्वासु दृष्टिं नीलोत्पलद्युतिं ॥ ९१ ॥
खर्जूरामलकीनीपकपित्थागुरुचंदनैः । प्लक्षार्जुनकदंबाम्रप्रियालकदलीधवैः ॥ ९२ ॥
दाडिमीपूगकंकोललवंगवकुलैस्तथा । रम्यैरन्यैश्च विविधैः पादपैरुपशोभितं ॥ ९३ ॥
मणिवृक्षा इवोज्झित्य क्षितिं ते तत्र निःसृताः । स्वस्मिन्निपतितां दृष्टिं नेतुमन्यत्र नो ददुः ॥९४॥

प्रगुणाः कांडदेशेषु विस्तीर्णाः स्कंधबंधने । उपरिच्छत्रसंकाशा घनपल्लवराशयः ॥ ९५ ॥
शाखाभिः सुप्रकाशाभिर्नताभिः कुसुमोत्करैः । फलैश्च सरसाः स्वादैः प्राप्ताः संतानमुत्तमं॥९६॥
नात्यंतमुन्नतिं याता न च याता निखर्वतां । अनायासांगनाप्राप्यप्रसूनफलपल्लवाः ॥ ९७ ॥
स्तवकस्तनरम्याभिर्भृंगनेत्राभिरादरात् । आलिंगिताः सुवल्लीभिश्चलपल्लवपाणिभिः ॥ ९८ ॥
परस्परसमुल्लापं कुर्वाणा इव पक्षिणां । मनोहरेण नादेन गायंत इव षट्पदैः ॥ ९९ ॥
केचिच्छंखदलच्छायाः केचिद्धेमसमत्विषः । केचित्पंकजसंकाशाः केचिद्वैडूर्यसन्निभाः ॥ १०० ॥
एवं नानाविधास्तस्मिन् देशा विविधपादपैः । मंडिता यान्समालोक्य स्वर्गभूरपि नेक्ष्यते १०१
जीवं जीवकयुग्मानां व्यक्तवाचां समं शुकैः । आलापः सारिकाभिश्च तस्मिन्नद्भुतकारणं॥१०२॥
ततो नानातरुच्छायामंडलस्थेषु हारिषु । रत्नकांचनदेहेषु पुष्पामोदानुलेपिषु ॥ १०३ ॥
शिलातलेषु विश्रब्धं निविष्टः सेनया समं । करणीयं च निःशेषं स चक्रे वपुषः सुखं॥ १०४ ॥
ततो नानाप्रसूनानां हंससारसनादिनां । विमलोदकपूर्णानां सरसां मीनकंपिनां ॥ १०५ ॥
किरतां पुष्पनिकरं तरूणां च महत्त्विषां । जयशब्दमिवोद्दातं कुर्वतां पक्षिनिःस्वनैः ॥ १०६ ॥
नानारत्नचितानां च भूभागानां सुशोभया । युक्तं भ्रमति सद्वीपमितश्चेतश्च तं सुखी ॥ १०७ ॥

ततः स विहरंस्तस्मिन्वने नंदनसन्निभे । यथेच्छं क्रीडतो पश्यद्वानरान् बहुविभ्रमान् ॥ १०८ ॥
अचिंतयच्च दृष्ट्वैतां सृष्टेरतिविचित्रतां । तिर्यग्योनिगता ह्येते कथं मानुषसन्निभाः ॥ १०९ ॥
वदनं पाणिपादं च शेषांश्चावयवानमी । दधते मानुषाकारां चेष्टां तेषां च सन्निभां ॥ ११० ॥
ततस्तैर्महती रंतुं प्रीतिरस्य समुत्थिता । यथास्थिरोप्यसौ राजा नितांतं प्रवणीकृतः ॥ १११ ॥
जगाद च समासन्नान्पुरुषान् वदनेक्षणः । एतानानयतक्षिप्रमितिविस्मितमानसः ॥ ११२ ॥
इत्युक्तैः शतशस्तस्य प्लवंगा गगनायनैः । उपनीताः प्रमोदेन कृतकेलिकलस्वनाः ॥ ११३ ॥
सुशीलैस्तैरसौ साकं रंतुं प्रववृते नृपः । नर्तयन् तालशब्देन बाहुभ्यां च परामृशन् ॥ ११४ ॥
वीक्ष्यमाणः सितान् दंतान् दाडिमीपुष्पलोहिते । अवटीटे मुखे तेषां भास्वत्कांचनतारके ११५
यूकापयननं पश्यन्विनयेन परस्परं । प्रेम्णा च कलहं रम्यं कृतरवोत्कारनिःस्वनं ॥ ११६ ॥
शालिशूकसमच्छायान् मृदिमातिशयान्वितान् । विधूतान् मृदुवातेन केशान् सीमंतभाजिनः११७
कर्णान् विदूषकासक्तश्रवणाकारधारिणः । नितांतकोमलश्लक्ष्णानचलद्वपुषां स्पृशन् ॥ ११८ ॥
विलोमानि नयल्लोमान्युदरे मुष्टिमायिनि । उत्क्षिपंश्च भ्रुवोपांग देशान् रेखावतस्तथा ॥ ११९ ॥
ततस्ते तेन बहवः पुरुषाणां समर्पिताः । मृष्टाशनादिभिः कर्तुं पोषणं रतिहेतवः ॥१२० ॥

ग्राहयित्वा च तान् किष्कुमारोहद्धृतमानसः । ग्रावकूटैर्लताभिश्च निर्झरैस्तरुभिस्तथा ॥ १२१ ॥
तत्रापश्यत्स विस्तीर्णां वैषम्यरहितां भुवं । गुप्तां प्रांते महामानैः ग्रावभिः सोन्नतद्रुमैः ॥१२२॥
पुरं तत्र महेच्छेन ख्यातं किष्कुपुराख्यया । निवेशितमरातीनां मानसस्यापि दुर्गमं ॥ १२३ ॥
प्रमाणं योजनान्यस्य चतुर्दश समंततः । त्रिगुणं परिवेषेण लेशतश्चाधिकं भवेत् ॥ १२४ ॥
संमुखद्वारविन्यासा मणिकांचनभित्तयः । प्रग्रीवकसमायुक्ता रत्नस्तंभसमुच्छ्रिताः ॥ १२५ ॥
कपोलपाल्युपांतेषु महानीलविनिर्मिताः । रत्नभाभिर्निरस्तस्य ध्वांतस्येवानुकंपिताः ॥ १२६ ॥
देहलीपिंडिकाभागं पद्मरागविनिर्मितं । तांबूलेनेवच्छायं धारयंत्यो रदच्छदं ॥ १२७ ॥
द्वारोपरि समायुक्ता मुक्तादामांशुसंपदाः । हसंत्य इव शेषाणां भवनानां सुरूपतां ॥ १२८ ॥
शशांकसदृशाकारैर्मणिभिः शिखराहितैः । रजनीष्वपि कुर्वाणा संदेहं रजनीकरे ॥ १२९ ॥
चंद्रकांतमणिच्छाया कल्पितोदारचंद्रिका । नानारत्नप्रभापंक्तिसंदिग्धोत्तुंगतोरणा ॥ १३० ॥
मणिकुट्टिमविन्यस्तरत्नपद्मावलिक्रियाः । पंक्तयस्तत्र गेहानां खेचरैर्विनिवेशिताः ॥ १३१ ॥
शुष्कसागरविस्तीर्णा मणिकांचनवालुकाः । राजमार्गाः कृतास्तस्मिन्कौटिल्यपरिवर्जिताः ॥१३२॥
प्राकारस्तत्र विन्यस्तो रत्नच्छायाकृतावृतिः । शिखराग्रैः श्रिया दर्पात् सौधर्ममिव ताडयन्१३३

गोपुराणि च तुंगानि न्यस्तान्यत्र मरीचिभिः । मणीनां यानि लक्ष्यंते स्थगितानीव सर्वदा १३४
पुरंदरपुराकारे पुरे तस्मिन् चिराय सः । पद्मया सहितो रेमे शच्येव विबुधाधिपः ॥ १३५ ॥
भद्रशालवने याति तथा सौमनसे वने । नंदने वा न तान्यस्य द्रव्याण्यापुर्दुरापतां ॥ १३६ ॥
कदाचिदथ तत्रासौ तिष्ठन् प्रासादमूर्द्धनि । व्रजंतं वंदनां भक्त्या द्वीपं नंदीश्वरश्रुतिं ॥ १३७ ॥
पाकशासनमैक्षिष्ट सत्रा दैवैश्चतुर्विधैः । मुकुटानां प्रभाजालैः पिशंगितनभस्तलं ॥ १३८ ॥
कुर्वंतं बधिरं लोकं समस्तं तूर्यनिःस्वनैः । हस्तिभिर्वाजिभिर्हसैर्मेषैरुष्ट्रैर्वृकैर्मृगैः ॥ १३९ ॥
अन्यैश्च विविधैर्यानैः परिवर्गैराधिष्ठितैः । अन्वीयमानं दिव्येन गंधेन व्याप्तविष्टपं ॥ १४० ॥
ततस्तेन श्रुतं पूर्वं मुनिभिः संकथागतं । स्मृतं नंदीश्वरद्वीपं वंदनं स्वर्गवासिनां ॥ १४१ ॥
स्मृत्वा च विबुधैः सार्द्धमकरोद्गमने मतिं । खेचरैश्च समं सर्वैः समारूढो मरुत्पथं ॥ १४२ ॥
स गच्छन्क्रौंचयुक्तेन विमानेन सहांगनः । मानुषोत्तरशैलेन निवारितगतिः कृतः ॥ १४३ ॥
अतिक्रांतांस्ततो दृष्ट्वा मानुषोत्तरपर्वतं । गीर्वाणनिवहान् सर्वान्परमं शोकमागतः ॥ १४४ ॥
परिदेवमथो चक्रे भग्नोत्साहो गतद्युतिः । हा कष्टं क्षुद्रशक्तीनां मनुष्याणां धिगुन्नतिं ॥ १४५ ॥
नंदीश्वरे जिनेंद्राणां प्रतिमानां महत्त्विषां । अकृत्रिमाणां भावेन करिष्यामीति दर्शनं ॥ १४६ ॥

पूजां च विविधैः पुष्पैर्धूपैर्गंधैश्च हारिभिः । नमस्कारं च शिरसा धरासंसक्तमौलिना ॥ १४७ ॥
ये कृता मंदभाग्येन मया चारुमनोरथाः । कथं ते कर्मभिर्भग्ना अशुभैः पूर्वसंचितैः ॥ १४८ ॥
अथवा श्रुतमेवासीन्मया मानुषपर्वतं । अतिक्रम्य न गच्छंति मानुषा इत्यनेकशः ॥ १४९ ॥
तथापि श्रद्धया तन्मे नितांतं बुद्धियुक्तया । विस्मृतं गंतुमुद्युक्तो यतोस्मिन् स्वल्पशक्तितः १५०
तस्मात्करोमि कर्माणि तानि यैरन्यजन्मनि । यातुं नंदीश्वरं द्वीपं गतिर्मे न विहन्यते ॥ १५१ ॥
इति निश्चित्य मनसा न्यस्य राज्यभरं सुते । अभून्महामुनिर्धीरस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ १५२ ॥
वज्रकंठस्ततः सार्द्धं चारुण्याश्रयमुत्तमां । भुक्त्वा किष्कुपुरे रम्ये श्रुत्वोपाख्यानकं पितुः ॥१५३॥
ऐश्वर्ये तनयं क्षिप्त्वा प्राप दैगंबरीं क्रियां । कीदृशं तदुपाख्यानमित्युक्तो गणभृज्जगौ ॥१५४॥
वणिजौ भ्रातरावास्तां प्रीतेः स्त्रीभ्यां वियोजितौ । कनीयान्दुर्विधो ज्येष्ठः स्वापतेयी गृहीतवाक्
श्रेष्ठिनः संगमादेष प्राप्तः श्रावकतां परां । मृगयाजीविना भ्रात्रा परमं दुःखितोऽभवत् ॥ १५६ ॥
अलीकस्त्वाहतस्वामिपुरुषस्य विसर्जनं । परीक्ष्य भ्रातरं प्रीतं ददावस्मै महद्धनं ॥ १५७ ॥
दुष्टांततः स्त्रियं त्यक्त्वा संगीर्यानुजबोधनं । प्रव्रज्यायामभूदिंद्रः कनीयांस्तु शमी मृतः ॥ १५८ ॥
देवीभूयश्च्युतो जातः श्रीकंठस्तत्प्रबुद्धये । आत्मानं दर्शयन्निंद्रः श्रीमान्नंदीश्वरं गतः ॥ १५९ ॥

सुरेंद्रं वीक्ष्य पित्रा ते जातस्मरणमीयुषा । इदं कथितमस्माकमिति वृद्धास्तमूचिरे ॥ १६० ॥
एतमाख्यानकं श्रुत्वा वज्रकंठोऽभवन्मुनिः । इंद्रायुधप्रभोप्येवं न्यस्य राज्यं शरीरजे ॥ १६१ ॥
तत इंद्रमतो जातो मेरुस्तस्माच्च मंदरः । समीरणगतिस्तस्मात्तस्मादपि रविप्रभः ॥ १६२ ॥
ततोमरप्रभो जातस्त्रिकुटेंद्रसुतास्य च । परिणेतुं समानीता नाम्ना गुणवती शुभा ॥ १६३ ॥
अथासौ दर्पणच्छाये वेदीसंबंधिभूतले । मणिभिः कल्पितं चित्रं पश्यन्नाश्चर्यकारणं ॥ १६४ ॥
भ्रमरालीपरिष्वक्तमरविंदं क्वचिद्वनं । ऐंद्रीवरं वनं चार्द्धपद्मेंदीवरकं तथा ॥ १६५ ॥
चंचूपात्तमृणालानां हंसानां युगलानि च । क्रौंचानां सारसानां च तथान्येषां पतत्रिणां ॥१६६॥
रत्नचूर्णैरतिश्लक्ष्णैः पंचवर्णसमन्वितैः । रचितान्खेचरस्त्रीभिः तत्रापश्यत्प्लवंगमान् ॥ १६७ ॥
स तान् दृष्ट्वा परं तोषं जगामांबरगाधिपः । मनोज्ञं प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरं ॥ १६८ ॥
अथ पाणिगृहीतास्य दृष्ट्वा तान् विकृताननान् । प्रत्यंगवेपथुं प्राप्ता प्रचलत्सर्वभूषणा ॥ १६९ ॥
निःशेषदृश्यविभ्रांततारकाकुललोचना । दर्शयंतीव रोमांचप्रोद्गमाद्देहवद्भयं ॥ १७० ॥
स्वेदोदबिंदुसंबद्धविसर्पत्तिलकालिका । भीरुरप्यति सच्चेष्टा प्राविशद्भुजपंजरं ॥ १७१ ॥
दृष्ट्वा यान् मुदितः पूर्वं तेभ्योऽकुप्यत्पुनर्वरः । कांताभिप्रायसामर्थ्यात्सुरूपमपि नेष्यते ॥१७२॥

ततोऽसावब्रवीत्केन विवाहे मम चित्रिताः । कपयो विविधाकारा अमी वित्रासकारिणः॥१७३॥
नूनं कश्चिन्ममास्तेस्मिन् जनो मत्सरसंगतः । क्षिप्रमन्विष्यतामेष करोम्यस्य बधं स्वयं ॥१७४॥
ततस्तं कोपगंभीरगुहागह्वरवर्तिनं । वर्षीयांशो महाप्राज्ञा मधुरं मंत्रिणोऽब्रुवन् ॥ १७५ ॥
तात नास्मिन् जनः कोपि विद्वेष्टा तव विद्यते । त्वयि वा यस्य विद्वेषः कुतस्तस्यास्ति जीवितं ॥
स त्वं भव प्रसन्नात्मा श्रूयतामत्र कारणं । विवाहमंगले न्यस्ता यतः प्लवगपंक्तयः ॥ १७७ ॥
अन्वये भवतामासीच्छ्रीकंठो नाम विश्रुतः । येनेदं नाकसंकाशं सृष्टं किष्कुपुरोत्तमं ॥ १७८ ॥
सकलस्यास्य देशस्य विविधाकारभाजिनः । अभवत्स नृपः स्रष्टा प्रपंचः कर्मणामिव ॥ १७९ ॥
यस्याद्यापि वनांतेषु लतागृहसुखस्थिताः । गुणान् गायंति किन्नर्यः स्थानकं प्राप्य किन्नरात्१८०
चंचलत्वसमुद्भूतमयशो येन शोधितं । स्थिरप्रकृतिना लक्ष्म्या वासवोपमशक्तिना ॥ १८१ ॥
स एतान् प्रथमं दृष्ट्वा वानरानत्र रूपिणः । मानुषाकारसंयुक्तान् जगाम किल विस्मयं ॥१८२॥
रेमे च मुदितोमीभिः समं विविधचेष्टितैः । मृष्टाशनादिभिश्चामी नितांतं सुस्थिताः कृताः १८३
ततः प्रभृति ये जाताः कुले तस्य महाद्युतेः । तस्य भक्त्या रतिं तेऽपि चक्रुरेभिर्नरोत्तमाः॥१८४॥
युष्माकं पूर्वजैर्यस्मादमी मंगलवस्तुषु । प्रकल्पिताः ततस्तेपि मंगले सन्निधापिता ॥ १८५ ॥

मंगलं यस्य यत्पूर्वं पुरुषैः सेवितं कुले । प्रत्यवायेन संबंधो निराशे तस्य जायते ॥ १८६ ॥
क्रियमाणं तु तद्भक्त्या करोति शुभसंपदं । तस्मादासेव्यतामेतद्भवतापि सुचेतसा ॥ १८७ ॥
इत्युक्ते मंत्रिभिः सांत्वन् प्रत्युवाचाऽमरप्रभः । त्यजन् क्षणेन कोपोत्थविकारं वदनार्पितं॥१८८॥
मंगलं सेविता पूर्वैः यद्यस्माकममी ततः । किमित्यालिखिता भूमौ यस्यां पादादिसंगमः १८९
नमस्कृत्य वहाम्येतान् शिरसा गुरुगौरवात् । रत्नादिघटितान् कृत्वा लक्षणान्मौलिकोटिषु१९०
ध्वजेषु गृहशृंगेषु तोरणानां च मूर्द्धसु । शिरस्सु चातपत्राणामेतानाशु प्रयच्छत ॥ १९१ ॥
ततस्तैस्तत्प्रतिज्ञाय तथासर्वमनुष्ठितं । यथा दिगीक्ष्यते या या तत्र तत्र प्लवंगमाः ॥ १९२ ॥
अथैतस्य समं देव्या भुंजानस्य परं सुखं । विजयार्द्धजिगीषायामकरोन्मानसं पदं ॥ १९३ ॥
प्रतस्थे च ततो युक्तः सेनया चतुरंगया । ऋपिध्वजः कपिच्छत्रः कपिमौलिः कपिस्तुतः १९४
श्रेणिद्वयं विजित्वासौ रणे सत्त्वविमर्दिनि । आस्थापयद्वशे राजा जग्राह न धनं तयोः ॥१९५॥
अभिमानेन तुंगानां पुरुषाणामिदं व्रतं । नमयंत्येव यच्छत्रुं द्रविणे विगताशया ॥ १९६ ॥
ततोसौ पुनरागच्छत्पुरं किष्कुप्रकीर्तितं । विजयार्द्धप्रधानेन जनेनानुगतायनः ॥ १९७ ॥
आधिपत्यं समस्तानां प्राप्य विद्याभृतामसौ । निश्चलां बुभुजे लक्ष्मीं निगडैरिव संयुतां ॥१९८॥

ततस्तस्य सुतो जातः कपिकेतुरभिख्यया । श्रीप्रभा कामिनी यस्य बभूव गुणधारिणी ॥१९९॥
ततो विक्रमसंपन्नं स तं वीक्ष्य शरीरजं । राज्यलक्ष्म्यां समायोज्य निरगाद् गृहबंधनात्॥२००॥
दत्त्वा प्रतिबलाख्याय लक्ष्मीं सोपि विनिर्ययौ । प्रायशो विषवल्लीव दृष्ट्वा पूर्वैर्नृपद्युतिः ॥२०१॥
पूर्वोपार्जितपुण्यानां पुरुषाणां प्रयत्नतः । संजातासु न लक्ष्मीषु भावः संजायते महान् ॥२०२॥
यथैव ताः समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नतः । तथैव त्यजतामेषां पीडा तासु न जायते ॥ २०३ ॥
तथा कथंचिदासाद्य संतो विषयजं सुखं । तेषु निर्वेदमागत्य वांच्छंति परमं पदं ॥ २०४ ॥
यत्नोपकरणैः साध्यमात्मायत्तं निरंतरं । महदं तेन निर्मुक्तं सुखं तत्को न वांच्छति ॥ २०५ ॥
सुतः प्रतिबलस्यापि गगनानंदसंज्ञितः । तस्यापि खेचरानंदस्तस्यापि गिरिनंदनः ॥ २०६ ॥
एवं वानरकेतूनां वंशे संख्याविवर्जिताः । आत्मीयैः कर्मभिः प्राप्ताः स्वर्गं मोक्षं च मानवाः २०७
वंशानुसरणच्छायामात्रमेतत्प्रकीर्त्यते । नामान्येषां समस्तानां शक्तः कः परिकीर्तितुं ॥ २०८॥
लक्षणं यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते । सेवकः सेवया युक्तः कर्षकः कर्षणात्तथा ॥ २०९ ॥
धानुष्को धनुषो योगाद्धार्मिको धर्मसेवनात् । क्षत्रियः क्षततस्त्राणाद्ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यतः ॥२१०॥
इक्ष्वाकवो यथा चैते नमेश्च विनमेस्तथा । कुले विद्याधरा जाता विद्याधरणयोगतः ॥ २११ ॥

परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान् । तपसा प्राप्य संबंधं तपो हि श्रम उच्यते ॥२१२॥
अयं तु व्यक्त एवास्ति शब्दोन्यत्र प्रयोगवान् । यष्टिहस्तो यथा यष्टिः कुंतः कुंतकरस्तथा २१३
मंचस्थाः पुरुषा मंचा यथा च परिकीर्तिताः । साहचर्यादिभिर्धर्मैरेवमाद्या उदाहृताः ॥ २१४ ॥
तथा वानरचिन्हेन छत्रादिविनिवेशिना । विद्याधरा गता ख्यातिं वानरा इति विष्टपे ॥ २१५ ॥
श्रेयसो देवदेवस्य वासुपूज्यस्य चांतरे । अमरप्रभसंज्ञेन कृतं वानरलक्षणं ॥ २१६ ॥
तत्कृतात्सेवनाज्जाता शेषा अपि तथा क्रिया । परां हि कुरुते प्रीतिं पूर्वाचरितसेवनं ॥ २१७ ॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तः कपिवंशसमुद्भवः । प्रवक्ष्यामि परां वार्तामिमां श्रेणिक तेऽधुना ॥ २१८ ॥
महोदधिरवो नाम खेचराणामभूत्पतिः । कुले वानरकेतूनां किष्कुनाम्नि पुरोत्तमे ॥ २१९ ॥
विद्युत्प्रकाशा नामास्य पत्नी स्त्रीगुणसंपदां । निधानमभवद्भावगृहीतपतिमानसा ॥ २२० ॥
रामाणामभिरामाणां शतशो योपरि स्थिता । सौभाग्येन तु रूपेण विज्ञानेन तु कर्मभिः ॥२२१॥
पुत्राणां शतमेतस्य साष्टकं वीर्यशालिनां । येषु राज्यभरं न्यस्य स भोगान् बुभुजे सुखं ॥२२२॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थे यः परिकीर्तितः । व्यापारैरद्भुतैर्नित्यमनुरंजितखेचरः ॥ २२३ ॥
लंकायां च तदा स्वामी रक्षोवंशे नभोविधुः । विद्युत्केश इति ख्यातो बभूव जनताप्रियः २२४

गत्यागमनसंवृद्धमभूत्प्रेम परं तयोः । यतश्चित्तमभूदेकं पृथक्त्वं देहमात्रतः ॥ २२५ ॥
तडित्केशस्य विज्ञाय श्रामण्यमुदधिस्वनः । श्रमणत्वं परिप्राप्तः परमार्थविशारदः ॥ २२६ ॥
तडित्केशः कुतो हेतोराश्रितो दुर्द्धराकृतिं । संपृष्टः श्रेणिकेनैवमुवाच गणनायकः ॥ २२७ ॥
अन्यदाथ तडित्केशः प्रमदाख्यं मनोहरं । निष्क्रांतो रंतुमुद्यानं कृतक्रीडनकालयं ॥ २२८ ॥
पद्मेंदीवररम्येषु सरःसु स्वच्छवारिषु । उद्यत्तरंगभंगेषु द्रोणीसंचारचारुषु ॥ २२९ ॥
दोलासु च महार्हासु रचितासनभूमिषु । तुंगपादपशक्तासु दूरप्रेंखप्रवद्धिषु ॥ २३० ॥
ततः सोपानमार्गेषु रत्नरंजितसानुषु । द्रुमखंडपरीतेषु हेमपर्वतकेषु च ॥ २३१ ॥
फलपुष्पमनोज्ञेषु चलत्पल्लवशालिषु । लतालिंगितदेहेषु महीरुहचयेषु च ॥ २३२ ॥
मुनिक्षोभनसामर्थ्ययुक्तविभ्रमसंपदां । पुष्पादिप्रचयाशक्तपाणिपल्लवशोभिनां ॥ २३३ ॥
नितंबवहनायासजातस्वेदांबुविप्रषां । कुचकंपोज्वलत्स्थूलमुक्ताहारपुरत्विषां ॥ २३४ ॥
निमज्जदुद्भवत्सूक्ष्मवलिमध्यविराजिनां । निःश्वासाकृष्टमत्तालिवारणाकुलचेतसां ॥ २३५ ॥
स्रस्तांवरसमालंबिकराणां चलचक्षुषां । मध्यमास्थाय दाराणां स रेमे राक्षसाधिपः ॥ २३६ ॥
अथ क्रीडनशक्तायां देव्यास्तस्य पयोधरौ । श्रीचंद्राख्यं दधानायाः कपिना नखकोटिभिः२३७

विपाटितौ स्वभावेन विनयप्रच्युतात्मना । नितांतं विद्यमानेन रुषा विकृतचक्षुषा ॥ २३८ ॥
समाश्वास्य ततः कांतां प्रगलत्स्तनशोणितां । निहतो बाणमाकृष्य तडित्केशेन वानरः ॥२३९॥
वेगेन स ततो गत्वा पतितस्तत्र भूतले । तिष्ठंति मुनयो यत्र विहायस्तलचारिणः ॥ २४० ॥
ततस्तं वेपथुग्रस्तं स बाणं वीक्ष्य वानरं । मुनीनामनुकंपाभूत्संसारस्थितिवेदिनां ॥ २४१ ॥
तस्मै पंचनमस्कारः सर्वत्यागसमन्वितः । धर्मदानसमुद्युक्तैरुपदिष्टस्तपोधनैः ॥ २४२ ॥
ततः स विकृतां त्यक्त्वा तनुं वानरयोनिजां । महोदधिकुमारोभूत्क्षणेनोत्तमविग्रहः ॥ २४३ ॥
ततो यावदसौ हंतुं खेचरोन्यान्समुद्यतः । कपींस्तावदयं प्राप्तः कृतस्वतनुपूजनः ॥ २४४ ॥
हन्यमानां नरैः क्रूरैर्दृष्ट्वा वानरसंहतिं । चक्रे वैक्रियसमर्थ्यात्कपीनां महतीं चमूं ॥ २४५ ॥
दंष्ट्रांकुरकरालैस्तैर्वदनैर्भ्रूविकारिभिः । सिंदूरसदृशच्छायैः कृतभीषणनिःस्वनैः ॥ २४६ ॥
उत्क्षिप्य पर्वतान्केचित्केचिदुन्मूल्य पादपान् । आहत्य धरणीं केचित्पाणिना स्फाल्य चापरे२४७
क्रोधसंभाररौद्रांगा दूरोत्प्लवनकारिणः । बभणुर्वानराध्यक्षं खेचरं भिन्नचेतसं ॥ २४८ ॥
तिष्ठ तिष्ठ दुराचार मृत्योः संप्रति गोचरे । निहत्य वानरं पाप तवाद्य शरणं कुतः ॥ २४९ ॥
अभिधायेति तैः सर्वं व्योम पर्वतपाणिभिः । व्याप्तं तथा यथाऽस्मिंश्च सूचीभेदोपि नेक्ष्यते२५०

ततो विस्मयमापन्नस्तडित्केशो व्यचिंतयत् । नेदं बलं प्लवंगाणां किमप्यन्यदिदं भवेत् ॥२५१॥
ततो निरीहदेहोसौ माधुर्यामितया गिरा । वानरान्विनयेनेदमब्रवीन्नयपंडितः ॥ २५२ ॥
संतो वदत के यूयं महाभासुरविग्रहाः । न प्रकृत्या प्लवंगाणां शक्तिरेषा समीक्ष्यते ॥ २५३ ॥
ततस्तं विनयोपेतं दृष्ट्वा खेचरपुंगवं । महोदधिकुमारेण वाक्यमेतदुदाहृतं ॥ २५४ ॥
तिर्यग्जातिस्वभावेन नितांतं चपलस्त्वया । अपराधः स्वजायायां हतो योसौ प्लवंगमः ॥२५५॥
सोहं साधुप्रसादेन संप्राप्तो देवतामिमां । महाशक्तिसमायुक्तां यथेच्छावाप्तसंपदां ॥ २५६ ॥
विभूतिं मम पश्य त्वमिति चोक्त्वा परां श्रियं । स तस्मै प्रकटीचक्रे महोदधिः सुरोचितां॥२५७॥
ततोसौ वेपथुं प्राप्तो भयात्सर्वशरीरगं । विदीर्णहृदयो दृष्टरोमाविभ्रांतलोचनः ॥ २५८ ॥
महोदधिकुमारेण माभैषीरिति चोदितः । जगाद गद्गदं वाक्यं किं करोमीति दुःखितः॥२५९॥
ततस्तेन सुरेणासौ गुर्वंतिकमुपाहृतः । ताभ्यां प्रदक्षिणीकृत्य कृतं तस्यांघ्रिवंदनं ॥ २६० ॥
वानरेण सता प्राप्तं मया देवत्वमीदृशं । गुरुं भवंतमासाद्य वत्सलं सर्वदेहिनां ॥ २६१ ॥
देवेनेत्यभिधायासौ स्तुतो वाग्भिः पुनः पुनः । अर्चितश्च महासृग्भिः पादयोः प्रणतस्तथा २६२
तदाश्चर्यं ततो दृष्ट्वा खेचरेण तपोधनः । संपृष्टः किं करोमीति जगाद वचनं हितं ॥ २६३ ॥

चतुर्ज्ञानोपगूढात्मा ममास्त्यत्र समीपगः । गुरुस्तस्यांतिकं याम एष धर्मः सनातनः ॥ २६४ ॥
आचार्ये ध्रियमाणे यस्तिष्ठत्यंतिकगोचरे । करोत्याचार्यकं मूढः शिष्यतां दूरमुत्सृजन् ॥२६५॥
नासौ शिष्यो नचाचार्यो निर्धमः स कुमार्गगः । सर्वतो भ्रंशमायातः स्वाचारात्साधुनिंदितः ॥
इत्युक्ते विस्मयोपेतौ जातौ देवनभश्चरौ । चक्रतुश्चेतसीदं च परिवारसमन्वितौ ॥ २६७ ॥
अहो परममाहात्म्यं तपसो भुवनातिगं । मुनेरेवंविधस्यापि यदन्यो विद्यते गुरुः ॥ २६८ ॥
ततस्तस्योपकंठे ते साधुनाधिष्ठिता ययुः । देवाश्च व्योमयानाश्च धर्मोत्कंठितचेतसः ॥ २६९ ॥
गत्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्यादरतो मुनिं । नातिदूरे नचात्यंतसमीपे स्थितिमाश्रिताः ॥ २७० ॥
ततस्तां परमां मूर्तिं तपोराशिसमुत्थया । प्रज्वलंतीं मुनेर्दीप्ता दृष्ट्वा देवनभश्चराः ॥ २७१ ॥
चिंतां कामपि संप्राप्ता धर्माचारसमुद्भवां । प्रफुल्लनयनांभोजा महाविनयसंगताः ॥ २७२ ॥
ततो देवनभोयानावंजलिं न्यस्य मस्तके । पप्रच्छतुर्मुनिं धर्मं फलं चास्य यथोचितं ॥ २७३ ॥
ततो जंतुहितासंगनित्यप्रास्थितमानसः । संसारकारणासंगदूरीकृतसमीहितः ॥ २७४ ॥
सजलांभोदगंभीरधीरया श्रमणो गिरा । जगाद परमं धर्मं जगतोभ्युदयावहं ॥ २७५ ॥
तस्मिन् गदति तद्देशे लतामंडपसंश्रिताः । ननृतुः शिखिसंघाता मेघनादविशंकिताः ॥ २७६ ॥

समाधाय मनो धर्मः श्रूयतां सुरखेचरौ । यथा जिनैः समुद्दिष्टो भुवनानंदकारिभिः ॥ २७७ ॥
धर्मशब्दनमात्रेण बहवः प्राणिनोऽधमाः । अधर्ममेव सेवंते विचारजडचेतसः ॥ २७८ ॥
मार्गोयमिति यो गच्छेत् दिशमज्ञाय मोहवान् । द्राघीयसापि कालेन नेष्टं स्थानं स गच्छति ॥
कथाकल्पितधर्माख्यमधर्मं मदमानसाः । प्राणिघातादिभिर्जातं सेवंते विषयाश्रिताः ॥ २८० ॥
ते ते भावेन संसेव्य मिथ्यादर्शनदूषिताः । तिर्यग्नरकदुःखानां प्रपद्यंते निधानतां ॥ २८१ ॥
कुहेतुजालसंपूर्णग्रंथार्थैर्गुरुदंडकैः । धर्मोपलिप्सया मूढास्ताडयंति नभस्तलं ॥ २८२ ॥
यद्यपि स्यात्कचित्किंचिद्धर्मं प्रति कुशासने । हिंसादिरहिताचारे शरीरश्रमदेशिने ॥ २८३ ॥
सम्यग्दर्शनहीनत्वान्मूलछिन्नं तथापि च । न ज्ञानं क्षुद्रचारित्रं तेषां भवति मुक्तये ॥ २८४ ॥
पार्थिवो लोष्टुलेशोपि वैडूर्यमपि पार्थिवं । न पार्थिवत्वसमान्यात्तयोस्तुल्यं गुणादिकं ॥ २८५ ॥
लोष्टुलेशसमो धर्मो मिथ्यादृग्भिः प्रकीर्तितः । वैडूर्यसदृशो जैनो धर्मसंज्ञा तु सर्वगा ॥ २८६ ॥
धर्मस्य हि दया मूलं तस्या मूलमहिंसनं । परिग्रहवतां पुंसां हिंसनं स तदोद्भवं ॥ २८७ ॥
तथा सत्यवचो धर्मस्तच्च यन्न परं सुखं । अदत्तादानमुक्तिश्च परनार्याश्च वर्जनं ॥ २८८ ॥
द्रविणाप्तिषु संतोषो हृषीकाणां निवारणं । तनूकृतिः कषायाणां विनयो ज्ञानसेविनां ॥ २८९ ॥

व्रतमेद्गृहस्थानां सम्यग्दर्शनचारिणां । आगाररहितानां तु शृणु धर्मं यथाविधिं ॥ २९० ॥
पंचोदारव्रतोत्तुंगमातंगस्कंधवर्तिनः । त्रिगुप्तदृढनीरंध्रकंकटच्छन्नविग्रहाः ॥ २९१ ॥
पादातेन समायुक्ताः समित्या पंचभेदया । नानातपोमहीतीक्ष्णशस्त्रयुक्तमनस्कराः ॥ २९२ ॥
वृतं कषायसामंतैर्मोहवारणवर्तिनं । भवारातिं विनिघ्नंति निरंबरमहानृपाः ॥ २९३ ॥
सर्वारंभपरित्यागे सम्यग्दर्शनसंगते । धर्मस्थितानगाराणामेष धर्मः समासतः ॥ २९४ ॥
त्रिलोकश्रीपरिप्राप्ते धर्मोयं हेतुतां गतः । एष एव परं प्रोक्तो मंगलं पुरुषोत्तमैः ॥ २९५ ॥
अन्यः कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुणः । त्रिलोकशिखरं येन प्राप्यते सुमहासुखं ॥ २९६ ॥
सागारेण जनः स्वर्गे भुंक्ते भोगान्महागुणान् । देवीनिवहमध्यस्थो मानसेन समाहृतान्॥२९७॥
निर्वाससां तु धर्मेण मोक्षं प्राप्नोति मानवः । अनौपम्यमनाबाधं सुखं यत्रांतवर्जितं ॥ २९८ ॥
स्वर्गगास्तु पुनश्च्युत्वा प्राप्य दैगंबरीं क्रियां । द्वित्रैर्भवैः प्रपद्यंते प्रकृष्टाः परमं पदं ॥ २९९ ॥
काकतालीययोगेन प्राप्ता अपि सुरालयं । कुयोनिषु पुनः पापा भ्रमंत्येव कुतीर्थिनः ॥ ३०० ॥
जैनमेवोत्तमं वाक्यं जैनमेवोत्तमं तपः । जैन एव परो धर्मो जैनमेव परं मतं ॥ ३०१ ॥
नगरं व्रजतः पुंसो वृक्षमूलादिसंगमः । नांतरीयकतामेति यथाखेदनिवारिणः ॥ ३०२ ॥

प्रस्थितस्य तथा मोक्षं जिनशासनवर्त्मना । देवविद्याधरादिश्रीरनुषंगेण जायते ॥ ३०३ ॥
विबुधेंद्रादिभोगानां हेतुत्वं यत्प्रपद्यते । जिनधर्मो न तच्चित्रं ते ह्यस्मात्सुकृतादपि ॥ ३०४ ॥
विपरीतं यदेतस्माद्गृहिश्रमणधर्मतः । चरितं तस्य संज्ञा न धर्म इति कीर्तितं ॥ ३०५ ॥
भ्रमंति येन तिर्यक्षु नानादुःखप्रदायिषु । वाहनात्ताडनाच्छेदाद्भेदाच्छीतोष्णसंगमात् ॥ ३०६ ॥
नित्यांधकारयुक्तेषु नरकेषु च भूरिषु । तुषारपवनाघातकृतकंपेषु केषुचित् ॥ ३०७ ॥
स्फुरन्स्फुलिंगरौद्राग्निज्वालालीढेषु केषुचित् । नानाकारमहारावयंत्रव्याप्तेषु केषुचित् ॥ ३०८ ॥
सिंहव्याघ्रवृकश्येनगृध्ररुद्धेषु केषुचित् । चक्रककचकुंतासिमोचिवृक्षेषु केषुचित् ॥ ३०९ ॥
विलीनत्रिपुसीसादिपानदायिषु केषुचित् । तीक्ष्णतुंडस्फुरत्क्रूरमक्षिकादिषु केषुचित् ॥ ३१० ॥
कृमिप्रकारसन्मिश्र रक्तपंकेषु केषुचित् । परस्परसमुद्भूतबाधाहेतुषु केषुचित् ॥ ३११ ॥
एवंविधेषु जीवानां सदा दुःखविधायिषु । दुःखं यन्नरकेषु स्यात्कः शक्तस्तत्प्रकीर्तितुं ॥ ३१२ ॥
यतो यथा पुरा भ्रांतौ युवां दुःखासु योनिषु । तथा पर्यटनं भूयः प्राप्स्यतो धर्मवर्जितौ॥३१३॥
इत्युक्ताभ्यां परिपृष्टस्ताभ्यां श्रमणसत्तमः । कथं कुयोनिषु भ्रांतावावामिति मुने वद ॥ ३१४ ॥
जन्मान्तरं ततोऽवोचत्तयोः संयममंडनः । मनो निधीयतां वत्साविति युक्त्वा मधुरं वचः ॥३१५॥

पर्यटंतौ युवामत्र संसारे दुःखदायिनि । परस्परस्य कुर्वाणौ वधं मोहपरायणौ ॥ ३१६ ॥
मानुष्यभावमायातौ कथंचित्कर्मयोगतः । अयं हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणं ॥ ३१७ ॥
व्याधस्तयोरभूदेको विषये काशिनामनि । श्रावस्त्यामपरोमात्यपदे स्थैर्यमुपागतः ॥ ३१८ ॥
सुयशोदत्तनामासौ प्रव्रज्यामाश्रितः क्षितौ । चचार तपसा युक्तो महतात्यंतरूपवान् ॥ ३१९ ॥
ततस्तं सुस्थितं देशे काश्यां प्राणिविवर्जिते । पूजनार्थं समायाताः सम्यग्दृष्टिकुलांगनाः ॥३२०॥
स्त्रीभिस्ततः परीतं तं व्याधोसौ वीक्ष्य योगिनं । अत्यक्ष्णोद्वाग्भिरुग्राभिः शस्त्रैः कुर्वन् विभीतिकां
निर्लज्जो वस्त्रमुक्तोयं स्नानवर्जितविग्रहः । मृगयायां प्रवृत्तस्य जातो मेऽमंगलं महत् ॥ ३२२ ॥
वदत्येवं ततो व्याधे धनुर्भीषणकारिणि । मुनेः कलुषतां प्राप्तं ध्यानं दुःखेन संभृतं ॥ ३२३ ॥
इति वा चिंतयत्क्रोधान्मुष्टिघातेन पापिनं । कणशश्चूर्णयाम्येनं व्याधं रूक्षवचोमुचं ॥ ३२४ ॥
ततः कापिष्टगमनं मुनिना यदुपार्जितं । तदस्य क्रोधसंभारात् क्षणाद्भस्ममुपागतं ॥ ३२५ ॥
ततोसौ कालधर्मेण युक्तो ज्योतिःसुरोऽभवत् । ततः प्रच्युत्य जातस्त्वं विद्युत्केशो नभश्चरः ३२६
व्याधोपि सुचिरं भ्रांत्वा भवद्रुममहावने । लंकायां प्रमदोद्याने शाखामृगगतिं गतः ॥ ३२७ ॥
ततोसौ निहतःस्त्र्यर्थं त्वया बाणेन चापलात् । प्राप्य पंचनमस्कारं जातोयं सागरामरः ॥३२८॥

एवं ज्ञात्वा पुनर्वैरं मुंचतं देवखेचरौ । माभूद्भूयोपि संसारे भवतोः परिहिंडनं ॥ ३२९ ॥
वांच्छतं नरमात्रेण शक्यं यन्न प्रशंसितुं । सिद्धानां तत्सुखं भद्रो भद्राचारपरायणौ ॥ ३३० ॥
नमतं प्रणतं देवैराखंडलपुरस्सरैः । भक्त्या परमया युक्तौ मुनिसुव्रतमीश्वरं ॥ ३३१ ॥
शरणं प्राप्य तं नाथं निष्ठितात्मप्रतिक्रियं । परकृत्यसमुद्युक्तं प्राप्स्यथः परमं सुखं ॥ ३३२ ॥
ततो मुनिमुखादित्यान्निर्गतेन वचोंशुना । परं प्रबोधमानीतस्तडित्केशः सरोजवत् ॥ ३३३ ॥
सुकेशसंज्ञके पुत्रे संक्रमय्य निजं पदं । शिष्यतामगमद्धीरो मुनेरंबरचारिणः ॥ ३३४ ॥
सम्यग्दर्शनसंज्ञानसच्चारित्रत्रयं ततः । समाराध्य गतः कालं बभूवामरसत्तमः ॥ ३३५ ॥
ततः किष्कुपुरस्वामी महोदधिरवाभिधः । कांताभिः सहितस्तिष्ठन् विद्युत्सदृशदीप्तिभिः ॥३३६॥
चंद्रपादाश्रये रम्ये महाप्रासादमूर्द्धनि । चारु गोष्टीसुधास्वादं विंदन् देवेंद्रवत्सुखं ॥ ३३७ ॥
वेगेन महतागत्य धवलांबरधारिणा । खेचरेणाग्रतो भूत्वा कृत्वा प्रणतिमादरात् ॥ ३३८ ॥
निवेदितस्तडित्केशः प्रव्रज्यां कारणान्वितां । प्राप्य भोगेषु निर्वेदं दीक्षणे मतिमादधे ॥ ३३९ ॥
प्रव्रजामीति चानेन गादितेंतःपुरान्महान् । उदतिष्ठद्गृहांतेषु विलापः प्रतिनादवान् ॥ ३४० ॥
तंत्रीवंशादिसन्मिश्रमृदंगध्वनितोपमः । प्रविलापः सुनारीणां मुनेरप्यहरन्मनः ॥ ३४१ ॥

तवार्पितः परप्रीत्या तडित्केशेन बालकः । सुकेशो नवराज्यस्थः पालनीयः सुतोधुना ॥३४२॥
इति विज्ञाप्यमानोपि युवराजेन सादरं । नेत्रमेघजलस्थूलधारावर्षविधायिना ॥ ३४३ ॥
निष्कंटकमिदं राज्यं भुंक्ष्व तावन्महागुणं । पुरंदर इवोदारैर्भोगैर्मानय यौवनं ॥ ३४४ ॥
एवं संचोद्यमानोपि मंत्रिभिर्दूनमानसैः । बहुभेदान्युदाहृत्य शास्त्राणि नयकोविदैः ॥ ३४५ ॥
अनाथान्नाथ नः कृत्वा त्वन्मनःस्थितमानसान् । विहाय प्रस्थितः क्वासि लता इव महातरुः॥३४६
इति प्रसाद्यमानोपि चरणानतमूर्द्धभिः । गुणौघप्रियकारीभिर्नारीभिः क्षरदश्रुभिः ॥ ३४७ ॥
गुणैर्नाथ तवोदारैर्बद्धां कालं चिरं सतीम् । प्रतिभज्य महालक्ष्मीं योजितां ललितां सदा॥३४८॥
व्रजसि क्वेति सामंतैर्गडांतैरश्रुधारिभिः । समं विज्ञाप्यमानोपि नृपाटोपविवर्जितैः ॥ ३४९ ॥
छित्वा स्नेहमयान्पाशान त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहं । प्रतिचंद्राभिधानाय दत्वा पुत्राय संपदं ॥३५०॥
विग्रहेपि निरासंगो जग्राहोग्रां समग्रधीः । धीरो दैगंबरीं लक्ष्मीं क्ष्मातलस्थिरचंद्रमाः ॥३५१॥
ततोध्यानगजारूढस्तपस्तीक्ष्णपतत्रिणा । शिरश्छित्वा भवारातेः प्रविष्टः सिद्धकाननं ॥३५२॥
प्रतींदुरपि पुत्राय किष्किंधाय ददौ श्रियं । यौवराज्यं कनिष्ठाय तस्मै चांध्रकरूढये ॥ ३५३ ॥
अन्येद्युः प्रतिपन्नश्च जैनमार्गं निरंबरं । सिद्धैरासेवितं स्थानं गतश्चामलयोगतः ॥ ३५४ ॥

ततस्तावुद्यतौ कृत्यं भ्रातरौ भुवि चक्रतुः । अन्योन्याक्रांततेजस्कौ सूर्याचंद्रमसाविव ॥ ३५५ ॥
अत्रांतरे नभोगानां पर्वते दक्षिणे स्थितौ । रथनूपुरनामास्ति पुरं सुरपुराकृतिः ॥ ३५६ ॥
आसीत्तत्रोभयोः श्रेण्योः स्वामी भूरिपराक्रमः । दधावशनिवेगाख्यां यः शत्रुत्रासकारिणीं ॥ ३५७ ॥
पुत्रो विजयसिंहश्चनाम्नादित्यपुरं परं । वांछन् रूपाबलेपेन प्रयातोथ स्वयंवरं ॥ ३५८ ॥
विद्यामंदरसंज्ञस्य सुतामंबरचारिणः । वेगवत्यां समुत्पन्नां कांतिदिग्धनभस्तलां ॥ ३५९ ॥
अथासौ यौवनप्राप्तां वीक्ष्य पुत्रीं मनोहराम् । स्वजनानुमतोमोहात्स्वयंवरमरीरचत् ॥ ३६० ॥
अपरेपि खगाः सर्वे विमानैर्मणिशालिभिः । पूरयंतो नभः शीघ्रं गताः भूषितविग्रहाः ॥ ३६१ ॥
ततो मंचेषु रम्येषु रत्नस्तंभधृतात्मसु । तुंगासनसमृद्धेषु स्फुरन्मणिमरीचिषु ॥ ३६२ ॥
मितेन परिवारेण युक्ता देहोपयोगिना । उपविष्टा यथास्थानं प्रधाना व्योमचारिणः ॥ ३६३ ॥
श्रीमालायां ततस्तेषां सर्वेषां व्योमचारिणां । मध्यस्थायां समं पेतुर्दृष्टेंदीवरपंक्तयः ॥ ३६४ ॥
अथ स्वयंवराज्ञानां प्रवृत्ता व्योमचारिणां । मदनाश्लिष्टचित्तानां इति सुंदरविभ्रमा ॥ ३६५ ॥
निष्कंपमपि मूर्द्धस्थं मुकुटं कश्चिदुन्नतं । अकरोत्किल निष्कंपं रत्नांशुच्छन्नपाणिना ॥ ३६६ ॥
कश्चित्कर्परमाधाय कटिपार्श्वे सजृंभणः । चक्रे देहस्य वलनं स्फुटत्संधिकृतस्वनं ॥ ३६७ ॥

प्रदेशेपि स्थितां कश्चिदुज्ज्वलामसिपुत्रिकां । असारयत्करायेण कटाक्षकृतवीक्षणां ॥ ३६८ ॥
पार्श्वगे पुरुषे कश्चिच्चलयत्येव चामरं । सलीलमंशुकांतेन चक्रे वीजनमानने ॥ ३६९ ॥
सव्येन वक्त्रमाच्छाद्य कश्चिदुत्तलपाणिना । संकोच्य दक्षिणं बाहुं व्याक्षिपद्बद्धमुष्टिकं ॥ ३७० ॥
पादासनस्थितं कश्चिदुद्यम्य चरणं शनैः । वामोरुफलके चक्रे दक्षिणं रतिदक्षिणः ॥ ३७१ ॥
पादांगुष्ठेन कश्चिच्च नेत्रांतेक्षितकन्यकः । कृत्वा पाणितले गंडं लिलेख चरणाशनं ॥ ३७२ ॥
गाढमप्यपरो बद्धमुन्मुच्य कटिसूत्रकं । बबंध शनकैर्भूयः शेषाभमणिचक्रकं ॥ ३७३ ॥
स्फुटदन्योन्यसंदष्टः प्रोत्तानविकरांगुलिः । वक्षः कश्चित्समुद्यम्य बाहुतोरणमूर्द्धयत् ॥ ३७४ ॥
पार्श्वस्थस्यापरो हस्तं सख्युरास्फाल्य सस्मितं । कथां चक्रे विना हेतोः कन्याक्षिप्तचलेक्षणः ३७५
कृतचंदनचर्चेन्यः कुंकुमस्थासकाचिते । चक्षुर्वक्षसि चिक्षेप विशाले कृतहस्तके ॥ ३७६ ॥
कश्चित्कुंतलभालस्थां गृहीत्वा केशवल्लरीं । कुटिलामपि वामायां प्रदेशिन्यामयोजयत् ॥ ३७७ ॥
अधरं कश्चिदाकृष्य वामहस्तेन मंथरं । स्वच्छतांबूलसच्छायमैक्षिष्टभ्रुवमुन्नयन् ॥ ३७८ ॥
अपरो भ्रमयत्पद्मं बद्धभ्रमरमंडलं । सव्येतरेण हस्तेन विसर्पन् कर्णिकारजः ॥ ३७९ ॥
वीणाभिर्वेणुभिः शंखैर्मृदंगैर्झल्लरैस्तथा । जनितोथ महानादः काहलानकमंडकैः ॥ ३८० ॥

मंगलानि प्रयुक्तानि वंदिभिर्वृद्धवृंदकैः । महापुरुषचेष्टाभिर्निबद्धानि प्रमोदिभिः ॥ ३८१ ॥
महानादस्य तस्यांते धात्री नाम्ना सुमंगला । वामेतरकरोपात्तहेमवेत्रलता ततः ॥ ३८२ ॥
जगाद वचनं कन्यां विनयादाननाननां । प्राप्तकल्पलताकारां मणिहेमविभूषणैः ॥ ३८३ ॥
सरुयां सन्यस्तविस्रंसिमृदुपाणिसरोरुहां । ऊर्द्ध्वस्थिता स्थितामूर्द्ध्वं मकरध्वजवर्णिनीं ॥ ३८४ ॥
नभस्तिलकनाम्नोयं नगरस्य पतिः सुते । उत्पन्नो विमलायां च चंद्रकुंडलभूपतेः ॥ ३८५ ॥
मार्तंडकुंडलो नाम्ना मार्तंडविजयी रुचा । प्रकांडतां परां प्राप्तो मंडलाद्यो गुणात्मकात् ॥३८६॥
गुणचिंताप्रवृत्तासु गोष्ठीष्वस्यादितो बुधाः । नाम गृह्णंति रोमांचकंटकव्याप्तविग्रहाः ॥ ३८७ ॥
साकमेतेन रंतुं चेदस्ति ते मनसः स्पृहा । वृणीष्वैनं ततो दृष्टसमस्तग्रंथगर्भकं ॥ ३८८ ॥
ततस्तं यौवनादीपत्प्रच्युतं खेचराधिपं । आननानतिमात्रेण प्रत्याख्यातवती शुभा ॥ ३८९ ॥
भूयोऽवदत्ततो धात्री तनये यच्छ लोचने । पुरुषाणामधीशेस्मिन् कांतिदीप्तिविभूतिभिः ॥३९०॥
अयं रत्नपुराधीशो लक्ष्मीविद्यांगयोः सुतः । नाम्ना विद्यासमुद्घातो बहुविद्याधराधिपः ॥३९१॥
अस्य नाम्नि गते कर्णजाहं वीरप्रकीर्तने । शत्रवो गृह्णते वातधूताश्वस्थदलस्थितिं ॥ ३९२ ॥
अस्य वक्षसि विस्तीर्णे कृतहारोपधानके । कुनृपभ्रांतिभिः खिन्ना लक्ष्मी विश्रांतिमागता ३९३

अस्यांके यदि ते प्रीतिः स्थातुमस्ति मनोहरे । गृहाणैनं तडिन्माला युज्यतां मंदराद्रिणा ३९४
ततः प्रत्याचचक्षे तं चक्षुषैवर्जुदर्शनात् । वांछिते हि वरत्वेन दृष्टिश्चंचलतां व्रजेत् ॥ ३९५ ॥
ततोसौ तदभिप्रायवेदिनी तां सुमंगला । अपरं दर्शयन्ती न–रेशमिति चावदत् ॥ ३९६ ॥
वज्रायुधस्य पुत्रोयं वज्रशीलांगसंभवः । वज्रपंजरनामानमधितिष्ठति पत्तनं ॥ ३९७ ॥
अस्य बाहुद्वये लक्ष्मीर्दिनेशकरभासुरे । चंचलापि स्वभावेन संयतेवावतिष्ठते ॥ ३९८ ॥
सत्यमन्येपि विद्यंते नाममात्रेण खेचराः । तेषां खद्योततुल्यानामयं भास्करतां गतः ॥ ३९९ ॥
मानेन तुंगतामस्य प्राप्तस्य शिरसः परां । संप्राप्तुं पुनरुत्कर्षं मुकुटं स्फुटरत्नकं ॥ ४०० ॥
स्वरूपे प्रतिपद्यस्व पतिं विद्याभृतामिमं । विषयांश्चेत्समान् शच्या भोक्तुं धीस्तव विद्यते॥४०१॥
ततः खेचरभानुं तं दृष्ट्वा कन्या कुमुद्वती । संकोचं परमं याता धात्र्येति गदिता पुनः॥ ४०२ ॥
चित्रांवरस्य पुत्रोयं पद्मश्रीकुक्षिसंभवः । नित्यं चंद्रपुराधीशो नाम्ना चंद्राननो नृपः ॥ ४०३ ॥
पश्य वक्षोस्य विस्तीर्णं चारुचंदनचर्चितं । चंद्ररश्मिपरिष्वक्तं कैलाशतटसन्निभं ॥ ४०४ ॥
उच्छ्वलत्करभारोस्य हारो वक्षसि राजते । उत्सर्पत्सीकरो दूरं कैलाश इव निर्झरः ॥ ४०५ ॥
नामाक्षरकरैरस्य मनश्लिष्टमरेरपि । प्रयाति परमं ल्हादं दुःखतापविवर्जितं ॥ ४०६ ॥

याति चेदिह ते चेतः प्रसादं सौम्यदर्शने। रजनीव शशांकेन लभस्वेतेन संगमं ॥ ४०७ ॥
ततस्तस्मिन्नपि प्रीतिं न मनोस्याः समागतं। कमलिन्या यथा चंद्रे नयनानंदकारिणि ॥४०८॥
पुनराह ततो धात्री कन्ये पश्य पुरंदरं। अवतीर्णं महीमेतं भवतीसंगलालसं ॥ ४०९ ॥
सुतोयं मेरुकांतस्य श्रीरंभागर्भसंभवः। स्वामी मंदरकुंजस्य पुरस्यांभोधरध्वनिः ॥ ४१० ॥
शक्रा यस्य न संग्रामे दृष्टिं सम्मुखमागतां। प्रतिपत्तुं कुतो वाणान् शत्रवो भयदारिताः ४११
संभावयामि देवानां नाथोप्यस्माद् व्रजेज्जयं। अभग्नप्रसरो ह्यस्य प्रतापो भ्रमति क्षितिं ॥४१२॥
उन्नतं चरणेनास्य शिरस्ताडय सुस्वने। प्रस्तावे प्रेमयुक्तेषु कलहेषु नितंचिनि ॥ ४१३ ॥
असावपि ततस्तस्या न लेभे मानसे पदं। चित्रा हि चेतसो वृत्तिः प्रजानां कर्महेतुका ॥४१४॥
अभाषयदिमां बालां ततोन्यं व्योमचारिणं। धात्री सदःसरस्यब्जं हंसीमुत्कलिका यथा॥४१५॥
उवाच च सुते पश्य नृपमेतं महाबलं। मनोजवेन वेगिन्यां संभूतं वायुरंहसं ॥ ४१६ ॥
नाकार्द्धसंज्ञकस्यायं पुरस्य परिरक्षिता। अतिक्रम्य स्थिता यस्य गणतां विमला गुणाः॥४१७॥
भ्रूसमुत्क्षेपमात्रेण सर्वं यः क्षितिमंडलं। भ्राम्यति स्वांगवेगोत्थवातपातितभूधरः ॥ ४१८ ॥
विद्याबलेन यः कुर्याद् भूमिं गगनमध्यगां। दर्शयेद्वा ग्रहान्सर्वान् धरणीतलचारिणः ॥ ४१९॥

तुरीयं वा सृजेल्लोकं सूर्यं वा चंद्रशीतलं । चूर्णयेद्वा धराधीशं स्थापयेद्वानिलं स्थिरं ॥ ४२० ॥
शोषयेद्वांभसां नाथं सृष्टिं कुर्वीत वा नभः । भाषितेनोरुणा किं वा भवेद्यस्य यथेप्सितं ॥४२१॥
तत्रापि न मनस्तस्याश्वक्रे स्थानमयुक्तिकं । वदत्येषेति चाह्वासीत्सर्वशास्त्रकृतश्रमा ॥ ४२२ ॥
अन्यानपि बहूनेवं धात्रीदर्शितसंपदः । विद्याबलसमायुक्तान्कन्या तत्याज खेचरान् ॥ ४२३ ॥
ततोसौ चंद्रलेखेव व्यतीयाय नभश्चरान् । पर्वता इव ते प्राप्ताः श्यामतां शोकवाहिनः ॥४२४॥
खेचराणां विलक्षाणां दृष्ट्वान्योन्यं गतत्विषां । प्रवेष्टुं धरणीमासीदभिप्रायस्तपावतः ॥ ४२५ ॥
अपकर्ण्य ततो धात्रीं खेचरद्युतिवर्णिनीं । तस्याः पपात किष्कंधकुमारे दृष्टिरादरात् ॥ ४२६ ॥
ततो मालागुणः कंठे दृष्टिरेवास्य संगतः । अन्योन्यं च समालापः स्निग्धया रचितोनया॥४२७॥
ततो विजयसिंहस्य किष्कंधांध्रकयोर्गता । दृष्टिराहूय तावेवं विद्यावीर्येण गर्वितः ॥ ४२८ ॥
विद्याधरसमाजोयं क्व भवंताविहागतौ । विरूपदर्शनौ क्षुद्रौ वानरौ विनयच्युतौ ॥ ४२९ ॥
नेह देशे वनं रम्यं फलैरास्ति कृतानतिः । नवा निर्झरधारिण्यः सुंदरा गिरिकंदराः ॥ ४३० ॥
वृंदानि वानरीणां वा कुर्वंति कुविचेष्टितं । मांसलोहितवक्त्राणां प्रवृत्तानां यथेप्सितं ॥ ४३१ ॥
आहूतावेह केनैतौ पशुकपिनिशाचरौ । दूताधमस्य तस्याद्य करोमि विनिपातनं ॥ ४३२ ॥

निर्घाट्येतामिमावस्माद्देशाच्छाखामृगौ खलौ । वृथाविद्याधरीश्रद्धां दूरं नयत चानयोः ॥४३३॥
रुष्टौ ततो वचोभिस्तौ परुषैर्वानरध्वजौ । महांतं क्षोभमायातौ सिंहाविव गजान्प्रति ॥ ४३४ ॥
ततः स्वामिपरीवादमहावाताहता सती । गता क्षोभं चमूवेला रौद्रचेष्टाविधायिनी ॥ ४३५ ॥
कश्चिदास्फालयद्वाममंसं दक्षिणपाणिना । वेगाघातसमुत्सर्पद्रक्तकशीकरजालकं ॥ ४३६ ॥
कश्चिद् दृष्टिं विचिक्षेप क्षेपीयः क्षुब्धमानसः । कोपावेशारुणां भीमां प्रलयोल्कामिवारिषु॥४३७॥
कश्चिद्दक्षिणहस्तेन वक्षः कंप्रेण कोपतः । अस्पृक्षत्सकलं क्रूरकर्म वांच्छन् महास्पदं ॥ ४३८ ॥
करं करेण कश्चिच्च स्मितयुक्तमताडयत् । तथा यथा गतः पांथः श्रुतेः वधिरतां चिरं ॥ ४३९ ॥
मूलजालदृढाबद्धमहापीठस्य शाखिनः । कश्चिदुन्मूलनं चक्रे चलत्पल्लवधारिणः ॥ ४४० ॥
मंचस्य स्तंभमादाय बभंजांसे परः कपिः । क्षुद्रभंगैर्नभस्तस्य व्याप्तमंतरवर्जितैः ॥ ४४१ ॥
गात्रं वलितमेकेन स्फुटद् दृढवृणांकितं । शोणितोदारधाराभिरुत्पातघनसन्निभं ॥ ४४२ ॥
कृताट्टहासमन्येन हसितं विवृताननं । शब्दात्मकमिवाशेषं कुर्वता भुवनांतरं ॥ ४४३ ॥
धूतोन्येन जटाभारच्छन्नाशेषदिगाननः । छायया तस्य संजाता शर्वरीव तदा चिरं ॥ ४४४ ॥
संकोचिते भुजे कश्चिद्वामे दक्षिणपाणिना । चकार ताडनं घोरं निर्घातापातभीषणं ॥ ४४५ ॥

सहध्वं सांप्रतं वाचः परुषायाः फलं खलाः । दुःखगा इति तारेण ध्वनिना मुखराननाः॥४४६॥
अपूर्वायाः पराभूते स्ततस्ते सहनाद्भ्रशं । कपयोभिमूखीभूता हंतुं खेचरवाहिनं ॥ ४४७ ॥
गजा गजैस्ततः सार्द्धं रथारूढा रथस्थितैः । पदातयश्च पादातैः चकुर्युद्धं सुदारुणं ॥ ४४८ ॥
सेनयोरुभयोर्जातस्ततस्तत्र रणो महान् । दूरस्थितामरव्रातजनितोदारविस्मयः ॥ ४४९ ॥
श्रुत्वा च तत्क्षणं युद्धं सुकेशो राक्षसाधिपः । मनोरथ इवायातः किष्कंधांध्रकयोः सुहृत् ॥४५०॥
अकंपनसुताहेतोर्यथा युद्धमभूत्परं । तथेदमपि संवृत्तं बीजं युद्धस्य योषितः ॥ ४५१ ॥
यावच्च तुमुलं तेषां वर्तते खगरक्षसां । तावदादाय तां कन्यां किष्किधः कृतितां गतः ॥४५२॥
आहूय चाभियातस्य तावदंध्रकभूभृता । कृपाणेन शिरस्तुंगं जयसिंहस्य पातितं ॥ ४५३ ॥
तेनैकेन विना सैन्यमितश्चेतश्च तद्गतं । आत्मनेव विना देहे हृषीकाणां कुलं बलं ॥ ४५४ ॥
ततः सुतवधं श्रुत्वा वज्रेणेव समाहतः । शोकेनाशनिवेगोभून्मूर्छाधतमसावृतः ॥ ४५५ ॥
ततः स्वदारनेत्रांबुसिक्तवक्षःस्थलश्चिरात् । गतः प्रबोधमाकारं बभार क्रोधभीषणं ॥ ४५६ ॥
ततस्तस्य समाकारं परिवर्गोपि नेक्षितुं । शशाक प्रलयोत्पातभास्कराकारसन्निभं ॥ ४५७ ॥
सर्वविधायुधैः सार्द्धं ततोसौ शस्त्रभासुरैः । गत्वा किष्कुपुरस्याभूत्तुंगशाल इवापरः ॥ ४५८ ॥

विदित्वा नगरं रुद्धं ततस्तौ वानरध्वजौ । तडित्केशिसमायुक्तौ निष्क्रांतौ रणलालसौ ॥४५९॥
गदाभिः शक्तिभिर्बाणैः पाशैः प्राशैर्महासिभिः । ततो दानवसैन्यं तद्ध्वस्तं वानरराक्षसैः ४६०
दिशा ययांध्रको यातःकिष्किंधो वा महाहवे । सुकेशो वा तया जाता मार्गाश्चूर्णितखेचराः ॥
तत्रपुत्रवधक्रोधवन्हिज्वालाप्रदीपितः । अंध्रकाभिमुखो जातो वज्रवेगः कृतध्वनिः ॥ ४६२ ॥
बालोयमंध्रकः पापोशनिवेगोयमुद्धतः । इति ज्ञात्वोत्थितो योद्धुं किष्किंधोशनिरंहसा ॥४६३॥
विद्युद्वाहननाम्नासौ तत्सुतेन पुरस्कृतः । अभवच्च तयोर्युद्धं दारजातं पराभवं ॥ ४६४ ॥
यावच्च तत्तयोर्युद्धं वर्ततेत्यंतभीषणं । निहतोशनिवेगेन तावदंध्रकवानरः ॥ ४६५ ॥
ततोसौ पतितो बालः क्षितौ तेजोविवर्जितः । प्रत्यूषशशिनश्च्छायां बभार गतचेतनः ॥४६६॥
किष्किंधेनापि निक्षिप्ता विद्युद्वाहनवक्षसि । शिला स ताडितो मूर्च्छां प्राप्य बोधं पुनर्गतः ४६७
आदायतां शिलां तेन ततो वक्षसि ताडितः । किष्किंधोपि गतो मूर्छां घूर्णितेक्षणमानसः ४६८
लंकेंद्रेण ततो नीतः प्रेम संसक्तचेतसा । किष्कुं प्रमोदमुत्क्षिप्य चिरात्प्राप्तश्च चेतनां ॥ ४६९ ॥
उन्मील्य स ततो नेत्रे यदा नापश्यदंध्रकं । तदापृच्छन्मम भ्राता वर्तते क्वेति पार्श्वगान् ॥४७०॥
ततः प्रलयवातेन क्षोभितस्यांबुधेः समं । शुश्रावांतःपुराक्रंदमंध्रकध्वंसहेतुकं ॥ ४७१ ॥

विप्रलापं ततश्चक्रे प्रतप्तः शोकवन्हिना । चिरं भ्रातृगुणध्यानकृतदुःखोर्मिसंततिः ॥ ४७२ ॥
हा भ्रातर्मयि सत्येवं कथं प्राप्तोसि पंचतां । दक्षिणः पतितो बाहुस्त्वयि मे पातमागते॥४७३॥
दुरात्मना कथं तेन पापेन विनिपातितं । शस्त्रं बाले त्वयि क्रूरं धिक्तमन्यायवर्तिनं ॥ ४७४ ॥
अपश्यन्नाकुलोऽभूवं यो भवंतं निमेषतः । सोहं वद कथं प्राणान् धारयिष्यामि सांप्रतं ॥४७५॥
अथवा निर्मितं चेतो वज्रेण मम दारुणं । यज्ज्ञात्वापि भवन्मृत्युं शरीरं न विमुंचति ॥ ४७६ ॥
बाल ते स्मितसंयुक्तं वीरगोष्ठीसमुद्भवं । स्मरन्स्फुटसमुल्लासं दुःखं प्राप्नोमि दुस्सहं ॥ ४७७ ॥
यद्यद्विचेष्टितं सार्द्धं क्रियमाणं त्वया पुरा । प्रसेकममृतेनेव कृतवत्सर्वगात्रकं ॥ ४७८ ॥
स्मर्यमाणं तदेवेदमधुना मरणं कथं । प्रयच्छति विषेणैव सेकं मर्मविदारणं ॥ ४७९ ॥
ततोसौ विलपन् भूरि भ्रातृस्नेहातिविक्लवः । सुकेशादिभिरानीतः प्रबोधमिति भाषणात् ४८०
युक्तमेतन्न धीराणां कर्तुं क्षुद्रविचेष्टितं । शोको हि पंडितैर्दृष्टः पिशाचो भिन्ननामकः ॥ ४८१ ॥
कर्मणां विनियोगेन वियोगः सह बंधुना । प्राप्ते तत्रापरं दुःखं शोको यच्छति संततं ॥ ४८२ ॥
प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जंतुना सप्रयोजनः । व्यापारः संततं कृत्यः शोकश्चायमनर्थकः ॥ ४८३ ॥
प्रत्यागमः कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते । ततोन्यानपि संगृह्य विदधीत जनः शुचं ॥ ४८४ ॥

शोकः प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमं । पापानामयमुद्रेकः महामोहप्रवेशनः ॥ ४८५ ॥
तदेवं वैरिणं शोकं परित्यज्य प्रसन्नधीः । कृत्ये कुरु मतिन्यासं नानुबंधं त्यजत्यरिः ॥ ४८६ ॥
मूढाः शोकमहापंके मग्नाः शेषामपि क्रियां । नाशयंति तदायत्तजीवितैर्वीक्षिता जनैः ॥४८७॥
बलीयान् वज्रवेगोयमस्मन्नाशस्य चिंतकः । प्रतिकर्तव्यमस्माभिश्चिंतनीयमिहाधुना ॥ ४८८ ॥
बलीयसि रिपौ गुप्तिं प्राप्य कालं नयेद् बुधः । तत्र तावदवाप्नोति न विकारमरातिजं(कं) ४८९
प्राप्य तत्र स्थितः कालं कुतश्चिद् द्विगुणं रिपुं । साधयेन्नहि भूतीनां एकस्मिन्सर्वदा रतिः॥४९०॥
अतः परंपरायातमस्माकं कुलगोचरं । अलंकारपुरं नाम स्थानं मे स्मृतिमागतं ॥ ४९१ ॥
कुलवृद्धास्तमस्माकं शंसंत्यविदितं परैः । प्राप्य तत्स्वर्गलोकेपि न कुर्वीत पदं मनः ॥ ४९२ ॥
तस्मादुत्तिष्ठ गच्छामस्तत्पुरं रिपुदुर्गमं । अनयो हि महानेष यत्कालस्यातिपातनं ॥ ४९३ ॥
एवमन्विष्य न(निः)शोको यदा तीव्रो नि(न)वर्तते । श्रीमालादर्शनादस्य ततोसौ विनिवर्तितः ॥
ततस्तौ परिवर्गेण समस्तेन समन्वितौ । प्रस्थितौ दर्शनं प्राप्तौ विद्युद्वाहनविद्विषः ॥ ४९५ ॥
ततोसौ पृष्ठतो गंतुं प्रवृत्तो धावतोस्तयोः । भ्रातृघातेन संक्रुद्धः शत्रुनिर्मूलनोद्यतः ॥ ४९६ ॥
भग्नाः किलानुसर्तव्याः शत्रवो नेति भाषितं । नीतिशास्त्रशरीरज्ञैः पुरुषैः शुद्धबुद्धिभिः ॥४९७॥

निहतश्च तव भ्राता येन पापेन वैरिणा । प्रापितोऽसौ महानिद्रां विशिखैरंधको मया ॥ ४९८ ॥
तस्मात्पुत्र निवर्तस्व नैतेस्माकं कृतागसः । अनुकंपा हि कर्तव्या महता दुःखिते जने ॥४९९॥
पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना । जीवन्मृतस्य तस्यान्यत्क्रियतां किं मनस्विना ॥५००॥
यावदेवं सुतं शास्ति वज्रवेगो वशस्थितिं । अलंकारपुरं प्राप्तास्तावद्वानरराक्षसाः ॥ ५०१ ॥
पातालावस्थिते तत्र रत्नालोकचिते पुरे । तस्थुः शोकं प्रमोदं च वहंतो भयवर्जिताः ॥ ५०२ ॥
अन्यदाशनिवेगोथ दृष्ट्वा शरदि तोयदं । क्षणाद्विलयमायातं विरक्तो राज्यसंपदि ॥ ५०३ ॥
सुखं विषययोगेन विज्ञाय क्षणभंगुरं । मनुष्यजन्म चात्यंतदुर्लभं भवसंकटे ॥ ५०४ ॥
सहस्रारं सुतं राज्ये स्थापयित्वा विधानतः । समं विद्युत्कुमारेण बभूव श्रमणो महान् ॥५०५॥
शशासात्रांतरे लंकां निर्घातो नाम खेचरः । नियुक्तोशनिवेगेन महाविद्यापराक्रमः ॥ ५०६ ॥
एकदोत्थाय बलिवत्पातालनगरोदरात् । स वनक्ष्माधरं पश्यन् शनैरवनिमंडलं ॥ ५०७ ॥
विदित्वोपशमप्राप्तान् शत्रून् भयविवर्जितः । स श्रीमालो गतो मेरुं किष्किंधो वंदितुं जिनं ५०८
प्रत्यागच्छंस्ततोपश्यद्दक्षिणोदन्वतस्तटे । अटवीं सुरकुर्वाभां पृथ्वीकर्णतटाभिधां ॥ ५०९ ॥
श्रीमालं चाब्रवीदेवं वीणामिव सुखस्वरां । वक्षःस्थलस्थितां वामबाहुना कृतधारणां ॥५१०॥

देवि पश्याटवीं रम्यां कुसुमांचितपादपां । सीमंतिनीमिव स्वच्छमंदगत्यापगांभसां ॥ ५११ ॥
शरज्जलधराकारो राजतेयं महीधरः । मध्येस्याः शिखरैस्तुंगैर्धरणीमौलिसंज्ञितः ॥ ५१२ ॥
कुंदशुभ्रसमावर्तफेनमंडलमंडितैः । निर्झरैर्हसतीवायमट्टहासेन भासुरः ॥ ५१३ ॥
पुष्पांजलिं प्रकीर्यायं तरुशाखाभिरादरात् । अभ्युत्थानं करोतीव चलत्तरुवनेन नौ ॥ ५१४ ॥
पुष्पामोदसमृद्धेन वायुना घ्राणलेपिना । प्रत्युद्गतीं करोतीव नमनं च नमत्तरुः ॥ ५१५ ॥
वध्वेव धृतवान् गाढं व्रजंतं मामयं गुणैः । अतिक्रम्य न शक्नोमि गंतुमेतुं महीधरं ॥ ५१६ ॥
आलयं कल्पयाम्यत्र भूचरैरतिदुर्गमं । प्रसादं मानसं गच्छत्सूचयत्यत्र मे शुभं ॥ ५१७ ॥
अलंकारपुरावासे पातालोदरवर्तिने । खिन्नं खिन्नं मम स्वांतं रतिमत्र प्रयास्यति ॥ ५१८ ॥
इत्युक्त्वानुमतालापः प्रियया विस्मयाकुलः । उत्सारयन् घनव्रातमवतीर्णो धराधरं ॥ ५१९ ॥
सर्वबांधवयुक्तेन तेन स्वर्गसमं पुरं । क्षणात्तुंगप्रमोदेन रचितं गिरिमूर्द्धनि ॥ ५२० ॥
अभिधानं कृतं चास्य निजमेव यशस्विना । यतोद्यापि पृथिव्यां तत्किष्किंधपुरमुच्यते ॥५२१॥
पर्वतोपि स किष्किंधः प्रख्यातस्तस्य संगमात् । पूर्वं तु मधुरित्यासीन्नाम तस्य जगद्गतं ॥५२२॥
सम्यग्दर्शनयुक्तोसौ जिनपूजासमुद्यतः । भुंजानः परमान्भोगान्सुखेन न्यवसच्चिरं ॥ ५२३ ॥

तस्माच्च संभवं प्राप श्रीमालायां सुतद्वयं । ज्येष्ठः सूर्यरजा नाम ख्यातोऽक्षरजास्तथा ॥ ५२४ ॥
सुता च सूर्यकमला जाता कमलकोमला । यया विद्याधराः सर्वे शोभया विक्लवीकृताः ॥५२५॥
अथ मेघपुरे राजा मेरुर्नाम नभश्चरः । मघोन्यां तेन संभूतो मृगारिदमनः सुतः ॥ ५२६ ॥
तेन पर्यटता दृष्टा किष्किंधतनयान्यदा । तस्यामुत्कंठितो लेभे न स नक्तं दिवा सुखं ॥५२७॥
अभ्यर्थिता सुहृद्भिः सा तदर्थं सादरैस्ततः । संप्रधार्य समं देव्या दत्ता किष्किंधभूभृता ॥५२८॥
निर्वृत्तं च विधानेन तयोर्विवाहमंगलं । किष्किंधनगरे रम्ये ध्वजादिकृतभूषणे ॥ ५२९ ॥
प्रतिगच्छन् स तामूढा न्यवसत्कर्णपर्वते । कर्णकुंडलमेतेन नगरं तत्र निर्मितं ॥ ५३० ॥
अलंकारपुरेशस्य सुकेशस्याथ सूनवः । इंद्राण्याः जन्म संप्रापुः क्रमेण पुरुविक्रमाः ॥ ५३१ ॥
अमीषां प्रथमो माली सुमाली चेति मध्यगाः । कनीयान्माल्यवान् ख्यातो विज्ञानगुणभूषणः ॥
अहरन्मानसं पित्रोर्बंधूनां द्विषतां तथा । तेषां क्रीडाकुमाराणां देवानामिव चाद्भुता ॥ ५३३ ॥
सिद्धविद्यासमुद्भूतवीर्योद्धतक्रियास्ततः । निवारिताः पितृभ्यां ते यत्नादिति पुनः पुनः ॥५३४॥
रंतुं चेद्यात किष्किंधं पुत्रा कौमारचापलात् । मात्राजिष्ट समीप त्वं जातुचिद्दक्षिणांबुधेः ॥५३५॥
ततः प्रणम्य तौ पृष्टौ पितरौ तत्र कारणं । कुतूहलस्य वाहुल्याद्वीर्यशैशवसंभृतात् ॥ ५३६ ॥

अनाख्येयमिदं वत्सा इति तौ विहितोत्तरौ । सुतरामनुबंधेन सुतैः पृष्टौ सचाटुभिः ॥ ५३७ ॥
ततस्तेभ्यः सुकेशेन कथितं शृणुतात्मजाः । हेतुना विदितेनात्र यद्यवश्यं प्रयोजनं ॥ ५३८ ॥
पुर्यामशनिवेगेन लंकायां स्थापितः पुरा । निर्घातो नामतः क्रूरः खेचरो बलवानलं ॥ ५३९ ॥
कुलक्रमेण सास्माकमागता नगरी शुभा । रिपोस्तस्माद्भयात्त्यक्त्वा नितांतमसुवत्प्रिया ॥५४०॥
देशे देशे चरास्तेन नियुक्ताः पापकर्मणा । दत्तावधानाः सततमस्मच्छिद्रगवेषणे ॥ ५४१ ॥
यंत्राणि च प्रयुक्तानि यानि कुर्वंति मारणं । विदित्वा रमणाशक्तान्भवतो गगनांगणे ॥५४२॥
निघ्नंति तानि रंध्रेषु कृत्वा रूपेण लोभनं । प्रमादाचरणानीवाशक्तं तपसि योगिनं ॥ ५४३ ॥
एवं निगदितं श्रुत्वा पितृदुःखानुचिंतनात् । निःश्वस्य मालिना दीर्घं समुद्भूताश्रुचक्षुषा ॥५४४॥
क्रोधसंपूर्णचित्तेन कृत्वा गर्वस्मितं चिरं । निरीक्ष्य बाहुयुगलं प्रगल्भमिति भाषितं ॥ ५४५ ॥
इयंतं समयं तात कस्मान्नो न निवेदितं । अहो स्नेहापदेशेन गुरुणा वंचिता वयं ॥ ५४६ ॥
अविधाय नराःकार्यं ये गर्जंति निरर्थकं । महांतं लाघवं लोके शक्तिमंतोपि यांति ते ॥५४७॥
आस्तां ततः फले नैव शमतां तात यास्यसि । तन्मर्यादं कृतं चेदं मया चूडाविमोक्षणं॥५४८॥
अथामंगलभीताभ्यां वाचा ते न निवारिताः । पितृभ्यां तनया यान्ति स्निग्धदृष्ट्यानुवीक्षिताः ॥

पातालादथ निर्गत्य यथा भवनवासिनः । जग्मुः प्रत्यरि सोत्साहा भ्रातरः शस्त्रभासुराः ॥५५०॥
तेषामनुपदं लग्ना ततो राक्षसवाहिनी । चलदायुधधारोर्मिमालाव्याप्यनभस्तलं ॥ ५५१ ॥
निरीक्षिताः पितृभ्यां ते यावल्लोचनगोचरं । व्रजंतः स्नेहसंपूर्णमानसाभ्यां समंगलं ॥ ५५२ ॥
त्रिकूटशिखरेणासौ ततस्तैरुपलक्षिताः । दृष्ट्यैव प्रौढ्या ज्ञाता गृहीतेति पुरी वरा ॥ ५५३ ॥
व्रजद्भिरेव तैः केचिद्दैत्या मृत्युवशीकृताः । केचित्प्रणवतां नीताः केचित्स्थानान्निमोचिताः ५५४
विशद्भिः सैन्यमागत्य प्रणतैः शत्रुगोचरैः । ते सामंतैरलं जाता महांतः पृथुकीर्तयः ॥ ५५५ ॥
शत्रूणामागमं श्रुत्वा निर्घातो निर्ययौ ततः । युद्धशौंडश्चलच्छत्रछायाछन्नदिवाकरः ॥ ५५६ ॥
ततोभवन्महायुद्धं सेनयोः सत्त्वदारणं । वाजिभिर्वारणैर्मत्तैर्विमानैः स्यंदनैस्तथा ॥ ५५७ ॥
महीमयमिवोत्पन्नं गगनं दंतिनां कुलैः । तथा जलात्मकं जातं तेषां गंडच्युतांभसा ॥ ५५८ ॥
वातात्मकं च तत्कर्णतालसंजातवायुना । तेजोमयं तथान्योन्यशस्त्राघातोत्थवन्हिना ॥ ५५९ ॥
दीनैः किमपरैरत्र निहतैः क्षुद्रखेचरैः । कासौ कासौ गतः पापो निर्घात इति चोदयन् ॥५६०॥
दृष्ट्वा मालीं सितैर्बाणैः कृत्वा स्यंदनवर्जितं । निर्घातमसिनिर्घाताच्चक्रे संप्राप्तपंचतां ॥ ५६१ ॥
निर्घातं निहतं ज्ञात्वा दानवा भ्रष्टचेतसः । यथास्वं निलयं याता विजयार्द्धनगाश्रितं ॥५६२॥

केचित्कंठे समासाद्य कृपाणं कृपणोद्यताः । मालिनं त्वरया याताः शरणं रणकातराः ॥ ५६३ ॥
प्रविष्टास्ते ततो लंकां भ्रातरो मंगलार्चितां । समागमं च संप्राप्ताः पितृप्रभृतिबांधवैः ॥ ५६४ ॥
ततो हेमपुरेशस्य सुतां हेमखचारिणः । भोगवत्यां समुत्पन्नां नाम्ना चंद्रवतीं शुभां ॥ ५६५ ॥
उवाह विधिना माली मानसोत्सवकारिणीं । स्वभाव चपलस्वांतहृषीकमृगवागुरां ॥ ५६६ ॥
प्रीतिकूटपुरेशस्य प्रीतिका तस्य चात्मजां । प्रीतिमत्यंगजां लेभे सुमाली प्रीतिसंज्ञितां ॥५६७॥
कनकाभपुरेशस्य कनकस्य सुतां तथा । उवाह कनकश्रीजां माल्यवान्कनकावलीं ॥ ५६८ ॥
एतेषां प्रथमं जाया एता हृदयसंश्रयाः । अंगनानां सहस्रं तु प्रत्येकमधिकं स्मृतं ॥ ५६९ ॥
श्रेणिद्वयं ततस्तेषां पराक्रमवशीकृतं । शेषामिव बभाराज्ञां शिरसा रचितांजलिं ॥ ५७० ॥
दृढबद्धपदापत्यनियुक्तनिजसंपदौ । जातौ सुकेशकिष्किंधौ निर्गंथौ शांतचेतसौ ॥ ५७१ ॥
भुक्त्वा भुक्त्वा विषयजनितं सौख्यमेवं महांतो । लब्ध्वा जैनं भवशतमलध्वंसनं मुक्तिमार्गं ॥
याताः प्रायः प्रियजनगुणस्नेहपाशादपेताः । सिद्धिस्थानं निरुपमसुखं राक्षसा वानराश्च ॥५७२॥
कृत्वाप्येवं सुबहुदुरितं ध्यानयोगेन दग्ध्वा । सिद्धावासे विदधितपदं योगिनस्त्यक्तसंगाः ॥
एवं ज्ञात्वा सुचरितगुणं प्राणिनो यात शांतं । मोहोच्छेदात्कृतजयरविः प्राप्नुत ज्ञानराज्यं ५७३

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वानरवंशाभिधानं नाम षष्ठं पर्व ।

अथ सप्तमं पर्व ।

अत्रांतरे पुरे राजा रथनूपुरनामनि । सहस्रार इति ख्यातो बभूवात्यंतमुद्धतः ॥ १ ॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा नाम्ना मानससुंदरी । सुंदरी मानसेनालं शरीरेण च सद्गुणा ॥ २ ॥
अतर्वत्नीं सतीमेतामत्यंतकृशविग्रहां । भर्तापृच्छत् श्लथाशेषभूषणां वीक्ष्य सादरं ॥ ३ ॥
विभ्रंत्यंगानि ते कस्मान्मितांतं तनुतां प्रिये । किं तवाकांक्षितं राज्ये मम जायेत दुर्लभं ॥ ४ ॥
गत्वा ग्रमल्भतां ब्रूहि तवाद्यैव समीहितं । संपादयामि निःशेषं देवि प्राणगरीयसि ॥ ५ ॥
कर्तुं शक्तोस्मि ते कांते सुरस्त्रीकृतशासनां । शचीमपि कराग्राभ्यां पादसंवाहकारिणीं ॥ ६ ॥
इत्युक्ता सा ततस्तेन वरारोहांकसंश्रिता । जगाद विनयादेवं वचनं लीलयान्वितं ॥ ७ ॥
यस्मादारभ्य मे गर्भे संभवं कोप्ययं गतः । ततः प्रभृति वांच्छामि भोक्तुमिंद्रस्य संपदं ॥ ८ ॥
इमे मनोरथा नाथ परित्यज्य मया त्रपां । परायत्ततयात्यंतं भवतो विनिवेदिताः ॥ ९ ॥
इत्युक्ते कल्पिता भोगसंपत्तस्याः सुरेंद्रजा । विद्याबलसमृद्धेन सहस्रारेण तत्क्षणात् ॥ १० ॥
संपूर्णदोहदा जाता सा ततः पूर्णविग्रहा । धारयंती दुराख्यानां द्युतिं कांतिं च भामिनी ॥११॥

व्रजता रविणाप्यूर्द्धं खेदं जग्राह तेजसा । अभ्यवांछच्च सर्वासां दातुमाज्ञां दिशामपि ॥ १२ ॥
काले पूर्णे च सपूर्णलक्षणांगमसूत सा । दारकं बांधवानंदसंपदुत्तमकारणं ॥ १३ ॥
ततो महोत्सवं चक्रे सहस्रारः प्रमोदवान् । शंखतूर्यनिनादेन बधरीकृतदिग्मुखं ॥ १४ ॥
सनूपुररणत्कारचरणन्यासकुट्टनैः । नृत्यंतीभिः पुरस्त्रीभिः कृतभूतलकंपनं ॥ १५ ॥
यथेच्छं द्रविणं दत्तं विचारपरिवर्जितं । प्रचलोर्द्धकरैर्नृत्तं गजैरपि सबृंहितं ॥ १६ ॥
उत्पाताः शत्रुगेहेषु संजाताः शोकसूचिनः । बंधुगेहेषु चोत्पन्नाः सूचिका भूरिसंपदः ॥ १७ ॥
अभिलाषो यतस्तस्मिन्मातुर्गर्भस्थितेऽभवत् । इंद्रभोगे ततः पित्रा कृतं तस्येंद्रशब्दनं ॥ १८ ॥
बालक्रीडा बभूवास्य शक्त्या यूनोपि जित्वरी । भिदुरा रिपुदर्पाणां सत्त्वरी चारुकर्मणि ॥१९॥
क्रमात्स यौवनं प्राप्तस्तेजोनिर्जितभास्करं । कांतिनिर्जितरात्रीशं स्थैर्यनिर्जितपर्वतं ॥ २० ॥
ग्रस्ता इव दिशस्तेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा । दिग्गजकुंभतुंगांसस्थवीयोवृत्तबाहुना ॥ २१ ॥
उरुस्तंभद्वयं तस्य सुवृत्तं गूढजानुकं । जगाम परमस्थैर्यं वक्षोभवनधारणात् ॥ २२ ॥
विजयार्द्धगिरौ तेन सर्वे विद्याधराधिपाः । ग्राहिता वैतसीं वृत्तिं महाविद्याबलर्द्धिना ॥ २३ ॥
इंद्रमंदिरसंकाशं भवनं तस्य निर्मितं । चत्वारिंशत्सहाष्टाभिः सहस्राणि च योषितां ॥ २४ ॥

षड्विंशतिसहस्राणि ननृतुर्नाटकानि च । दंतिनां व्योममार्गाणां वाजिनां च निरंहसां ॥ २५ ॥
शशांकधवलस्तुंगो गगनांगणगोचरः । दुर्निवार्यो महावीर्यो दंष्ट्राष्टकविराजितः ॥ २६ ॥
दंतिराजो महावृत्तकरार्गलितदिग्मुखः । ऐरावताभिधानेन गुणैश्च प्रथितो भुवि ॥ २७ ॥
शक्त्या परमया युक्तं लोकपालचतुष्टयं । शची च महिषी रम्या सुधर्माख्या तथा सभा ॥२८॥
वज्रं प्रहरणं त्रीणि सदांस्यप्सरसां गणाः । नाम्ना हरिणकेशी च सेनायास्तस्य चाधिपः॥२९॥
अश्विनौ वसवश्चाष्टौ चतुर्भेदा दिवौकसः । नारदस्तुंबुरोर्विश्वावसुप्रभृतिगायकाः ॥ ३० ॥
उर्वशी मेनका मंजु स्वल्पाद्यप्सरसो वराः । मंत्री बृहस्पतिः सर्वमेवं तस्य सुरेंद्रवत् ॥ ३१ ॥
ततोसौ नमिवज्जातः सर्वविद्याभृतां पतिः । ऐश्वर्यं सुरनाथस्य बिभ्राणः पुण्यसंभृतं ॥ ३२ ॥
अत्रांतरे महामानो माली लंकापुरीपतिः । पूर्वयैव धिया सर्वान् शास्ति खेचरपुंगवान् ॥ ३३ ॥
विजयार्द्धनगस्थेषु समस्तेषु पुरेषु वा । लंकागतः करोत्यैश्यं स्वभातृबलगर्वितः ॥ ३४ ॥
वेश्या यानं विमानं वा कन्या वासांसि भूषणं । यद्यच्छ्रेणीद्वये सारं वस्तुचारैर्निवेद्यते ॥ ३५ ॥
तत्तत्सर्वं बलाद्धीरः क्षिप्रमानापयत्यसौ । पश्यन्नात्मानमेवैकं बलविद्याविभूतिभिः ॥ ३६ ॥
इंद्राश्रयात्खगैराज्ञां भग्नां श्रुत्वास्य चान्यदा । प्रस्थितो भ्रातृकिष्किंधसुतैः साकं महाबलः ३७

विमानैर्विविधच्छायैः संध्यामेघैरिवोन्नतैः । महाप्रासादसंकाशैः स्यंदनैः कांचनाचितैः ॥ ३८ ॥
गजैर्घनाघनाकारैः सप्तिभिश्चित्तगामिभिः । शार्दूलैर्भ्रगरैर्गोभिर्मृगराजैः क्रमेलकैः ॥ ३९ ॥
वालेयैर्महिषैर्हंसैर्वृकैरन्यैश्च वाहनैः । खांगणं छादयन्सर्वं महाभासुरविग्रहैः ॥ ४० ॥
अथ मालिनमित्यूचे सुमाली भ्रातृवत्सलः । प्रदेशेत्रैव तिष्ठामो भ्रातरद्य न गम्यते ॥ ४१ ॥
लंकां वा प्रतिगच्छामः शृणु कारणमत्र मे । अनिमित्तानि दृश्यंते पुनः पुनरिहायने ॥ ४२ ॥
एकं संकोच्य चरणमत्यंताकुलमानसः । स्थितः शुष्कद्रुमस्याग्रे धुन्वन्पक्षान् पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
शुष्ककाष्ठं दधच्चंच्वा वीक्ष्यमाणो दिवाकरं । रसक्रूरमयं ध्वांक्षो निवारयति नो गतिं ॥ ४४ ॥
ज्वालारौद्रमुखी चेयं शिवा नो भुजदक्षिणे । घोरं विरौति रोमाणि हृष्ट्वा निदधती मुहुः॥४५॥
अयं पतंगबिंबे च परिवेषिणि दृश्यते । कबंधो भीषणो मुंचत्कीलालललवजालकः ॥ ४६ ॥
घोराः पतंति निर्घाताः कंपितास्खिलपर्वताः । दृश्यंते वनिताः कृत्स्ना मुक्तकेश्यो नभस्तले॥४७॥
खरं खरः खमुत्क्षिप्य मुखं मुखरयन्नभः । क्षितिं खनन्खुराग्रेण दक्षिणः कुरुते स्वरं ॥ ४८ ॥
प्रत्युवाच ततो माली सुमालिनमिति स्फुटं । कृत्वा स्मितं दृढं बाहू केशराभ्यां निपीडयन् ॥४९॥
अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिनं द्विपं । प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूपो निवर्तते ॥ ५० ॥

दंष्ट्रयोः प्रेक्षणं कुर्वन्क्षरद्दानस्य दंतिनः । चक्षुर्विंत्रासितारातिस्तर्यमाणः शितैः शरैः ॥ ५१ ॥
दंतदष्टाधरो बद्धभृकुटी कुटिलाननः । विस्मितैरमरैर्दृष्टो भटः किं विनिवर्तते ॥ ५२ ॥
कंदरासु रतं मेरोर्नंदने चारुनंदिने । चैत्यालया जिनेंद्राणां कारिता गगनस्पृशः ॥ ५३ ॥
दत्तं किमिच्छकं दानं भुक्ता भोगा महागुणाः । यशोधवलिताशेषभुवनं समुपार्जितं ॥ ५४ ॥
जन्मनेत्थं कृतार्थोस्मि यदि प्राणान्महाहवे । परित्यजामि कियता कृतमन्येन वस्तुना ॥ ५५ ॥
असौ पलायितो भीतो वराक इति भाषितं । कथमाकर्णयेद्धीरो जनतायाः सुचेतसः ॥ ५६ ॥
इति संभाषमाणोसौ भ्रातरं भासुराननः । विजयार्द्धस्य मूर्द्धानं क्षणादविदितं ययौ ॥ ५७ ॥
ततोपमानितं यैर्यैः शासनं खेचराधिपैः । तत्पुराणि ससामंतैर्ध्वंसयामास दारुणैः ॥ ५८ ॥
उद्यानानां महाध्वंसो जनितः क्रोधिभिः खगैः । यथा कमलखंडानां मातंगैर्मदमंथरैः ॥ ५९ ॥
ततः संबाध्यमाना सा प्रजा गगनचारिणां जगाम शरणं त्रस्ता सहस्रारं सवेपथुः ॥ ६० ॥
पादयोश्च प्रणम्योचे वचो दीनमिदं भृशं । सुकेशस्य सुतैर्ध्वस्तां समस्तां नाथ पालय ॥ ६१ ॥
सहस्रारस्ततोवोचत्खगा गच्छत मत्सुतं । विज्ञापयत युष्माकं सपरित्राणकारणं ॥ ६२ ॥
त्रिविष्टपं यथा शक्रो रक्षस्यूर्जितशासनः । एवं लोकमिमं पाति स सर्वं वृत्तसूदनः ॥ ६३ ॥

एवमुक्तास्ततो जग्मुरिंद्राभ्यासं नभश्चराः । कृत्वांजलिं प्रणेमुश्च वृत्तांतं च न्यवेदयन् ॥ ६४ ॥
इंद्रस्ततोवदत्क्रुद्धो दर्पस्मितसिताननः । पार्श्वे व्यवस्थिते वज्रे दत्वा लोहितलोचने ॥ ६५ ॥
यत्नेन महतान्विष्य हंतव्या लोककंटकाः । किं पुनः स्वयमायाताः समीपं लोकपालिनः॥६६॥
ततो मत्तद्विपालानस्तंभभंगस्य कारणं । रणसंज्ञाविधानार्थं विषमं तूर्यमाहतं ॥ ६७ ॥
सन्नाहमंडनोपेता निरीयुश्च नभश्चराः । हेतिहस्ताः परं हर्षं बिभ्राणा रणसंभ्रमं ॥ ६८ ॥
रथैरश्वैर्गजैरुष्ट्रैः सिंहैर्व्याघ्रैर्वृकैर्मृगैः । हंसच्छागैर्वृषैर्भेषैर्विमानैर्वहणैः खरैः ॥ ६९ ॥
लोकपालाश्च निर्जग्मुर्निजवर्गसमन्विताः । नानाहेतिप्रभाश्लिष्टाभ्रभंगविषमाननाः ॥ ७० ॥
ऐरावतं समारुह्य कंकटच्छन्नविग्रहः । समुच्छ्रितसितच्छत्रोऽनिरैर्दिद्रः समं सुरैः ॥ ७१ ॥
युगांतघनभीमानां ततः प्रववृते रणः । देवानां राक्षसानां च दुःप्रेक्ष्यः क्रूरचेष्टितः ॥ ७२ ॥
सप्तिना पात्यते वाजी रथेन क्षोद्यते रथः । भज्यते दंतिना दंती पादातं च पदातिभिः ॥७३॥
प्रासमुद्गरचक्रासिभुषंडीमुशलेषुभिः । गदा कनकपाशैश्च छन्नं कृत्स्नं नभस्तलं ॥ ७४ ॥
महोत्साहमथो सैन्यं पुरस्सरणदक्षिणं । दक्षिणं चलितोद्योगं देवानां निवहैः कृतं ॥ ७५ ॥
विद्युत्वान् चारुयानश्च चन्द्रो नित्यगतिस्तथा । चलद्योति प्रभाढ्यश्च रक्षसामक्षणोद्बलं ॥७६॥

अथर्क्षसूर्यरजसावुत्तुंगकपिकेतुकौ । सीदतो राक्षसान् वीक्ष्य दुर्द्धरौ योद्धुमुद्यतौ ॥ ७७ ॥
दर्शिताः पृष्ठमेताभ्यां सर्वे ते सुरपुंगवाः । क्षणादन्यत्र दृष्टाभ्यां ददभ्यां वैद्युतं जवं ॥ ७८ ॥
यातुधाना अपि प्राप्य बलं ताभ्यां समुद्यताः । योद्धुं शस्त्रसमूहेन कुर्वाणा ध्वांतमंबरे ॥ ७९ ॥
ध्वंसमानं ततः सैन्यं दैवं जातु कपिध्वजैः । दृष्ट्वा क्रुद्धः समुत्तस्थौ स्वयं योद्धुं सुराधिपः॥८०॥
कपियातुधनैर्व्याप्तस्ततो देवेंद्रभूधरः । शस्त्रवर्षं विमुंचद्भिस्तारगर्जनकारिभिः ॥ ८१ ॥
निजगाद ततः शक्रः पालयन् लोकपालिनः । सर्वतो विशिखैर्मुक्तैर्बभंज कपिराक्षसान् ॥ ८२ ॥
अथ माली समुत्तस्थौ सैन्यं दृष्ट्वा समाकुलं । तेजसा क्रोधजातेन दीपयन् सकलं नभः ॥ ८३ ॥
अभवच्च ततो युद्धं मालींद्रमतिदारुणं । विस्मयव्याप्तचित्ताभ्यां सेनाभ्यां कृतदर्शनं ॥ ८४ ॥
मालिनो भालदेशेऽथ स्वकनामांकितं शरं । आकर्णाकृष्टनिर्मुक्तं निचखान सुराधिपः ॥ ८५ ॥
संस्तंभ्य वेदनां क्रोधान्मालिनाप्यमरोत्तमः । ललाटस्य तटे शक्त्या हतो वेगविमुक्तया ॥८६॥
रक्तारुणितदेहं च माली द्राक्तमुपागतः । क्रोधारुणः सहस्रांशुर्यथास्तधरणीधरं ॥ ८७ ॥
भानुबिंबसमानेन चक्रेणास्य ततः शिरः । आभिमुख्यमुपेतस्य लूनं पत्या दिवौकसां ॥ ८८ ॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा नितांतं दुःखितस्ततः । चिंतयित्वा महावीर्यं चक्रिणां व्योमगामिनां॥८९॥

परिवारेण सर्वेण निजेन सहितः क्षणात् । रणात्पलायनं चक्रे सुमाली नयपेशलः ॥ ९० ॥
तद्वधार्थं गतं शक्रमनुमार्गेण गत्वरं । उवाच प्रणतः सोमः स्वामिभक्तिपरायणः ॥ ९१ ॥
विद्यमाने प्रभो भृत्ये मादृशे शत्रुमारणे । प्रयत्नं कुरुषे कस्मात्स्वयं मे यच्छ शासनं ॥ ९२ ॥
एवमस्त्विति चोक्तेसावनुमार्गं रिपोर्गतः । बाणपुंजं विमुंचच्च करौघमिव शत्रुगं ॥ ९३ ॥
ततस्तदाहतं सैन्यं विशिखैः कपिरक्षसां । धाराहतं गवां यद्वत्कुलमाकुलतां गतं ॥ ९४ ॥
पाप न क्षत्रमर्यादां त्वं जानासि मनागपि । जडवर्गपरिक्षिप्त इत्युक्तः प्राप्तकारिणा ॥ ९५ ॥
निवृत्य क्रोधदीप्तेन ततो माल्यवता शशी । गाढं स्तनांतरे भिन्नो भिंडिमालेन मूर्छितः ॥९६॥
अयं त्वाश्वास्यते यावन्मूर्छामीलितलोचनः । अंतर्द्धानं गतास्तावद्यातुधानप्लवंगमाः ॥ ९७ ॥
पुनर्जन्मेव ते प्राप्ता अलंकाराह्वयं पुरं । सिंहस्येव विनिःक्रांता जठरादागता सुखं ॥ ९८ ॥
प्रतिबुद्धःशशांकोपि दिशो वीक्ष्य रिपूज्झिताः । स्तूयमानो जयेनार्यैर्यौ मघवतोंतिकं ॥९९॥
ध्वस्तशत्रुश्च सुत्रामा वंदिनां निवहैः स्तुतः । अन्वितो लोकपालानां चक्रवालेन तोषिणा॥१००॥
ऐरावतं समारूढश्चामरानिलवीजितः । सितच्छत्रकृतच्छायो नृत्यत्सुरपुरस्सरः ॥ १०१ ॥
रत्नांशुकध्वजन्यस्तशोभमुच्छ्रिततोरणं । आगुल्फपुष्पविशिखं सिक्तंकुंकुमवारिणा ॥ १०२ ॥

गवाक्षन्यस्तसभारीनयनालीनिरीक्षितः । युक्तः परमया भूत्या विवेश रथनूपुरं ॥ १०३ ॥
पित्रोश्च विनयात्पादौ प्रणनाम कृतांजलिः । तौ च पस्पृशतुर्गात्रं कंपिना तस्य पाणिना १०४
शत्रूनेवं स निर्जित्य परमानंदमागतः । आस्वादयन्परं भोगं प्रजापालनतत्परः ॥ १०५ ॥
सुतरां स ततो लोके प्रसिद्धिं शक्रतां गतः । प्राप्तः स्वर्गप्रसिद्धिं च विजयार्द्धश्च भूधरः ॥१०६॥
उत्पत्तिं लोकपालानां तस्य वक्ष्यामि सांप्रतं । एकाग्रं मानसं कृत्वा श्रेणिकैषां निबुध्यतां १०७
स्वर्गलोकाच्च्युतो जातो मकरध्वजखेचरात् । संभूतो जठरे दित्या लोकपालोऽभवच्छशी १०८
कांतिमानेष शक्रेण द्योतिःसंगे पुरोत्तमे । पूर्वस्यां ककुभि न्यस्तो मुमुदे परमर्द्धिकः ॥ १०९ ॥
जातो मेघरथाभिख्याद्वरुणायां महाबलः । खेचरो वरुणो नाम संप्राप्तो लोकपालतां ॥ ११० ॥
पुरे मेघपुरे न्यस्तः पश्चिमायामसौ दिशि । पाशं प्रहरणं श्रुत्वा यस्य विभ्यति शत्रवः ॥१११॥
संभूतः कनकावल्यां किंसूर्येण महात्मना । कुबेराख्यो नभोगामी विभूत्या परयान्वितः ॥११२॥
कांचनाख्ये पुरे चायमुदीच्यां दिशि योजितः । संप्राप परमं भोगं प्रख्यातो जगति श्रिया ११३
संभूतः श्रीप्रभागर्भे कालाग्निव्योम्निचारिणः । चंडकर्मा यमो नाम तेजस्वी परमोभवत् ॥११४॥
दक्षिणोदन्वतो द्वीपे किष्कुनाम्नि पुरोत्तमे । स्थापितोसौ स्वपुण्यानां प्राप्नुवन्नूर्जितं फलं ११५

पुरस्य यस्य यन्नाम पृथिव्यां ख्यातिमागतं । तेनैव ख्यापिता नाम्ना पौरास्तत्र सुरेशिना ११६
असुराख्ये नभोगानां नगरे निवसंति ये । असुराख्या इमे जाताः सकले धरणीतले ॥ ११७ ॥
यक्षगीते पुरे यक्षाः किन्नराद्रे च किन्नराः । गंधर्वसंज्ञया ख्याताः पुरे गंधर्वनामनि ॥ ११८ ॥
अश्विनौ वसवो विश्वे वैश्वानरपुरस्सराः । कुर्वंति त्रिदशक्रीडां विद्याबलसमन्विताः ॥ ११९ ॥
अवाप्य संभवं योनौ प्राप्यश्रीविस्तरं भुवि । प्रणतो भूरिलोकेन मन्यते स्वं सुरेश्वरं ॥ १२० ॥
इंद्रः स्वर्गः सुराश्चान्ये समस्तास्तस्य विस्मृताः । संपद्भिरतिमेतस्य नित्योत्सवविधायिनः १२१
स्वर्मिद्रं पर्वतं स्वर्गं लोकपालान् खगेश्वरान् । निजांश्च सकलान्देवान्स मेने भूतिगर्वितः॥१२२॥
मत्तोस्ति न महान्कश्चित्पुरुषो भुवनत्रये । अहमेवास्य विश्वस्य प्रणेता विदिताखिलः ॥१२३॥
विद्याभृच्चक्रवर्त्तित्वमिति प्राप्य स गर्वितः । फलमन्वभवत्पूर्वजन्मोपात्तसुकर्मणः ॥ १२४ ॥
भागेत्र यो व्यतिक्रांतस्तं वृत्तांतमतः शृणु । धनदस्य समुत्पत्तिः श्रेणिक ज्ञायते यथा ॥१२५॥
व्योमबिंदुरिति ख्यातः पुरे कौतुकमंगले । भार्यानंदवती तस्यामुत्पन्नं दुहितद्वयं ॥ १२६ ॥
कौशिकी ज्यायसी तत्र केकसी च कनीयसी । ज्येष्ठा विश्रवसे दत्ता पुरे यक्षविनिर्मिते ॥१२७॥
तस्यां वैश्रवणो जातः शुभलक्षणविग्रहः । शतपत्रेक्षणः श्रीमानंगनानयनोत्सवः ॥ १२८ ॥

एवमुक्तः सचाहूय शक्रेण कृतपूजनः । व्रज लंकापुरीं शाधि प्रियस्त्वं मम खेचरान् ॥ १२९ ॥
चतुर्णां लोकपालानामद्य प्रभृतिपंचमः । लोकपालो भव त्वं मे मत्प्रसादान्महाबलः ॥ १३० ॥
यदाज्ञापयसीत्युक्त्वा कृत्वा चरणवंदनां । आपृच्छ्य पितरौ नत्वा निर्गतासौ सुमंगलं ॥१३१॥
अध्यतिष्ठच्च मुदितो लंकां शंकाविवर्जितः । विद्याधरसमूहेन शिरसा धृतशासनः ॥ १३२ ॥
प्रीतिमत्यां समुत्पन्नः सुमालितनयस्तु यः । नाम्ना रत्नश्रवाः शूरस्त्यागी भुवनवत्सलः ॥१३३॥
मित्रोपकरणं यस्य जीवितं तुंगचेतसः । भृत्यानामुपकाराय प्रभुत्वं भूरि तेजसः ॥ १३४ ॥
लब्धवर्णोपकाराय वैदग्ध्यं दग्धदुर्मतेः । बंधूनामुपकाराय लक्ष्म्याश्च परिपालनं ॥ १३५ ॥
ईश्वरत्वं दरिद्राणामुपकारार्थमुन्नतं । साधूनामुपकारार्थं सर्वस्वं सर्वपालिनः ॥ १३६ ॥
सुकृतस्मरणार्थं च मानसं मानशालिनः । धर्मोपकरणं चायुः वीर्योपकृतये वपुः ॥ १३७ ॥
पितेव प्राणिवर्गस्य यो बभूवानुकंपकः । सुकाल इव चातीतः स्मर्यतेद्यापि जंतुभिः ॥ १३८ ॥
परस्त्रीमातृबंधुस्य शीलभूषणधारिणः । परद्रव्यं तृणवत्परश्च स्वशरीरवत् ॥ १३९ ॥
गुणिनां गणनायां यः प्रथमं गणितो बुधैः । दोषिणां च समुल्लापे स स्मृतो नैव जंतुभिः १४०
अन्यैरिव महाभूतैः शरीरं तस्य निर्मितं । अन्यथा सा कृतः शोभा बभूवास्य तथाविधा॥१४१॥

प्रसेकममृतेनैव चक्रे संभाषणेषु सः । महादानमिवोदात्तचरितो वितताार च ॥ १४२ ॥
धर्मार्थकामकार्याणां मध्ये तस्य महामतेः । धर्म एव महान्यत्नो जन्मांतरगतावभूत् ॥ १४३ ॥
यशो विभूषणं तस्य भूषणानां सुभूषणं । गुणाः कीर्त्या समं तस्मिन्सकुटुंबा इव स्थिताः॥१४४॥
स भूतिं परमां वांच्छन् क्रमाद्गोत्रसमागतां । संत्याजितो निजं स्थानं पत्या स्वर्गनिवासिनां ॥
परित्यज्य भयं धीरो विद्यां साधयितुं क्षमः । रौद्रं भूतपिशाचादिनादि पुष्पांतकं वनं ॥१४६॥
विद्याया विदितां पूर्वमथो तद्गामिनीं सुतां । व्योमबिंदुर्ददावस्मै तपसे परिचारिकां ॥१४७॥
तस्य सा योगिनः पार्श्वे विनीता समवस्थिता । कृतांजलिपुटादेशं वांछंती तन्मुखोद्गतं ॥१४८॥
ततः समाप्तनियमः कृतसिद्धनमस्कृतिः । एकाकिनीं सुतां बालां दृष्ट्वा सरललोचनां ॥ १४९ ॥
नीलोत्पलेक्षणां पद्मवक्त्रां कुंददलद्विजां । शिरीषमालिकाबाहुं पाटलादंतवाससां ॥ १५० ॥
बकुलामोदनिःश्वासां चम्पकत्विक्समत्विषं । कुसुमैरिव निःशेषां निर्मितां दधतीं तनुं ॥ १५१ ॥
मुक्तपद्मालयां पद्मां रूपेणैव वशीकृतां । परमोत्कंठयानीतां पादविन्यस्तलोचनां ॥ १५२ ॥
अपूर्वपुरुषालोकलज्जितानतविग्रहां । समाध्वसविनिक्षिप्तनिःश्वासोत्कंपितस्तनीं ॥ १५३ ॥
लावण्येन विलंपंतीं पल्लवानंतिकीगतान् । निःश्वासाकृष्टमत्तालिकुलव्याकुलिताननां ॥ १५४ ॥

सौकुमार्यादिवोदाराद्विभ्यतानातिनिर्भरं । यौवनेन कृताश्लेषां संभूतिं योषितः परां ॥ १५५ ॥
गृहीत्वेवाखिलस्त्रैणं लावण्यं त्रिजगद्धृतं । कर्मभिर्निर्मितां कर्तुमद्भुतं सार्वलौकिकं ॥ १५६ ॥
शरीरेणैव संयुक्तां साक्षाद्विद्यामुपागतां । वशीकृतामुदारेण तपसा कांतिशालिनीं ॥ १५७ ॥
पप्रच्छ प्रियया वाचा करुणावान् स्वभावतः । प्रमदासु विशेषेण कन्यकासु ततोधिकं ॥१५८॥
कस्यासि दुहिता बाले किमर्थं त्वमिहावनौ । एकाकिनी मृगीवास्मिन्यूथाद्भ्रष्टावतिष्ठसे॥१५९॥
के वा भजंति ते वर्णा नाम पुण्यमनोरथैः । पक्षपातो भवत्येव योगिनामपि सज्जने ॥ १६० ॥
तस्मै साकथयद्वाचा गद्गदत्वमुपेतया । दधत्यात्यंतमाधुर्यं चेतश्चोरणदक्षया ॥ १६१ ॥
उत्पन्ना नंदवत्यंगे व्योमबिंदोरहं सुता । कैकसीति भवत्सेवां कर्तुं पित्रा निरूपिता ॥ १६२ ॥
तत्रैव समये तस्य सिद्धा विद्या महौजसः । मानसस्तंभनी नाम्ना क्षणदर्शितविग्रहा ॥ १६३ ॥
ततो विद्याप्रभावेण तस्मिन्नेव महावने । पुरं पुष्पांतकं नाम क्षणात्तेन निवेशितं ॥ १६४ ॥
कृत्वा पाणिगृहीतां च कैकसीं विधिना ततः । रेमे तत्र पुरे प्राप्य भोगान्मानसकल्पितान् १६५
बभूव च तयोःप्रीतिजायापत्योरनुत्तरा । क्षणार्द्धमपि नो सेहे वियोगं या सुचेतसोः ॥ १६६ ॥
मृतामिव स तां मेने लोचनागोचरस्थितां । निमेषादर्शनम्लानिं व्रजंतीं मृदुमानसां ॥ १६७ ॥

वक्त्रचंद्रेक्षिणी तस्या तस्य नित्यं व्यवस्थिते । सर्वेषां वा हृषीकाणां सा बभूवास्य बंधनं॥१६८॥
अनन्यजैकरूपेण यौवनेन धनश्रिया । विद्याबलेन धर्मेण शक्तिरासीत्परं तयोः ॥ १६९ ॥
व्रजंती व्रजयायुक्ते तिष्ठंती स्थितिमागते । छायेव साभवत्पत्यावनुवर्तनकारिणी ॥ १७० ॥
अथासौ विपुले कांते क्षीराकूपारपांडुरे । रत्नद्वीपकृतालोके दुकूलपटकोमले ॥ १७१ ॥
यथेष्टदेहविन्यस्तनानावर्णोपधानके । निःश्वासामोदनिर्निद्रद्विरेफसमुपासते ॥ १७२ ॥
परितः स्थितयामश्रीविनिद्रनयनेक्षिते । तत्र दंतविनिर्माणपट्टके शयनोत्तमे ॥ १७३ ॥
चिंतयंती गुणान्पत्युर्मनोबंधनकारिणः । वांच्छंती च सुतोत्पत्तिं सुखं निद्रामुपागता ॥ १७४ ॥
ईक्षांचक्रे परान्स्वप्नान्महाविस्मयकारिणः । अव्यक्तचलनादायिसखीवीक्षितविग्रहा ॥ १७५ ॥
ततः प्रभाततूर्येण शंखशब्दानुकारिणा । मागधानां च वाणीभिः सापि प्रबोधमागता ॥१७६॥
कृतमंगलकार्यार्थं नेपथ्यं दधती शुभं । सखीभिरन्विताऽऽगच्छन्मनोज्ञा भर्तुरंतिकं ॥ १७७ ॥
आसीना चांजलिं कृत्वा पत्युः पार्श्वे सुविभ्रमा । भद्रासनेंशुकच्छन्ने क्रमात्स्वप्नान्न्यवेदयत्१७८
अद्य रात्रौ मया यामे चरमे नाथ वीक्षिताः । त्रयः स्वप्नाः श्रुतौ तेषां प्रसादं कर्तुमर्हसि॥१७९॥
वृहद्वृंदं गजेंद्राणां ध्वंसयन्परमौजसा । कुक्षिमास्येन मे सिंहः प्रविष्टो नभसस्तलात् ॥ १८० ॥

विद्रावयन्मयूखैश्च ध्वांतं गजकुलासितं । स्थितो विहायसो मध्यादंके कमलबांधवः ॥ १८१ ॥
कुर्वन्मनोहरां लीलां दूरयन् तिमिरं करैः । अखंडमंडलो दृष्टः पुरः कुमुदनंदनः ॥ १८२ ॥
दृष्टमात्रेषु चैतेषु विस्मयाक्रांतमानसा । प्रभाततूर्यनादेन गताहं वीतनिद्रतां ॥ १८३ ॥
किमेतदिति नाथ त्वं ज्ञातुमर्हसि सांप्रतं । ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसं ॥१८४॥
ततोष्टांगनिमित्तज्ञः कुशलो जिनशासने । रत्नश्रवाः प्रमोदेन स्वप्नार्थान् व्यवृणोत्क्रमात् १८५
उत्पत्स्यंते त्रयः पुत्राः त्रिजगद्गतकीर्तयः । तव देवि महासत्त्वाः कुलवृद्धिविधायिनः ॥१८६॥
भवांतरनिबद्धेन सुकृतेनोत्तमक्रियाः । वल्लभत्वं प्रपत्स्यंते सुरेष्वपि सुरैः समाः ॥ १८७ ॥
कांत्युत्सारिततारेशाःदीप्त्युत्सारितभास्कराः । गांभीर्यजिततोयेशा स्थैर्यात्सारितभूधराः॥१८८॥
चारुकर्मफलं भुक्त्वा स्वर्गे शेषस्य कर्मणः । परिपाकमवाप्स्यंति सुरैरप्यपराजिताः ॥ १८९ ॥
दानेन कामजलदाः चक्रवर्तिसमर्द्धयः । वरसीमंतिनीचेतोलोचनालीमलिम्लुचाः ॥ १९० ॥
श्रीवत्सलक्षणात्यंतराजितोत्तुंगवक्षसः । नाममात्रश्रुतिध्वस्तमहासाधनशत्रवः ॥ १९१ ॥
भविता प्रथमस्तेषां नितांतं जगते हितः । साहसैकरसासक्तः शत्रुपक्षक्षपाकरः ॥ १९२ ॥
संग्रामागमनात्तस्य भविष्यति समंततः । शरीरं निश्चितं चारोरुच्चरोमांचकंटकैः ॥ १९३ ॥

निधानं कर्मणामेष दारुणानां भविष्यति । वस्तुन्यूरीकृते तस्य न शक्रोपि निवर्तकः ॥ १९४ ॥
कृत्वा स्मितं ततो देवी परमप्रमदांचिता । भर्तुराननमालोक्य विनयादित्यभाषत ॥ १९५ ॥
अर्हन्मतामृतास्वादसुचित्ताभ्यां कथं प्रभो । आवाभ्यां प्राप्यजन्मायं क्रूरकर्मा भविष्यति १९६
आवयोर्ननु मज्जापि जिनवाक्येन भाविता । भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथं ॥ १९७ ॥
प्रत्युवाच च तामेवं प्रिये शृणु वरानने । कर्माणि कारणं तस्य न वयं कृत्यवस्तुनि ॥ १९८ ॥
मूलं हि कारणं कर्म स्वरूपविनियोजने । निमित्तमात्रमेवास्य जगतः पितरौ स्मृतौ ॥ १९९ ॥
भविष्यतोनुजावस्य जिनमार्गविशारदौ । गुणग्रामसमाकीर्णौ सुचेष्टौ शीलसागरौ ॥ २०० ॥
सुदृढं सुकृते लग्नौ भवस्खलनभीतितः । सत्यवाक्यरतौ सर्वसत्त्वकारुण्यकारिणौ ॥ २०१ ॥
तयोरपि पुरोपात्तं सौम्यकर्म मृदुस्वने । कारणं करुणोपेते यतो हेतुसमं फलं ॥ २०२ ॥
एवमुक्त्वा जिनेंद्राणां ताभ्यां पूजा प्रवर्तिता । मनसापि प्रतीतेन प्रयाताभ्यामहर्दिवं ॥ २०३ ॥
ततो गर्भस्थिते सत्त्वे प्रथमे मातुरीहितं । बभूव क्रूरमत्यंतं हठनिर्जितपौरुषं ॥ २०४ ॥
अभ्यवांच्छत्पदं न्यासं कर्तुं मूर्द्धसु विद्विषां । रक्तकर्दमदिग्धेषु परिस्फुरणकारिषु ॥ २०५ ॥
आज्ञां दातुमभिप्रायः सुरराज्येप्यजायत । हुंकारमुखरं चास्यमंतरेणापि कारणं ॥ २०६ ॥

निष्ठुरत्वं शरीरस्य निर्जितश्रमवत्तरा । कठोरा घर्घरा वाणी दृष्टिपाताः परिस्फुटाः ॥ २०७ ॥
दर्पणे विद्यमानेपि सायकेऽपश्यदाननं । कथमप्यानमन्मूर्द्धा गुरूणामपि वंदने ॥ २०८ ॥
प्रतिपक्षासनाकंपं कुर्वन्नथ विनिर्गतः । संपूर्णे समये तस्याः कुक्षेः प्राणी सुदारुणः ॥ २०९ ॥
प्रभया तस्य जातस्य दिवाकरदुरीक्षया । परिवर्गस्य नेत्रौघाः सघनस्थगिता इव ॥ २१० ॥
भूतैश्च ताडनाद्भूतो दुंदुभेरुद्धतो ध्वनिः । कबंधैः शत्रुगेहेषु कृतमुत्पातनर्तनं ॥ २११ ॥
ततो जन्मोत्सवस्तस्य महान्पित्रा प्रवर्तितः । उन्मात्तिकेव यत्रासीत्प्रजा स्वेच्छाविधायिनी २१२
अथ मेरुगुहाकारे तस्मिन्सूतिगृहोदरे । शयने सस्मितस्तिष्ठन् रक्तपादतलश्चलः ॥ २१३ ॥
उत्तानः कंपयन् भूमिं लीलया शयनांतिकां । सद्यः समुच्छितादित्यमंडलोपमदर्शनः ॥ २१४ ॥
दत्तं राक्षसनाथेन मेघवाहनरूढये । पुरा नागसहस्रेण रक्षितं प्रस्फुरत्करं ॥ २१५ ॥
पिनद्धं रक्षसां भीत्या न केनचिदिहांतरे । आदरेण विना हारं करेणाकर्षदर्भकः ॥ २१६ ॥
हारमुष्टिं ततो बालं दृष्ट्वा माता ससंभ्रमा । चकारांके महास्नेहात्समाजघ्रौ च मूर्द्धनि ॥२१७॥
दृष्ट्वा पिता च तं बालं सहारं परमाद्भुतं । महानेष नरः कोपि भवितेति व्यचिंतयत् ॥ २१८ ॥
नागेंद्रकृतरक्षेण हारेण रमतेसुना । कोन्यथा यस्य नो शक्तिर्भविष्यति जनातिगा ॥ २१९ ॥

चारणेन समादिष्टं साधुना यद्वचः पुरा । इदं तद्वितथं नैव जायते यतिभाषितं ॥ २२० ॥
दृष्ट्वाश्चर्यं सहारोस्य जनन्या भीतिमुक्तया । पिनद्धो भाषयन्नाशा दशजालेन रोचिषां ॥ २२१ ॥
स्थूलस्वच्छेषु रत्नेषु नवान्यानि मुखानि यत् । हारे दृष्टानि यातोसौ तद्दशाननसंज्ञितां॥२२२॥
भानुकर्णस्ततो जातः कालेतीते कियत्यपि । यस्य भानुरिव न्यस्तः कर्णयोर्गंडशोभया ॥२२३॥
ततश्चंद्रनखा जाता पूर्णचंद्रसमानना । उद्यदर्द्धशशांकाभनखभासितदिग्मुखा ॥ २२४ ॥
ततो विभीषणो जातः कृतं येन विभीषणं । जातमात्रेण पापानां सौम्याकारेण साधुना॥२२५॥
देहवत्त्वं जगामासौ साक्षाद्धर्म इवोत्तमः । अद्यापि गुणजा यस्य कीर्तिर्जगति निर्मला ॥२२६॥
बालक्रीडापि भीमाभूद्दशग्रीवस्य भास्वतः । कनीयसोस्तु सानंदं विदधे विद्विषामपि ॥ २२७ ॥
शुशुभे भ्रातृमध्ये सा कन्या सुंदरविग्रहा । दिवसार्कशशांकानां मध्ये संध्येव सत्क्रिया ॥२२८॥
मातुरंके स्थितोथासौ धृतचूडः कुमारकः । दशाननो दशाशानां कुर्वन् ज्योत्स्नां द्विजत्विषा२२९
नभसा प्रस्थितं कापि द्योतयंतं दिशः त्विषा । युक्तं खेचरचक्रेण विभूतिबलशालिना ॥२३०॥
कक्षाविद्युत्कृतोद्योतैर्मदधाराविसर्जिभिः । वेष्टितं दंतिजीमूतैः कर्णशंखबलाहकैः ॥ २३१ ॥
महता तूर्यनादेन श्रुतिबाधिर्यकारिणा । कुर्वाणं मुखरं चक्रं दिशां सुरपराक्रमं ॥ २३२ ॥

ग्रसित्वेव विमुंचंतं बलेन पुरतो नभः । धीरो वैश्रवणं वीक्ष्यांचक्रे दृष्ट्या प्रगल्भया ॥ २३३ ॥
महिमानं च दृष्ट्वास्य पप्रच्छेति स मातरं । निम्नश्चपलभावश्च बालभावेन सस्मितः ॥ २३४ ॥
अंब कोयमितो याति मन्यमानो निजौजसा । जगत्तृणमिवाशेषं बलेन महतावृतः ॥ २३५ ॥
ततः साकथयत्तस्य मातृस्वस्रीय एष ते । सिद्धविद्यः श्रिया युक्तो महत्या लोककीर्तितः॥२३६॥
शत्रूणां जनयन्कंपं पर्यटत्येष विष्टपं । महाविभवसंपन्नो द्वितीय इव भास्करः ॥ २३७ ॥
भवत्कुलक्रमायातां तवोद्धास्य पितामहं । अयं पाति पुरीं लंकां दत्तामिंद्रेण वैरिणा ॥ २३८ ॥
मनोरथशतान्येष जनकस्तव चिंतयन् । तदर्थं न दिवा निद्रां नच नक्तमवाप्नुते ॥ २३९ ॥
अहमप्यनया पुत्र चिंतया शोषमागता । अवाप्तं मरणं पुंसां स्वस्थानभ्रंशतो वरं ॥ २४० ॥
पुत्र लक्ष्मीं कदा तु त्वं प्राप्स्यसि स्वकुलोचितां । विशल्यमिव यां दृष्ट्वा भविष्यत्यावयोर्मनः२४१
कदा नु भ्रातरावेतौ विभूत्या तव संगतौ । द्रक्ष्यामि विहितच्छंदौ विष्टपे वीतकंटके ॥ २४२ ॥
मातुर्दीनवचः श्रुत्वा कृत्वा गर्वस्मितं ततः । विभीषणो बभाणेदमुद्यत्क्रोधविषांकुरः ॥ २४३ ॥
धनदो वाभवत्वेष देवो वा कोस्य वीक्षितः । प्रभावो येन मातस्त्वं करोषि परिदेवनं ॥२४४॥
वीरप्रसविनी वीरा विज्ञातजनचेष्टिता । एवंविधा सती कस्माद्भदसि त्वं यथेतरा ॥ २४५ ॥

श्रीवत्समंडितोरस्को ध्यायिता ततविग्रहं । अद्वैतैकरसासिक्तनित्यचेष्टो महाबलः ॥ २४६ ॥
भस्मच्छन्नाग्निवद्भस्मीकर्तुं शक्तोखिलं जगत् । न मनो गोचरं प्राप्तो दशग्रीवः किमंब ते ॥२४७॥
गत्वा जयेदयं चित्तमनादरसमुच्छया । तटानि गिरिराजस्य पाटयेच्च चपेटया ॥ २४८ ॥
राजमार्गौ प्रतापस्य स्तंभौ भुवनवेश्मनः । अंकुरौ दर्पवृक्षस्य न ज्ञातावस्य ते भुजौ ॥ २४९ ॥
एवंकृतस्तवोऽथासौ भ्रात्रागुणकलाविदा । तेजो बहुतरं प्राप सर्पिषेव तनूनपात् ॥ २५० ॥
जगाद चेति किं मातरात्मनोऽतिविकत्थया । वदामि शृणु यत्सत्यं वाक्यमेतदनुत्तरं ॥ २५१ ॥
गर्विता अपि विद्याभिः संभूय मम खेचराः । एकस्यापि न पर्याप्ता भुजस्य रणमूर्द्धनि ॥२५२॥
कुलोचितं तथापीदं विद्याराधनसंज्ञकं । कर्मकर्तव्यमस्माभिस्तत्कुर्वाणैर्न लज्यते ॥ २५३ ॥
कुर्वंत्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा । आराधनं तथा कृत्यं विद्यायाः खगगोत्रजैः ॥२५४॥
इत्युक्त्वा धारयन्मानमनुजाभ्यां समन्वितः । पितृभ्यां चुंबितो मूर्द्धि कृतसिद्धनमस्कृतिः २५५
प्राप्तमंगलसंस्कारो निश्चयस्थिरमानसः । निर्गत्य मुदितोगेहादुत्पपात नभस्तलं ॥ २५६ ॥
क्षणात्प्राप्तं प्रविष्टश्च भीमं नाम महावनं । दंष्ट्राकरालवदनैः क्रूरसत्त्वैर्विदारितं ॥ २५७ ॥
सुप्ताजगरनिश्वासप्रेंखितोदारपादपं । नृत्यद्व्यंतरसंघातपादक्षोभितभूतलं ॥ २५८ ॥

महागह्वरदेशस्थं सूच्यभेद्यतमश्चयं । कालेनैव स्वयं क्षिप्तं सन्निधानं सुभीषणं ॥ २५९ ॥
यस्योपरि न गच्छंति सुराश्चापि भयार्दिताः । यच्च भीमतया प्राप प्रसिद्धिं भुवनत्रये ॥२६०॥
गिरयो दुर्गमा यत्र ध्वांतव्याप्तगुहाननाः । साराश्च तरवो लोकं ग्रसितुं प्रोद्यता इव ॥ २६१ ॥
अभिन्नचेतस्तत्र गृहीत्वा शममुत्तमं । दुराशादूरितात्मानो धवलांबरधारिणः ॥ २६२ ॥
पूर्णेंदुसौम्यवदनाः शिखामणिविराजिताः । तपश्चरितुमारब्धास्त्रयोपि भ्रातरो महत् ॥ २६३ ॥
विद्याश्चाष्टाक्षरी नीता वश्यतां जपलक्षया । सर्वकामान्नदा नाम दिवसार्द्धेन तैस्ततः ॥ २६४ ॥
अन्नं यथेप्सितं तेभ्यः सोपनिन्ये यतस्ततः । क्षुधाजनितमेतेषां संबभूव न पीडनं ॥ २६५ ॥
ततो जपितुमारब्धाः सुचित्ता षोडशाक्षरं । मंत्रकोटिसहस्राणि यस्या वृत्तिर्दशोदिताः ॥२६६॥
जंबूद्वीपपतिर्यक्षस्तमथ स्त्रीभिरावृतः । अनावृत इति ख्यातः प्राप्तः क्रीडितुमिच्छया ॥ २६७ ॥
अंगनानां ततस्तस्य क्रीडंतीनां सुविभ्रमं । ते तपोनिहितात्मानः स्थिता लोचनगोचरे ॥२६८॥
रूपेण तास्ततस्तेषां समाकृष्य कचेष्विव । देव्यः समीपमानीताः कौतुकाकुलचेतसः ॥ २६९ ॥
ऊचुस्तासामिदं काश्चित्कुंचितालकलासिना । वक्त्रेण सद्विरेफेण पद्मस्य श्रियमाश्रिताः ॥२७०॥
नितांतं सुकुमारांगा विसर्पत्कांतितेजसः । तपश्चरत किं कार्यमपरित्यक्तवाससः ॥ २७१ ॥

भोगैर्विना न गात्राणामीदृशी जायते रुचिः । ईदृग्देहतया नापि शक्यते परतो भयं ॥ २७२ ॥
जटामुकुटभारः क क चेदं प्रथमं वयः । विरुद्धसंप्रयोगस्य स्रष्टारो यूयमुद्गताः ॥ २७३ ॥
पीतस्तनतटास्फालसुखसंगमनोचितौ । करौ शिलादिसंगेन किमर्थं प्रापितौ व्यथां ॥ २७४ ॥
अहो ह्रस्वीयसी बुद्धिर्युष्माकं रूपशालिनां । भोगोचितस्य देहस्य यत्कृतं दुःखयोजनं ॥२७५॥
उत्तिष्ठत गृहं यामः किमद्यापि गतं बुधाः । सहास्माभिर्महाभोगान् प्राप्नुत प्रियदर्शनान् २७६
ताभिरित्युदितं तेषां न चक्रे मानसे पदं । यथा सरोजिनीपत्रे पयसो बिंदुजालकं ॥ २७७ ॥
एवमूचुस्ततश्चान्याः सख्यः काष्ठमया इमे । निश्चलत्वं तथाह्येषां सर्वेष्वंगेषु दृश्यते ॥ २७८ ॥
अभिधायेति संकुध्य रभसादुपसृत्य च । विशाले हृदये चक्रुरवतंसेन ताडनं ॥ २७९ ॥
तथापि ते गताः क्षोभं नैवं प्रवणचेतसः । यतः कापुरुषा एव स्खलंति प्रस्तुताशयात् ॥२८०॥
देवी निवेदनाद्दृष्ट्वा जंबूद्वीपेशिना ततः । कृत्वा च स्मितमित्युक्ताः प्राप्तविस्मयचेतसा ॥२८१॥
भो भो सुपुरुषाः कस्मात्तपश्चरत दुष्करं । आराधयत वा देवं कतरं वदताचिरात् ॥ २८२ ॥
इत्युक्तास्ते यदा तस्थुः पुस्तकर्मगता इव । तदा कोपेन यक्षाणां पतिरेवमभाषत ॥ २८३ ॥
विस्मृत्य मामिमे देवं कमन्यं ध्यातुमुद्यताः । अहो चपलताऽमीषां परमेयममेधसां ॥ २८४ ॥

उपद्रवार्थमेतेषां तत्क्षणं च प्रचंडवाक् । किंकराणामदादाज्ञामाज्ञादानप्रतीक्षिणां ॥ २८५ ॥
स्वभावेनैव ते क्रूराः प्राप्य त्वाज्ञां ततोधिकां । नानारूपधराश्चक्रुः पुरस्तेषामिति क्रियाः॥२८६॥
कश्चिदुत्प्लुत्य वेगेन गृहीत्वा पर्वतोन्नतिं । पुरः पपात निर्घातान् घातयन्निव सर्वतः ॥ २८७ ॥
सर्पेण वेष्टनं कश्चिच्चक्रे सर्वशरीरगं । भूत्वा च केशरी कश्चिद्ग्रादायास्यं समागतः ॥ २८८ ॥
चक्रुरन्ये रवं कर्णे बधिरीकृतदिग्मुखं । दंशहस्तिमरुद्वावसमुद्रत्वं गतास्तथा ॥ २८९ ॥
एवंविधैरुपायैस्ते यदा जग्मुर्न विक्रियां । ध्यानस्तंभसमासक्तनिश्चलस्वांतधारणाः ॥ २९० ॥
तदा म्लेच्छबलं भीमं चंडचंडालसंकुलं । करालमायुधैरुग्रैर्विकृतं तैस्तमोनिभं ॥ २९१ ॥
कृत्वा पुष्पांतकं ध्वस्तं विजित्य च किलाहवे । बध्वा रत्नश्रवास्तेषां दर्शितो बांधवैः समं॥२९२॥
अंतःपुरं च कुर्वाणं विप्रलापं मनश्छिदं । युष्मासु सत्सु पुत्रेषु दुःखप्राप्तमिति ध्वनन् ॥ २९३ ॥
पुत्रा रक्षत मां म्लेच्छैर्हन्यमानं महावने । तेषामिति पुरः पित्रा प्रयुक्तो भूरिविप्लवः ॥ २९४ ॥
ताड्यमाना च चंडालैर्माता निगडसंयुता । कचाकृष्टा विमुंचंती धाराः नयनवारिणः ॥ २९५ ॥
जगाद पश्यतावस्थामीदृशीं मे सुता वने । नीताहं शत्रुभिः पल्लीं कथं युष्माकमग्रतः ॥ २९६ ॥
संभूय मम सर्वेपि लब्धविद्यावलाः अपि । एकस्यापि न पर्याप्ता भुजस्य व्योमचारिणः॥२९७॥

इत्युक्ते वितथं पूर्वमेकस्यापे यतोधुना । यूयं म्लेच्छस्य पर्याप्ता न त्रयोपि हतौजसः ॥ २९८ ॥
दशग्रीव वृथा स्तोत्रमकरोत्ते विभीषणः । एकापि नास्ति ते ग्रीवा जननीं यो न रक्षति॥२९९॥
कालेन यावता यातस्त्वं मे मानेन वर्जितः । निष्क्रांतो जठरादस्मादुच्चारस्तावता वरं ॥ ३०० ॥
भानुकर्णोप्ययं मुक्तः कर्णाभ्यां यो न मे स्वरं । आर्तं शृणोति कुर्वत्या विगतक्रियविग्रहः ३०१
विभीषणोप्ययं व्यर्थं नाम धत्ते विभीषणः । शक्तो यो नैककस्यापि शवरस्य मृताकृतिः॥३०२॥
म्लेच्छैर्विधर्ममाणायां दयां कुरुत नो कथं । स्वसरि प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परं॥३०३॥
विद्या हि साध्यते पुत्राः स्वजनानां समृद्धये । तेषां च पितरौ श्रेष्ठौ तयोश्चैषा व्यवस्थितिः ३०४
भ्रूक्षेपमात्रतोप्येते शवरा यांति भस्मतां । भवतां दृग्विषव्यालचक्षुःपातादिव द्रुमाः ॥ ३०५ ॥
जठरेण मया यूयं धारिताः सुखलिप्सया । पुत्रा हि गदिताः पित्रोः प्रारोहा इव धारकाः ३०६
यदैवमपि न ध्यानभंगस्तेषामजायत । तदेति तैः समारब्धं मायाकर्मातिदारुणं ॥ ३०७ ॥
छिन्नं पित्रोः शिरस्तेषां पुरः सायकधारया । पुरो दशाननस्यापि मूर्द्धा भ्रात्रोर्निपातितः॥३०८॥
तयोरपि पुरो मूर्द्धा दशग्रीवस्य पातितः । येन तौ कोपतः प्राप्तावीषद्धचानविकंपनं ॥ ३०९ ॥
दशग्रीवस्तु भावस्य दधानोत्यंतशुद्धतां । महावीर्यो दधत्स्थैर्यं मंदरस्य महारुचिः ॥ ३१० ॥

अवभज्य हृषीकाणां प्रसरं निजगोचरे । अचिराभाचलं चित्तं कृत्वा दासमिवाश्रवं ॥ ३११ ॥
कंटकेन कृतत्राणः शवरेण समं ततः । ध्यानवक्तव्यताहीनो दध्यौ मंत्रं प्रयत्नतः ॥ ३१२ ॥
यदि नाम तथा ध्यानमाविशच्छ्रमणोत्तमः । अष्टकर्मसमुच्छेदं ततः कुर्वीत तत्क्षणात् ॥ ३१३ ॥
अत्रांतरे सदेहानां कृतांजलिपुटस्थितं । सहस्रं तस्य विद्यानामनेकं वशतामितं ॥ ३१४ ॥
समाप्तिमेति नोयावत्संख्यामंत्राविवर्तने । तावदेवास्य ताःसिद्धा निश्चयात्किं न लभ्यते ॥३१५॥
निश्चयोपि पुरोपात्ताल्लभ्यते कर्मणः सितात् । कर्माण्येव हि यच्छंति विघ्नं दुःखानुभाविनः ३१६
काले दानविधिं पात्रे क्षेत्रे चायुःस्थितिक्षयं । सम्यग्बोधिफलां विद्यां नाभव्यो लब्धुमर्हति ३१७
कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित् । क्षणेन कस्यचित्सिद्धिं यांति कर्मानुभावतः ॥३१८॥
धरण्यां स्वपितु त्यागं करोतु चिरमंधसः । मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरेःपततु मस्तकात् ॥३१९॥
विधत्तां पंचतायोग्यां क्रियां विग्रहशोषिणीं । पुण्यैर्विरहितो जंतुस्तथापि न कृती भवेत्॥३२०॥
अंगमात्रं क्रियाः पुंसां सिद्धेः सुकृतकर्मणां । अकृतोत्तमकर्माणो यांति मृत्युं निरर्थकाः ॥३२१॥
सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया । पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ॥३२२॥
पश्य श्रेणिक पुण्यानां प्रभावं यद्दशाननः । असंपूर्णे गतः काले विद्यासिद्धिं महामनाः॥३२३॥

संक्षेपेण करिष्यामि विद्यानां नामकीर्तनं । अर्थसामर्थ्यतो लब्धं भवावहितमानसः ॥ ३२४ ॥
नभःसंचारिणी, कामदायिनी, कार्यगामिनी । दुर्निवारा, जगत्कम्पा, प्रज्ञप्ति, र्भानुमालिनी, ३२५
अणिमा, लघिमा, क्षोभ्या, मनःस्तंभनकारिणी, । संवाहिनी, सुरध्वंसी, कौमारी, वधकारिणी ॥
सुविधाना, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी । शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी ॥३२७॥
वज्रोदरी, समाकृष्टिरदर्शन्यजरामरा । अनलस्तंभनी, तोयस्तंभनी, गिरिदारणी ॥ ३२८ ॥
अवलोकन्यरिध्वंसी, घोरा, धीरा, भुजंगिनी । वारुणी, भुवनावध्या, दारुणा, मदनाशिनी ३२९
भास्करी, भयसंभूतिरैशानी, विजया, जया । बंधनी, मोचनी, चान्या वाराही, कुटिलाकृतिः ३३०
चित्तोद्भवकरी, शांतिः, कौबेरी, वशकारिणी । योगेश्वरी, बलोत्सादी, चंडा, भीतिः, प्रवर्षिणी॥
एवमाद्या महाविद्या पुरा सुकृतकर्मणा । स्वल्पैरेव दिनैः प्राप दशग्रीवः सुनिश्चयः ॥ ३३२ ॥
सर्वाहा, रतिसंवृद्धिर्नृभिणी, व्योमगामिनी । निद्राणी, चैति पंचैता भानुकर्णं समाश्रिताः ३३३
सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता, खगाभिनी । विद्या बिभीषणं प्राप्ता चतस्रो दयिता इव ३३४
ईश्वरत्वं ततः प्राप्ता विद्यायां ते सुविभ्रमाः । जन्मान्यदिवसं प्रापुर्महासंमदकारणं ॥ ३३५ ॥
ततः पत्यापि यक्षाणां दृष्ट्वा विद्याः समागताः । पूजितास्ते महाभूत्या दिव्यालंकारभूषिताः ३३६

स्वयंप्रभमिति ख्यातं नगरं च निवेशितं । मेरुशृंगसमुच्छ्रायं सप्तपंक्तिविराजितं ॥ ३३७ ॥
मुक्ताजालपरिक्षिप्तगवाक्षैर्दूरमुन्नतैः । रत्नजांबूनदस्तंभैरंचितं चैत्यवेश्मभिः ॥ ३३८ ॥
अन्योन्यकरसंबंधजनितेंद्रशरासनैः । रत्नैः कृतसमुद्योतं नित्यविद्युत्समप्रभैः ॥ ३३९ ॥
भ्रातृभ्यां सहितस्तत्र प्रासादे गगनस्पृशि । विद्याबलेन संपन्नः सुखं तस्थौ दशाननः ॥ ३४० ॥
जंबूद्वीपपतिः प्राह तत एवं दशाननं । विस्मितस्तव वीर्येण प्रसन्नोहं महामते ॥ ३४१ ॥
चतुःसमुद्रपर्यंते नागव्यंतरसंकुले । तिष्ठत्वत्र यथाछंदं जंबूद्वीपतले भवान् ॥ ३४२ ॥
द्वीपस्यास्य समस्तस्य वसिताहमकंटकः । यथेप्सितं चरैस्तस्मिन्नुद्धरन् शत्रुसंहतिं ॥ ३४३ ॥
प्रसन्ने मयि ते वत्स स्मृतिमात्रपुरस्थिते । ईप्सितव्याहतौ शक्तो न शक्रोपि कुतोऽपरे ॥ ३४४ ॥
द्राघिष्टं जीव कालं त्वं भ्रातृभ्यां सहितः सुखी । वर्द्धंतां भूतयो दिव्या बंधुसेव्या सदा तव ३४५
इत्याशीर्भिः समानंद्य सन्याभिस्तान् पुनः पुनः । जगाम स्वालयं यक्षः परिवारसमन्वितः ३४६
तं रत्नश्रवजं श्रुत्वा विद्यालिंगितविग्रहं । सर्वतो रक्षसां संघाः प्राप्ताः कृतमहोत्सवाः ॥ ३४७ ॥
उन्नतं ननृतुः केचित् चकुरास्फोटनं तथा । केचित्प्रमदसंपूर्णाः प्रशशंसुश्च रावणं ॥ ३४८ ॥
चंद्रकांतिं तिरस्कुर्वत् शत्रुपक्षभयंकरं । सुधयेव नभः कैश्चिल्लिप्तद्विर्हासितं चिरं ॥ ३४९ ॥

सुमाली माल्यवत्सूर्यरजाऋक्षरजास्तथा । आगता नितरां प्रीताः समारुह्योत्तमान् रथान्॥३५०॥
अन्ये च स्वजनाः सर्वे विमानैर्वाजिभिर्गजैः । स्वदेशेभ्यो विनिष्क्राता त्रासेन परिवर्जिताः१५१
अथ रत्नश्रवाः पुत्रस्नेह संपूर्णमानसः । वैजयंतीभिराकाशं शुक्लीकुर्वन्निरंतरं ॥ ३५२ ॥
विभूत्या परया युक्तो वंदिवृंदैरभिष्टुतः । संप्राप्तो रथमारूढो महाप्रसादसन्निभं ॥ ३५३ ॥
एकीभूय व्रजंतोमी पंचसंगमपर्वते । दुःखेन रजनीं निन्युररातिभययोगतः ॥ ३५४ ॥
ततो गुरून्प्रणामेन समाश्लेषणतः सखीन् । स्निग्धेन चक्षुषा भृत्यान् जगृहुः कैकसीसुताः ३५५
शरीरक्षेमपृच्छादिसिद्धिवृत्तांतसंकथा । न तेषामवगीतत्वं प्राप्तारव्या पुनः पुनः ॥ ३५६ ॥
ददृशुर्विस्मयापन्नाः स्वयंप्रभपुरोत्तमं देवलोकप्रतिच्छंदं यातुधानप्लवंगमाः ॥ ३५७ ॥
सवेपथुकरेणैषां गात्रमस्पृशतं चिरं । पितरौ सप्रणामानामानंदाच्चाकुलेक्षणौ ॥ ३५८ ॥
नभोमध्ये गते भानौ तेषां स्नानविधिस्ततः । दिव्याभिः कर्तुमारब्धो वनिताभिर्महोत्सवः३५९
मुक्ताजालपरीतेषु स्नानपीठेषु ते स्थिताः । नानारत्नसमृद्धेषु जात्यजांबूनदात्मसु ॥ ३६० ॥
पाठपीठेषु चरणौ निहितौ पल्लवच्छवी । उदयाद्रिशिरोवर्तिदिवाकरसमाकृती ॥ ३६१ ॥
ततो रत्नविनिर्माणैः सौवर्णैराजतात्मकैः । कुंभैः पल्लवसंछन्नवक्त्रैर्हारविराजितैः ॥ ३६२ ॥

चंद्रादित्यप्रतिस्पर्द्धिछायावच्छादितात्माभिः । आमोदवासिताशेषदिक्चक्रजलपूरितैः ॥३६३॥
एकानेकमुखैः प्रांतभ्रातभ्रमरमंडलैः । गर्जद्भिर्जलपातेन गंभीरजलदैरिव ॥ ३६४ ॥
गंधैरुद्वर्तनैः कांतिविधानकुशलैस्तथा । अभिषेकः कृतस्तेषां तूर्यनादादिनंदितः ॥ ३६५ ॥
अलंकृतस्ततो देहो दिव्यवस्त्रविभूषणैः । मंगलानि प्रयुक्तानि कुलनारीभिरादरात् ॥ ३६६ ॥
ततो देवकुमाराभैः स्वजनानंददायिभिः । गुरूणां विनयादेतैः कृतं चरणवंदनं ॥ ३६७ ॥
अत्याशिषस्ततो दृष्ट्वा तेषां विद्योत्थसंपदः । जीवतातिचिरं कालमिति तान् गुरवोऽब्रुवन् ३६८
सुमाली माल्यमान्धूर्यरजा रक्षरजास्तथा । रत्नश्रवाश्च तान्स्नेहादालिलिंग पुनः पुनः ॥३६९॥
समं बांधवलोकेन भृत्यवर्गेण चावृताः । चक्रुरभ्यवहारं ते स्वेच्छाकल्पितसंपदः ॥ ३७० ॥
गुरुषु प्राप्तपूजेषु ततो वस्त्रादिदानतः । यथार्हं भृत्यवर्गे च संप्राप्तप्रतिमानने ॥ ३७१ ॥
विश्रब्धा गुरवोपृच्छंस्तान् प्रीतिविकचेक्षणाः । दिवसानियतो वत्साः सुखेन सुस्थिता इति ३७२
ततस्ते मस्तके कृत्वा करयुग्मं प्रणामिनः । ऊचुर्नः कुशलं नित्यं प्रसादाद्भवतामिति ॥ ३७३ ॥
मालिनः संकथाप्राप्तं कथयन्मरणं ततः । सुमाली शोकभारेण सद्यो मूर्च्छां समागतः ॥ ३७४ ॥
रत्नश्रवसुतेनासौ ततः शीतलपाणिना । संस्पृश्य पुनरानीतो ज्येष्ठेन व्यक्तचेतनां ॥ ३७५ ॥

आनंदितश्च तद्वाक्यैरूर्जितैर्हिमशीतलैः । समस्तशत्रुसंघातघातवीजांकुरोद्गमैः ॥ ३७६ ॥
पुंडरीकेक्षणं पश्यन्सुमाली तं ततोर्भकं । शोकं क्षणात्समुत्सृज्य पुनरानंदमागतः ॥ ३७७ ॥
इति चोवाच तं हृद्यैर्वचोभिर्वितथेतरैः । अहो वत्स तवोदारं सत्त्वं तोषितदैवतं ॥ ३७८ ॥
अहो द्युतिरियं जित्वा स्थिता तव दिवाकरं । अहो गांभीर्यमुत्सार्य स्थितमेतन्नदीपतिं ॥३७९॥
अहो पराक्रमः कांत्या सहितोयं जिनातिगः । अहो रक्षःकुलस्यामि जातस्ततविशेषकः ॥३८०॥
मंदरेण यथा जंबूद्वीपः कृतविभूषणः । नभस्तलं शशांकेन यथा तिग्मकरेण च ॥ ३८१ ॥
सुपुत्रेण तथा रक्षःकुलमेतद्दशानन । त्वयालोकमहाश्चर्यकारिचेष्टेन भूषितं ॥ ३८२ ॥
आसंस्तोयदवाहाद्या नरास्त्वत्कुलपूर्वजाः । भुक्त्वा लंकापुरीं कृत्वा सुकृतं ये गता शिवं ॥३८३॥
अस्मद्व्यसनविच्छेदः पुण्यैर्जातोसि सांप्रतं । वक्रेणैकेन ते तोषात्कथयामि कथं कथां ॥ ३८४ ॥
नमश्चरगणैरेभिः प्रत्याशा जीवितं प्रति । मुक्ता सती पुनर्बद्धा त्वय्युत्साहपरायणे ॥ ३८५ ॥
कैलाशमन्यदायातैरस्माभिर्वंदितुं जिनं । प्रणम्यातिशयज्ञानः पृष्टः श्रमणसत्तमः ॥ ३८६ ॥
भविता पुनरस्माकं कदा नाथ समाश्रयः । लंकायामिति सद्वाक्यमेवमाहानुकंपकः ॥ ३८७ ॥
लप्स्यते भवतः पुत्राज्जन्म यः पुरुषोत्तमः । संभूतायां वियद्विंदोः स लंकायां प्रवेशकः ॥३८८॥

भरतस्य स खंडांस्त्रीन् भोक्ष्यते बलविक्रमः । सत्त्वप्रतापविनयश्रीकीर्तिरुचिसमाश्रयः ॥ ३८९ ॥
गृहीतां रिपुणा लक्ष्मीं मोचयिष्यत्यसावपि । नैतच्चित्रं यतस्तस्यां संप्राप्स्यति परां श्रियं॥३९०॥
स त्वं महोत्सवो जातः कुलस्य शुभलक्षणः । उपमानविमुक्तेन रूपेण हृतलोचनः ॥ ३९१ ॥
इत्युक्तोसौ जगादैवमस्त्विति प्रणताननः । शिरस्यंजलिमाधाय कृतसिद्धनमस्कृतिः ॥ ३९२ ॥
प्रभावात्तस्य बालस्य बंधुवर्गस्ततः सुखं । अध्युवास यथास्थानमरातिभयवर्जितः ॥ ३९३ ॥
एवं पूर्वभवार्जितेन पुरुषाः पुण्येन यांति श्रियं । कीर्तिच्छन्नदिगंतरालभुवना नास्मिन्वयः कारणं ॥
अग्नेः किन्न कणः करोति विपुलं भस्म क्षणात्काननं मत्तानां करिणां भिनत्ति निबहं सिंहस्य वा नार्भकः
बोधं ह्याशु कुमुद्वतीषु कुरुते शीतांशुरोचेर्लवः । संतानं प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादितं प्राणिनां ॥
निद्राविप्लुतहेतुभिश्च समये जीमूतमालानिभं । ध्वान्तं दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ३९५

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवाभिधानं नाम सप्तमं पर्व ।

अथाष्टमं पर्व ।

अथासीद्दक्षिणश्रेण्यां भास्करप्रतिमो द्युतौ । सुवीरोऽसुरसंगीतिपुरे मयखगेश्वरः ॥ १ ॥
दैत्यत्वेन प्रसिद्धस्य ममस्ति तस्य भूतले । नाम्ना हेमवती भार्या योषिद्गुणसमन्विता ॥ २ ॥
सुता मंदोदरी नाम सर्वावयवसुंदरी । तनूदरी विशालाक्षी लावण्यजलवेणिका ॥ ३ ॥
नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा तामन्यदा पिता । चिंताव्याकुलितः प्राह दयितामिति सादरं ॥ ४ ॥
आरूढा नवतारुण्यं वत्सा मंदोदरी प्रिये । गुणिते वै तदीया मे चिंता मानसमाश्रिता ॥ ५ ॥
कन्यानां यौवनारंभे संतापाग्निसमुद्भवे । इंधनत्वं प्रपद्यंते पितरौ स्वजनैः समं ॥ ६ ॥
एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽनंतरं बुधाः । लोचनांजलिभिस्तोयं दुःखाकुलितचेतसः ॥ ७ ॥
अहो भिनत्ति मर्माणि वियोगो देहनिःसृतेः । अपत्यैर्जनितो नीतेरागत्यासंस्तुतैर्जनैः ॥ ८ ॥
तद्ब्रूहि तरुणीं कस्मै ददाम्येतां प्रिये वयं । गुणैः कुलेन कांत्या च क एतस्याः समो भवेत्॥९॥
इत्युक्ता प्राह तं देवी कन्यानां देहपालने । जनन्य उपयुज्यंते पितरो दानकर्मणि ॥ १० ॥
यत्र ते रुचितं दानं मह्यं तत्रैव रोचते । भर्तुच्छंदानुवर्तिन्यो भवंति कुलबालिकाः ॥ ११ ॥

इत्युक्तो मंत्रिभिः सार्धं चकारासौ प्रधारणं । केनचिन्मंत्रिणा कश्चिदुद्दिष्टः खेचरस्ततः ॥१२॥
अन्येनेंद्रः समुद्दिष्टः सर्वविद्याधराधिपः । तस्माद्धि खेचराः सर्वे बिभ्यति प्रतिकूलने ॥ १३ ॥
ततः स्वयं मयेनोक्तं युष्माकं वेद्मि नो मनः । मह्यं तु रुचितः ख्यातः सिद्धविद्यो दशाननः १४
भवितासौ महान् कोऽपि जगतोऽद्भुतकारणं । अन्यथा जायते सिद्धिर्विद्यानामाशु नाल्पके १५
ततोऽनुमेनिरे तस्य तद्वाक्यं प्रमदान्विताः । मारीचप्रमुखाः सर्वे मंत्रिणो मंत्रकोविदाः ॥ १६ ॥
मंत्रिणो भ्रातरश्चास्य मारीचाद्या महाबलाः । मारीचश्च ततश्चक्रे मानसं त्वरयान्वितं ॥ १७ ॥
ग्रहेष्वभिमुखस्थेषु सौम्येषु दिवसे शुभे । क्रूरग्रहेष्वपश्यत्सु लग्ने कुशलतावहे ॥ १८ ॥
कृत्यं कालातिपातेन नेति ज्ञात्वा ततो मयः । पुष्पांतकविमानेन प्रस्थितः कन्ययान्वितः ॥१९॥
ततो मंगलगीतेन प्रमदानां नभस्तलं । तूर्यनादस्य विच्छेदशब्दात्मकमिवाभवत् ॥ २० ॥
पुष्पांतकाद्विनिष्क्रम्य भीमारण्ये स्थिता इति । युवभिः कथितं तस्य निवृत्त्य प्रथमा गतिः॥२१॥
तद्देशवेदिभिश्चारैः कथितं तद्वनं ततः । चलितोऽसावपश्यच्च मेघानामिव संचयं ॥ २२ ॥
चारः कश्चिदुवाचेति पश्येदं देव सद्वनं । स्निग्धध्वांतचयाकारं निविडोत्तुंगपादपं ॥ २३ ॥
अद्रेर्वेलाइकारूयस्य संध्यावर्तस्य चांतरं । मंदारुणमिवारण्यं सम्मेदाष्टापदागयोः ॥ २४ ॥

वनस्य पश्य मध्येऽस्य शंखशुभ्रमहागृहं । नगरं शरदंभोदमहावृंदसमद्युति ॥ २५ ॥
समीपे च पुरस्यास्य पश्य प्रासादमुन्नतं । सौधर्ममिव यः स्पष्टुमीहते शृंगकोटिभिः ॥ २६ ॥
अवतीर्य नभोभागात्समीपे तस्य वेश्मनः । सानीकिनी विशश्राम चकार च यथोचितं ॥ २७ ॥
तूर्यादि डंबरं त्यक्त्वादैत्यानामधिपस्ततः । आप्तैः कतिपयैर्युक्तो विनीताकल्पशोभितः ॥ २८ ॥
अभिमानोदयं मुक्त्वा सकन्यः प्राप्तविस्मयः । तं प्रासादं समारुह्य प्रतीहारनिवेदितः ॥ २९ ॥
सप्तमं च तलं प्राप्तः क्रमेण निभृतक्रमः । वनदेवीमिवैक्षिष्ट मूर्तामुत्तमकन्यकां ॥ ३० ॥
अर्थेंदुनखया तस्य कृताभ्यागमसत्क्रिया । प्रपद्यांतपरिभ्रंशं कुलजातोपचारतः ॥ ३१ ॥
ततः स चासनासीनः स्थितां कन्योचितासने । अपृच्छत्प्रश्रयादेवं तां मयो विनयान्वितां॥३२॥
वत्से कासि कुतो वासि कस्माद्वा कारणादिह । वससि प्रमयेऽरण्ये कस्य चेदं महागृहं ॥३३॥
एकाकिन्या कथं चास्मिन् धृतिरुत्पद्यते तव । वपुरुत्कृष्टमेतत्ते पीडानां नैव भाजनं ॥ ३४ ॥
एवं पृष्टा सती बाला स्त्रीणां स्वाभाविकी त्रपा । मंदं वनमृगी मुग्धा जगादेति नताननां ॥३५॥
षष्ठभक्तेन संसाध्य चंद्रहासमिमं मम । शैलराजं गतो भ्राता वंदितुं जिनपुंगवान् ॥ ३६ ॥
दशवक्त्रेण तेनाहं पालनार्थं निरूपिता । आर्य तिष्ठामि चेत्येस्मिन् चंद्रप्रभविराजिते ॥ ३७ ॥

यदि च स्युर्भवन्तोऽपि द्रष्टुमेवं समागताः । क्षणमात्रं ततोऽत्रैव स्थानं कुर्वंतु सज्जनाः ॥ ३८ ॥
यावदेवं समालापो वर्तते मधुरस्तयोः । तेजसां मंडलं तावद्दृश्यते नभस्तले ॥ ३९ ॥
उक्तं च कन्यया नूनमागतोऽयं दशाननः । सहस्रकिरणं कुर्वन् प्रभया विगतप्रभं ॥ ४० ॥
विद्युद्दंडेन संयुक्तं मेघानामिव तं चयं । अवलोक्य समासन्नमुत्तस्थौ संभ्रमान्मयः ॥ ४१ ॥
कृत्वा यथोचिताचारमासनेषु पुनः स्थितः । मंडलाग्रप्रभाजालश्यामलीकृतविग्रहः ॥ ४२ ॥
मारीचो वज्रमध्यश्च वज्रनेत्रो नभस्तडित् । उग्रनक्रो मरुद्वक्रो मेघावी सारणः शुकः ॥ ४३ ॥
एवमाद्या गतास्तोषं परं दृष्ट्वा दशाननं । इत्यूचुर्मंगलं वाक्यं दैत्यनाथस्य मंत्रिणः ॥ ४४ ॥
अस्मभ्यं तव दैत्यस्य धिषणातिगरीयसी । नराणामुत्तमो येन मनस्येष निवेशितः ॥ ४५ ॥
इति चाह दशग्रीवमहो ते रूपमुज्वलं । अहो प्रश्रयसंभारो वीर्यं चातिशयान्वितं ॥ ४६ ॥
दक्षिणस्यामयं श्रेण्यामसुरप्रथिते पुरे । दैत्यानामधिपो नाम्ना मयो भुवनविश्रुतः ॥ ४७ ॥
गुणैरेष समाकृष्टः कुमार तव निर्मलैः । आयातः कं न कुर्वंति सज्जना दर्शनोत्सुकं ॥ ४८ ॥
स्वागतादिकमित्याह ततो रत्नश्रवस्सुतः । सतां हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभाषणम् ॥ ४९ ॥
साधुना दैत्यनाथेन प्रेमदर्शनकारिणा । उचितेन नियोगेन जनोऽयमनुगृह्यतां ॥ ५० ॥

इदं मयसुतः प्राह तात युक्तमिदं तव । प्रतिकूलसमाचारा न भवंत्येव साधवः ॥ ५१ ॥
दृष्टोऽसौ सचिवैस्तस्य कौतुकाक्रांतमानसैः । कृतानंदश्च सद्वाक्यैः पुनरुक्तैः समाकुलैः ॥ ५२ ॥
ततो गर्भगृहं रम्यं प्रविष्टोऽयं स्वभावतः । चकार महतीं पूजां जिनेंद्राणां विशेषतः ॥ ५३ ॥
स्तवांश्च विविधानुक्त्वा रोमहर्षणकारिणः । मस्तकेऽञ्जलिमास्थाय चूडामणिविभूषिते ॥ ५४ ॥
स्पृशंल्ललाटपट्टेन जानुभ्यां च महीतलं । पावनौ स जिनेंद्राणां ननाम चरणौ चिरं ॥ ५५ ॥
ततो गेहाज्जिनेंद्राणां निष्क्रांतः परमोदयः । सहितौ दैत्यनाथेन निविष्टः सुखमासने ॥ ५६ ॥
विजयार्धगिरिस्थानां पृच्छन् वार्तां खगामिनां । चक्षुषो गोचरीभावं निन्ये मंदोदरीमसौ ॥५७॥
चारुलक्षणसंपूर्णां सौभाग्यमणिभूमिकां । तनुस्निग्धनखोत्तुंगपृष्टपादसरोरुहां ॥ ५८ ॥
रंभास्तंभसमानाभ्यां तूणाभ्यां पुष्पधन्वनः । लावण्यांभःप्रवाहाभ्यामुरुभ्यामतिराजितां ॥५९॥
युक्तविस्तारमुत्तुंगं मन्मथास्थानमंडपं । नितंबं दधतीमग्रकुकुंदरमनोहरं ॥ ६० ॥
वज्रमध्यामधोवक्त्रां हेमकुंभनिभस्तनीं । शिरीषसुमनोमालां मृदुबाहुलतायुगां ॥ ६१ ॥
कंबुरेखानतग्रीवां पूर्णचंद्रसमाननां । नेत्रकांतिनदीसेतुबंधसन्निभनासिकां ॥ ६२ ॥
रक्तदंतच्छदच्छायाच्छुरिताच्छकपोलकां । वीणाभ्रमरसोन्मादपरिपुष्टसमस्वनां ॥ ६३ ॥

इंदीवरारविंदानां कुमुदानां च संहतीः । विमुंचतीमिवाशासु दृष्ट्या दूत्या मनोभुवः ॥ ६४ ॥
अष्टमीशर्वरीनाथसमानालिकपट्टिकां । संगतश्रवणां स्निग्धनीलसूक्ष्मशिरोरुहां ॥ ६५ ॥
शोभयाऽऽस्यांघ्रिहस्तानां जंघानामिव पद्मिनीं । जयंतीं करिणीं हंसीं सिंहीं च गतिविभ्रमैः॥६६॥
विद्यालिंगनजामीर्ष्यां धारयन्तीं दशानने । पद्मालयं परित्यज्य लक्ष्मीमिव समागतां ॥ ६७ ॥
अंगनाविषयां सृष्टिमस्रष्टामिव कर्मणा । आहृत्य जगताशेषं लावण्यमिव निर्मितां ॥ ६८ ॥
दिवाकरकरस्पर्शस्वर्भानुग्रहभीतितः । तारापतिं परित्यज्य क्षितिं कांतिमिवागतां ॥ ६९ ॥
सीमंतमणिभाजालरचितास्यावगुंठनां । हारेण वक्त्रलावण्यसेतुनेव विभूषितां ॥ ७० ॥
कर्णयोर्वालिकालोकाम् मुक्ताफलसमुत्थिताम् । सितस्य सिंदुवारस्य मंजरीमिव बिभ्रतीं ॥ ७१ ॥
कंदर्पदर्पसंक्षोभं सहते जघनं न यत् । इतीव वेष्टितं कांच्या मणिचक्रककांतया ॥ ७२ ॥
मनोज्ञामपि तां दृष्ट्वा दुःखितोऽभूत्सचिंतया । नीयंते विषयैः प्रायः सत्त्ववंतोऽपि वश्यतां॥७३॥
तस्यां माधुर्ययुक्तायां दृष्टिस्तस्य गता सती । अभवन्मधुमत्तेव प्रत्यानीतापि घूर्णिता ॥ ७४ ॥
अचिंतयत्तदा नाम स्यादियं वनितोत्तमा । ह्रीः श्रीर्लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिः प्राप्तमूर्तिः सरस्वती ७५
किमूर्वशीयमुतानूढा माया वा केनचित्कृता । अहो सृष्टिरियं मूर्ध्नि स्थिता निखिलयोषितां ॥७६॥

प्राप्नुयाद्यदि नामैतां कन्यामिंद्रियहारिणीं । कृतार्थं नस्ततो जन्म जायते तृणमन्यथा ॥ ७७ ॥
चिंतयंतमिमं चैवं मयोऽभिप्रायकोविदः । उपनीय सुतामाह प्रभुरस्या भवानिति ॥ ७८ ॥
तेन वाक्येन सिक्तोऽसावमृतेनेव तत्क्षणात् । तोषस्येवांकुरान् जातान् दधे रोमांचकंटकान् ॥७९॥
ततोऽनयोः क्षणोद्भूतसर्ववस्तुसमागमं । स्वजनानंदितं वृत्तं पाणिग्रहणमंगलं ॥ ८० ॥
समं तया ततो यातः स्वयंप्रभपुरं कृती । मन्यमानः श्रियं प्राप्तां समस्तभुवनश्रितां ॥ ८१ ॥
मयोऽपि तनयाचिंताशल्योद्धारात्समंमदः । तद्वियोगात्समशोकश्च स्थितः स्वोचितधामनि ॥८२॥
प्रापद्देवीसहस्रस्य प्राधान्यं चारुविभ्रमा । क्रमान्मंदोदरी भर्तुर्गुणैराकृष्टमानसा ॥ ८३ ॥
अभिप्रेतेषु देशेषु स रेमे सहितस्तया । पुरंदर इवेंद्राण्या सर्वेंद्रियमनोज्ञया ॥ ८४ ॥
प्रभावं वेदितुं वांछन् विद्यानामपि भूरिशः । व्यापारानित्यसौ चक्रे समेतः परया रुचा ॥८५॥
एको भवत्यनेकश्च सर्वस्त्रीकृतसंगमः । वितनोत्यर्कवत्तापं ज्योत्स्नां मुंचति चंद्रवत् ॥ ८६ ॥
वन्हिवन्मुंचति ज्वालां वर्षन्नंबुधरो यथा । वायुवच्चलयत्यद्रीन् कुरुते सुरनाथतां ॥ ८७ ॥
आपगानाथतां याति पर्वतत्वं प्रपद्यते । मत्तवारणतामेति भवत्यश्वो महाजवः ॥ ८८ ॥
क्षणादारात्क्षणाद्दूरे क्षणाद्दृश्यः क्षणाच्च नो । क्षणान्महान् क्षणात्सूक्ष्मः क्षणाद्भीमो नच क्षणात्

एवं च रममाणोऽसौ नाम्ना मेघरवं गिरिं । प्रापत्तत्र च सद्वापीमपश्यद्विमलांभसां ॥ ९० ॥
कुमुदैरुत्पलैः पद्मैस्वच्छैरन्यैश्च वारिजैः । पर्यंतसंचरत्क्रौंचहंसचक्राह्वसारसां ॥ ९१ ॥
मृदुशष्पपटच्छन्नतटां सोपानमंडितां । नभसेव विलीनेन पूरितां सवितुः करैः ॥ ९२ ॥
अर्जुनादिमहोत्तुंगपादपव्याप्तरोधसां । प्रस्फुरच्छफरीचक्रसमुच्छलितशीकरां ॥ ९३ ॥
भ्रूक्षेपानिवकुर्वाणां तरंगैरतिभंगुरैः । जल्पंतीमिव नादेन पक्षिणां श्रोत्रहारिणां ॥ ९४ ॥
तत्र क्रीडापसक्तानां दधतीनां परां श्रियं । षट् सहस्राणि कन्यानामपश्यत्केकसीसुतः ॥ ९५ ॥
काश्चिच्छीकरजालेन रेमिरे दूरगामिना । पलायंतेस्म सत्कन्या दूरं सख्याकृतागसः ॥ ९६ ॥
प्रदर्श्य रदनं काचित् पद्मखंडे सशैवले । कुर्वती पंकजाशंकं सखीनां सुचिरं स्थिता ॥ ९७ ॥
मृदंगनिस्वनं काचिच्चक्रे करतलाहतं । कुर्वाणा सलिलं मंदं गायंती पदपदैः समं ॥ ९८ ॥
ततस्ता युगपद्दृष्ट्वा कन्या रत्नश्रवःसुतं । क्षणं त्यक्तजलक्रीडा बभूवुस्तंभिता इव ॥ ९९ ॥
मध्यं तासां दशग्रीवो गतो रमणकांक्षया । रंतुमेतेन साकं ता व्यापारिण्योऽभवन् पुनः ॥१००॥
आहताश्च समं सर्वा निशिखैः पुष्पधन्वनः । दृष्टिरासामभूदस्मिन् बद्धवानन्यचारिणी ॥ १०१ ॥
मिश्रे कामरसे तासां त्रपया पूर्वसंगमात् । मनो दोलामिवारूढं बभूवात्यंतमाकुलं ॥ १०२ ॥

सुरसुंदरतो जाता नाम्ना पद्मवती शुभा । सर्वश्रीयोषिति स्फीतनीलोत्पलदलेक्षणा ॥ १०३ ॥
कन्याऽशोकलता नाम बुधस्य दुहिता वरा । मनोवेगासमुत्पन्ना नवाऽशोकलतासमा ॥ १०४ ॥
संध्यायां कनकाज्जाता नाम्ना विद्युत्प्रभा परा । विद्युतं प्रभया लज्जां या नयेच्चारुदर्शना १०५
महाकुलसमुद्भूता ज्येष्ठा तासामिमा श्रिया । विभूत्या च त्रिलोकस्य मूर्ता सुंदरता इव ॥१०६॥
आकल्पकं च संप्राप्तास्तं ययुस्ताः सहेतराः । सद्योत्तापत्रपा तावद्दुस्सहा स्मरवेदनाः ॥ १०७ ॥
गांधर्वविधिना सर्वा निराशंकेन तेन ताः । परिणीताः शशांकेन ताराणामिव संहतीः ॥ १०८ ॥
दशग्रीवेण सार्धं ताः पुनः क्रीडां प्रचक्रिरे । अन्योऽन्याहंयुतां प्राप्य प्रथमोपगमाकुलाः॥१०९॥
संप्रत्येव हि सा क्रीडा क्रियते तेन या समं । शशांकेन विमुक्तानां ताराणां काभिरूपता ११०
ततः कंचुकिभिस्तासामाशु गत्वा निवेदितं । जनकेभ्य इदं वृत्तं रत्नश्रवससंभवं ॥ १११ ॥
ततस्तैः प्रहिताः क्रूराः पुरुषास्तद्विनाशने । संदष्टोष्ठपुटा बद्धभ्रकुटीकोटिसंकटाः ॥ ११२ ॥
विविधानि विमुंचंतस्ते शस्त्राणि समं ततः । भ्रूक्षेपमात्रकेणैव कैकसेयेन निर्जिताः ॥ ११३ ॥
भयवेपितसर्वांगा ततस्तेऽमरसुंदरं । व्यज्ञापयन् समागत्य शस्त्रनिर्मुक्तपाणयः ॥ ११४ ॥
गृहाण जीवनं नाथ हर वा नः कुलांगनाः । छिंधि वा चरणौ पाणी ग्रीवां वा न वयं क्षमाः ११५

कन्यानिवहमध्यस्थः कोऽपि धीरो विराजते । सुरेंद्रसुंदरः कांत्या समानो रजनीपतेः ॥११६॥
क्रुद्धस्य तस्य नो दृष्टिं देवाः शक्रपुरस्सराः । सहेरन् किमुत क्षुद्रा अस्मत्तुल्याः शरीरिणः॥११७॥
रथनूपुरनाथेंद्रप्रभृत्युत्तममानवाः । वीक्षिता बहवोऽस्माभिरयं तु परमादृतः ॥ ११८ ॥
एवं श्रुत्वा महाक्रोधरक्तास्योऽमरसुंदरः । निरैत्सन्नह्यसंयुक्तो बुधेन कनकेन च ॥ ११९ ॥
अन्ये च बहवः शूराः पतयो व्योमगामिनां । निश्चक्रमुर्वियद्दीप्तं कुर्वाणाः शस्त्ररश्मिभिः ॥१२०॥
ततस्तानायतो दृष्ट्वा ता भयाकुलमानसाः । विद्याधरसुता ऊचुरिदं रत्नश्रवःसुतं ॥ १२१ ॥
अस्मत्प्रयोजनान्नाथ ! प्राप्तोस्यत्यंतसंशयं । पुण्यहीना वयं कष्टं सर्वा अप्यपलक्षणाः ॥ १२२ ॥
उत्तिष्ठ शरणं गच्छ कं च नाथ प्रसीद नः । उत्पत्य गमनं क्षिप्रं रक्ष प्राणान् सुदुर्लभान्॥१२३॥
अस्मिन्वा भवने जैने भूत्वा प्रच्छन्नविग्रहः । तिष्ठ यावदिमे क्रूरा नेक्षंते भवतस्तनुं ॥ १२४ ॥
श्रुत्वा वाक्यमिदं दीनं दृष्ट्वा च निकटं बलं । सिते कुमुदवत्तेन नेत्रे पद्मनिभे तते ॥ १२५ ॥
उवाच च न मां नूनं विच्छ यद्वदथेदृशं । किमेभिः क्रियते काकैः संभूयापि गरुत्मतः॥१२६॥
एकाकी पृथुकः सिंहः प्रस्फुराच्छितकेसरः । किंवा नानयते ध्वंसं यूथं संमददंतिनां ॥ १२७ ॥
इदं ताः पुनरूचुस्तं यद्येवं नाथ मन्यसे । ततोऽस्माकं पितॄन् रक्ष भ्रातॄंश्च स्वजनांस्तथा १२८

एवमस्तु प्रिया यूयं मा भैषीति स सांत्वनं । कुरुते यावदेतासां तावद्बलमुपागतं ॥ १२९ ॥
ततो विमानमारुह्य क्षणाद्विद्याविनिर्मितं । खमारुह्य दशग्रीवो दंतदष्टरदच्छदः ॥ १३० ॥
त एवावयवास्तस्य प्राप्य युद्धमहोत्सवं । दुःखेन मानमाकाशे प्राप्ता रोमांचकर्कशाः ॥ १३१ ॥
तस्योपरि ततो योधाश्चिक्षिपुः शस्त्रसंहतीः । धारा इव घनस्थूलाः पर्वतस्य घनाघनाः ॥१३२॥
ततोऽसौ शस्त्रसंघातं काभिश्चिद्विन्यवारयत् । काभिश्चित्तु रिपुव्रातं शिलाभिर्भयमानयत् ॥१३३॥
वराकैर्निहतैरेभिः खचरैः किं ममेत्यसौ । चिंतयित्वा प्रधानां स्त्रीं तां चक्रे नेत्रगोचरां ॥१३४॥
तामसेन ततोऽस्त्रेण मोहयित्वा गतक्रियाः । नागपाशैस्त्रयोऽप्येते बद्ध्वा तासामुपाहृताः ॥१३५॥
मोचितास्ते ततस्ताभिः पूजां च परिलंभिताः । शूरस्वजनसंप्राप्ते संमदं च समागताः ॥१३६॥
ततः पाणिग्रहश्चक्रे तस्य तासां च तैः पुनः । दिवसानां त्रयं विद्याजनितश्च महोत्सवः ॥१३७॥
गताश्चानुमतास्तेन यथास्वं निलयानमी । मंदोदरीगुणाकृष्टः स च यातः स्वयंप्रभं ॥ १३८ ॥
ततस्तं परया द्युत्या युक्तं दृष्ट्वा सयोषितं । बांधवाः परमं हर्षं जग्मुर्विस्तारितेक्षणाः ॥ १३९ ॥
दूरादेव च तं दृष्ट्वा भानुकर्णविभीषणौ । अभिगत्या विनिष्क्रांतौ सुहृदोऽन्ये च बांधवाः॥१४०॥
वेष्टिताश्च प्रविष्टास्ते स्वयंप्रभपुरोत्तमं । रेमे च स्वेच्छया तेऽत्र प्राप्नुवन् सुखमुत्तमं ॥ १४१ ॥

अथ कुंभपुरे राजमहोदरसुतां वरां । सुरूपाक्षीसमुद्भूतां तडिन्मालाभिधानकां ॥ १४२ ॥
भास्करश्रवणो लेभे सुप्रीतः स तया समं । चारुविभ्रमकारिण्या निमग्नो रतिसागरे ॥ १४३ ॥
तत्र कुंभपुरे तस्य केनचित्कृतशब्दने । श्वसुरस्नेहतः कर्णौ सततं पेततुर्यतः ॥ १४४ ॥
कुंभकर्ण इति ख्यातिं ततोऽसौ भुवने गतः । धर्मसक्तमतिर्वीरः कलागुणविशारदः ॥ १४५ ॥
अथ स प्रखलैः ख्यातिमन्यथा गमितो जनैः । मांसासृग्जीवनत्वेन तथा षण्मासनिद्रया १४६
आहारोऽस्य शुचिः स्वादुर्यथाकामप्रकल्पितः । सुरभिर्वैधयुक्तस्य प्रथमं तर्पितातिथिः ॥१४७॥
संध्यासंवेशनोत्थानमध्यकालप्रवर्तिनी । निद्रास्य शेषकालस्तु धर्मव्यासक्तचेतसः ॥ १४८ ॥
परमार्थाऽवबोधेन वियुक्ताः पापचेतसः । कल्पयंत्यन्यथाऽसाधून् धिक्तान् दुर्गतिगामिनः १४९
अथास्तिदक्षिणश्रेण्यां नाम्ना ज्योतिःप्रभं पुरं । विशुद्धकमलस्तत्र राजा मयमहासुहृत् ॥ १५० ॥
तस्य नंदनमालायामुत्पन्ना वरकन्यका । राजीवसरसीनाम्ना पतिं प्राप्ताविभीषणं ॥ १५१ ॥
कांतया कांतया सार्कं न स प्राप रतिं कृती । देववत्परमाकारः पद्मया पद्मयातया ॥ १५२ ॥
अथ मंदोदरी गर्भं कालयोगाददीधरत् । सद्यः कल्पितचित्तस्थदोहदाहारि विभ्रमा ॥ १५३ ॥
नीता च जनकागारं प्रसूता बालकंदलं । इंद्रजित्ख्यातिमायातो यः समस्तमहीतले ॥ १५४ ॥

मातामहगृहे वृद्धिं प्राप्तश्च जननंदनः । सत्कुर्वत् निर्भरक्रीडां सिंहशाव इवोत्तमां ॥ १५५ ॥
ततोऽसौ पुनरानीता सपुत्रा भर्तुरंतिकं । दत्तदुःखा पितुः स्वस्य पुत्रस्य च वियोगतः ॥१५६॥
दशग्रीवोऽथ पुत्रास्यं दृष्ट्वा परममागतः । आनंदं पुत्रतो नान्यं प्रीतेरायतनं परं ॥ १५७ ॥
कालक्रमात्पुनर्गर्भं दधाना पितुरंतिकं । नीता स्वयं प्रसूता च मघवाहनबालकं ॥ १५८ ॥
भर्तुरंतिकमानीता पुनः सा भोगसागरे । पतिता स्वेच्छया तिष्ठन् गृहीता पतिमानसा ॥१५९॥
दारकौ स्वजनानंदं कुर्वाणौ चारुविभ्रमौ । तौ युवत्वं परिप्राप्तौ महोक्षविपुलेक्षणौ ॥ १६० ॥
अथ वैश्रवणो यासां कुरुते स्वामितां पुरा । व्यध्वंसयदिमा गत्वा कुंभकर्णः सहस्रशः ॥ १६१ ॥
तासु रत्नानि वस्त्राणि कन्यकाश्च मनोहरा । गणिकाश्चानयद्वीरः स्वयंप्रभपुरोत्तमं ॥ १६२ ॥
अथ वैश्रवणः क्रुद्धो ज्ञात्वा पृथुकचेष्टितं । सुमालिनोऽतिकं दूतं प्रजिघायातिगर्वितः ॥ १६३ ॥
प्रविवेश ततो दूतः प्रतिहारनिवेदितः । उपचारं च संप्राप्तः कृतकं लोकमार्गतः ॥ १६४ ॥
उवाचेदं तथा दूतो वाक्यालंकारसंज्ञितः । समक्षं दशवक्त्रस्य सुमालिनामिति क्रमात् ॥ १६५ ॥
समस्तभुवनव्यापिकीर्तिविश्रमणश्रुतिः । चरतीदं महाराजो भवंतं कुरु चेतसि ॥ १६६ ॥
पंडितोऽसि कुलीनोऽसि लोकज्ञोऽसि महानसि । अकार्यसंगभीतोऽसि देशकोऽसि सुवर्त्मसु १६७

एवंविधस्य ते युक्तं कुर्वतं शिशुचापलं । प्रमत्तचेतसं पौत्रं निवारयितुमात्मनः ॥ १६८ ॥
तिरश्चां मानुषाणां च प्रायो भेदोऽयमेव हि । कृत्याकृत्यं न जानंति यदेकेऽन्यत्तु तद्विदः॥१६९॥
विस्मरंति च नो पूर्वं वृत्तांतं दृढमानसाः । जातायामपि कस्यांचिद्भूतौ विद्युत्समद्युतौ ॥१७०॥
शांतिर्मालिन्यधेनैव शेषस्य स्यात्कुलस्य ते । कोहि स्वकुलनिर्मूलध्वंसहेतुक्रियां भजेत् ॥ १७१ ॥
समुद्भवीचिसंसक्तशक्रस्य ध्वस्तविद्विषः । प्रतापो विस्मृतः किं ते यतोऽनुचितमीहते ॥ १७२ ॥
स त्वं क्रीडसि मंडूको दंष्ट्राकंटकसंकटे । वक्त्ररंध्रे भुजंगस्य विषाग्निकणमोचिनि ॥ १७३ ॥
नियंतुमथ शक्नोषि नैतं तस्करदारकं । ततो ममार्पयाद्यैव करोम्यस्य नियंत्रणं ॥ १७४ ॥
नैवं चेत्कुरुते पश्य ततश्चारकवेश्मनि । निगडैः संयुतं पौत्रं यात्यमानमनेकधा ॥ १७५ ॥
अलंकारोदयं त्यक्त्वा चिरंकालमवस्थितः । तदेवविवरं भूयः प्रवेष्टुमभिवांछसि ॥ १७६ ॥
कुपिते मयि शक्रे वा न तेऽस्ति शरण भुवि । जलबुद्बुदवद्घातादचिरादेव नश्यसि ॥ १७७ ॥
ततः परुषवाग्वातवेगाहतमनोजलः । क्षोभं परममायातो दशाननमहार्णवः ॥ १७८ ॥
प्रतीकग्राहवच्चास्य प्रस्फुरस्वेदमोचिनः । चक्षुपात्यंतरक्तेन दिग्धं सकलमम्बरं ॥ १७९ ॥
ततो वधिरयन्नाशाः स्वरेणांबरगामिना । करिणो निर्मदीकुर्वन् बभाण प्रतिनादिना ॥ १८० ॥

कोऽसौ वैश्रवणो नाम को वेंद्रः परिभाष्यते । अस्मद्गोत्रक्रमायाता नगरी येन गृह्यते ॥१८१॥
सोयं श्येनायते काकः शृगालः करभायते । इंद्रायते स्वभृत्यानां निस्त्रपः पुरुषाधमः ॥१८२॥
आः कुदूत पुरोऽस्माकं गदत परुषं वचः । निश्शंकस्य शिरस्तावत्पातयामि रुषे वलिं ॥१८३॥
इत्युक्त्वा कोशतः खड्गमाचकर्षत्कृतं वियत् । इंदीवरवनेनेव येन व्याप्तं महासरः ॥ १८४ ॥
कुर्वाणं क्वणनं वाताद्रोषादिव सकंपनं । नीतकालमिवात्मन्नं हिंसाया इव शावकं ॥ १८५ ॥
उद्गूर्णश्चायमेतेन वेगादागत्य चांतरं । विभीषणेन संरुद्धः सांत्वितश्चेति सादरं ॥ १८६ ॥
भृत्यस्यास्यापराधः कः क्लीवस्यापहतात्मनः । विक्रीतनिजदेहस्य शुकस्येवानुभाषिणः ॥१८७॥
हृदयस्थेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिताः । दूता वाचि प्रवर्तंते यत्र देहा इवावशाः ॥ १८८ ॥
तत्प्रसीद दयामार्य कुरु प्राणिनि दुःखिते । अकीर्तिरुद्रवत्युर्वीलोके क्षुद्रवधे कृते ॥ १८९ ॥
शिरस्सु विद्विषामेव तव खड्गः पतिष्यति । नहि गंडूपदान् हंतुं वैनतेयः प्रवर्तते ॥ १९० ॥
एवं कोपानलस्तस्य यावत्सद्वाक्यवारिणा । शममानीयते तेन साधुना न्यायवादिना ॥ १९१ ॥
पादयोस्तावदाकृष्य दूतोऽन्यैर्मुखलक्षितः । क्षिप्रं निष्कासितो गेहाद्विग्भृत्यं दुःखनिर्मितं॥१९२॥
गत्वा वैश्रवणायेयमवस्था तेन वेदिता । दशग्रीवाद्विनिष्क्रांता वाणी चात्यंतदुःकथा ॥ १९३ ॥

तयेंधनविभूत्यास्य कोपवन्हिः समुत्थितः । अमात इव सोतेन भृत्यचेतःसुवंठितः ॥ १९४ ॥
अचीकरच्च संग्रामसंज्ञां परुषतूर्यतः । रणसज्जा यथा सद्यो मणिभद्रादयः कृताः ॥ १९५ ॥
निरैद्वैश्रवणो योद्धुं यक्षयोधैस्ततो वृतः । विलसत्सायकप्रासचक्राद्यायुधपाणिभिः ॥ १९६ ॥
स निर्भरांजनक्षोणीधराकारैर्मतंगजैः । संध्यारागसमाविष्टमेघाकारैर्महारथैः ॥ १९७ ॥
प्रस्फुरच्चामरैरश्वैर्जयद्भिर्जवतोऽनिलं । सुरावासमसमाकारैर्विमानैर्दूरमुन्नतैः ॥ १९८ ॥
लंघिताश्च विमानेन स्यंदनेनोरुतेजसा । पादातेन च संघट्टमीयुपार्णवरावेण ॥ १९९ ॥
पूर्वमेव च निष्क्रांतो दशग्रीवो महाबलः । भानुकर्णादिभिः सार्द्धं स्थितो रणमहोत्सवः॥२००॥
गुंजाख्यस्य ततो मूर्ध्नि पर्वतस्य तयोरभूत् । संपातः सेनयोः शस्त्रसंपातोद्भतपावकः ॥ २०१ ॥
कणनेन ततोऽसीनां सप्तीनां हेषितेन च । पदातीनां च नादेन गजानां गर्जितेन च ॥ २०२ ॥
अन्योऽन्यसंगमोद्भूतरथशब्देन चारुणा । तूर्यस्वरेण चोग्रेण शीत्कारेण च पत्रिणां ॥ २०३ ॥
ध्वनिः कोऽपि विमिश्रोऽभूत् प्रतिनादेन बोधितः । व्याप्नुवन् रोदसीकुर्वन् भटानां मदमुत्तमं ॥
कृतांतवदनाकारैश्चक्रैः स्फुरितधारकैः । खड्गैस्तद्रसनाकारैः रक्तसीकरवर्षिभिः ॥ २०५ ॥
तद्रोमसन्निभैः कुंभैस्तत्तर्जन्योपमैः शरैः । परिघैस्तद्भुजाकारैस्तनुमुष्टिभिः मुद्गरैः ॥ २०६ ॥

बभूव सुमहज्जन्यं कृतविक्रांतसंमदं । कातरोत्पादितत्रासं शिरःक्रीतयशोधनं ॥ २०७ ॥
ततो निजं बलं नीतं खेदं यक्षभटैश्चिरात् । साधारयितुमारब्धो दशास्यो रणमस्तकं ॥ २०८ ॥
अभ्यायांतं च तं दृष्ट्वा सितातपत्रवारणं । कालमेघमिवोद्भूस्थरजनीकरमंडलं ॥ २०९ ॥
सचापं तमिवासक्तशचीपतिशरासनं । हेमकंटकसंवीतं विद्युतातमिवाचितं ॥ २१० ॥
किरीटं बिभ्रतं नानारत्नसंगविराजितं । युक्तं तमिव वज्रेण छादयंतं नभस्त्विषा ॥ २११ ॥
विलक्षाश्चाभवन् यक्षा विपण्णाक्षाः क्षतौजसः । परांमुखक्रियायुक्ताः क्षणात्क्षीणरणाशयाः २१२
त्रासाकुलितचित्तेषु ततो यक्षपदातिषु । आवर्तमिव यातेषु भ्रमत्सु सुमहारवं ॥ २१३ ॥
स्वसेनामुखतां जग्मुर्यक्षाणां बहवोऽधिपाः । पुनरेभिः कृतं सैन्यं रणस्याभिमुखं तथा ॥ २१४ ॥
तत उच्छेत्तुमारब्धो यक्षनाथान् दशाननः । उत्पत्योत्पत्य गगने सिंहो मत्तगजानिव ॥ २१५ ॥
प्रेरितः कोपवातेन दशाननतनूनपात् । शस्त्रज्वालाकुलः शत्रुसैन्यकक्षे व्यजृंभत ॥ २१६ ॥
न सोऽस्ति पुरुषो भूमौ रथे वाजिनि वारणे । विमाने वा न यच्छिद्रः कृतो दाशाननैः शरैः
ततोभिमुखमायांतं दृष्ट्वा दशमुखं रणे । अभजद्भांधवस्नेहं परं वैश्रवणः क्षणात् ॥ २१८ ॥
विषादमतुलं चागान्निर्वेदं च नृपश्रियः । यथा बाहुबली पूर्वं शमकर्मणि संगते ॥ २१९ ॥

विवेदेति च धिक्कष्टं संसारं दुःखभाजनं । चक्रवत्परिवर्तते प्राणिनो यत्र योनिषु ॥ २२० ॥
पश्यैश्वर्यमूढेन किं वस्तु प्रस्तुतं मया । बंधुविध्वंसनं यत्र क्रियते गर्ववत्तया ॥ २२१ ॥
उदात्तमिति चावोचद् भो भो शृणु दशानन । किमिदं क्रियते पापं क्षणिकश्रीप्रचोदितं ॥२२२॥
मातृश्वसुः सुतोऽहं ते सोदरप्रीतिसंगतः । ततो बंधुषु नो युक्तं व्यवहर्तुमसांप्रतं ॥ २२३ ॥
कृत्वा प्राणीवधं जंतुर्मनोज्ञविषयाशया । प्रयाति नरकं भीमं सुमहादुःखसंकुलं ॥ २२४ ॥
यथैकदिवसं राज्यं प्राप्तं संवत्सरवधं । प्राप्नोति सदृशं तेन निश्चये विषयी सुखं ॥ २२५ ॥
चक्षुःपक्ष्मपुटासंगक्षणिकं ननु जीवितं । न वेत्सि किं यतः कर्म कुरुते भोगकारणं ॥ २२६ ॥
ततो हसन्नुवाचेदं दशास्यः करुणोज्झितः । धर्मश्रवणकालोऽयं न वैश्रवण ! वर्तते ॥ २२७ ॥
मत्तस्तंबेरमारूढैर्मंडलाग्रकरैर्नरैः । क्रियते मारणं शत्रोर्नेतु धर्मनिवेदनं ॥ २२८ ॥
मार्गे तिष्ठ कृपाणस्य किं व्यर्थं बहुभाषसे । कुरु वा प्रणिपातं ये तृतीयास्ति न ते गतिः ॥२२९॥
अथवा धनपालस्त्वं द्रविणं मम पालय । कुर्वाणो हि निजं कर्म पुरुषो नैव लज्जते ॥ २३० ॥
ततो वैश्रवणो भूय उवाचेति दशाननं । नूनमायुस्तव स्वल्पं क्रूरं येनेतिभाषसे ॥ २३१ ॥
भूयोऽपि मानसं बिभ्रत्ततो रोषणरूषितं । अस्ति चेत्तव सामर्थ्यं जहीत्याह दशाननः ॥ २३२ ॥

जगाद स ततो ज्येष्ठस्त्वं मां प्रथममाजहि । वीर्यमक्षतकायानां शूराणां नहि वर्धते ॥ २३३ ॥
ऊर्ध्वं ततो दशास्यस्य शरान् वैश्रवणोऽमुचत् । करानिवावनेर्मूर्ध्नि मध्याह्ने द्योतिषां पतिः २३४
चिच्छेद सायकान् तस्य ततो वाणैर्दशाननः । मंडपं च घनं चक्रे क्षणमात्रादनाकुलः ॥२३५॥
रंध्रं वैश्रवणः प्राप्य शशांकार्धेषुणा ततः । दशास्यस्याच्छिनच्चापं चक्रे चैतं रथच्युतं ॥ २३६ ॥
ततोऽन्यं रथमारुह्य वेगादंभोदनिस्वनं । तथासच्चो दशग्रीवो दुढौके पुष्पकांतिकं ॥ २३७ ॥
उल्काकारैस्ततस्तेन वज्रदंडैर्घनेरितः । कणशः कवचं कीर्णं धनदस्य महारुषा ॥ २३८ ॥
हृदये शुक्लमालेऽथभिंडिमालेन वेगिना । जघान कैकसेयस्तं तथा मूर्च्छामितो यतः ॥ २३९ ॥
ततो जातो महाक्रंदः सैन्ये वैश्रवणाश्रिते । तोषाच्च रक्षसां सैन्ये जातः कलकलो महान्॥२४०॥
ततो भृत्यैः समुद्धृत्य वीरशय्याप्रतिष्ठितः । क्षिप्रं यक्षपुरं नीतो धनदो भृशदुःखितः ॥ २४१ ॥
दशास्योऽपि जितं शत्रुं ज्ञात्वा निवर्तते रणात् । वीराणां शत्रुभंगेन कृतत्वं न धनादिना॥२४२॥
अथ प्रतिक्रिया चक्रे धनदस्य चिकित्सकैः । प्राप्तश्च पूर्ववद्देहमिति चक्रे स चेतसि ॥ २४३ ॥
द्रुमस्य मुक्तपुष्पस्य भग्नस्य वृषभस्य च । सरसश्चाप्यपद्मस्य वर्तेऽहं सदृशोऽधुना ॥ २४४ ॥
मानमुद्वहतः पुंसो जीवतः संसृतौ सुखं । तच्च मे सांप्रतं नास्ति तस्मान्मुक्त्यर्थमायते ॥ २४५ ॥

एतदर्थं न वांछंति संतो विषयजं सुखं । यदेतदध्रुवं स्तोकं सांतरायं सदुःखकं ॥ २४६ ॥
नागः कस्यचिदप्यस्य कर्मणामिदमीहितं । समस्तं प्राणिजातस्य कृतानामन्यजन्मनि ॥ २४७ ॥
निमित्तमात्रताऽन्येषामसुखस्य सुखस्य वा । बुधास्तेभ्यो न कुप्यंति संसारस्थितिवेदिनः॥२४८॥
कल्याणमित्रतां यातः कैकसीतनयो मम । गृहावासमहापाशाद्येनाहं मोचितोऽमतिः ॥ २४९ ॥
बांधवोभानुकर्णोऽपि संवृत्तः सांप्रतं मम । संग्रामकारणं येन कृतं परमसंविदे ॥ २५० ॥
इति संचिंत्य जग्राह दीक्षां दैगंबरीमसौ । आराध्य च तपः सम्यक् क्रमाद्धाम परं गतः ॥२५१॥
प्रक्षाल्य दशवक्त्रोऽपि पराभवमलं कुले । सुखासिकामगादुर्व्यां बंधुभिः शेखरीकृतः ॥ २५२ ॥
अथापवर्तितं तस्य मनोज्ञं धानदाधिपं । प्रत्युप्तरत्नशिखरं वातायनविलोचनं ॥ २५३ ॥
मुक्ताजालप्रमुक्तेन समूहेनामलत्विषा । समुत्सृजदिवाजस्रमश्रु स्वामिवियोगतः ॥ २५४ ॥
पद्मरागविनिर्माणमग्रदेशं दधच्छुचा । ताड़नादिव संप्राप्तं हृदयं रक्ततां परं ॥ २५५ ॥
इंद्रनीलप्रभाजालकृतं प्रावरणं क्वचित् । शोकादिव परिप्राप्तं श्यामलत्वमुदारतः ॥ २५६ ॥
चैत्यकाननबाह्यालीवाप्यंतर्भवनादिभिः । सहितं नगराकारं नानाशस्त्रकृतक्षतं ॥ २५७ ॥
भृत्यैरुपाहृतं तुंगं सुरप्रासादसन्निभं । विमानं पुष्पकं नाम विहायस्तलमंडनं ॥ २५८ ॥

अरातिभंगचिह्नत्वादियेषेदं स मानवान् । अन्यथा तस्य किं नास्ति यानं विद्याविनिर्मितं २५९
स तं विमानमारुह्य सामात्यः सहवाहनः । सपौरः सात्मजः सार्धं पितृभ्यां सह बंधुभिः॥२६०॥
अंतःपुरमहापद्मखंडमध्यगतः सुखी । अव्याहतगतिः स्वेच्छाकृतविभ्रमभूषणः ॥ २६१ ॥
चापत्रिशूलनिस्त्रिंशप्रासपाशादिपाणिभिः । भृत्यैरनुगतो भक्तैर्विहिताद्भुतकर्मभिः ॥ २६२ ॥
कृतशत्रुसमूहांतैः सामंतैर्बद्धमंडलैः । गुणप्रवणचेतोभिर्महाविभवशोभितैः ॥ २६३ ॥
वरविद्याधरीपाणिगृहीतैश्चारुचामरैः । वीज्यमानो विलिप्तांगो गोशीर्षादिविलेपनैः ॥ २६४ ॥
उच्छ्रितेनातपत्रेण रजनीकरशोभिना । यशसेवागतः शोभां लब्धेनारातिभंगतः ॥ २६५ ॥
उदारं भानुवत्तेजो दधानः पुण्यजं फलं । विंदन् दक्षिणमंबोधिं ययाविंद्रसमः श्रिया ॥ २६६ ॥
तस्यानुगमनं चक्रे कुंभकर्णो गजस्थितः । विभीषणो रथस्थश्च स्वगर्वविभवान्वितः ॥ २६७ ॥
महादैत्यो मयोऽप्येनमन्वियाय स बांधवः । सामंतैः सहितः सिंहशरभादियुतै रथैः ॥ २६८ ॥
मारीचोऽबरविद्युच्च वज्रो वज्रोदरो बुधः । वज्राक्षः क्रूरनक्रश्च सारणः सुनयः शुकः ॥ २६९ ॥
मयस्य मंत्रिणोऽन्ये च बहवः खेचराधिपाः । अनुजग्मुरुदारेण विभवेन समन्विताः ॥ २७० ॥
दक्षिणाशामशेषां स वशीकृत्य ततोऽन्यतः । विजहार महीं पश्यन् सवनाद्रिसमुद्रगां ॥ २७१ ॥

अथासावन्यदापृच्छत् सुमालिनमुदद्भुतः । उच्चैर्गगनमारुह्य विनयानतविग्रहः ॥ २७२ ॥
सरसीरहितेऽमुष्मिन् पूज्यपर्वतमूर्धनि । वनानि पश्य पद्मानां जातान्येतन्महाद्भुतं ॥ २७३ ॥
तिष्ठंति निश्चलाश्चामी कथमत्र महीतले । पतिता विविधच्छायाः सुमहांतः पयोमुचः ॥ २७४ ॥
नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा सुमाली तमथागदत् । नामूनि शतपत्राणि नचैते वत्स तोयदाः ॥२७५॥
सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः । शृंगेषु पर्वतस्यामी विराजंते जिनालयाः ॥ २७६ ॥
कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना । एतान् वत्स नमस्य त्वं भव पूतमनाः क्षणात् ॥२७७॥
ततस्तत्रस्थ एवासौ नमस्कृत्य जिनालयान् । उवाच विस्मयापन्नो धनदस्य विमर्दकः ॥२७८॥
आसीत्किं तस्य माहात्म्यं हरिषेणस्य कथ्यतां । प्रतीक्ष्यतम येनासौ भवद्भिरिति कीर्तितः॥२७९॥
सुमाली न्यगदच्चैवं साधु पृष्टं दशानन । चरितं हरिषेणस्य शृणु पापविदारणं ॥ २८० ॥
कांपिल्यनगरे राजा नाम्ना मृगपतिध्वजः । बभूव यशसा व्याप्तसमस्तभुवनो महान् ॥ २८१ ॥
महिषी तस्य वप्राह्वा प्रमदा गुणशालिनी । अभूत्सौभाग्यतः प्राप्ता पत्नी सा ललामतां ॥२८२॥
हरिषेणः समुत्पन्नस्तस्यां परमोदयः । चतुःषष्ठिशुभैर्युक्तो लक्षणैः क्षतदुष्कृतः ॥ २८३ ॥
वप्रया चान्यदा जैने मते भ्रमयितुं रथं । अष्टान्हिकमहानंदे नगरे धर्मशीलया ॥ २८४ ॥

महालक्ष्मीरिति ख्याता सौभाग्यमदविह्वला । अवृत्तमवदत्तस्याः सपत्नी दुर्विचेष्टिता ॥ २८५ ॥
पूर्वं ब्रह्मरथो यातु मदीयः पुरवर्त्मनि । भ्रमिष्यति ततः पश्चाद्वप्रया कारितो रथः ॥ २८६ ॥
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कुलिशेनेव ताडिता । हृदये दुःखसंतप्ता प्रतिज्ञामकरोदिमां ॥ २८७ ॥
भ्रमिष्यति रथोऽयं मे प्रथमं नगरे यदि । पूर्ववत्पुनराहारं करिष्येऽतोऽन्यथा तु न ॥ २८८ ॥
इत्युक्त्वा च बबंधासौ प्रतिज्ञां लक्ष्मवेणिकां । व्यापाररहितावस्था शोकम्लानास्यपंकजा॥२८९॥
तत श्चासान्विमुंचंतीमश्रुबिंदूननारतं । हरिषेणः समालोक्य जननीमित्यवोचत ॥ २९० ॥
मातः कस्मादिदं पूर्वं स्वप्नेऽपि न निषेवितं । त्वया रोदनमारब्धममंगलमलं वद ॥ २९१ ॥
तयोक्तं स ततः श्रुत्वा हेतुमेवं व्यचिंतयत् । किं करोमि गुरोः पीडा प्राप्तेयं कथमीरिता॥२९२॥
पितायं जननी चैषा द्वावप्येतौ महागुरू । करोमि कं प्रति द्वेषमहो मग्नोऽस्मि संकटे ॥ २९३ ॥
असमर्थस्ततो द्रष्टुं मातरं साश्रुलोचनां । निष्क्रम्य भवनाद्यातो वनं व्यालशमाकुलं ॥ २९४ ॥
तत्र मूलफलादीनि भक्षयन्विजने वने । सरस्सु च पिबन्नंभो विजहार भयोज्झितः ॥ २९५ ॥
रूपमेतस्य तं दृष्ट्वा पशवोऽपि सुनिर्दयाः । क्षणेनोपशमं जग्मुर्भव्यः कस्य न सम्मतः ॥ २९६ ॥
तत्रापि स्मर्यमाणं तत्कृतं मात्रा प्ररोदनं । ववार्धैतं प्रलापश्च कृतो गद्गदकंठया ॥ २९७ ॥

रम्येष्वपि प्रदेशेषु वने तत्रास्य नो धृतिः । बभूव कुर्वतो नित्यं भ्रमणं मृदुचेतसा ॥ २९८ ॥
वनदेव इति भ्रांतिं कुर्वाणोऽसावनारतं । दूरविस्तारिताक्षीभिर्मृगीभिः कृतवीक्षणः ॥ २९९ ॥
स इयायांगिरःशिष्यशतमन्युवनाश्रमं । विरोधं दूरमुज्झित्वा वनप्राणिभिराश्रितं ॥ ३०० ॥
चंपायामथ रुद्धायां कालकल्पाख्यभूभृता । रुद्रेण साधनं भूरि बिभ्रता पुरुतेजसा ॥ ३०१ ॥
यावत्तेन समं युद्धं चकार जनमेजयः । पूर्वं रचितया तावत्सूदूरगसुरंगया ॥ ३०२ ॥
नाम्ना नागमती तस्या माता तनुजया समं । पूर्वमेव गता देशं शतमन्युयतिश्रितं ॥ ३०३ ॥
नागवत्याः सुता तस्मिन् दृष्ट्वा तं रूपशालिनं । मन्मथस्य शरैर्विद्धा तनुविकलवताकरैः ॥३०४॥
ततस्तामन्यथाभूतां दृष्ट्वा नागवती जगौ । सुते ! भव विनीता त्वं स्मर वाक्यं महामुनेः ॥३०५॥
पूर्वं हि मुनिना प्रोक्तं यथा त्वं चक्रवर्तिनः । भविता वनितारत्नमिति संज्ञानचक्षुषा ॥३०६॥
रक्तां च तस्य तां ज्ञात्वा भृशं भीतैरकीर्तितः । आश्रमात्तापसैर्मूढैर्हरिषेणो निराकृतः ॥ ३०७ ॥
ततो दग्धोपमानेन कन्यामादाय चेतसा । बभ्राम सततं श्लिष्टो भ्रामर्येव स विद्यया ॥ ३०८ ॥
नाशने शयनीयेन पुष्पपल्लवकल्पिते । फलानां भोजने नैव पाने वा सरसोऽभसः ॥ ३०९ ॥
न ग्रामे नगरे नोपवने रम्यलताग्रहे । धृतिं लेभे समुत्कंठभराक्रांतः सशोकवान् ॥ ३१० ॥

दावाग्निसदृशास्तेन पद्मखंडा निरीक्षिताः । वज्रसूचीसमास्तस्य बभूवुश्चंद्ररश्मयः ॥ ३११ ॥
विशालपुलिनाश्चास्य स्वच्छतोयाः समुद्रगाः । मनो वहंति चाकृष्य कन्याजघनसाम्यतः ॥३१२॥
मनोऽस्य केतकीसूचीकुंतयष्टिरिवाभिनत् । चक्रवच्च कदंबानां पुष्पं सुरभि चिच्छिदे ॥३१३॥
कुटजानां विधूतानि कुसुमानि नभस्वता । मर्माणि चिच्छिदुस्तस्य मन्मथस्येव सायकाः॥३१४॥
यदि चाचिंतयल्लुप्त्ये स्त्रीरत्नं यदि नाम तत् । ततः शोकमहं मातुरपनेष्याम्यसंशयं ॥ ३१५ ॥
प्राप्तमेव ततो मन्ये पतित्वं भरतेऽखिले । आकृतिर्नहि सा तस्याः स्तोकभोगविधायिनी॥३१६॥
नदीकूलेष्वरण्येषु ग्रामेषु नगरेषु च । पर्वतेषु च चैत्यानि कारयिष्याम्यहं ततः ॥ ३१७ ॥
मातुः शोकेन संतप्तो मृतः स्यां यदि तामहं । न पश्येयं धृतो जीवो मम तत्संगमाशया ॥३१८॥
चिंतयन्निति चान्यच्च बहुदुःखितमानसः । विस्मृतो जननीशोकं स बभ्राम गृही यथा ॥३१९॥
पर्यटंश्च बहून् देशान् प्राप्तः सिंधुनदं पुरं । तदवस्थोऽपि वीर्येण तेजसा चारुणान्वितः ॥३२०॥
बहिः क्रीडा विनिष्क्रांतास्तत्र तं वीक्ष्य योषितः । स्तंभिता इव निश्चेष्टाःस्पष्टाक्षाःशतशोऽभवन्
पुंडरीकेक्षणं मेरुकटकोदारवक्षसं । दिङ्मतंगजकुंभांसमिभस्तंभसमोरुकं ॥ ३२२ ॥
उन्मत्तत्वमुपेतानामनन्यगतचेतसां । पश्यंतीनां न तं तृप्तिर्बभूव पुरयोषितां ॥ ३२३ ॥

अथांजनगिरिच्छायः प्रगलद्दाननिर्भरः । आजगाम गजस्तासां स्त्रीणामभिमुखो बलात् ॥३२४॥
न शक्नोमि गजं धर्तुं कुरुताशु पलायनं । यदि शक्नुवतो नार्य इत्यारोहेण चोदितं ॥ ३२५ ॥
नरवृंदारकासक्तचेतनास्ता न तद्वचः । चक्रुः श्रवणयोर्नापि समर्थाः प्रपलायितुं ॥ ३२६ ॥
मुहुः प्रचंडमारोहे ततो रटति चेतितं । वनिताभिर्बभूवुश्च भयव्याकुलचेतसः ॥ ३२७ ॥
ततस्ताः शरणं जग्मुस्तं नरं कृतकंपनाः । भयेनोपकृतं तासां तत्समागमचेतसां ॥ ३२८ ॥
ततः स करुणायुक्तो हरिषेणो व्यचिंतयत् । संभ्रांतोत्तमरामांगसंगमात्पुलकांचितः ॥ ३२९ ॥
इतः सिंधुर्गभीरोऽयमितः शालो गजोऽन्यतः । संकटे तु परिप्राप्ते करोमि प्राणिपालनं ॥३३०॥
वृषः खनति वल्मीकं शृंगाभ्यां नतु भूधरं । पुरुषः कदलीं छिंते सायकेन शिलां तु न ॥३३१॥
मृदुं पराभवत्येष लोकः प्रखलचेष्टितः । उद्वर्त्याप्यसुखं कर्तुं नाभिवांछति कर्कशे ॥ ३३२ ॥
क्लीवास्ते तापसा येन क्षमा तेषां मया कृता । सारंगसमवृत्तीनां निर्वासेन कृतागसां ॥३३३॥
वसतां गुरुगेहेषु क्षमात्यंतगरीयसी । कृता सा हि हितात्यंतं संजाता परमोदया ॥ ३३४ ॥
उक्तमेवं ततस्तेन तारनिष्ठुरया गिरा । भो भो हस्तिपकान्येन नय देशेन वारणं ॥ ३३५ ॥
ततो हस्तिपकेनोक्तमहो ते धृष्टता परा । यन्मनुष्यं गजं वेत्सि स्वं च वेत्सि मतंगजं ॥३३६॥

नूनं मृत्युसमीपोऽसि यन्मदं वहसे गजे । गृहेण वा गृहीतोऽसि व्रजास्मादाशुगोचरात् ॥ ३३७॥
विहस्य स ततः कोपाल्लीलया कृतनर्तनः । सांतयित्वांगनाः कृत्वा पृष्टतो गजमभ्यगात्॥३३८॥
विद्युद्विलसितेनासौ करुणेन ततो नभः । उत्पत्य दशने पादं कृत्वाऽरुक्षन्मतंगजं ॥ ३३९ ॥
ततः क्रीडितुमारेभे गजेन सह लीलया । दृष्टनष्टसमस्तेषु गात्रेष्वस्य पुनर्भुवि ॥ ३४० ॥
पारंपर्यतः श्रुत्वा कृत्वा कलकलं महत् । विनिष्क्रांतं पुरं सर्वं द्रष्टुमेतन्महाद्भुतं ॥ ३४१ ॥
वातायनगताश्चेक्षां चक्रिरे तं महांगनाः । चक्रुर्मनोरथान् कन्यास्तत्समागमसंगतान् ॥ ३४२ ॥
आस्फालनैर्महाशब्दैर्मुहुर्गात्रविधूननैः । कृतोऽसौ निर्मदस्तेन क्षणमात्रेण वारणः ॥ ३४३ ॥
हर्म्यपृष्ठगतो दृष्ट्वा तदाश्चर्यं पुराधिपः । सिंधुनामाऽखिलं तस्मै प्रजिघाय परिच्छदं ॥ ३४४ ॥
तथा कृथाकृतच्छाये नानावर्णकभासुरे । आरूढः स गजे तस्मिन् विभूत्या परयान्वितः ॥३४५॥
मनांसि पौरनारीणामुच्चिन्वन् रूपपाणिना । प्रविवेश पुरं स्वेदबिंदुमुक्ताफलान्वितः ॥ ३४६ ॥
नराधिपस्य कन्यानां परिणीतं ततः शतं । तेन सर्वत्र चासक्ता हरिषेणमयी कथा ॥ ३४७ ॥
महांतमपि संप्राप्तः सन्मानं स नरेश्वरात् । स्त्रीरत्नेन विना मेने तां वर्षमिव शर्वरी ॥ ३४८ ॥
अचिंतयच्च नूनं सा मया विरहिताधुना । मृगीवाकुलतां प्राप्ता परमां विषमे वने ॥ ३४९ ॥

सकृदेषा कथंचिच्चेत् त्रियामा क्षयमेष्यति । गमिष्यामि ततो बालामेतां द्रागनुचिंतनं ॥३५०॥
विचिंतयत्येवमेतस्मिन् शयनीयेतिशोभने । चिरेण निद्रया लब्धं पदमत्यंतकृच्छ्रतः ॥ ३५१ ॥
स्वप्नेऽपि च स तामेव ददर्शाभोजलोचनां । प्रायो हि मानसस्यास्य सैव गोचरतामगात् ॥३५२॥
अथ वेगवती नाम्ना कलागुणविशारदा । खेचराधिपकन्यायाः सखी तमहरत्क्षणात् ॥ ३५३ ॥
ततो निद्राक्षये दृष्ट्वा ह्रियमाणं स्वमंबरे । पापे हरसि मां कस्मादितिव्याहृत्य कोपतः ॥३५४॥
दष्टनिश्शेषताराक्षः संदष्टरदनच्छदः । मुष्टिं बबंध तां हंतुं वज्रमुद्गरसन्निभां ॥ ३५५ ॥
ततस्तं कुपितं दृष्ट्वा पुरुषं चारुलक्षणं । विद्याबलसमृद्धापि शंकिता सेत्यभाषत ॥ ३५६ ॥
आरूढस्तरुशाखायां छिन्ने तस्या यथा नरः । मूलं तथा करोषि त्वं ममायुष्मन् विहंसनं ॥३५७॥
यदर्थं नीयते तात त्वं मया तद्गतो भवान् । सत्यं ज्ञास्यसि नह्यस्य वपुषस्तव दुःखिता ॥३५८॥
अचिंतयच्च भद्रेयं वनिता चारुभाषिणी । आकृतिः कथयत्यस्याः परपीडानिवृत्ततां ॥ ३५९ ॥
यथेदं स्पंदते चक्षुर्दक्षिणं मम सांप्रतं । तथा च कल्पयाम्येषा प्रियसंगमकारिणी ॥ ३६० ॥
पुनश्चानेन सा पृष्टा भद्रे ! वेदय कारणं । ललामसंकथासंगात् कर्णौ तावत्प्रतर्पय ॥ ३६१ ॥
जगाद चेति राजास्ति पुरे सूर्योदये वरे । नाम्ना शक्रधनुस्तस्य भार्या धीरिति कीर्तिता ॥३६२॥

गुणरूपमदग्रस्ता जयचंद्रा तयोः सुता । पुरुषद्वेषिणी जाता पितृवाक्यापकर्षिणी ॥ ३६३ ॥
यो यस्तस्या मयाऽऽलिख्य पट्टके दर्शितः पुरा । सकले भरतक्षेत्रे नासौ तस्या रुचौ स्थितः३६४
ततो भवान् मया तस्या दर्शितः पट्टकस्थितः । गाढ़ाकल्पकशिल्पेन शल्यिता चेदमब्रवीत् ३६५
कामभोगोपमानेन समं यदि न युज्यते । मृत्युं ततः प्रपत्स्येऽहं नत्वन्यमधमं नरं ॥ ३६६ ॥
यदि तं नानयेच्छीघ्रं त्वन्मानसमलिम्लुचं । ज्वालाजटालमनलं प्रविशामि ततः सखि ॥३६७॥
प्रतिज्ञा च पुरस्तस्या मयेयं दुष्करा कृता । शोकमत्युत्कटं दृष्ट्वा तदुणाकृष्टचित्तया ॥ ३६८ ॥
प्रतिज्ञायेति पुण्येन प्राप्तेति महता मया । त्वत्प्रसादात्करिष्यामि प्रतिज्ञां फलसंगतां ॥ ३६९ ॥
सूर्योदयपुरं चैषा प्राप्ता स च निवेदितः । आनीतः शक्रचापाय कन्यायै च मनोहरः ॥ ३७० ॥
ततः पाणिग्रहश्चक्रे तयोरद्भुतरूपयोः । विस्मयापन्नचेतोभिः स्वजनैरभिनंदितः ॥ ३७१ ॥
संपादितप्रतिज्ञा च प्राप्ता वेगवतो परं । सन्मानं राजकन्याभ्यां प्रमदं च तथा यशः ॥ ३७२ ॥
त्यक्त्वा नौ धरणीवासो गृहीतः पुरुषोऽनया । इति संचिंत्य कुपितौ तस्या मैथुनिकोचितौ॥३७३॥
अवांछतां रणं कर्तुं महासाधनसंयुतौ । दूषितावपमानेन गंगाधरमहीधरौ ॥ ३७४ ॥
ततः शक्रधनुः साकं सुचापाख्येन सूनुना । हरिषेणं जगादैवं करुणासक्तचेतनः ॥ ३७५ ॥

तिष्ठ त्वमिह जामातः सख्यं कर्तुं व्रजाम्यहं । त्वन्निमित्तं रिपुक्रुद्धौ दुर्वृत्तौ दुःखचारणौ ॥३७६॥
स्मित्वा ततो जगादासौ परकार्येषु यो रतः । कार्ये तस्य कथं स्वामिन्नौदासीन्यं भविष्यति ३७७
कुरु पूज्यप्रसादं मे यच्छ युद्धाय शासनं । भृत्यं मत्सदृशं प्राप्य स्वयं किमिति युध्यसे ॥३७८॥
ततोऽमंगलभीतेन वांछताप्यनिवारितः । श्वसुरेण कृतासंगमश्वैः पवनगामिभिः ॥ ३७९ ॥
अस्त्रैर्नानाविधैः पूर्णं सूरिसारथिनेतृकं । वेष्टितं योधचक्रेण हरिषेणो रथं ययौ ॥ ३८० ॥
तस्य चानुपदं जग्मुरश्वैर्नागैश्च खेचराः । कृत्वा कलकलं तुंगं शत्रुमानसदुस्सहं ॥ ३८१ ॥
ततो महति संजाते संयुगे शूरधारिते । भग्नं शक्रधनुःसैन्यं दृष्ट्वा चाग्रेय उत्थितः ॥ ३८२ ॥
ततो यया दिशा तस्य प्रावर्तत रथोत्तमः । तस्य नाश्वो न मातंगो न मनुष्यो रथो न च ॥३८३॥
शरैस्तेन समं युक्तैररातिबलमाहतं । जगाम काप्यनालोक्य पृष्ठं स्खलतिजृंभितं ॥ ३८४ ॥
पृथुवेपथवः केचिदिदमूचुर्भयार्दिताः । कृतं गंगाधरेणेदं भूधरेण च दुर्मतं ॥ ३८५ ॥
अयं कोऽपि रणे भाति सूर्यवत्पुरुषोत्तमः । करानिव शरान्मुंचन् सर्वाशासु समं बहून् ॥३८६॥
ध्वंस्यमानं ततः सैन्यं दृष्ट्वा तेन महात्मना । गतौ क्वापि भयग्रस्तौ गंगाधरमहीधरौ ॥ ३८७ ॥
ततो जातेषु रत्नेषु तत्क्षणं सुकृतोदयात् । दशमो हरिषेणोऽभूच्चक्रवर्ती महोदयः ॥ ३८८ ॥

तथापि परया युक्तश्चक्रलांछनया श्रिया । रहितं मदनावल्याः स्वं स मेने तृणोपमं ॥ ३८९ ॥
ततः संवाहयन् प्राप्तो बलं द्वादशयोजनं । स तापसवनोद्देशं नमयन् सर्वविद्विषः ॥ ३९० ॥
ततः स तापसैर्भीतैर्विज्ञाय फलपाणिभिः । दत्तार्घः पूजितो वाक्यैराशीर्दानपुरस्सरैः ॥ ३९१ ॥
शतमन्योश्च पुत्रेण जनमेजयरूढिना । तुष्टया नागवत्या च स कन्यास्मै समर्पिता ॥ ३९२ ॥
विधिना च ततो वृत्तं तयोर्वैवाहमंगलं । प्राप्य चैतां पुनर्जन्म प्राप्तं मेने नृपोत्तमः ॥ ३९३ ॥
ततः कांपिल्यमागत्य युक्तश्चक्रधरश्रिया । द्वात्रिंशता नरेंद्राणं सहस्राणां समन्वितः ॥ ३९४ ॥
शिरसा मुकुटन्यस्तमणिप्रकरभासिना । ननाम चरणौ मातुर्विनीतो रचितांजलिः ॥ ३९५ ॥
ततस्तं तद्विधं दृष्ट्वा पुत्रं वप्रा दशानन । संभूता न स्वगात्रेषु तोषाश्रुव्याप्तलोचना ॥ ३९६ ॥
ततो भ्रामयता तेन सूर्यवर्णान् महारथान् । कांपिल्यनगरे मातुः कृतं सफलमीप्सितं ॥ ३९७ ॥
श्रमणश्रावकाणां च जातः परमसंमदः । बहवश्च परिप्राप्ता शासनं जिनदेशितं ॥ ३९८ ॥
तेनामी कारिता भांति नानावर्णजिनालयाः । भूपर्वतनदीसंगपुरग्रामादिषून्नताः ॥ ३९९ ॥
कृत्वा चिरमसौ राज्यं प्रवृज्य सुमहामनाः । तपः कृत्वा परं प्राप्तस्त्रिलोकशिखरं विभुः ॥४००॥
हरिषेणस्य चरितं श्रुत्वा विस्मयमागतः । कृत्वा जिननमस्कारं दशास्यः प्रस्थितः पुनः ॥४०१॥

अथ विज्ञाय जयिनं दशवक्त्रं दिवाकरः । नेत्रयोर्गोचरीभावं भयादिव समत्यजत् ॥ ४०२ ॥
संध्यारागेण चच्छन्नं समस्तं भुवनांतरं । संजातेनानुरागेण कैकसेयादिवोरुणा ॥ ४०३ ॥
ध्वस्तसंध्येन च व्याप्तं ध्वांतेन क्रमतो नभः । दशास्यस्येव कालेन कर्तुमेतेन सेवनं ॥ ४०४ ॥
सम्मेदभूधरस्यांते ततः संस्थलिभूभृतः । चकार शिविरं कक्षावत्तीर्य नभस्तलात् ॥ ४०५ ॥
घनौघादिव निर्याताः प्रावृषेण्यादथ ध्वनिः । येन तत्सकलं सैन्यं कृतं साध्वसपूरितं ॥ ४०६ ॥
भंगमालानवृक्षाणां चक्रुस्तंबेरमोत्तमाः । ह्रेषितं सप्तयश्चोच्चैरुत्कर्णाः स्फुरत्त्वचः ॥ ४०७ ॥
किं किमेतदिति क्षिप्रं जगाद च दशाननः । अपराधमिषेणायं मर्तुं कोऽद्य समुद्यतः ॥ ४०८ ॥
नूनं वैश्रवणः प्राप्तः सोमो वा रिपुचोदितः । विश्रब्धं वा स्थितं मत्वा ममान्यःशत्रुगोचरः ४०९
तदादिष्टः प्रहस्तोऽथ तं देशं समुपागतः । अपश्यत्पर्वताकारं लीलायुक्तमनेकपं ॥ ४१० ॥
निवेदितं ततस्तेन दशास्याय सविस्मयं । महाराशिमिवाब्दानां देव ! पश्य मतंगजं ॥ ४११ ॥
ईक्षितः पूर्वमप्येष दंतिवृंदारको मया । इंद्रेणाप्युज्झितो धर्तुमसमर्थेन वारणः ॥ ४१२ ॥
मन्ये पुरंदरस्यापि दुर्ग्रहोऽयं सुदुस्सहः । गजः किमुत तुंगौजाः शेषाणां प्राणधारिणां ॥ ४१३ ॥
ततः प्रहस्य विश्रब्धं जगाद धनदार्दनः । आत्मनो युज्यते कर्तुं न प्रहस्त ! प्रशंसनं ॥ ४१४ ॥

एतावत्तु ब्रवीम्येतौ भुजौ केयूरपीडितौ । छिनद्मि न क्षणादेनं यदि गृह्णाम्यनेकपं ॥ ४१५ ॥
ततः कामगमारुह्य विमानं पुष्पकाभिधं । गत्वा पश्यति तं नागं सल्लक्षणसमन्वितं ॥ ४१६ ॥
स्निग्धेंद्रनीलसंकाशं राजीवप्रभतालुकं । दीर्घवृत्तौ सुधाफेनधवलक्षौ विभ्रतं रदौ ॥ ४१७ ॥
हस्तानां सप्तकं तुंगं दशकं परिणाहतः । आयामतश्च नवकं मधुपिंगललोचनं ॥ ४१८ ॥
निमग्नवंशमग्नांगतुंगमायातबालधिं । द्राघिष्टकरमत्यंतस्निग्धपिंगनखांकुरं ॥ ४१९ ॥
वृत्तं पीनमहाकुंभं सुप्रतिष्ठांघ्रिमूर्जितं । अंतर्मधुरधीरोरुगर्जितं विनयस्थितं ॥ ४२० ॥
गलद्गंडस्थलामोदसमाकृष्टालिवेणिकं । कुर्वंतं दुंदुभिध्वानं कर्णतालांततांडनैः ॥ ४२१ ॥
भग्नावकाशमाकाशं कुर्वाणमिव पार्थिवां । लीलां विदधतं चित्तचक्षुश्चोरणकारिणीं ॥ ४२२ ॥
दृष्ट्वा च तं परां प्रीतिं प्राप रत्नश्रवःसुतः । कृतार्थमिव चात्मानं मेने हृष्टतनूरुहः ॥ ४२३ ॥
ततो विमानमुज्झित्वा बद्ध्वा परिकरं दृढं । शंखं तस्य पुरो दध्मौ शब्दपूरितविष्टपं ॥ ४२४ ॥
ततः शंखस्वनोद्भूताचित्तक्षोभः स गर्जितः । करी दशमुखोद्देशं चलितो बलगार्वितः ॥ ४२५ ॥
वेगादभ्यायतस्यास्य पिंडीकृत्य सितांशुकं । उत्तरीयं च चिक्षेप क्षिप्रं विभ्रमदक्षिणः ॥ ४२६ ॥
दंती जिघ्रति तं यावत्तावदुत्पत्य गंडयोः । अस्पृशद्यक्षमर्दस्तं भृंगौघध्वनिचंडयोः ॥ ४२७ ॥

करेण वेष्टितुं यावच्चक्रे वांछां मतंगजः । तावद्दंष्ट्रांतरेणासौ निस्सृतो लाघवान्वितः ॥ ४२८ ॥
अंगेषु च चतुर्ष्वस्य स्पृशन् दंततले मुहुः । भ्रांतिविद्युच्चलश्चक्रे प्रेंखणं रदनाग्रयोः ॥ ४२९ ॥
अथास्य पृष्ठमारुह्य सविलासं दशाननः । विनीतश्च स्थितो दंती सच्छिष्य इव तत्क्षणात्॥४३०॥
ततः सकुसुमा मुक्ताः साधुवादा मुहुः सुरैः । सशब्दा च महामोदं प्राप्ता खेचरवाहिनी॥४३१॥
त्रिलोकमंडनाभिख्यां प्रापायं दशवक्त्रतः । त्रैलोक्यं मंडितं तेन यतो मेने स मोदवान्॥४३२॥
महोत्सवः कृतस्तस्य लाभे परमदंतिनः । नृत्यद्भिः पर्वते रम्ये खेचरैः पुष्पसंकुले ॥ ४३३ ॥
तथैषां जाग्रतामेष मर्यादामात्रकारणं । कृतः प्रभाततूर्येण नादो गह्वरपेशलः ॥ ४३४ ॥
दिवसेन ततो बिम्बं रवेः कलशमंगलं । उपनीतं दशास्याय सेवाकौशलवेदिना ॥ ४३५ ॥
ततः सुखासनासीने विहितस्वांगकर्मणि । स्थिते दशमुखे दंतिकथया खेचरावृते ॥ ४३६ ॥
सहसा वियतः प्राप्तः पुरुषः पुरुवेपथुः । स्वेदबिंदुसमाकीर्णः संभ्रांतः खेदमुद्वहन् ॥ ४३७ ॥
संप्रहारव्रणः साश्रुर्दर्शयज्जर्जरां तनुं । व्यज्ञापयच्च कृच्छ्रेण ललाटे धारयन् करौ ॥ ४३८ ॥
दशमेहि दिनादस्माच्चित्ते कृत्वा भवद्बलं । अलंकारपुरावासान्निष्क्रम्योत्साहतोऽधिकात्॥४३९॥
निजगोत्रक्रमायातं नगरं किंकुसंज्ञकं । गृहीतुं भ्रातरौ यातौ सूर्यर्क्षरजसावुभौ ॥ ४४० ॥

महाभिमानसंपन्नौ महाबलसमन्वितौ । विश्रब्धौ भवतो गर्वान्मन्यमानौ तृणं जगत् ॥ ४४१ ॥
एताभ्यां चोदितः क्षुब्धो नितांतं विपुलो जनः । अवस्कंदेन संपत्य प्रचक्रे किंकुलुंटनं ॥४४२॥
कृतांतस्य ततो योद्धुमुच्छ्रिता भटसत्तमाः । स्वप्नवद्यत्पुरो दृष्टा हेतिव्यापृतपाणयः ॥ ४४३ ॥
ततस्तेषां महान् जातो मध्येशर्वरि संयुगः । अन्योन्यशास्त्रसंपातकृतभूरिजनक्षयः ॥ ४४४ ॥
श्रुत्वा कलकलध्वानं स्वयं योद्धुमथादरात् । यमः क्रोधेन निष्क्रांतः संक्षुब्धार्णवदारुणः॥४४५॥
आयातमात्रकेणैव तेन दुस्सहतेजसा । अस्मदीयं बलं भग्नं विविधायुधविक्षतं ॥ ४४६ ॥
अथासौ कथयन्नेवं दूतो मूर्छामुपागतः । बीजितश्च पटांतेन प्रबोधं पुनरागतः ॥ ४४७ ॥
किमेतदिति पृष्टश्च हृदयस्थकरोऽवदत् । जानामि देव तत्रैव वर्तेहमिति मूर्छितः ॥ ४४८ ॥
ततस्तत इति प्रोक्ते ततो विस्मयवाहिना । रत्नश्रवःसुतेनासौ विश्रम्य पुनरब्रवीत् ॥ ४४९ ॥
ततो नाथ बलं दृष्ट्वा नितांतार्तरवाकुलं । निजमृक्षरजा भग्नं वत्सलो योद्धुमुच्छ्रितः ॥ ४५० ॥
चिरं च कृतसंग्रामो यमेनातिबलीयसा । चेतसा भेदमप्राप्तो गृहीतः शत्रुवंचितः ॥ ४५१ ॥
उच्छ्रितो युध्यमानेऽस्मिन्नथ सूर्यरजा अपि । चिरं कृतरणो गाढप्रहारो मूर्छितो भृशं ॥ ४५२ ॥
उद्यम्य क्षिप्रमात्मीयैः सामंतैर्मेखलावनं । नीत्वाश्वासनमानीतः शीतचंदनवारिणा ॥ ४५३ ॥

यमेन स्वयमात्मानं सत्यमेवावगच्छता । कारितं यातनास्थानं वैतरण्यादिपूर्वकं ॥ ४५४ ॥
ततो ये निर्जितास्तेन संयतींद्रेण वा जिताः । प्रेषिता दुःखमरणं प्राप्यंते तत्र ते नराः ॥४५५॥
वृत्तांतं तमहं दृष्ट्वा कथमप्याकुलाकुलः । संभूतो दयितो भृत्यः क्रमादक्षरजःकुले ॥ ४५६ ॥
नाम्ना शाखावलीपुत्रः सुश्रोणीरणदक्षयोः । कृत्वा पलायनं प्राप्तो भवतस्त्रातुरंतिकं ॥ ४५७ ॥
इति स्वपक्षदौस्थित्यमवगम्य मयोदितं । देवः प्रमाणमत्रार्थे कृत्योऽहं त्वन्निवेदनात् ॥ ४५८ ॥
व्रणभंगं ततस्तस्य कर्तुमादिश्य सादरं । उच्चचाल महाक्रोधः स्मितं कृत्वा दशाननः ॥ ४५९ ॥
जगाद चोद्यतान् क्लेशमहार्णवमुपागतान् । वैतरण्यादिनिक्षिप्तान् वारयाम्यसुधारिणः ॥४६०॥
अग्रस्कंधेन चोदाराः प्रहस्तप्रमुखा नृपाः । प्रवृत्ताः शस्त्रतेजोभिः कुर्वाणा ज्वलितं नभः ॥४६१॥
विचित्रवाहनारूढाश्छत्रध्वजसमाकुलाः । तूर्यनादसमुद्भूतमहोत्साहा महौजसः ॥ ४६२ ॥
तथा गगनयात्राणां क्षितिं प्राप्ताः पुरांतिकां । शोभया गृहपंक्तीनां परमं विस्मयं गताः ॥४६३॥
दिशि किष्कुपुरस्याथ दक्षिणास्यां दशाननः । ददर्श नरकावासगर्ताक्षिप्ता नृसंहतीः ॥ ४६४ ॥
कृत्वा नरकपालानां ध्वंसनं दुःखसागरात् । उत्तारितास्ततः सर्वे बंधुनेवामुना जनाः ॥ ४६५ ॥
श्रुत्वा परबलं प्राप्तं साटोपो नाम वीर्यवान् । निर्ययौ सर्वसैन्येन प्रक्षुब्ध इव सागरः ॥ ४६६ ॥

द्विपैर्गिरिनिभैर्भीमैर्दानधारांधकारिभिः । तुरंगैश्च चलच्चारुचामरप्राप्तभूषणैः ॥ ४६७ ॥
रथैरादित्यसंकाशैर्ध्वजपंक्तिविभूषितैः । पिनद्धकवचैः शस्त्रैर्भटैर्वीरैराधिष्ठितैः ॥ ४६८ ॥
ततस्तं स्यंदनारूढो हंसनैः सुभटं क्षणात् । भंगं विभीषणो निन्ये वाणैरणविशारदः ॥ ४६९ ॥
यमस्य किंकरा दीना कुर्वाणा स्वमायतं । बाणैः समाहताश्चक्रुः क्षिप्रं क्वापि पलायनं ॥ ४७० ॥
मोचितान् नारकान् श्रुत्वा साटोपं चावसादितं । यमो यम इव क्रूरो महाशस्त्राटवीं गतः ४७१
रथोत्साहःसमारुह्य चापं कोपं च धारयन् । उच्छ्रितेन प्रतापेन ध्वजेन च महाबलः॥ ४७२ ॥
आकुलासितसर्पाभभ्रुकुटीकुटिलालकः । चक्षुषात्यंतरक्तेन दहन्निव जगद्वनं ॥ ४७३ ॥
प्रतिबिम्बैरिवात्मीयैः सामंतैः कृतवेष्टनः । योद्धुं वेगान्निचक्राम छादयन् तेजसा नभः ॥ ४७४ ॥
ततस्तं निर्गतं दृष्ट्वा विनिवार्यविभीषणं । दशाननो रणं कर्तुमुत्थितः कोपमुद्वहन् ॥ ४७५ ॥
साटोपव्यसनेनातिदीपितोऽथ यमः समं । दशास्येन रणं कर्तुमारेभे भीषणाननः ॥ ४७६ ॥
दृष्ट्वैवं तं ततो भीता जाता राक्षसवाहिनी । दशाननसमीपं सा डुढौके मंदचेष्टिता ॥ ४७७ ॥
रथारूढस्ततस्तस्य दशास्योऽभिमुखं ययौ । विमुंचन् शरसंघातं मुंचतः शरसंहतीः ॥ ४७८ ॥
ततस्तयोः शरैश्छन्नं भीमनिश्चलकारिभिः । नभो घनैरिवाशेषं घनबद्धकदंबकैः ॥ ४७९ ॥

कैकसीनंदनेनाथ शरेण कृततादनः । भूमौ ग्रह इवापुण्यः पपात यमसारथिः ॥ ४८० ॥
ताडितस्तीक्ष्णवाणेन कृतांतोऽप्यरथीकृतः । उत्पपात खेमार्गमंतर्हिततनुः क्षणात् ॥ ४८१ ॥
ततः सांतःपुरः पुत्रसहितोऽमात्यसंयुतः । कंपमानतनुर्भीत्या यातोऽसौ रथनूपुरं ॥ ४८२ ॥
नमस्कृत्य च संभ्रांत इदमेवमभाषत । शृणु विज्ञापनं देव कृतं मे यमलीलया ॥ ४८३ ॥
प्रसीद व्रज वा कोपं हर वा जीवनं विभो । कुरु वा वांछितं यत्ते यमतां न करोम्यहं ॥४८४॥
युद्धे वैश्रवणो येन निर्जितः पुरुतेजसा । अहमप्यमुना नीतो भंगं कृतरणश्रिरं ॥ ४८५ ॥
सृष्टं वीरसेनेव वपुस्तस्य महात्मनः । दुरीक्षो व्योममध्यस्थसवितेव निदाघजः ॥ ४८६ ॥
इति श्रुत्वा सुराधीशः संग्रामाय कृतोद्यतिः । निरुद्धो मंत्रिवर्गेण नययाथात्म्यवेदिना ॥ ४८७ ॥
जगाद च स्मितं श्रुत्वा मातुलं क्व स यास्यति । भयं मुंच सुविश्रब्धो भवास्मिन्नासने सुखं ॥४८८॥
जामातुरथ वाक्येन परित्यज्य रिपोर्भयं । पुरं सुरवरोद्गीतमध्युवास यमः सुखी ॥ ४८९ ॥
विधायांतकसन्मानं सुरेशोऽतःपुरं ययौ । कामभोगसमुद्रेऽसौ तत्र मग्नो महामदः ॥ ४९० ॥
दशास्यचरितं तस्मै यत्प्रेतपतिनोदितं । वनवासो धनपतेर्भंगिनो यश्च संयुगे ॥ ४९१ ॥
सर्वमैश्वर्यमत्तस्य विस्मृतं तस्य तत्क्षणात् । अभ्यग्रपठितं शास्त्रं यथाभ्यसनवर्जितं ॥ ४९२ ॥

कृतोपलंभं स्वप्नेऽपि ज्ञायते वस्तुलेशतः । निरन्वयं तु तस्येदं विस्मृतं पूर्वचोदितं ॥ ४९३ ॥
प्राप्य वा सुरसंगीतपुरस्य पतितां यमः । विसस्मार परिप्राप्तां परिभूतिं दशाननात् ॥ ४९४ ॥
मेने च मम सर्वश्रीर्दुहिता रूपशालिनी । सा च गीर्वाणनाथस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥४९५॥
अत्यंतमंतरंगोयं संबंधो महता सह । अतो जन्म कृतार्थं मे प्राप्य शक्रप्रतीक्ष्यतां ॥ ४९६ ॥
ततो महोदयोत्साहः श्रीमानुद्भासितांतकः । नगरं सूर्यरजसे ददौ किष्किंधसंज्ञकं ॥ ४९७ ॥
तथाऋक्षरजसे किष्कुपुरं परमसंपदं । प्राप्य गोत्रक्रमायाते नगरे तौ सुखं स्थितौ ॥ ४९८ ॥
ते शक्रनगराभिख्ये पुरे कांचनसद्मनि । उचितस्वामिसंयुक्ते जग्मतुः परमां श्रियं ॥ ४९९ ॥
सौमालिरपि विभ्राणः श्रियं कीर्तिं च भूयसीं । प्रत्यवस्थित सामंतैः प्रणमद्भिः समुत्तमः ॥५००॥
पूर्यमाणः सदासेव्यैर्विभवैः प्रतिवासरं । बंधुः कुमुदखंडानां सितपक्षे करैरिव ॥ ५०१ ॥
रत्नदामाकुलं तुंगं शृंगपंक्तिविराजितं । आरुह्य पुष्पकं चारुविमानं कामगत्वरं ॥ ५०२ ॥
युक्तः परमधैर्येण प्राप्तपुण्यफलोदयः । त्रिकूटशिखरं भूत्या परया प्रस्थितः कृती ॥ ५०३ ॥
ततो रक्षोगणास्तस्य प्रमोदं परमं श्रिताः चित्रालंकारसंपन्ना वरीयोवस्त्रधारिणः ॥ ५०४ ॥
जय नंद चिरं जीव वर्धस्वोदेहि संततं । इति मंगलवाक्यानि प्रयुंजाना महारवाः ॥ ५०५ ॥

सिंहशार्दूलमातंगवाजिहंसादि संश्रिताः । नानाविभ्रमसंयुक्ताः प्रमोदविकचेक्षणाः ॥ ५०६ ॥
बिभ्राणस्त्रिदशाकारं तेजोव्याप्तविहायसः । आलोकितसमस्ताशाः काननाद्रिसमुद्रगाः ॥५०७॥
अदृष्टपारगंभीरं महाग्राहसमाकुलं । तमालवनसंकाशं गिरितुंगोर्मिसंहतिं ॥ ५०८ ॥
रसातलमिवानेकनागनायकभीषणं । नानारत्नकरव्रातरंजितोद्देशराजितं ॥ ५०९ ॥
पश्यंतो विस्मयापूर्णाः समुद्रं विविधाद्भुतं । अनुजग्मुरहो हीति मुहुर्मुखरिताननाः ॥ ५१० ॥
अथ भास्वन्महाशालां गंभीरपरिखावृतां । कुंदशुभ्रैर्महानीलनीलैर्जालककक्षिषु ॥ ५११ ॥
पद्मरागारुणैरुद्धैः क्वचित्पुष्पमणिप्रभैः । गरुत्ममणिसंकाशैरन्यत्र निचितां गृहैः ॥ ५१२ ॥
शोभमानां निसर्गेण पुनश्च कृतभूषणां । रक्षोनाथागमे भक्तैः पौरैरद्भुतसम्मदैः ॥ ५१३ ॥
अत्यंतमधिकां कुर्वन् शोभां गिरिनिभैर्गजैः । महाप्रासादसंकाशैः स्यंदनैःरत्नरंजितैः ॥ ५१४ ॥
अश्ववृंदैः क्वणद्धेमचक्रकैश्चलचामरैः । विमानैः शिखरारूढदराकाशैर्बहुप्रभैः ॥ ५१५ ॥
छत्रैः शशांकसंकाशैर्ध्वजैरुद्भूतकोटिभिः । वंदिवृंदारकौघेण कृतमंगलनिस्वनः ॥ ५१६ ॥
वीणावेणुविमिश्रेण शंखनादानुगामिना । तूर्यनादेन निश्शेषं दिङ्नभोविदितात्मना ॥ ५१७ ॥
अविवेश निजामीशो लंकां शंकाविवर्जितः । त्रिदशेश इवोदारो दशास्यः शासिता हितम् ॥५१८॥

ततो गोत्रक्रमायातनाथदर्शनलालसा । गृहीतार्घं फलैः पुष्पैः पत्रैरत्नैश्च कल्पितं ॥ ५१९ ॥
गृहीतभूषणात्यंतचारुवस्त्रादिसंपदः । नृत्यद्भिर्गणिकासंघैरन्विता नेत्रहारिभिः ॥ ५२० ॥
सर्वे पौराः समागत्य प्रयुक्ताशीर्गिरो मुहुः । आनर्तुः सनमस्कारा यथावृद्धपुरस्सराः ॥ ५२१ ॥
विसर्जिताश्च ते तेन संप्राप्तप्रतिमानताः । यथास्वं निलयं जग्मुस्तद्गुणोक्तिगताननाः ॥५२२॥
अथ तद्भवनं तस्य कौतुकव्याप्तबुद्धिभिः । नारीभिः कृतभूषाभिः पूरितं तद्दिदृक्षुभिः ॥५२३॥
गवाक्षाभिमुखाः काश्चित्त्वरां विश्रस्तवाससः । अन्योन्यबाधविच्छिन्नमुक्ताहारविभूषणाः॥५२४॥
पीनस्तनकृतान्योन्यपीड़नाच्चलकुंडलाः । रणत्करितुलाकोटिवाचालचरणद्वयाः ॥ ५२५ ॥
किं न पश्यसि हा मातः पार्श्वतो भव दुर्भगे । देहि मार्गं व्रजाम्युष्मादपि नारि न शोभसे ५२६
निगदंत्येवमादीनि विकचांबुरुहाननाः । मुक्त्वा व्यापारजातानि तमैक्षंत पुरांगनाः ॥ ५२७ ॥
पुरे चूड़ामणौ गेहे स्वस्मिन् सत्कृतभूषणे । सुखं सांतःपुरस्तस्थौ कृतांतस्य विमर्दकः ॥५२८॥
शेषाश्चापि यथास्थानं स्थिता विद्याधराधिपाः । प्राप्नुवंतो महानंदं सततं त्रिदशा इव ॥५२९॥

विविधरत्नसमागमसंपदः । प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनं ॥
सकलविष्टपगामि यशः सितं । भवति निर्मितनिर्मलकर्मणां ॥ ५३० ॥

रिपव उग्रतरा विषयाह्वयाः । अपनयंति सुवस्तुनये स्मृतिं ॥
बहिरवस्थितशत्रुगणः पुनः । सततमानयते यततं नरं ॥ ५३१ ॥
इति विचिंत्य न युक्तमुपासितुं । विषयशत्रुगणं पुरुचेतसः ॥
अवटमेति जनस्तमसा ततं । नतु रवेः किरणैरवभासितं ॥ ५३२ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवाभिधानं नामाष्टमं पर्व ।

नवमं पर्व ।

अथ सूर्यरजा पुत्रं वालिसंज्ञमजीजनत् । चंद्रमालिन्यभिख्यायां गुणसंपूर्णयोषिति ॥ १ ॥
परोपकारिणं नित्यं दयाशीलयुतं बुधं । दक्षं धीरं श्रिया युक्तं सम्यग्दृष्टिं महाबलं ॥ २ ॥
कलाकलापसंयुक्तं शूरं ज्ञानसमन्वितं । राजनीतिविदं वीरं कृपार्द्रीकृतचेतसं ॥ ३ ॥
विद्यासमूहसंपन्नं कांतिमंतं सुतेजसं । विरलस्तादृशो लोके पुरुषाणां च संभवः ॥ ४ ॥
चंदनानामिवोदारः प्रभावः प्रथितात्मनां । समस्तजिनबिंबानां नमस्कारार्थमुद्यतः ॥ ५ ॥

त्रिकालतीर्णसंदेहो भक्त्या युक्तोऽत्युदारया । चतुःसमुद्रपर्यंतं जंबूद्वीपं क्षणेन यः ॥
त्रिः परीत्य किष्किंधं नगरं पुनरागमत् ॥ ६ ॥
ईदृक् पराक्रमाधारः शत्रुपक्षस्य मर्दकः । पौरनेत्रकुमुद्वत्याः शशांकः शंकयोज्झितः ॥ ७ ॥
किष्किंधनगरे रम्ये चित्रप्रासादतोरणे । विद्वज्जनसमाकीर्णे द्विपवाजिवराकुले ॥ ८ ॥
नानासंव्यवहाराभिरापणालीभिराकुले । रेमे कल्पे यथैशाने रत्नमालः सुरोत्तमः ॥ ९ ॥
अनुक्रमाच्च तस्याभूत् सुग्रीवाभिख्ययानुजः । वीरो धीरो मनोज्ञेन युक्तो रूपेण सत्तमः॥१०॥
विज्ञेयौ वालिसुग्रीवौ किष्किंधकुलभूषणौ । तयोस्तु भूषणीभूता विनयप्रमुखा गुणाः ॥ ११ ॥
सुग्रीवानंतरा कन्या रूपेण प्रतिमा भुवि । श्रीप्रभेति समुद्भूता क्रमशः श्रीरिव स्वयं ॥ १२ ॥
किष्कुप्रमोदनगरे हरिकांताख्ययोषिता । क्रमाद्रक्षरजाः पुत्रौ नलनीलावजीजनत् ॥ १३ ॥
वितीर्णस्वजनानंदौ रिपुशंकावितारिणौ । उदात्तगुणसंभारौ भूतौ तौ किष्कुमंडनौ ॥ १४ ॥
यौवनश्रियमालोक्य सुतस्य स्थितिपालिनीं । विषमिश्रान्नसदृशान्विदित्वा विषयान् बुधः ॥१५॥
वितीर्य वालये राज्यं धर्मपालनकारणं । सुग्रीवाय च सच्चेष्टो युवराजपदं कृती ॥ १६ ॥
अवगम्य परं स्वं च जनं साम्येन सज्जनः । चतुर्गति जगज्ज्ञात्वा महादुःखनिपीडितं ॥१७॥

मुनेः पिहितमोहस्य शिष्यः सूर्यरजा अभूत् । यथोक्तचरणाधारः शरीरेऽपि गतस्पृहः ॥ १८ ॥
नभोवदमलस्वांतः संगमुक्तः समीरवत् । विजहार स निष्क्रोधो धरण्यां मुक्तिलालसः ॥ १९ ॥
अथ वालेर्ध्रुवा नाम्ना साध्वी पाणिगृहीत्यभूत् । अंगनानां शतस्याप प्राधान्यं या गुणोदयात् २०
तया सह महैश्वर्यं सोऽन्वभूच्चारुविभ्रमः । श्रीवानरांकमुकुटः पूजिताज्ञः खगाधिपैः ॥ २१ ॥
अत्रांतरे छलान्वेषी मेघप्रभशरीरजः । हर्तुमिच्छति तां कन्यां लंकेशस्य सहोदरां ॥ २२ ॥
यदैव तेन सा दृष्टा सर्वगात्रमनोहरा । तदाप्रभृत्ययं देहमधत्तानंगपीड़ितं ॥ २३ ॥
आवल्यां प्रवराज्जातां कन्यां नाम्ना तनूदरीं । गतस्ते नयितुं यावद्यमस्य परिमर्दकः ॥ २४ ॥
ज्ञात्वाथ निप्रभिस्तावल्लंकां वीतदशाननां । सुखं चंद्रनखां जह्रे विद्यामायाप्रवीणधीः ॥ २५ ॥
शूरौ किं कुरुतामत्र भानुकर्णविभीषणौ । यत्रारिश्छिद्रमासाद्य कन्यां हरति मायया ॥ २६ ॥
पृष्ठतश्च गतं सैन्यं गच्छताभ्यां निवर्तितं । जीवन्नेष रणे शक्तो गृहीतुं नेति चेतसा ॥ २७ ॥
शुश्राव चागतो वार्तां तादृशीं कैकसीसुतः । जगाम च दुरीक्षत्वं कोपावेशात्सुभीषणात् ॥२८॥
तत आगमनोद्भूत श्रमप्रस्वेदबिंदुषु । स्थितेष्वेव पुनर्गंतुमुद्यतो मानचोदितः ॥ २९ ॥
सहायं खड्गमेकं च जग्राहान्यपराङ्मुखः । अंतरंग स एवैकः संग्रामे वीर्यशालिनां ॥ ३० ॥

तावन्मंदोदरी बद्ध्वा करद्वयसरोरुहं । व्यज्ञापयदिति व्यक्तज्ञातलौकिकसंस्थितिः ॥ ३१ ॥
कन्या नाम प्रभो ! देया परस्मायेव निश्चयात् । उत्पत्तिरेव तासां हि तादृशी सार्वलौकिकी ३२
खेचराणां सहस्राणि संति तस्य चतुर्दश । ये वीर्यकृतसन्नाहाः समरादनिवर्तिनः ॥ ३३ ॥
बहून्यस्य सहस्राणि विद्यानां दर्पशालिनः । सिद्धानीति न किं लोकाद्भवता श्रवणे कृतं ॥३४॥
प्रवृत्ते दारुणे युद्धे भवतोः समशौर्ययोः । संदेह एव जायेत जयस्यान्यतरं प्रति ॥ ३५ ॥
कथंचिच्च हतेप्यस्मिन् कन्या हरणदूषिता । अन्यस्मै नैव विश्राण्या केवलं विधवा भवेत् ॥३६॥
किं च सूर्यरजोमुक्ते त्वत्पुरे प्रत्यवस्थितं । अलंकारोदये नाम्ना चंद्रोदरनभश्चरं ॥ ३७ ॥
निर्वास्यासौ स्थितः सार्धं तव स्वस्रा महाबलः । उपकारित्वमेतस्मात्संप्राप्तः स्वजनः स ते ॥३८॥
ततो दशाननोऽवादीत् प्रिये ! युद्धाद्विभेमि न । स्थितस्त्वद्वचने किंतु शेषैरेवास्मि कारणैः॥३९॥
अथ चंद्रोदरे कालं प्राप्ते कर्मनियोगतः । वनितास्यानुरोधाख्या वराकी शरणोज्झिता ॥ ४० ॥
इतश्चेतश्च विद्याया बलेनाथ विवर्जिता । अंतर्वत्नीवने भीमे विभ्राम हरिणी यथा ॥ ४१ ॥
असूत च सुतं कांतं मणिकांतमहीधरे । मृदुपल्लवपुष्पौघच्छन्ने समशिलातले ॥ ४२ ॥
ततोऽसौ क्रमतो वृद्धिं नीतो विपिनवासया । उद्विग्नचित्तया मात्रा तदाशास्थितजीवया ॥ ४३ ॥

अतोऽयं प्रतिपक्षेण गर्भ एव विराधितः । ततो विराधिताभिख्यां प्रापितो भोगवर्जितः ॥४४॥
न तस्य गौरवं चक्रे कश्चिदप्यवनौ नरः । प्रच्युतस्य निजस्थानात्केशस्येवोत्तमांगतः ॥ ४५ ॥
प्रतिकर्तुमशक्तोऽसौ वैरं चित्तेन धारयन् । आचारागतवृत्तिस्थो देशान् पर्याट वांक्षितान् ॥४६॥
रेमे वर्षधराग्रेषु काननेषु च चारुषु । तथातिशयदेशेषु गीर्वाणागमनेषु च ॥ ४७ ॥
ध्वजछत्रादिरम्येषु संकुलेषु गजादिभिः । वीराणां विभ्रमं पश्यन् संग्रामेषु समं सुरैः ॥ ४८ ॥
नगर्यामथ लंकायां सुरेशस्येव तिष्ठतः । परान् प्राप्नुवतो भोगान् दशवक्त्रस्य भास्वतः ॥ ४९ ॥
प्रतिकूलितवानाज्ञां वालिर्बलसमन्वितः । विद्याभिरद्भुतं कर्म कुर्वतीभिरुपासितः ॥ ५० ॥
दशास्येन ततो दूतः प्रेषितोऽस्मै महामतिः । जगाद वानराधीशं स्वामिनो मानमुद्वहन् ॥५१॥
अनन्यसदृशे क्षेत्रे भरतेऽस्मिन् प्रतापवान् । महाबलो महातेजा श्रीमान्नयविशारदः ॥ ५२ ॥
महासाधनसंपन्न उग्रदंडो महोदयः । आज्ञापयति देवस्त्वां शत्रुमर्दो दशाननः ॥ ५३ ॥
यमारातिं समुद्वास्य भवतोऽर्करजाः पिता । मया किष्किधनाथत्वे स्थापितो वानरान्वये ॥५४॥
विस्मृत्य सुकृतं कृत्यं स त्वं जनयितुः परं । कुरुते प्रत्यवस्थानमिति साधोर्न युज्यते ॥ ५५ ॥
पितुस्ते सदृशीं प्रीतिमधिकां वा करोम्यहं । अद्याप्येहि प्रणामं मे कुरु स्थातुं यथा सुखं ॥५६॥

स्वसारं च प्रपच्छेमां श्रीप्रभाख्यां मया सह । संबंधं प्राप्य ते सर्वं भविष्यति सुखावहं ॥५७॥
इत्युक्ते विमुखं ज्ञात्वा वालिं प्रणमनं प्रति । आननस्य विकारेण दूतः पुनरुदाहरत् ॥ ५८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन कुरु शाखामृगश्रुतौ । मदीयं निश्चितं वाक्यमल्पलक्ष्मीविडंबित ॥ ५९ ॥
कुरु सज्जौ करं दातुमादातुं वा युधं करौ । गृहाण चापरं शीघ्रं ककुभां वा कदंबकं ॥ ६० ॥
शिरो नमय चापं वा नयाज्ञां कर्णपूरतां । मौर्वीं वा दुस्सहारावामात्मजीवितदायिनीं ॥ ६१ ॥
मत्पादजं रजो मूर्ध्नि शिरस्त्रमथवा कुरु । घटयांजलिमुद्वृत्य करिणां वा महाचयं ॥ ६२ ॥
विमुंचेषुं धरित्रीं वा भजैकं वेत्रकुंतयोः । पश्य मेंघ्रिनखे वक्त्रमथवा खड्गदर्पणे ॥ ६३ ॥
ततः परुषवाक्येन दूतस्योद्भूतमानसः । नाम्ना व्याघ्रविलंबीति बभाण भटसत्तमः ॥ ६४ ॥
समस्तधरणीव्यापिपराक्रमगुणोदयः । वालिदेवो न किं यातः कर्णजाहं कुरक्षसः ॥ ६५ ॥
यद्येवं भाषसे व्यक्तं गृहीतो वा ग्रहेण सः । त्वं तु स्वस्थः किमित्येवं दूताधम विकत्थसे ॥६६॥
क्रोधमूर्छित इत्युक्त्वा दुःप्रेक्षः स्पष्टवेपथुः । गृहाण सायकं रुद्धो बलिनेति च चोदितः ॥६७॥
किं दूतेन वराकेण हतेन प्रेषकारिणा । कुर्वंत्येते हि नाथीयवचसः प्रतिशब्दकं ॥ ६८ ॥
दशास्यस्यैव कर्तव्यं यदभिप्रायमाश्रितं । आयुर्नूनमिमग्नस्य कुरुते यत्कुभाषितं ॥ ६९ ॥

ततो भीती भृशं दूतो गत्वा वृत्तांतवेदनात् । दशास्यस्य परं क्रोधो चक्रे दुस्सहतेजसः ॥७०॥
सैन्यावृतश्च सन्नह्य प्रस्थितस्त्वरया पुरं । परमाणुभिरारब्धः सहि दर्पमयैरिव ॥ ७१ ॥
ततः परबलध्वानं श्रुत्वा व्योमपिधायिनं । निर्गंतुं मानसं चक्रे वालिः संग्रामदक्षिणः ॥ ७२ ॥
तावत्सागरवृद्ध्यादिमंत्रिभिर्नयशालिभिः । ज्वलत्क्रोधेन नीतोऽसाविति वागंबुभिः शमं ॥७३॥
अकारणेन देवालं विग्रहेण क्षमां कुरु । अनेके हि क्षयं याताः स्वच्छंदं संयुगप्रियाः ॥ ७४ ॥
अर्ककीर्तिभुजाधारा रक्षमाणाः सुरैरपि । अष्टचंद्राः क्षयं प्राप्ता मेघेस्वरशरोत्करैः ॥ ७५ ॥
बहुसैन्यं दुरालोकमसिरत्नगदाधरं । अतुलां संशयतुलां ततो नारोढुमर्हसि ॥ ७६ ॥
जगादेति ततो वालिर्युक्तं नात्मप्रशंसनं । तथापि परमार्थं वो मंत्रिणः कथयाम्यहं ॥ ७७ ॥
भ्रूलतान्क्षेपमात्रेण दशवक्त्रं ससैन्यकं । शक्तोऽस्मि कणशः कर्तुं वामपाणितलाहतं ॥ ७८ ॥
किं तर्हि दारुणं कृत्वा क्रोधाग्निं ज्वलितं मनः । कर्मणा येन लभ्यंते भोगाः क्षणविनश्वराः॥७९॥
प्राप्य तान्कदलीस्तंभनिस्सारान्मोहवाहिताः । पतंति नरके जीवा महादुःखमहाकुले ॥ ८० ॥
हिंसित्वा जंतुसंघातं नितांतं प्रियजीवितं । दुःखं कृतसुखाभिख्यं प्राप्यते तेन को गुणः ॥८१॥
अरघट्टघटीयंत्रसदृशाः प्राणधारिणः । शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमंत्यत्यंतदुःखिताः ॥ ८२ ॥

पादद्वयं जिनेंद्राणां भवनिर्गमकारणं । प्रणम्य कथमन्यस्य क्रियते प्रणतिर्मया ॥ ८३ ॥
प्रबुद्धेन सता चेयं कृता संस्था मया पुरा । अन्यं न प्रणमामीति जिनपादाब्जयुग्मतः ॥ ८४ ॥
भंगं करोमि नास्थाया न च प्राणिनिपातनं । गृह्णामि संगनिर्मुक्तां प्रव्रज्यां मुक्तिदायिनीं॥८५॥
यौ करौ वरनारीणां कृतौ स्तनतटोचितौ । भुजौ चालिंगिनौ चारुरत्नकेयूरलक्षणौ ॥ ८६ ॥
अरातेर्यः प्रयुंक्ते तौ पुरुषोऽजलिबंधने । ऐश्वर्यं कीदृशं तस्य जीवितं वा हतात्मनः ॥ ८७ ॥
इत्युक्त्वाहूय सुग्रीवमुवाच शृणु बालक । कुरु तस्य नमस्कारं मा वा राज्यप्रतिष्ठितः ॥ ८८ ॥
स्वसारं यच्छ मा वास्मै न ममानेन कारणं । एषोऽस्मि निर्गतोऽद्यैव पथ्यं यत्तव तत्कुरु॥८९॥
इत्युक्त्वा निर्गतो गेहाद्बभूव च निरंबरः । पार्श्वे गगनचंद्रस्य गुरोर्गुणगरीयसः ॥ ९० ॥
परमार्थहितस्वांतः संप्राप्तपरमोदयः । एकभावरतो वीरः सम्यग्दर्शननिर्मलः ॥ ९१ ॥
सम्यग्ज्ञानाभियुक्तात्मा सम्यक्चारित्रतत्परः । अनुप्रेक्षाभिरात्मानं भावयन्मोहवर्जितः ॥ ९२ ॥
सूक्ष्मासुमद्भियुक्तासु धर्मानुगुणभूमिषु । मुनिभिर्विमलाचारैः सेवितासु महात्मभिः ॥ ९३ ॥
विहरन् सर्वजीवानां दयमानः पिता यथा । बाह्येन तपसांतस्थं वर्द्धयन् संततं तपः ॥ ९४ ॥
आवासतां महर्द्धीनां परिप्राप्तः प्रशांतधीः । तपःश्रिया परिश्वक्तः परया कांतदर्शनः ॥ ९५ ॥

उच्चैरुच्चैर्गुणस्थानसोपानारोहणोद्यतः । भिन्नाध्यात्माखिलग्रंथग्रंथिग्रंथविवर्जितः ॥ ९६ ॥
श्रुतेन सकलं पश्यन् कृत्याकृत्यं महागुणः । महासंवरसंपन्नः शातयन्कर्मसंततिं ॥ ९७ ॥
प्राणधारणमात्रार्थं भुंजानः सूत्रदेशितं । धर्मार्थं धारयन्प्राणान् धर्मं मोक्षार्थमर्जयन् ॥ ९८ ॥
आनंदं भव्यलोकस्य कुर्वन्नुत्तमविक्रमः । चरितेनोपमानत्वं जगामासौ तपस्विनां ॥ ९९ ॥
दशग्रीवाय सुग्रीवो वितीर्य श्रीप्रभां सुखी । चकारानुमतस्तेन राज्यमागतमन्वयात् ॥ १०० ॥
विद्याधरकुमार्यो या द्यावाभूमौ मनोहरा । दशाननः समस्तास्ता परिणिन्ये परिक्रमात्॥१०१॥
नित्यालोकेऽथ नगरे नित्यालोकस्य देहजां । श्रीदेवीलब्धजन्मानं नाम्ना रंभावलीं सुतां॥१०२॥
उपयम्य पुरीं यातो निजां परमसंमदः । नभसा मुकुटन्यस्तरत्नरश्मिविराजितां ॥ १०३ ॥
सहसा पुष्पकं स्तंभमारमानसचंचलं । मेरोरिव तटं प्राप्य सुमहद्वायुमंडलं ॥ १०४ ॥
तस्योच्छिन्नगतेः शब्दभग्ने घंटादिजन्मनि । वैलक्ष्यादिव संजातं मौनं पिंडिततेजसः ॥ १०५ ॥
भग्नप्रवृत्तिमालोक्य विमानं कैकसीसुतः । कः कोऽत्र भो इति क्षिप्रं बभाण क्रोधदीपितः॥१०६॥
मारीचस्तत आचक्षौ सर्ववृत्तांतकोविदः । शृणु देवैष कैलाशे स्थितः प्रतिमया मुनिः ॥ १०७ ॥
आदित्याभिमुखस्तस्य करानात्मकरैः किरन् । समे शिलातले रत्नस्तंभाकारोऽवतिष्ठते ॥१०८॥

कोऽप्ययं सुमहान्वीरः सुघोरं धारयंस्तपः । मुक्तिमाकांक्षति क्षिप्रं वृत्तांतोऽयमतोऽभवत्॥१०९॥
निवर्तयाम्यतोदेशाद्विमानं निर्विलंबितं । मुनेरस्य प्रभावेन यावन्नायाति खंडशः ॥ ११० ॥
श्रुत्वा मारीचवचनमथ कैलाशभूधरं । ईक्षांचक्रे यमध्वंसः स्वपराक्रमगर्वितः ॥ १११ ॥
नानाधातुसमाकीर्णं गणैर्युक्तं सहस्रशः । सुवर्णघटनारम्यं पदपंक्तिभिराचितं ॥ ११२ ॥
प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैः विलसंयुतं । स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लब्धव्याकरणोपमं ॥ ११३ ॥
तीक्ष्णैः शिखरसंघातैः खंडयंतमिवाधरं । उच्छर्पच्छीकरैः स्पष्टं हसंतमिव निर्झरैः ॥ ११४ ॥
मकरंदसुरामत्तमधुव्रतपरिधितं । शालौघविततताकाशं नानानोकहसंकुलं ॥ ११५ ॥
सर्वर्तुजमनोहारिकुसुमादिभिराचितं । चरत्प्रमोदवत्सत्वसहस्रसदुपत्यकं ॥ ११६ ॥
औषधत्रासदूरस्थव्यालजालसमाकुलं । मनोहरेण गंधेन दधतं यौवनं सदा ॥ ११७ ॥
शिलाविस्तीर्णहृदयं स्थूलवृक्षमहाभुजं । गुहागंभीरवदनमपूर्वपुरुषाकृतिं ॥ ११८ ॥
शरत्पयोधराकारतटसंघातसंकटं । क्षीरेणेव जगत्सर्वं क्षालयंतं करोत्करैः ॥ ११९ ॥
क्वचिद्विस्रब्धसंसुप्तमृगाधिपदरीमुखं । क्वचित्सुप्तशयुश्वासवाताघूर्णितपादपं ॥ १२० ॥
क्वचित्परिसरत्क्रीडन् कुरंगककदंबकं । क्वचिन्मत्तद्विपव्रातकलिताधित्यकावनं ॥ १२१ ॥

क्वचित्पुलकिताकारं प्रसूनप्रकराचितं । क्वचिद्दक्षसटाभारैरुद्धतैर्भीषणाकृति ॥ १२२ ॥
क्वचित्पश्ववनेनैव युक्तं शाखामृगाननैः । क्वचित्खड्गकृतस्यंदिसालादिसुरभीकृतं ॥ १२३ ॥
क्वचिद्विद्युल्लताश्लिष्टसंभवध्वनिसंतति । क्वचिद्दिवाकराकारशिखरद्योतितांबरं ॥ १२४ ॥
पांडुकस्येव कुर्वाणं विजिगीषां क्वचिद्वनैः । सुरभिप्रसवोत्तुंगविस्तीर्णघनपादपैः ॥ १२५ ॥
अवतीर्णश्च तत्रासावपश्यत्तं महामुनिं । ध्यानार्णवसमाविष्टं तेजसा बद्धमंडलं ॥ १२६ ॥
आशाकरिकराकारप्रलंबितभुजद्वयं । पन्नगाभ्यामिवाश्लिष्टं महाचंदनपादपं ॥ १२७ ॥
आतापनशिलापीठमस्तकस्थं सुनिश्चलं । कुर्वाणं प्राणिविषयं संशयं प्राणधारिणं ॥ १२८ ॥
ततो वालिरसावेष इति ज्ञात्वा दशाननः । अतीतं संस्मरन् वैरं जज्वाल क्रोधवह्निना ॥१२९॥
बद्ध्वा च भृकुटीं भीमां दष्टोष्ठः प्रखरस्वरः । बभाण भासुराकारो मुनिमेवं सुनिर्भयः ॥ १३० ॥
अहो शोभनमारब्धं त्वया कर्तुमिदं तपः । यदद्याप्यभिमानेन विमानं स्तंभ्यते मम ॥ १३१ ॥
क्व धर्मः क्व च संक्रोधो वृथा श्राम्यसि दुर्मते । इच्छस्येकत्वमाधातुममृतस्य विषस्य च ॥१३२॥
तस्मादपनयाम्येनं दर्पमद्य तवोद्धतं । कैलाशनगमुन्मूल्य क्षिपाम्यब्धौ समं त्वया ॥ १३३ ॥
ततोऽसौ सर्वविद्याभिर्ध्याताभिस्तत्क्षणाद्वृतः । विकृत्य सुमहद्रूपं सुरेंद्र इव भीषणं ॥ १३४ ॥

महावायुवनेनाथ ध्वांतं कृत्वा समंततः । प्रविष्टो धरणीं भित्त्वा पातालं पातकोद्यतः ॥ १३५ ॥
आरेभे च समुद्धर्तुं भुजैर्भूरिपराक्रमः । क्रोधप्रचंडरक्ताक्षो हुंकारमुखराननः ॥ १३६ ॥
ततो विषकणक्षेपिलंबमानोरगाधरः । केसरिक्रमसंप्राप्तभ्रश्यन्मत्तमतंगजः ॥ १३७ ॥
संभ्रांतनिश्चलोत्कर्णसारंगककदंबकः । स्फुटितोद्देशनिष्पीतत्रुटिताखिलनिर्झरः ॥ १३८ ॥
पर्यस्यदुद्धतारावमहानोकहसंहतिः । स्फुटीकृतशिलाजालसंधिसत्वैः सदुश्वरः ॥ १३९ ॥
पतद्विकटपाषाणरवापूरितविष्टपः । चलितश्चालयन्क्षोणीं भृशं कैलाशपर्वतः ॥ १४० ॥
स्फुटितावनिपीतांबुः प्राप शोषं नदीपतिः । ऊहुः स्वच्छतया भुक्त्वा विपरीतं समुद्रगाः १४१
त्रस्ता व्यलोकयन्नाशाः प्रमथाः पृथुविस्मया । किं किमेतदहो हाहाहुंहीतिप्रसृतस्वराः ॥१४२॥
जह्रुरप्सरसो भीता लताप्रवरमंडपात् । वयसां निवहाः प्राप्ताः कृतकोलाहला नभः ॥ १४३ ॥
पातालादुत्थितैः क्रूररट्टहासैरनंतरैः । दशवक्त्रैः समं दिग्भिः पुस्फोटे च नभस्तलं ॥ १४४ ॥
ततः संवर्तकाभिख्यवायुनेवाकुलीकृते । भुवने भगवान्वालिरवधिज्ञातराक्षसः ॥ १४५ ॥
अप्राप्तः पीडनं स्वस्य धीरः कोपविवर्जितः । तथावस्थितसर्वांगश्चेतसीदं न्यवेशयत् ॥ १४६ ॥
कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमं । सर्वरत्नमयं तुंगं बहुरूपविराजितं ॥ १४७ ॥

प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासुरैः । मा विनाशि चलत्यस्मिन्पर्वते भिन्नपर्वणि ॥ १४८ ॥
ध्यात्वेति चरणांगुष्ठपीडितं गिरिमस्तकं । चकार शोभनध्यानाददूरीकृतचेतनः ॥ १४९ ॥
भग्नमौलिशिरोगाढ़निविष्टधरणीधरः । निमजद्भूतलन्यस्तजानुनिर्भुग्नजंघकः ॥ १५० ॥
सद्यः प्रगलितस्वेदधाराधौतरसातलः । बभूव संकुचद्गात्रः कूर्माकारो दशाननः ॥ १५१ ॥
रवं च सर्वयत्नेन कृत्वा रावितवान् जगत् । यतस्ततो गतः पश्चाद्रावणाख्यां समस्तगां ॥१५२॥
श्रुत्वा तं दीनमारावं स्वामिनः पूर्वमश्रुतं । विद्याधरवधूलोको विललाप समाकुलः ॥ १५३ ॥
मूढ़ाः सन्नद्धमारब्धाः संभ्रांताः सचिवा वृथा । पुनः पुनःस्खलद्वाचो गृहीतगलदायुधाः॥१५४॥
मुनिवीर्यप्रभावेण सुदुंदुभयोऽनदन् । पपात सुमनोवृष्टिः खमाच्छाद्य सषट्पदाः ॥ १५५ ॥
ननृतुर्गगने क्रीड़ाशीला देवकुमारकाः । गीतध्वनिः सुरस्त्रीणां वंशानुगतमुद्ययौ ॥ १५६ ॥
ततो मंदोदरी दीना ययाचेति मुनीश्वरं । प्रणम्य भर्तृभिक्षं मे प्रयच्छाद्भुतविक्रम ॥ १५७ ॥
ततोऽनुकंपयांगुष्ठं महामुनिरशश्लथन् । रावणोऽपि विमुच्याद्रिं क्लेशकांतारतो निरैत् ॥ १५८ ॥
गत्वा च प्रणतिं कृत्वा क्षमयित्वा पुनः पुनः । योगेशं स्तोतुमारब्धः परिज्ञाततपोबलः॥१५९॥
जिनेंद्रचरणौ मुक्त्वा करोमि न नमस्कृतिं । अन्यस्येति त्वयोक्तं यत्सामर्थ्यस्यास्य तत्फलं१६०

अहो निश्चयसंपन्नं तपस्स्ते महद्बलं । भगवन् ! येन शक्तोऽसि त्रैलोक्यं कर्तुमन्यथा ॥ १६१ ॥
इंद्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते । यादृक् तपःसमृद्धानां मुनीनामल्पयत्नजं ॥ १६२ ॥
अहो गुणा अहो रूपमहोकांतिरहो बलं । अहो दीप्तिरहो धैर्यमहो शीलमहो तपः ॥ १६३ ॥
त्रैलोक्यादथ निश्शेषं वस्त्वाहृत्य मनोहरं । कर्मभिः सुकृताधारं शरीरं तव निर्मितं ॥ १६४ ॥
सामर्थ्येनामुना युक्तस्त्यक्तवानसि यत्क्षितिं । इदमत्यद्भुतं कर्म कृतं सुपुरुष त्वया ॥ १६५ ॥
एवंविधस्य ते कर्तुं यदसाधु मयेप्सितं । तदशक्तस्य संजातं पापबंधाय केवलं ॥ १६६ ॥
धिक् शरीरमिदं चेतो वचश्च मम पापिनः । वृत्तान्नभिमुखं जातं यदसत्यामलं पुरा ॥ १६७ ॥
भवादृशां नृरत्नानां मद्विधानां च दुर्विशां । अंतरं विगतद्वेष ! मेरुसर्षपयोरिव ॥ १६८ ॥
मह्यं विपद्यमानाय दत्ताः प्राणास्त्वया मुने । अपकारिणि यस्येयं मतिस्तस्य किमुच्यतां ॥ १६९ ॥
शृणोमि वेद्मि पश्यामि संसारं दुःखभावकं । पापस्तथापि निर्वेदं विषयेभ्यो न याम्यहं ॥१७०॥
पुण्यवंतो महासत्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः । तारुण्ये विषयान् त्यक्त्वा स्थिता ये मुक्तिवर्त्मनि॥१७१
इति स्तुत्वा मुनिं भूयः प्रणम्य त्रिःप्रदक्षिणं । नितांतं स्वं च निंदित्वा शूत्कारमुखराननः १७२
उपकंठं मुनेश्चैत्यभवनं त्रपयान्वितः । विरक्तो विषयासंगे प्रविष्टः कैकसीसुतः ॥ १७३ ॥

अनादरेण विक्षिप्य चंद्रहासमसिं भुवि । आवृतो निजनारीभिश्चक्रे जिनवरार्चनं ॥ १७४ ॥
निष्कृष्य च स्नसातंत्री भुजे वीणामवीवहत् । भक्तिनिर्भरभावश्च जगौ स्तुतिशतैर्जिनं ॥ १७५ ॥
नमस्ते देवदेवाय लोकालोकावलोकिने । तेजसातीतलोकाय कृतार्थाय महात्मने ॥ १७६ ॥
त्रिलोककृतपूजाय नष्टमोहमहारये । वाणीगोचरतामुक्तगुणसंघातधारिणे ॥ १७७ ॥
महैश्वर्यसमेताय विमुक्तपथदेशिने । सुखकाष्ठासमृद्धाय दूरीभूतकुवस्तवे ॥ १७८ ॥
निश्रेयसस्य भूतानां हेतवेऽभ्युदयस्य च । महाकल्याणमूलाय वेधसे सर्वकर्मणां ॥ १७९ ॥
ध्याननिर्दग्धपापाय जन्मविध्वंसकारिणे । गुरवे गुरुमुक्ताय प्रणतायानतात्मने ॥ १८० ॥
आद्यंतपरिमुक्ताय संतताद्यंतयोगिने । अज्ञातपरमार्थाय परमार्थावबोधिने ॥ १८१ ॥
सर्वशून्यप्रतिज्ञाय सर्वास्तिक्योपदेशिने । सर्वक्षणिकपक्षाय कृत्स्ननित्यत्वदेशिने ॥ १८२ ॥
पृथक्त्वैकत्ववादाय सर्वानेकांतदेशिने । जिनेश्वराय सर्वस्मै एकस्मै शिवदायिने ॥ १८३ ॥
ऋषभाय नमो नित्यमजिताय नमोनमः । संभवाय नमो सक्तमभिनंदनरूढये ॥ १८४ ॥
नमः सुमतये पद्मप्रभाय सततं नमः । सुपार्श्वाय नमः शश्वन्नमश्चंद्रसमात्विषे ॥ १८५ ॥
नमोस्तु पुष्पदंताय शीतलाय नमोनमः । श्रेयसे वासुपूज्याय नमो लब्धात्मतेजसे ॥ १८६ ॥

विमलाय नमस्त्रेधा नमोऽनंताय संततं । नमो धर्माय सौख्यानां नमो मूलाय शांतये ॥१८७॥
नमः कुंथुजिनेंद्राय नमोऽरस्वामिने सदा । नमो मल्लिमहेशाय नमः सुव्रतदायिने ॥ १८८ ॥
अन्येभ्यश्च भविष्यद्भ्यो भूतेभ्यश्च सुभावतः । नमोऽस्तु जिननाथेभ्यः श्रवणेभ्यश्च सर्वदा॥१८९॥
नमः सम्यक्त्वयुक्ताय ज्ञानायैकांतनाशिने । दर्शनाय नमोऽजस्रं सिद्धेभ्योऽनारतं नमः ॥१९०॥
पवित्राण्यक्षराण्येव लंकास्वामिनि गायति । चलितं नागराजस्य विष्टरं धरणश्रुतेः ॥ १९१ ॥
ततोऽवधिकृतालोकस्तोषविस्तरितेक्षणः । स्फुरत्फणामणिच्छायादूरध्वस्ततमश्चयः ॥ १९२ ॥
स कलामलतारेशप्रसन्नमुखशोभितः । पातालादुद्ययौ क्षिप्रं नागराजः सुमानसः ॥ १९३ ॥
विधाय च नमस्कारं जिनेंद्राणां विधानतः । पूजां च ध्यानसंजातसमस्तद्रव्यसंपदं ॥ १९४ ॥
जगाद रावणं साधो ! साधु गीतमिदं त्वया । जिनेंद्रस्तुतिसंबद्धं रोमहर्षणकारणं ॥ १९५ ॥
पश्य तोषेण मे जातं पुलकं घनकर्कसं । पातालस्य यच्छांतिं नाद्यापि प्रतिपद्यते ॥ १९६ ॥
राक्षसेश्वर ! धन्योऽसि यस्तोषि जिनपुंगवान् । बलादाकृष्य भावेन त्वदीयेनाहमाहृतः॥१९७॥
वरं वृणीष्व तुष्टोऽस्मि तव भक्त्या जिनान्प्रति । ददाम्यभीप्सितं वस्तु सद्यः कुनरदुर्लभं ॥१९८॥
ततः कैलाशकंपेन प्रोक्तोऽसौ विदितो मम । धरणो नागराजस्त्वं पृष्टस्तावन्निवेदय ॥ १९९ ॥

जिनवंदनया तुल्यं किमन्यद्विद्यते शुभं । वस्तु यत्प्रार्थयिष्येऽहं भवंतं दातुमुद्यतं ॥ २०० ॥
ततो निगदितं नागपतिना शृणु रावण ? । जिनेंद्रवंदनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते ॥ २०१ ॥
ददाति परिनिर्वाणसुखं या समुपासिता । जिननत्या तया तुल्यं न भूतं न भविष्यति ॥२०२॥
ततो दशमुखेनोक्तं नास्ति चेज्जिनवंदनात्। अधिकं किंत्वतः प्राप्ते तस्मिन्याचे महामते ॥२०३॥
उक्तं च नागपतिना सत्यमेतत्सुचेष्टितं । असाध्यं जिनभक्तेर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ॥ २०४ ॥
त्वादृशा मादृशा ये च वासवाद्यैश्च सन्निभाः । संपद्यंते सुखाधारा सर्वे ते जिनभक्तितः ॥२०५॥
आस्तां तावदिदं स्वल्पं व्याघाति भवजं सुखं । मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तमं सुखं२०६
नितांतं यद्यपि त्यागी महाविनयसंगतः । वीर्यवानुत्तमैश्वर्यो भवान् गुणविभूषितः ॥ २०७ ॥
मद्दर्शनं तथाप्येतत्तव माभूदनर्थकं । अमोघमिति याचेऽहं भवंतं ग्रहणं प्रति ॥ २०८ ॥
अमोघविजयानाम शक्तिं रूपविकारिणीं । विद्यां गृहाण लंकेश मावधीः प्रणयं मम ॥ २०९ ॥
एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जनः । विपदोऽनंतरा संपत् संपदोऽनंतरा विपत् ॥२१०॥
अतो विपदि जातायामासन्नायां कुतोऽपि ते । कुर्वती परसंवाधं पालिकेयं भविष्यति ॥ २११ ॥
आसतां मानुषास्तावद्भिभ्यत्यस्याः सुरा अपि । वन्हिज्वालापरीतायाः शक्तेर्विपुलशक्तयः ॥२१२॥

अशक्नुवंस्ततः कर्तुं प्रणयस्यास्य भाजनं । गृहीतलाघवं लेभे कृच्छ्रात्कैलासकंपनः ॥ २१३ ॥
कृत्वांजलिं नमस्यां च संभाषितदशाननः । जगाम धरणःस्थानं निजं प्रकटसंमदः ॥ २१४ ॥
मासमात्रं दशास्योऽपि स्थित्वा कैलाशमूर्धनि । प्रतिपत्य जिनं देशं प्रययावभिवांछितं ॥२१५॥
विज्ञाय मनसः क्षोभादात्मानं बद्धदुष्कृतं । प्रायश्चित्तं गुरोर्देशं गत्वा वालिरशिश्रियत् ॥२१६॥
निर्गतस्वांतशल्यस्य बभूव सुखितः पुनः । वालिर्नियमनं कृत्वा यथा विष्णुर्महामुनिः ॥२१७॥
चारित्राद्दुष्टितो धर्मादनुप्रेषणतः सदा । समितिभ्यः पराभूतेः परीषहगणस्य च ॥ २१८ ॥
महासंवरमासाद्य कर्मापूर्वमनिर्जयन् । नाशयंस्तपसा चात्तप्रातःकेवलसंगमं ॥ २१९ ॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तो ययौ त्रैलोक्यमस्तकं । सुखं निरुपमं यस्मिन्नवसानविवर्जितं ॥ २२० ॥
इंद्रियाणां जये शक्तो यस्तेनास्मि पराजितः । इति विज्ञाय लंकेशः साधूनां प्रणतोऽभवत् २२१
सम्यग्दर्शनसंपन्नो दृढभक्तिर्जिनेश्वरे । अतृप्तः परमैर्भोगैरतिष्ठत् स यथेप्सितं ॥ २२२ ॥

वालिचेष्टितमिदं शृणोति यो । भावतत्परमतिः शुभो जनः ॥
नैष याति परतः पराभवं । प्राप्नुते च रविभासुरं पदं ॥ २२३ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वालिनिर्वाणाभिधानं नाम नवमं पर्व ।

दशमं पर्व ।

एवं तावदिदं पर्व तव श्रेणिक ! वेदितं । अतःपरं प्रवक्ष्यामि शृणु ते परमीहितं ॥ १ ॥
हुताशनशिखस्यासीत्सुता द्योतिःपुरे वरा । ह्रीसंज्ञायां समुत्पन्ना योषिति स्त्रीगुणान्विता ॥ २ ॥
सुतारेति गता ख्यातिं शोभया सकलावनौ । पद्मवासं परित्यज्य लक्ष्मीरिव समागता ॥ ३ ॥
चक्रांकतनयोऽपश्यत्पर्यटन् स्वेच्छयान्यदा । तां साहसगतिर्नाम्ना दुष्टानुमतिसंभवः ॥ ४ ॥
ततोऽसौ कामशल्येन शल्यितोऽत्यंतदुःखितः । सुतारां मनसा नित्यमुवाहोन्मत्तविभ्रमः ॥ ५ ॥
उपर्युपरि यातैश्च तां स दूतैरयाचत । सुग्रीवोऽपि तथैवैतां याचतेस्म मनोहरां ॥ ६ ॥
द्वैधीभावमुपेतेन हुताशनशिखेन च । पृष्टो मुनिर्महाज्ञानो निश्चयव्याकुलात्मना ॥ ७ ॥
युक्तं च मुनिचंद्रेण न साहसगतिश्चिरं । जीविष्यति चिरायुस्तु सुग्रीवः परमोदयः ॥ ८ ॥
चक्रांकपक्षसंप्रीत्या हुताशस्तु विनिश्चयः । दीपौ वृषौ गजेंद्रौ च निमित्तमकरोद् दृढं ॥ ९ ॥
ततो मुनिगिरं ज्ञात्वा नियतामृतोपमां । सुग्रीवाय सुता दत्ता नीत्वा पित्रा समंगलं ॥ १० ॥
कृत्वा पाणिगृहीतां तां सुग्रीवः पुण्यसंचयः । इयाय कामविषयं सारवत्तं सुसंमदं ॥ ११ ॥

ततः क्रमात्तयोः पुत्रौ जातौ रूपमहोत्सवौ । ज्यायानंगोनुजस्तस्य प्रथितोऽगदसंज्ञया ॥ १२ ॥
अद्यापि नैव निर्लज्जश्चक्रांकस्य शरीरजः । परित्यजति तत्राशां धिङ्मनोभवदूषितां ॥ १३ ॥
दध्यौ चेतसि कामाग्निदग्धो निस्सारमानसः । केनोपायेन तां कन्यां लप्स्ये निर्वृतिदायिनीं १४
कदा नु वदनं तस्या शोभाजितनिशाकरं । चुंबिष्यामि स्फुरच्छोणच्छविछन्नरदच्छदं ॥ १५ ॥
क्रीडिष्यामि कदा सार्धं तया नंदनवक्षसि । कदा वाप्स्यामि तत्पीनस्तनस्पर्शसुखोत्सवम्॥१६॥
इत्यभिधावतस्तस्य तत्समागमकारणं । सस्मार शेमुखीविद्यामाकृतेः परिवर्तिनीं ॥ १७ ॥
हिमवंतं ततो गत्वा गुहामाश्रित्य दुर्गमां । आराधयितुमारेभे दुःखितं प्रियमित्रवत् ॥ १८ ॥
अत्रांतरे विनिष्क्रांतो दिशो जेतुं दशाननः । बभ्राम धरणीं पश्यन् गिरिकांतारभूषितां ॥ १९ ॥
जित्वा विद्याधराधीशान् द्वीपांतरगतान्वशी । भूयोऽन्ययोजयत्स्वेषु राष्ट्रेषु पृथुशासनः ॥ २० ॥
वशीकृतेषु तस्यासीत् खगसिंहेषु मानसं । पुत्रेष्विव महेच्छा हि तुष्यंत्यानतिमात्रतः ॥ २१ ॥
रक्षसामन्वये योभूद्योवा शाखामृगान्वये । उद्बलः खेचराधीशः सर्वं तं वशमानयत् ॥ २२ ॥
महासाधनयुक्तस्य व्रजतोऽस्य विहायसा । वेगमारुतमप्यन्ये खेचराः सोढुमक्षमाः ॥ २३ ॥
संध्याकारा सुवेलाश्च हेमापूर्णा सुयोधनाः । हंसद्वीपाः परिह्लादा इत्याद्या जनताधिपाः ॥ २४ ॥

गृहीतप्राभृताः गत्वा नेमुस्तं मूर्धपाणयः । आश्वासिताः सुवाणीभिस्तथावसितसंपदः ॥ २५ ॥
श्रिता येऽपि सुदुर्गाणि स्थानान्यंबरगाधिपाः । नमितास्तेऽपि तत्पादौ शोभनैः पूर्वकर्मभिः ॥
बलानां हि समस्तानां बलं कर्मकृतं परं । तस्योदये स कं जेतुं न समर्थो नरेश्वर ॥ २७ ॥
अर्थेंद्रजितये गंतुं प्रवृत्तेनामुना स्मृतः । स्वसात्यंतघनस्नेहात्पारंपर्याच्च तत्पतिः ॥ २८ ॥
प्रस्थितश्च स तं देशं श्रुतः स्वस्रा समुत्कया । प्राप्तः स्थितः समासन्ने देशे प्रीतिसमुत्कटः ॥२९॥
ततश्चरमयामादौ क्षपायाः शयितः सुखं । कैकसेय्या परप्रीत्या बोधितः खरदूषणः ॥ ३० ॥
ततो निर्गत्य तेनासावलंकारोदयात्पुरात् । दशवक्त्रो महाभक्त्या पूजितः परमोत्सवैः[1] ॥ ३१ ॥
रावणोऽपि स्वसुः प्रीत्या चक्रेऽस्य प्रतिपूजनं । प्रायो हि सोदरस्नेहात्परः स्नेहो न विद्यते ॥
चतुर्दशसहस्राणि कामरूपविकारिणां । दर्शितानि दशास्याय तेन व्योमविचारिणां ॥ ३३ ॥
दूषणाख्यश्च सेनायाः पतिरात्मसमःकृती । शूरो गुणसमाकृष्टसर्वसामंतमानसः ॥ ३४ ॥
एतैश्च प्रस्थितः साकं कृतसर्वास्त्रकौशलैः । आवृतो सुरसंघातैः पातालाच्चामरो यथा ॥ ३५ ॥
हिंडवो हैहि डोडिंवो विकटस्त्रिजटो हयः । माकोटस्त्रिजटष्टंकः किष्किंधाधिपतिस्तथा ॥ ३६ ॥

१ उपचारैः परिप्राप्तो रत्नार्थादिभिरादरात्, पाठांतरमिदं ।

त्रिपुरो मलयो हेमपालकोलवसुंधराः । नानायानसमारूढा नानाशस्त्रविराजिताः ॥ ३७ ॥
एवमाद्यैः खगाधीशैरापुपूरे स निर्गतः । विद्युदिंद्रधनुर्युक्तैर्घनौघैः श्रावणो यथा ॥ ३८ ॥
सहस्रमधिकं जातं विहायस्तलचारिणां । अक्षौहिणीप्रमाणानां कैलाशोल्लासकारिणां ॥ ३९ ॥
अमराणां सहस्रेण प्रत्येकं कृतपालनैः । रत्नैरनुगतो नानागुणसंघातधारिभिः ॥ ४० ॥
चंद्ररश्मिचयाकारैश्चामरैरुपवीजितः । समुच्छ्रितश्चितच्छत्रश्चारुरूपमहाभुजः ॥ ४१ ॥
पुष्पकाग्रं समारूढो मंदरस्थिरविद्युतिः । तिग्मांशुमालिनो मार्गंश्छादयन् यानसंपदा ॥ ४२ ॥
इंद्रध्वंसनमाधाय मानसे पुरुविक्रमः । प्रयाणकैरभिप्रेतैः प्रयातिस्म दशाननः ॥ ४३ ॥
नानारत्नकृतच्छायं चामरोर्मिसमाकुलं । तद्दंडमानसंघातं छत्रावर्तशताचितं ॥ ४४ ॥
वाजिमातंगपादातग्रहसंघातभीषणं । उल्लसच्छस्त्रकल्लोलमकरोत्स खमर्णवं ॥ ४५ ॥
तुंगैर्विहिंणपिच्छौघशिरोभिर्भासुरैर्ध्वजैः । वज्रैरिव क्वचिद्व्याप्तं सुत्रामोपायनैर्नभः ॥ ४६ ॥
नानारत्नकृतोद्योतैस्तुंगश्रृंगविराजितैः । संचरन्सुरलोकात्तं विमाननिवहैः क्वचित् ॥ ४७ ॥
पृथ्व्या किं मगधाधीश गिरात्र परिकीर्णया । मन्ये तत्सैन्यमालोक्य विभियुस्त्रिदशा अपि॥४८॥
इंद्रजिन्मेघवाहश्च कुंभकर्णो विभीषणः । खरदूषणनामा च निकुंभः कुंभसंज्ञकः ॥ ४९ ॥

एते चान्ये च बहवः स्वजना रणकोविदाः । सिद्धविद्यामहाभासः शस्त्रशास्त्रकृतश्रमाः ॥ ५० ॥
महासाधनसंपन्ना ह्रेपयंतः सुरश्रियं । अनुजग्मुरतिप्रीता रावणं पृथुकीर्तयः ॥ ५१ ॥
ततो विंध्यांतिके तस्य जगामास्तं दिवाकरः । वैलक्ष्यादिव निच्छायो जितो रावणतेजसा ॥५२॥
उत्तमांगेन विंध्यस्य तेन सैन्यं निवेशितं विद्याबलसमुद्भूतैर्नानाकृतसमाश्रयं ॥ ५३ ॥
प्रदीप इव चानीतः क्षपया तस्य भीतया । करदूरीकृतध्वांतपटलो रोहिणीपतिः ॥ ५४ ॥
तारागणशिरःपुष्पा शशांकवदना निशा । प्राप्ता वरांगनेवैतं विमलांबरधारिणी ॥ ५५ ॥
संकथाभिर्विचित्राभिर्व्यापारैश्च तथोचितैः । सुखेन रजनी नीता निद्रया च नभश्चरैः ॥ ५६ ॥
ततः प्रभाततूर्येण मंगलैश्च प्रबोधितः । चकार रावणः कर्म सकलं तनुगोचरं ॥ ५७ ॥
भ्रांत्वेव भुवनं सर्वमदृष्ट्वान्यं समाश्रयं । पुनः शरणमायातो रावणं पद्मबांधवः ॥ ५८ ॥
ततो नानाशकुंतौघैः कुर्वद्भिर्मधुरस्वरं । संभाषणमिवाभ्रष्टमर्यादां कुर्वतीमपूं ॥ ५९ ॥
ददर्श नर्मदां फेनपटलैः सस्मितामिव । शुद्धस्फटिकसंकाशसलिलां द्विपभूषितां ॥ ६० ॥
तरंगभ्रूविलासाढ्यामावर्तोत्तमनाभिकां । विस्फुरच्छफरीनेत्रां पुलिनोरुकलत्रिकां ॥ ६१ ॥
नानापुष्पसमाकीर्णां विमलोदकवाससं । वरांगनामिवालोक्य महाप्रीतिमुपागतः ॥ ६२ ॥

उग्रनक्रकुलाक्रांतां गंभीरां वेगिनीं क्वचित् । क्वचिच्च प्रस्थितां मंदं क्वचित्कुंडलगामिनीं॥६३॥
नानाचेष्टितसंपूर्णां कौतुकव्याप्तमानसः । अवतीर्णः स तां भीमां रमणीयां च सादरः ॥ ६४ ॥
माहिष्मतीपुरेशोऽथ बलेन प्रथितो भुवि । सहस्ररश्मिरप्येतामवतीर्णोऽन्यया दिशा ॥ ६५ ॥
सहस्ररश्मिरेवैष सत्यं परमसुंदरः । सहस्रं तस्य दाराणां यदत्यंतसुतेजसां ॥ ६६ ॥
जलयंत्राणि चित्राणि कृतानि वरशिल्पिभिः । समाश्रित्य स रेमेऽस्यामद्भुतानां विधायकः॥६७॥
सागरस्यापि संरोद्धुमंभः शक्तैर्नरैर्वृतः । यंत्रसंवाहनाभिज्ञैः स्वेच्छयास्यां चचार सः ॥ ६८ ॥
जले यंत्रप्रयोगेण क्षणेन विधृते सति । भ्रमंति पुलिने नार्यो नानाक्रीडनकोविदाः ॥ ६९ ॥
कलत्रनिबिडाश्लिष्टसुसूक्ष्मविमलांशुकाः । बभूवुः सत्रपा दृष्ट्वा रमणेन वरांगनाः ॥ ७० ॥
विगतालेखना काचित्कुचौ नखपदांकितौ । दर्शयंती चकारेर्ष्यां प्रतिपक्षस्य कामिनी ॥ ७१ ॥
काचिद्दृश्यसमस्तांगा वरयोषित्त्रपावती । अभिप्रियं निचिक्षेप कराभ्यां जलमाकुला ॥ ७२ ॥
प्रतिपक्षस्य दृष्ट्वान्या जघने करजक्षतीः । लीलाकमलनालेन जघान प्रमदा प्रियं ॥ ७३ ॥
काचित्कोपवती मौनं गृहीत्वा निश्चला स्थिता । पत्या पादप्रणामेन दयिता तोषमाहृता ॥७४॥
यावत्प्रसादयत्येकां तावदेत्य परा रुषं । यथाकथंचिदानिन्ये तोषं सर्वाः पुनर्नृपः ॥ ७५ ॥

दर्शनात्स्पर्शनात्कोपात् प्रसादाद्विविधोदितात् । प्रणामाद्वारिनिक्षेपादवतंसकताडनात् ॥ ७६ ॥
वंचनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामबंधनात् । पलायनान्महारावात्संपर्कात्कुचकंपनात् ॥ ७७ ॥
हासाद्भूषणनिक्षेपात्प्रेरणाद्भ्रूविलासतः । अंतर्द्धानात्समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात् ॥ ७८ ॥
रेमे बहुरसं तस्यां स मनोहरदर्शनः । आवृतो वरनारीभिर्देवीभिरिव वासवः ॥ ७९ ॥
पतितान् सिकतापृष्ठे नालंकारान्पुनः स्त्रियः । आचकांक्षुर्महाचित्ता निर्माल्यस्रग्गुणानिव ॥८०॥
काचिच्चंदनलेपेन चकार धवलं जलं । अन्या कुंकुमपंकेन द्रुतचामीकरप्रभं ॥ ८१ ॥
धौततांबूलरागाणामधराणां सुयोषितां । चक्षुषां व्यंजनानां च लक्ष्मीरभवदुत्तमा ॥ ८२ ॥
पुनश्च यंत्रनिर्मुक्तं वारिमध्ये यथेप्सितं । रेमे समं वरस्त्रीभिर्नरेशस्तरुहेतुभिः ॥ ८३ ॥
क्रीडंतीभिर्जले स्त्रीभिर्भूषणानां वरो रवः । शकुंतेष्विव विन्यस्तः कूलकीलालचारिषु ॥ ८४ ॥
रावणोऽपि सुखं स्नात्वा वसानो धौतवाससी । विधाय प्रयतो मूलं शुक्लकर्पटसंयुतं ॥ ८५ ॥
निर्युक्तैः सर्वदा पुंभिरुह्यमानां प्रयत्नतः । प्रतिमामर्हतोरत्नहेमनिर्मितविग्रहां ॥ ८६ ॥
तरंगिणीजवे रम्ये पुलिने शुभ्रभासुरे । सिकताराचितोत्तुंगपीठबंधविराजिते ॥ ८७ ॥
वैडूर्यदंडिकासक्तमुक्ताफलवितानके । सर्वोपकरणव्यग्रपरिवर्गसमावृते ॥ ८८ ॥

स्थापयित्वा घनामोदसमाकृष्टमधुव्रतैः । धूपैरालेपनैः पुष्पैर्मनोज्ञैर्बहुभक्तिभिः ॥ ८९ ॥
विधाय महतीं पूजां सन्निविष्टः पुरोवनौ । सगर्भवदनं चक्रे पूतैःस्तुत्यक्षरैश्चिरं ॥ ९० ॥
अकस्मादथ पूरेण हता पूजा समंततः । फेनबुद्बुदयुक्तेन कलुषेण तरस्विना ॥ ९१ ॥
ततो दशाननः क्षिप्रं गृहीत्वा प्रतियातनां । क्रुद्धो जगाद किंत्वेतदिति विज्ञायतामरं ॥ ९२ ॥
ततोऽनुसृत्य वेगेन नरैः प्रतिनिवृत्य च । निवेदितमिदं नाथ कोप्ययं पुरुषो महान् ॥ ९३ ॥
मध्ये ललामनारीणां ललामपरमोदयः । दूरस्थेन नृलोकेन वेष्टितः खड्गधारिणा ॥ ९४ ॥
नानाकाराणि यंत्राणि बृंहंति सुबहूनि च । विद्यंते तस्य नूनं तैः कृतमेतद्विचेष्टितं ॥ ९५ ॥
व्यवस्थामात्रकं तस्य पुरुषा इति नो मतिः । अवष्टंभस्तु यस्तस्य स एवान्यस्य दुस्सहः॥ ९६ ॥
वार्तया श्रूयते कोऽपि शक्तः स्वर्गे तथा गिरौ । अयं तु वीक्षितोऽस्माभिः शुनासीरः समक्षतः९७
श्रुत्वा संकुचितभ्रूश्च रवं मुरजसंभवं । वीणावंशादिभिर्युक्तं जयशब्दविमिश्रितं ॥ ९८ ॥
गजवाजिनराणां च ध्वनिमाज्ञापयन्नृपान् । त्वरितं गृह्यतामेष दुरात्मेति दशाननः ॥ ९९ ॥
दत्वा चाज्ञां पुनश्चक्रे पूजां रोधसि सत्तमां । रत्नकांचननिर्माणैः पुष्पैर्जिनवराकृतौ ॥ १०० ॥
शेषामिव दशास्याज्ञां कृत्वा शिरसि संभ्रमात् । अभ्यमित्रं सुसन्नद्धाः प्रसस्रुर्व्योमगाधिपाः१०१

दृष्ट्वा परबलं प्राप्तं सहस्रकिरणः क्षणात् । क्षुब्धो दत्त्वाभयं स्त्रीणां निर्जगाम जलाशयात् ॥१०२॥
ततः कलकलं श्रुत्वा विदित्वा च नरौघतः । सन्नद्ध निर्ययुर्वीरा माहिष्मत्या ससंभ्रमं ॥ १०३ ॥
गजवाजिसमारूढाः पादातेन समावृता । रथारूढाश्च सामंता विविधायुधधारिणः ॥ १०४ ॥
सहस्रकिरणं प्राप्ता नितांतमनुरागिणः । ऋतवः क्रमनिर्मुक्ताः सम्मेदमिव पर्वतं ॥ १०५ ॥
आपतंतीं ततो दृष्ट्वा विद्याधरवरूथिनीं । सहस्ररश्मिसामंतास्त्यक्त्वा जीवितलोभितां ॥ १०६ ॥
विरचटय घनव्यूहमन्योन्यं पालनोद्यताः । विनापि भर्तृवाक्येन सोत्साहा योद्धुमुत्थिताः ॥१०७॥
बले च राक्षसेशस्य रणं कर्तुं समुद्यते । विचेरुरंबरे वाचः सुराणामिति सत्वराः ॥ १०८ ॥
अहो महानयं वीरैरन्यायः कर्तुमीप्सितः । भूगोचरैः समं योद्धुमुद्यता यन्नभश्चराः ॥ १०९ ॥
अमी भूगोचराः स्वल्पा वराका ऋजुचेतसः । विद्यामायाकृतोऽत्यंतं बहवश्च नभश्चराः ॥११०॥
इति श्रुत्वाथ ते शब्दं पुनरुक्तं समाकुलं । त्रपायुक्ता भुवं याताः खेचराः साधुवृत्तयः ॥१११॥
असिबाणगदाप्रासैरथ जघ्नुः परस्परं । तुल्यप्रतिभटारब्धे रणे रावणमानवाः ॥ ११२ ॥
रथिनो रथिभिः सार्धं तुरंगास्तुरगैरमा । साकं गजैर्गजा सत्रा पादातं च पदातिभिः ॥ ११३ ॥
न्यायेन योद्धुमारब्धाः क्रमानीतपराजयाः । शस्त्रसंपातनिश्शेषसमुत्थापितवह्नयः ॥ ११४ ॥

भंगासन्नं ततः सैन्यं निजं वीक्ष्य परैर्द्रुतं । सहस्ररश्मिरारुह्य रथमुध्वंसमागतः ॥ ११५ ॥
किरीटी कवची चापि तेजो विभ्रदनुत्तमं । विद्याधरबलं दृष्ट्वा स न विभ्ये मनागपि ॥ ११६ ॥
स्वामिनाधिष्ठिताः संतस्ततः प्रत्यागतौजसः । उद्भूर्णविस्फुरच्छत्रा विस्मृतक्षतवेदनाः ॥११७॥
प्रविष्टाः रक्षसां सैन्यं रणशौंडा महीचराः । स्तंवेरमा इवोद्भूतमदा गंभीरमर्णवं ॥ ११८ ॥
ततः सहस्रकिरणो विभ्राणः कोपमुन्नतं । परांश्चिक्षेप बाणौघैर्घनानिव सदागतिः ॥ ११९ ॥
प्रतीहारेण चाख्यातमिति कैलाशकंपिने । देव पश्य नरेंद्रेण केनाप्येतेन ते बलं ॥ १२० ॥
धानुष्केन रथस्थेन पश्यता तृणवज्जगत् । योजनं यावदध्वानं शरौघैरपसारितं ॥ १२१ ॥
ततोऽभिमुखमायातं तमालोक्य यमार्दनः । आरुह्य त्रिजगद्भूषनामानं मत्तवारणं ॥ १२२ ॥
परैरालोकितो भीतैर्विमुक्तशरसंहतिः । सहस्रकिरणं चक्रे विरथं दुस्सहद्युतिः ॥ १२३ ॥
ततः सहस्रकिरणः समारुह्य द्विपोत्तमं । अभीयाय पुनः क्रुद्धस्तरसा राक्षसाधिपं ॥ १२४ ॥
सहस्ररश्मिना मुक्ता बाणाः निर्भिद्य कंकटं । अंगानि दशवक्त्रस्य विभिदुर्निशिताननाः ॥१२५॥
रत्नश्रवःसुतेनास्तान्बाणानाकृष्य देहतः । सहस्रकिरणो हासं कृत्वेत्यवददुन्नतं ॥ १२६ ॥
अहो रावण धानुष्को महानसि कुतस्तव । उपदेशोऽयमायाता गुरोः परमकौशलात् ॥ १२७ ॥

वत्स ! तावद्धनुर्वेदमधीष्य कुरु च श्रमं । ततो मया समं युद्धं करिष्यसि नयोज्झितः ॥ १२८ ॥
ततः परुषवाक्येन प्राप्तः संरंभमुत्तमं । विभेद यक्षमर्दस्तं कुंतेनालिकपट्टके ॥ १२९ ॥
गलद्रुधिरधारोसौ घूर्णमाननिरीक्षणः । मोहं गत्वा समास्वस्थो यावद्गृह्णति सायकं ॥ १३० ॥
तावदुत्पत्य वेगेन तमष्टापदकंपनः । अनुज्झितमहो धैर्यं जीवग्राहं गृहीतवान् ॥ १३१ ॥
नीतः स्वनिलयं बद्ध्वा खगैर्दृष्टः सविस्मयैः । यदि नामोत्पतेत्सोपि केन गृह्येत जंतुना ॥१३२॥
सहस्ररश्मिवृत्तांतादिव नीतिमुपागतः । सहस्ररश्मिरैदस्तं संध्याप्राकारवेष्टितः ॥ १३३ ॥
दशवक्त्रविमुक्तेन कोपेनेव च भूरिणा । तमसा पिहितो लोकः सदसत्समताकृता ॥ १३४ ॥
ततो रणादिव प्राप्तमत्यंतविमलं यशः । शशांक बिंबमुद्योतं तमोहरणपंडितं ॥ १३५ ॥
व्रणभंगविधानेन भटानां वीर्यवर्णनैः । गवेषणैश्च भिन्नानां निद्रया चाक्षतात्मनां ॥ १३६ ॥
गता राक्षससैन्यस्य रजनी सा यथायथं । विबुद्धश्च दशग्रीवः प्रभाताहततूर्यतः ॥ १३७ ॥
ततो वार्तामिव ज्ञातुं दशवक्त्रस्य भास्करः । बिभ्राणं परमं रागं कंपमानः समागतः ॥ १३८ ॥
शतबाहुरथ श्रुत्वा सुतं बद्धं निरंबरः । जंघाचारणलब्धीशो महाबाहुर्महातपाः ॥ १३९ ॥
रजनीपतिवत्कांतो दीप्तास्तिग्ममरीचिवत् । मेरुवत्स्थैर्यसंपन्नो धीरो रत्नालयो यथा ॥ १४० ॥

कृतप्रत्यंगकर्माणं सभामध्ये सुखस्थितं । प्रशांतमानसः प्राप रावणं लोकवत्सलः ॥ १४१ ॥
दूरादेव ततो दृष्ट्वा मुनिं कैलाशकंपनः । अभ्युत्तस्थौ प्रणामं च चक्रे भूमिस्थमस्तकः ॥ १४२ ॥
वरासनोपविष्टे च यतौ भूमावुपाविशत् । करद्वयं समासाद्य विनयानतविग्रहः ॥ १४३ ॥
जगाद चेति भगवन् ! कृतकृत्यस्य विद्यते । न तवागमने हेतुर्विहाय मम पावनं ॥ १४४ ॥
ततः प्रशंसनं कृत्वा कुलवीर्यविभूतिभिः । क्षरन्निवामृतं वाचा जगादेति दिगंबरः ॥ १४५ ॥
आयुष्मन्निदमस्त्येव शुभसंकल्पतस्तव । नांतरीयकमेतत्तु वदामि यदिदं शृणु ॥ १४६ ॥
पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता । यतः सहस्रकिरणं ततो मुंच ममांगजं ॥ १४७ ॥
संप्रधार्य ततः सार्धमिंगितैरेव मंत्रिभिः । उवाच कैकसीपुत्रः प्रणतो मुनिपुंगवं ॥ १४८ ॥
विज्ञापयामि नाथाहं प्रस्थितः खेचराधिपं । वशीकर्तुं श्रियामत्तं कृतास्मत्पूर्वजागसं ॥ १४९ ॥
तत्र जाते हि रेवायां रम्यायां जिनपूजनं । मया तटस्थचक्रेण कृतं विमलसैकते ॥ १५० ॥
महोपकरणैश्चासौ नीता पूजा सुरंहसा । सहसा पयसा यंत्ररचितेनास्य भोगिनः ॥ १५१ ॥
ततो मया जिनेंद्रार्चाध्वंसोद्भूतमहारुषा । कृतं कर्मेदमर्थेन न विना द्वेष्मि मानवान् ॥ १५२ ॥
नचानेनोदितं मह्यं संप्राप्ताय प्रमादिना । यथा ज्ञातं मया नेदं क्षम्यतामिति मानिना ॥१५३॥

भूचरान्मानुषाञ्जेतुं यो न शक्तः स खेचरान् । कथं जेष्यामि विद्याभिः कृतनानाविचेष्टितान् ॥
वशीकरोम्यतस्तावद्भूचरान्मानशालिनः । ततो विद्याधराधीशं सोपानक्रमयोगतः ॥ १५५ ॥
ततो वशीकृतस्यास्य मुक्तिर्न्याय्यैव किं पुनः । भवत्स्वाङ्घ्रिं प्रयच्छत्सु पुण्यवद्दृश्यमूर्तिषु ॥१५६॥
अथेंद्रजिदुवाचेदं साधु देवेन भाषितं । को वा नयविदं नाथं मुक्त्वा जानाति भाषितुं ॥१५७॥
ततो दशमुखादिष्टो मारीचोऽधिकृतैर्वरैः । आनाययत्सहस्रांशुं नयस्तायकपाणिभिः ॥ १५८ ॥
तातस्य चरणौ नत्वा भूमौ चासावुपाविशत् । सम्मान्य च दशास्येन किरीटेनेति भाषितः १५९
अद्यप्रभृति मे भ्राता तुरीयस्त्वं महाबलः । जेष्यामि भवता सार्कं कृताखंडलविभ्रमं ॥ १६० ॥
स्वयंप्रभां च ते दास्ये मंदोदर्याः कनीयसीं । कृतं यद्भवता तच्च प्रमाणं मे वराकृते ॥ १६१ ॥
सहस्ररश्मिरूचे च धिङ् मे राज्यमशाश्वतं । आपातमात्ररम्यांश्च विषयान् दुःखभूयसः ॥१६२॥
स्वर्गे धिग् द्युतियोगेन धिग्देहं दुःखभाजनं । धिङ् मां वंचितमत्यंतं चिरकालं कुकर्मभिः १६३
तत्करोमि पुनर्येन न पतामिभवार्णवे । गतिष्वंत्यंतदुःखासु निर्विण्णः पर्यटाम्यहं ॥ १६४ ॥
उवाचेति दशास्यश्च ननु प्रवयसां नृणां । प्रव्रज्यां शोभते भद्र! त्वं च प्रत्यग्रयौवनः ॥१६५॥
सहस्रांशुरुवाचेति नैव मृत्युर्विवेकवान् । शरदभ्रघन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ॥ १६६ ॥

यदि नाम भवेत्सारः कश्चिद्भोगेषु रावण । ततो नैवनमे त्यक्तास्तेस्युरुत्तमबुद्धिना ॥ १६७ ॥
इत्युक्त्वा तनये न्यस्य राज्यं परमनिश्चयः । क्षमितो दशवक्त्रेण प्राव्रजत्पितुरंतिके ॥ १६८ ॥
तेन चाभिहितः पूर्वमयोध्यायाः पतिः सुहृत् । अनरण्योऽनगारत्वं प्रपत्स्येहं यदा तदा॥१६९॥
तुभ्यं वेदयितास्मीति तथायं तेन भाषितः । ज्ञापनार्थमतोऽनेन तस्मै संप्रेषिता नराः ॥१७० ॥
ततोऽसौ कथिते पुंभिः श्रुत्वा वाष्पाकुलेक्षणः । विललाप चिरं स्मृत्वा गुणांस्तस्य महात्मनः ॥
विषादे च गते मांद्यमित्युवाच महाबुधः । बंधुस्तस्य समायातो रिपुवेषेण रावणः ॥ १७२ ॥
ऐश्वर्यपंजरांतस्थो विषयैर्मोहितश्चिरं । येनात्यंतानुकूलेन नरपक्षी विमोचितः ॥ १७३ ॥
माहिष्मतीपतिर्धन्यः सांप्रतं यो भवार्णवं । तितीर्षति यमध्वंसबोधपोत समाश्रितः ॥ १७४ ॥
कृतार्थः सांप्रतं जातो यदंतेऽत्यंतदुःखदं । पापं राज्याख्यमुज्झित्वा व्रतं जैनेश्वरं श्रितः ॥१७५॥
अभिनंद्येति संविग्नः क्षिप्त्वा लक्ष्मीं शरीरजे । सुतेन ज्यायसा साकमनरण्योऽभवन्मुनिः॥१७६॥

येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ॥
निर्मितेन समवाप्यते मतिः श्रेयसी न तु विकृष्टकर्मणा ॥ १७७ ॥
यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य परमः स बांधवः ॥
भोगवस्तुनि तु यस्य मानसं यः करोति परमारिरस्य सः ॥ १७८ ॥

भावयन्निति सहस्रदीधितिं योऽनरण्यनृपतिं शृणोति च ॥
संयतं श्रवणशीलसंपदा स व्रजत्यमलतां यथा रविः ॥ १७९ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशग्रीवप्रस्थाने सहस्ररश्म्यनरण्यश्रामण्याभिधानं नाम दशमं पर्व ।

एकादशं पर्व ।

अथ कैलाशसंक्षोभो यान्यान्मानवतो नृपान् । शृणोति धरणीयातांतांस्तान्सर्वाननीनमत् ॥१॥
वशीकृतैश्च सन्मानं प्रापितैर्वेष्टितो नृपैः । पश्यन् स्फीतपुरामुर्वीं सुभूमश्चक्रवद्यथा ॥ २ ॥
नानादेशसमुत्पन्नैर्नानाकारैर्नरैर्वृतः । नानाभूषाधरैर्नानाभाषैर्विविधवाहनैः ॥ ३ ॥
कारयन् शीर्णचैत्यानां संस्कारान् परमां तथा । पूजां देवाधिदेवानां जिनेंद्राणां सुभावितां ॥४॥
ध्वंसयन् जिनविद्वेषकारिणः खलमानवान् । दुर्विधान् करुणायुक्तो धनेन परिपूरयन् ॥ ५ ॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धान्वत्सलः पूजयञ्जनान् । प्रणमन्—श्रमणान् भक्त्या रूपमात्रश्रितानपि ॥ ६ ॥

उदीचिं प्रस्थितः काष्ठां प्रतापं दुस्सहं किरन् । यथोत्तरायणे भानुः पुण्यकर्मानुभावतः ॥ ७ ॥
बलवांश्च श्रुतस्तेन राजा राजपुराधिपः । अभिमानं परं बिभ्रत्परप्रणतिवर्जितः ॥ ८ ॥
अन्धनः प्रभृतिदुश्चेता लौकिकोन्मार्गमोहितः । प्रविष्टः प्राणिविध्वंसं यज्ञदीक्षाख्यपातकं ॥ ९ ॥
अथ यज्ञध्वनिं श्रुत्वा श्रेणिको गणपालिनं । इत्यपृच्छद्विभो ! तावदास्तां रावणकीर्तनं ॥ १० ॥
उत्पत्तिं भगवन्नस्य यज्ञस्येच्छामि वेदितुं । प्रवृत्तो दारुणो यस्मिन् जना जंतुविनाशने ॥ ११ ॥
उवाच च गणाधीशः शृणु श्रेणिक ! शोभनं । भवता पृष्टमेतेन बहवो मोहिता जनाः ॥ १२ ॥
विनीतायां महानासीदिक्ष्वाकुकुलभूषणः । ययातिर्नाम राजास्य सुरकांतेति भामिनी ॥ १३ ॥
वसुर्नामाभवत्तस्य गुरोर्योग्यः सचार्पितः । नाम्ना क्षीरकदंबस्य यस्य स्वस्तिमती प्रिया ॥ १४ ॥
अन्यद्दारण्यकं शास्त्रं सर्वशास्त्रविशारदं । अध्यापयत्यसौ शिष्यान्नारदादीन्वनांतरे ॥ १५ ॥
अथ चारणसाधूनां प्रथितानां विहायसा । एकेन यतिना प्रोक्तमेवं कारुण्यकीरणा ॥ १६ ॥
चतुर्णां प्राणिनामेषामेको नरकभागिति । श्रुत्वा क्षीरकदंबस्तद्वचो भीतोऽभवद्भृशं ॥ १७ ॥
ततोऽतेवासिनस्तेन प्रेषिताः स्वस्वमालयं । ययुस्तुष्टा यथा वत्सा मुक्ता दामकबंधनात् ॥ १८ ॥
स्वस्तिमत्यथ पप्रच्छ पुत्रं पर्वतसंज्ञकं । क्व तवासौ पिता पुत्र ? येनैकाकी त्वमागतः ॥ १९ ॥

पश्चादेमीति तेनोक्तमिति तस्थै जगाद सः । तदागमं च कांक्षत्यास्तस्या यातमहः क्षयं ॥२०॥
नायातः स दिनांतेऽपि यदा तिमिरगह्वरे । तदा शोकभराक्रांता पतितासौ महीतले ॥ २१ ॥
चक्रवाकीव दुःखार्ता विलापं चाकरोदिति । हा हता मंदभाग्यास्मि प्राणान्मे स्वामिनोज्झिता ॥
पापेन केनचिन्मृत्युं क्रिमसौ प्रापितो भवेत् । किंवा देशांतरं यातः कांतः केनापि हेतुना ॥२३॥
सर्वशास्त्रार्थकुशलः किंवा वैराग्यमाश्रितः । सर्वसंगान्परित्यज्य प्रव्रज्यां समशिश्रयत् ॥ २४ ॥
विलापमिति कुर्वत्यास्तस्या सा रजनी गता । अन्वेष्टुं पितरं चादावहः पर्वतको गतः ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा सरित्तटोद्याने दिनैः कैश्चिद्गुरुं मुनिं । गुरोः संघसमेतस्य समीपे विनयस्थितं ॥ २६ ॥
आरादेव निवृत्त्याख्यन्मातरं च पिता मम । विप्रलब्धोऽभवन्नग्नः श्रमणैस्तत्परापणैः ॥ २७ ॥
ततोनिश्चयविज्ञाततदसंगमदुःखिता । कराभ्यां भृशमाघ्राना स्तनावरुरुदत्स्वनं ॥ २८ ॥
नारदस्तमथ श्रुत्वा वृत्तांतं धर्मवत्सलः । द्रष्टुमागादुपाध्यायीं क्षणं शोकसमाकुलः ॥ २९ ॥
तं दृष्ट्वा सुतरां चक्रे स्तनताड़नरोदनं । निसर्गोयं यदाप्तस्य पुरः शोको विवर्धते ॥ ३० ॥
जगाद नारदो मातः ! किं शोकं कुरुषे वृथा । कृते शोकेऽधुना, नाऽसावागच्छति विशुद्धधीः ॥
कर्मणानुगृहीतोसौ चारुणा चारुचेष्टितः जीवितं चंचलं ज्ञात्वा यस्तपः कर्तुमुद्यतः ॥ ३२ ॥

तनुतां बोध्यमानायाः शोकस्तस्या गतः क्रमात् । द्विषतीव स्तुवाना च भर्तारं सा स्थिता गृहे ३३
एतस्मादेव चोदंताद्ययातिस्तत्त्वकोविदः । राज्यभारं वसोर्न्यस्य बभूव श्रमणो महान् ॥ ३४ ॥
सुप्रतिष्ठोऽभवद्राजा पृथिव्यां प्रथितो वसुः । नभःस्फटिकविस्तीर्णशिलास्थहरिविष्टरः ॥ ३५ ॥
समं पर्वतकेनाथ नारदस्यान्यदाऽभवत् । कथेयं शास्त्रतत्त्वार्थनिरूपणपरायणा ॥ ३६ ॥
जगाद नारदो दृद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः । द्विविधो विहितो धर्मः सूक्ष्मो दारविशेषतः ॥३७॥
हिंसया अनृतात्स्तेया दारसंगात्परिग्रहात् । विरतेर्व्रतमुद्दिष्टं भावनाभिः समन्वितं ॥ ३८ ॥
विरतिं सर्वतः कर्तुं ये शक्तास्ते महाव्रतं । सेवंतेऽणुव्रतं शेषा जंतवो गृहमाश्रिताः ॥ ३९ ॥
संविभागो तिथीनां च तेषामुक्तो जिनाधिपैः । यज्ञाख्यावस्थितास्तस्मिन् भेदैः पात्रादिभिर्युतैः
अजैर्यष्टव्यमित्यस्य वाक्यस्यार्थो दयापरैः । अयं मुनिभिराख्यातो ग्रंथार्थ ग्रंथिभेदिभिः ॥४१॥
अजास्ते जायते येषां नांकुर सति कारणे । सस्यानां यजनं कार्यमैतैरिति विनिश्चयः ॥ ४२ ॥
अजा पशव उद्दिष्टा इति पर्वतकोऽवदत् । तेषामालंभनं कार्यं सच यागो विधीयते ॥ ४३ ॥
नारदः कुपितोऽवोचत्ततः पर्वतकं खलं । मैवं वोचः पतस्येवं नरके घोरवेदने ॥ ४४ ॥
प्रतिज्ञां चाकरोदेवमावयोर्योवसीदति । वसुं प्राश्निकमासाद्य तस्य जिह्वा निकृंत्यते ॥ ४५ ॥

अतिक्रांता वसुं दृष्टं वेलाद्य श्वो विनिश्चयः । भवितेत्यभिधायागात्पर्वतो मातुरंतिकं ॥ ४६ ॥
तस्यै चाकथयन्मूलं कलहस्याभिमानवान् । ततो जगाद सा पुत्र ! त्वया निगदितं मृषा ॥४७॥
कुर्वतोऽनेकशो व्याख्या मया तव पितुः श्रुतं । अजाः किलाभिधीयंते व्रीहयो ये प्ररोहकाः ४८
देशांतरं प्रयातेन मांसभक्षणकारिणा । मानाच्च वितथं प्रोक्तं तवेदं दुःखकारणं ॥ ४९ ॥
रसनाच्छेदनं पुत्र नियतं ते भविष्यति । अपुण्या किं करिष्यामि पतिपुत्रविवर्जिता ॥ ५० ॥
सस्मार पुरा प्रोक्तां वसुना गुरुदक्षिणां । न्यायभूतां गता चाशु वसोरंतिकमाकुला ॥ ५१ ॥
उपाध्यायीति चोदारमादरं विदधे वसुः । प्रणम्य च सुखासीनां पप्रच्छ रचितांजलिः ॥ ५२ ॥
उपाध्यायीति यच्छाज्ञामायाता येन हेतुना । सर्वं संपादयाम्याशु दुःखितेव च दृश्यते ॥ ५३ ॥
उवाच स्वस्तिमत्येवं नित्यं पुत्रास्मि दुःखिता । प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ५४
संबंधो द्विविधो यौनः शास्त्रीयश्च तयोः परं । शास्त्रीयमेव मन्येहमयं मलविवर्जितः ॥ ५५ ॥
अतो नाथस्य मे शिष्यः पुत्र एव भवानपि । पश्यंतो भवतो लक्ष्मीं करोमि धृतिमात्मन ॥५६॥
दक्षिणां च गृहीष्यामि पुरा प्रोक्तं च या सुत ! मया चोक्तं गृहीष्यामि कालेन्यऽस्मिन्निति स्मर ॥
सत्यं वदंति राजानः पृथिवीपालनोद्यताः । ऋषयस्नेहि भाष्यंते ये स्थिता जंतुपालने ॥ ५८ ॥

सत्येव श्रावितः सत्वं मह्यं तां च्छ दक्षिणां । इत्युक्तश्चावदद्राजा विनयानतमस्तकः ॥ ५९ ॥
अंब ! ते वचनादद्य करोम्यथ जुगुप्सितं । वद यत्ते स्थितं चित्ते मा कृथा मतिमन्यथा ॥६०॥
तमुदंतं ततोऽशेषं निवेद्यास्मै जगाद सा । पुत्रस्यानृतमप्येतदनुमान्यं त्वया मम ॥ ६१ ॥
जानतापि ततो राज्ञा नीतेन स्थिरतां पुनः । मूढसत्यगृहीतेन प्रतिपन्नं तयोदितं ॥ ६२ ॥
पुनरुक्तं प्रियं भूरि भाषित्वाशीः पुरस्सरं । आनर्छ निलयं तुष्टा भृशं स्वस्तिमती ततः ॥ ६३ ॥
अथान्यस्य दिनस्यादौ गतौ नारदपर्वतौ । समीपं क्षितिपालस्य कुतूहलजनावृतौ ॥ ६४ ॥
चतुर्विधो जनपदो नानाप्रकृतयस्तथा । सामंता मंत्रिणश्चाशु विविशुर्जल्पमंडलं ॥ ६५ ॥
ततस्तयोः सतां मध्ये विवादः सुमहानभूत् । व्रीहयोऽजा विबीजा ये पशवश्चेति वस्तुनि ॥६६॥
ततस्ताभ्यां वसुः पृष्टो यदुपाध्याय उक्तवान् । तत्त्वं वद महाराज ! सत्येन श्रावितो भवान् ६७
यदेतत्पर्वतेनोक्तं तदुपाध्याय उक्तवान् । इत्युक्ते स्फटिकं यातं वसोः क्षिप्रं महीतले ॥ ६८ ॥
नाज्ञासीत्किल तल्लोकः स्फटिकं गगने ततः । स्थितं सिंहासने तस्य विवेदेति ततोऽवदत् ॥६९॥
वसो ! वितथसामर्थ्यात्तव सिंहासनं गतं । भूमिमद्यापि ते युक्तं परमार्थनिवेदनं ॥ ७० ॥
ततो मोहमदाविष्ट स्तदैव पुनरभ्यधात् । प्रविष्टो धरणीं सद्यः सिंहासनसमन्वितः ॥ ७१ ॥

महापापभरक्रांतो हिंसाधर्मप्रवर्तनात् । गतस्तमस्तमोऽभिख्यां पृथिवीं घोरवेदनां ॥ ७२ ॥
ततो धिग् धिग् ध्वनिस्तावज्जातः कलकलो महान् । जनानां पापभीतानामुद्दिश्य वसुपर्वतौ ॥
संप्राप्तो नारदः पूजामहिंसाचारदेशनात् । एवमेव हि सर्वेषां यतो धर्मस्ततोजयः ॥ ७४ ॥
पापः पर्वतको लोके धिग्धिग्दंडसमाहतः । दुःखितः शोषयन् देहमकरोत्कुत्सितं तपः ॥ ७५ ॥
कालं कृत्वाऽभवत्क्रूरो राक्षसः पुरुविक्रमः । अपमानं च संस्मार धिग्दंडाधिक्यमात्मनः ॥७६॥
अचिंतयच्च लोकेन ममानेन पराभवः । कृतस्ततः करिष्यामि प्रतिकर्मास्य दुःखदं ॥ ७७ ॥
विधानं डंभचरितं कृत्वा कर्म करोमि तत् । यत्राशक्तो जनो याति तिर्यङ्नरकदुर्गतीः ॥ ७८ ॥
ततो मानुषवेषस्थो वामस्कंधस्थसूत्रकः । कमंडल्वक्षमालादिनानोपकरणावृतः ॥ ७९ ॥
हिंसाकर्मपरं शास्त्रं घोरं क्रूरजनप्रियं । अधीयानः सुदुष्टात्मा नितांतामंगलस्वरं ॥ ८० ॥
तापसान् दुर्विधान् बुद्ध्या सूत्रकंठादिकांस्तथा । व्यामोहयितुमुद्यक्तो हिंसाधर्मेण निर्दयः॥८१॥
तस्य पक्षे ततः पेतुः प्राणिनो मूढमानसाः । भविष्यद्दुःखसंभाराः शलभा इव पावके ॥ ८२ ॥
तेभ्यो जगाद यज्ञस्य विधानार्थमहं स्वयं । ब्रह्मा लोकमिमं प्राप्तो येन सृष्टं चराचरं ॥ ८३ ॥
यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वयमेव मयादरात् । यज्ञो हि भूत्यै स्वर्गस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥८४॥

सौत्रामणिविधानेन सुरापानं न दुष्यति । अगम्यागमनं कार्यं यज्ञे गोसवनामनि ॥ ८५ ॥
मातृमेधे वधो मातुः पितृमेधे वधः पितुः । अंतर्वेदि विधातव्यं दोषस्तत्र न विद्यते ॥ ८६ ॥
आशुशुक्षणिमादाय पृष्टेकूर्मस्य तर्पयेत् । हविष्यजुह्वकाख्याय स्वाहेत्युक्त्वा प्रयत्नतः ॥ ८७ ॥
यदा न प्राप्नुयात्कूर्मं तदा शुद्धद्विजन्मनः । खलतेः पिंगलाभस्य विकलस्य शुचौ जले ॥८८॥
आस्यदघ्नेवतीर्णस्य मस्तके कूर्मसन्निभे । प्रज्वाल्य ज्वलनं दीप्तमाहुतिं निक्षिपेद्विजः ॥ ८९ ॥
सर्वं पुरुष एवेदं यद्भूतं यद्भविष्यति । ईशानो योमृतस्तस्य यदन्नेनातिरोहति ॥ ९० ॥
एवमेकत्र पुरुषे किं केनात्र विपाद्यते । कुरुतातो यथाभीष्टं यज्ञे प्राणिनिपातनं ॥ ९१ ॥
मांसस्य भक्षणं तेषां कर्तव्यं यज्ञकर्मणि । याजकेन पूतं हि देवोद्देशेन तत्कृतं ॥ ९२ ॥
एवंप्रकारमत्यंतपापकर्म प्रदर्शयन् । प्राणिनः प्रवणांश्चक्रे राक्षसो धरणीतले ॥ ९३ ॥
श्रद्दधानस्ततो भूत्वा जंतवः सुखवांछया । हिंसायज्ञस्थलीं भूमिं दीक्षिताः प्रविशंति ये ॥ ९४ ॥
काष्ठमारं यथा सर्वं प्राध्वंकृत्य स तान् दृढं । भयोद्भूतमहाकंपान् चलत्तारकलोचनान् ॥ ९५ ॥
पृष्टस्कंधशिरोजंघान् पादाग्रस्थान् विधाय खं । उत्पपात पतद्रक्तधारानिकरदुःखितान् ॥ ९६ ॥
ततस्ते विश्वरोदारं क्रोशंतोऽभिदधुः स्वरं । किमर्थं देव रुष्टोऽसि येनास्मान् हंतुमुद्यतः ॥ ९७ ॥

प्रसीद मुंच निर्दोषानस्मान्देव ! महाबल । भवदाज्ञां वयं सर्वा कुर्मः प्रणतमूर्तयः ॥ ९८ ॥
ततो बभाण तान् रक्षः यथैव पशवो हताः । भवद्भिरियति स्वर्गं तथा यूयं मया हताः ॥९९॥
इत्युक्त्वा विजने कांश्चिद्द्वीपेऽन्यस्मिन्निराक्षिपेत् । महार्णवे परानन्यान् क्रूरप्राणिगणांतरे॥१००॥
एकानास्फालयन् क्षोणीधरमूर्ध्नि शिलातले । कुर्वन्बहुविधं शब्दं वासांसि रजको यथा ॥१०१॥
दुःखेन मरणावस्थां प्राप्तास्ते त्रस्तचेतसः । पितरौ तनयान् भ्रातॄन् स्मरंतो मृत्युमीयति॥१०२॥
तद्व्यापादितशेषा ये मूढाः कुग्रंथकंथया । रक्षसा दर्शितोऽहिंसायज्ञस्तैर्वृद्धिमाहृतः ॥ १०३ ॥
हिंसायज्ञमिमं घोरमाचरंति न ये जनाः । दुर्गतिं ते न गच्छंति महादुःखविधायिनीं ॥ १०४ ॥
उदाहृतो मयापास्तहिंसायज्ञसमुद्भवः । श्रेणिकैनं पुराज्ञासीत् प्राज्ञो रत्नश्रवःसुतः ॥ १०५ ॥
अथ राजपुरं प्राप्तो रावणः स्वर्गसन्निभं । वहिर्यस्य मरुत्ताख्यो यज्ञवाटे स्थितो नृपः ॥ १०६ ॥
हिंसाधर्मप्रवीणश्च संवर्तो नाम विश्रुतः । ऋत्विक् तस्मै ददौ कृत्स्नमुपदेशं यथाविधि ॥१०७॥
सूत्रकंठा पृथिव्यां ये सर्वे तेत्र निमंत्रिताः । पुत्रदारादिभिः सार्धमागता लोकवाहिताः ॥१०८॥
सा तैर्यज्ञमही सर्वा वेदमंगलनिस्वनैः लाभाकांक्षाप्रसन्नास्यै वृता क्षुभ्यत्सुभूरिभिः ॥ १०९ ॥
उपनीताश्च तत्रैव पशवो दीनमानसाः । वराकाः शतशो बद्धाः श्वसत्कक्षिपुटा भयात् ॥११०॥

नारदोऽथांतरे यस्मिन्निच्छया नभसा व्रजन् । अपश्यद्यानपृष्टस्थो जनं तं तत्र संगतं ॥ १११ ॥
अचिंतयच्च दृष्ट्वैवं विस्मयाकुलमानसः । कुर्वन्विभ्रममंगस्य कुतूहलसमुद्भवं ॥ ११२ ॥
एतत्सुनगरं कस्य कस्य चेयमनीकिनी । इयं च सागराकारा प्रजाः कस्मादिह स्थिताः॥११३॥
नगराणि जनौघाश्च वरूथिन्यश्च भूरिशः । मयेक्षांचक्रिरे जातु नेदृग्दृष्टो जनोत्करः ॥ ११४ ॥
कुतूहलादिति ध्यात्वा वर्तीर्णोऽसौ विहायसः । कर्मैतदेव तस्यासीद्यत्कुतूहलदर्शनं ॥ ११५ ॥
पप्रच्छ मागधेशोऽथ भगवन् ! कः स नारदः । उत्पत्तिर्वा कुतस्तस्य गुणा वा तस्य कीदृशाः ॥
जगाद च गणाधीशः श्रेणिक ! ब्राह्मणोऽभवत् । नाम्ना ब्रह्मरुचिस्तस्य कूर्मी नाम कुटुंबिनी ॥
तापसेन सता तेन श्रितेन वनवासितां । एतस्यामाहितो गर्भः फलमूलादिवृत्तिना ॥ ११८ ॥
वीतसंगास्तमुद्देशमथाजग्मुर्महर्षयः । यांतो मार्गवशात्केऽपि संयमासक्तमानसाः ॥ ११९ ॥
विश्रश्रमुः क्षणं तस्मिन्नाश्रमे श्रमनोदिनि । अपश्यं दंपती तौच स्वाकारौ कर्मगर्हितौ ॥१२०॥
आपाडुरशरीरां च दृष्ट्वा योषां पुथुस्तनीं । कृशां गर्भभरम्लानां श्वसंतीं पन्नगीमिव ॥ १२१ ॥
संसारप्रकृतिज्ञानां श्रमणानां महात्मनां । कृपया संबभूवैतौ धर्मं बोधयितुं मतिः ॥ १२२ ॥
तेषां मध्ये ततो ज्येष्ठो जगादमधुरं यतिः । कष्टं पश्यत नर्त्यंते कर्मभिर्जंतवः कथं ॥ १२३ ॥

त्यक्त्वा धर्मधिया बंधून् संसारोत्तरणाशया । स्वयं खलीकृतोऽरण्ये किमात्मा तापस त्वया१२४
भद्र ? प्रव्रजितो जातः कस्ते भेदो गृहस्थतः । चारित्रं प्रतियातस्य केवलं वेषमन्यथा ॥१२५॥
यथाहि छर्दितं नान्नं भुज्यते मानुषैः पुनः । तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वंति मतिं बुधाः ॥१२६॥
त्यक्त्वा लिंगी पुनः पापो योषितं यो निषेवते । सुभीमायामरण्यान्यां वृकतां स समश्नुते १२७
सर्वारंभस्थितः कुर्वन् न ब्रह्मभदनिर्भरः । दीक्षितोऽस्मीति यो वेत्ति स्वं नितांतं स मोहवान्१२८
ईर्ष्यामन्मथदग्धस्य दुष्टदृष्टेर्दुरात्मनः । आरंभे वर्तमानस्य प्रव्रज्या वद कीदृशी ? ॥ १२९ ॥
कुदृष्ट्या गर्वितो लिंगी विषयास्रवमानसः । ब्रुवन्नहं तपस्वीति मिथ्यावादी कथं व्रती ॥१३०॥
सुखासनविहारः सन् सदा कशिपुसक्तधीः । सिद्धंमन्यो विमूढात्मा जनोयं स्वस्य वंचकः १३१
दह्यमाने यथागारे कथंचिदपि निःसृतः । तत्रैव पुनरात्मानं प्राक्षिपेन् मूढमानसः ॥ १३२ ॥
यथा च विवरं प्राप्य निष्क्रांतः पंजरात्खगः । निवृत्य प्रविशेद्रूपस्तत्रैव ज्ञानचोदितः ॥१३३॥
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातींद्रियवश्यतां । निंदितः स भवेल्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ॥१३४॥
ध्येयमेकाग्रचित्तेन सर्वग्रंथविवर्जिना । मुनिना ध्यायते तत्त्वं सारंभैर्न भवद्विधैः ॥ १३५ ॥
प्राणिनो ग्रंथसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः । रागात्संजायते कामो द्वेषाज्जंतुविनाशनं ॥ १३६ ॥

कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्य ते मनः । कृत्यकृत्येषु मूढस्य मतिर्नस्याद्विवेकिनी ॥ १३७ ॥
यत्किंचित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभं । संसारसागरे घोरे भ्रमणं न निवर्तते ॥ १३८ ॥
एतान्संसर्गजान् दोषान्विदित्वाशुविपश्चितः । वैराग्यमधिगच्छंति नियम्यात्मानमात्मना ॥ १३९ ॥
एवं संबोधितो वाक्यैः परमार्थोपदेशनैः । उपेतः श्रामणीं दीक्षां मोहाद्ब्रह्मरुचिश्च्युतः ॥ १४० ॥
निरपेक्षमतिः कूर्म्यां महावैराग्यसम्पदः । विजहार सुखं सार्धं गुरुणा गुरुवत्सलः ॥ १४१ ॥
सापि शुद्धमतिः कूर्मी कर्मणः कृष्णतश्च्युता । ज्ञात्वा रागवशं जंतोः संसारपरिवर्तनं ॥ १४२ ॥
कुमार्गसंगमुत्सृज्य जिनभक्तिपरायणा । सिंहीव शोभतेऽरण्ये भर्त्रा विरहिता सती ॥ १४३ ॥
मासे च दशमे धीरा प्रसूता दारकं शुभम् । अचिंतयच्च वीक्ष्यैनं ज्ञातकर्मविचेष्टिता ॥ १४४ ॥
संपर्कोयमनर्थोसौ कथितो यन्महर्षिभिः । तस्मान्मुक्त्वाधुना संगं करोमि हितमात्मने ॥ १४५ ॥
अनेनापि भवेद्यास्मिन् यः कर्मविधिरर्जितः । फलं तस्य शिशुर्भोक्ता मनोज्ञमभवेतरं ॥ १४६ ॥
अरण्यान्यां समुद्रे वा स्थितं वारातिपंजरे । स्वयंकृतानि कर्माणि रक्षंति न परो जनः ॥ १४७ ॥
यः स्वयं प्राप्तकालः स्याज्जन्मन्यंकगतोऽपि सः । क्षिपते मृत्युना जीवः स्वकर्मवशतां गतः १४८
एवं विदिततत्त्वा सा बुद्धपातिनिरपेक्षया । बालकं विपिने त्यक्त्वा तापसी वीतमत्सरा ॥ १४९ ॥

आनर्छालोकनगरे कांत्यार्यामिंदुमालिनीं । शरणं भूरिसंवेगा भूतार्या चारुचेष्टिता ॥ १५० ॥
सत्कर्मा बालकश्चासौ रोदनादिविवर्जितः । व्रजद्भिर्नभसादृष्टः सुरैर्नृभकसंज्ञकैः ॥ १५१ ॥
गृहीत्वा च कृपायुक्तैरादरात्परिपालितः । अध्यापितश्च शास्त्राणि सरहस्याण्यशेषतः ॥ १५२ ॥
लेभे च लब्धवर्णः सन् विद्यामाकाशगामिनीं । यौवनं च परं प्राप्तः स्थितिं चाणुव्रतीं दृढां १५३
दृष्ट्वा च मातरं चिह्नैः प्रत्यभिज्ञानकारिणीं । तत्प्रीत्योपेत्य निर्ग्रंथं सम्यग्दर्शनतत्परः ॥ १५४ ॥
प्राप्य क्षुल्लकचारित्रं जटामुकुटमुद्वहन् । अवद्वारसमो जातो न गृहस्थो न संयतः ॥ १५५ ॥
यश्च कांदर्पकौत्कुच्यमौखर्यात्यंतवत्सलः । कलहप्रेक्षणाकांक्षी गीतचंचुः प्रभाववान् ॥ १५६ ॥
पूजितो राजलोकस्य परैरव्याहतायतिः । चचार रोदसीं नित्यं कुतूहलगतेक्षणः ॥ १५७ ॥
देवैः संवर्धितत्वाच्च देवसन्निभविभ्रमः । देवर्षिः प्रथितः सोऽभूद्विद्याविद्योतिताद्भुतः ॥ १५८ ॥
कथंचित्संचरंश्चासाविच्छया तां मखावनीं । समीपगगनोद्देशस्थितोऽपश्यज्जनाकुलां ॥ १५९ ॥
दृष्ट्वा च तान् पशून् बद्धान् समाश्लिष्टोऽनुकंपया । अवतीर्णो मखक्षोणीं जल्पाकपथपंडितः १६०
उवाचेति मरुत्तं च किं प्रारब्धमिदं नृप ! । हिंसनं प्राणिवर्गस्य द्वारं दुर्गतिगामिनां ॥ १६१ ॥
उवाचाशावशं वेत्ति सर्वं शास्त्रार्थकोविदः । ऋत्विक् मम यदेतेन कर्मणा प्राप्यते फलं ॥१६२॥

अतिजीनं ततोऽवादीदहो माणवक ? त्वया । किमिदं प्रस्तुतं दृष्टं सर्वज्ञैर्दुःखकारणं ॥ १६३ ॥
संधर्ता कुपितोऽवोचदहोऽत्यंतविमूढता । यदत्यंतमसंबद्धं भाषसे हेतुवर्जितं ॥ १६४ ॥
भवतो यो मतः कोऽपि सर्वज्ञो रागवर्जितः । यत्कृत्वाद्युपपत्तिभ्यो नासावेवं यथेतरः ॥१६५॥
अशुद्धैः कर्तृभिः प्रोक्तं वचनं स्यान्मलीमसं । अनीदृशश्च नो कश्चिदुपपत्तेरभावतः ॥ १६६ ॥
तस्मादकर्तृको वेदः प्रमाणं स्यादतींद्रियैः । वर्णत्रयस्य यज्ञे च कर्म तेन प्रकीर्तितं ॥ १६७ ॥
अपूर्वाख्यो ध्रुवो धर्मो यागेन प्रकटीकृतः । प्रयच्छति फलं स्वर्गे मनोज्ञविषयोत्थितं ॥ १६८ ॥
अंतर्वेदिपशूनां च प्रत्यवायाय नो वधः । शास्त्रेण चोदितो यस्माद्यथा त्यागादिसेवनं ॥ १६९ ॥
पशूनां च वितानार्थं कृता सृष्टिः स्वयंभुवा । तस्मात्तदर्थसर्गाणां को दोषो विनिपातने ॥१७०॥
इत्युक्ते नारदोऽवोचदवद्यं निखिलं त्वया । भाषितं शृणु दुर्ग्रंथभावनादूषितात्मना ॥ १७१ ॥
यदि सर्वप्रकारोऽपि सर्वज्ञो नास्ति स त्रिधा । शब्दार्थबुद्धिभेदेन स्ववाचा स्थानतो हताः ॥१७२॥
अथ शब्दश्च बुद्धिश्च विद्यतेऽर्थस्तु नेष्यते । नैवमेतत्त्रयं दृष्टं यस्मात्सर्वगवादिषु ॥ १७३ ॥
असत्यर्थे नितांतं च कुरुते क्व पदं मतिः । शब्दो वा स तथाभूतो व्रजेद्धीवाग्व्यतिक्रमं ॥१७४॥
बुद्धेः सर्वज्ञ इत्येष व्यवहारो गुणागतः । मुख्यापेक्षो यथा चैत्रे सिंहशब्दप्रवर्तनं ॥ १७५ ॥

एतेन चानुमानेन प्रतिज्ञेयं विरोधिनी । अभावश्च ममात्यंतं प्रासिद्धिं न क्वचिद्गतः ॥ १७६ ॥
सर्वज्ञः सर्वदृक् क्वासौ यस्यैष महिमा भुवि । दिव्यब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितः ॥१७७॥
आगमेन तवानेन विरोधं याति संगरः । अनेकांते च साध्येऽर्थे भवेत्सिद्धप्रसाधकं ॥ १७८ ॥
वक्तृत्वं सर्वथा युक्तं न परं प्रति सिद्ध्यति । असिद्धं च भवेत्स्वस्य स्याद्वादेन समागतं ॥१७९॥
नासावभिमतोऽस्माकं वक्तृत्वाद्देवदत्तवत् । इत्याद्यपि भवेत्सिद्धं विरुद्धं साधनं यतः ॥१८०॥
प्रजापत्यादिभिश्चायमुपदेशो न निश्चयः । तेऽप्येवमिति चैतेभ्यो दोषवानागमो भवेत् ॥१८१॥
एकं यो वेदते न स्याज्जातं सत्तात्मनाखिलं । अतः साध्यविहीनोयं दृष्टांतो गदितस्त्वया ॥
अथ चैकांतयुक्तोक्ति दृष्टांतो नो यतस्ततः । साध्यसाधनवैकल्यमुदाहार्यं सधर्मिणि ॥ १८३ ॥
श्रुत्वा वस्तुन्यदृष्टे च प्रमाणं वेदमागतं । न समाश्रयणं युक्तं हेतोः सर्वज्ञदूषणे ॥ १८४ ॥
वक्तृत्वस्य विरोधो वा सर्वज्ञत्वेन कः समः । सति सर्वज्ञतायोगे वक्ताहि सुतरां भवेत् ॥१८५॥
यो न वेत्ति स किं वक्ति वराको मतिदुर्विधः । व्यतिरेकाविनाभावो भावाच्च स्यान्न साधनं ॥
स्वपक्षोयमविद्येयं तथा यागादिकं मलं । क्षीयतेऽलं क्वचिद्धेतोर्धातुहेममलं यथा ॥ १८७ ॥
अस्मदादिमते धर्मे आपेक्षितविपर्ययः । धर्मत्वादुत्पलद्रव्ये यथा नीलविशेषणं ॥ १८८ ॥

कर्त्रभावश्च वेदस्य युक्त्यभावान्न युज्यते । कर्तृमत्त्वे तु संसाध्ये दृश्यवद्धेतुसंभवः ॥ १८९ ॥
युक्तेश्च कर्तृमान् वेदः पदवाक्यादिरूपतः । विधेयप्रतिषेधार्थं युक्तत्वान्मैत्रकाव्यवत् ॥ १९० ॥
ब्रह्मप्रजापतिप्रायः पुरुषेभ्यश्च संभवः । श्रूयते वेदशास्त्रस्य नापनेतुं स शक्यते ॥ १९१ ॥
स्यात्ते मतिर्न कर्तारः प्रवक्तारः श्रुतेः स्मृताः । तथा नाम प्रवक्तारो रागद्वेषादिभिर्युताः॥१९२॥
सुसर्वज्ञाश्च किं कुर्युरन्यथा ग्रंथदेशनं । अर्थस्य वान्यथाख्यानं प्रमाणं तन्मतं यतः ॥ १९३ ॥
चातुर्विध्यं च यज्जात्या तत्र युक्तमहेतुकं । ज्ञानं देहविशेषस्य न च श्लोकाग्निसंभवात् ॥१९४॥
दृश्यते जातिभेदस्तु यत्र तत्रास्य संभवः । मनुष्यहस्तिवालेयगोवाजिप्रभृतौ यथा ॥ १९५ ॥
नच जात्यंतरस्थेन पुरुषेण स्त्रियां क्वचित् । क्रियते गर्भसंभूतिर्विप्रादीनां तु जायते ॥ १९६ ॥
अश्वायां रासभेनास्ति संभवोऽस्येति चेन्न सः । नितांतमन्यजातिस्थशफादितनुसाम्यतः ॥१९७॥
यदि वा तद्वदेवस्याद्द्वयोर्विसदृशः सुतः । नात्र दृष्टं तथा तस्माद्गुणैर्वर्णव्यवस्थितिः ॥ १९८ ॥
मुखादिसंभवश्चापि ब्रह्मणो योऽभिधीयते । निर्हेतुः स्वगेहेऽसौ शोभते भाष्यमाणकः ॥ १९९ ॥
ऋषिशृंगादिकानां च मानवानां प्रकीर्त्यते । ब्राह्मण्यं गुणयोगेन न तु तद्योनिसंभवात् ॥२००॥
बृहत्त्वाद्भगवान्ब्रह्मा नाभेयस्तस्य ये जनाः । भक्ताः संतस्तु पश्यंति ब्राह्मणास्ते प्रकीर्तिताः ॥

क्षत्रियास्तु क्षतत्राणाद्वैश्याः शिल्पप्रवेशनात् । श्रुतात्सदागमाद्येतु द्रुतास्ते शूद्रसंज्ञिताः॥२०२॥
न जातिगर्हिताकाचिद्गुणाः कल्याणकारणं । व्रतस्थमपि चांडालं तं देवाब्राह्मणं विदुः २०३
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ २०४ ॥
चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चांडालादिविशेषणं । सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धिं भुवने गतं ॥ २०५ ॥
अपूर्वारूयश्च धर्मो न व्यज्यते यागकर्मणा । नित्यत्वाद्व्योमवद्व्यक्तेरनित्यो वा घटादिवत् २०६
फलं रूपपरिच्छेदः प्रदीपव्यक्त्यनंतरं । दृष्टं यथेह चापूर्वव्यक्तिकालं फलं भवेत् ॥ २०७ ॥
शास्त्रेण चोदितत्वाच्च वेदीमध्ये पशोर्वधः । प्रत्यवायाय नेत्येतदयुक्तं येन तच्छृणु ॥ २०८ ॥
वेदागमस्य शास्त्रत्वमसिद्धं शास्त्रमुच्यते । तद्धियन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितं ॥ २०९ ॥
प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितं । अत्र तूक्तं ततो दुष्टं तच्चेदमविधीयते ॥ २१० ॥
राजानं हंत्यसौ सोमं वीरं वा नाकवासिनां । सोमेन योयजेत्तस्य दक्षिणा द्वादशं शतं ॥२११॥
शोधयत्यत्र देवानां शतं वीरं प्रतर्पणं । प्राणानां दश कुर्वंति यैकादशात्मनस्तु सा ॥ २१२ ॥
द्वादशी दक्षिणा या तु दक्षिणा सैव केवलं । इतरासां च दोषाणां व्यापारो विनिवर्तने ॥२१३॥
तथा च यज्ञुर्मायमकृतोरोदवाहना । पादाभ्यामेवसस्तस्माद्विश्वस्मान्मुंचतानलः ॥ २१४ ॥

एवमादि च बहेव गदितं दोषनोदनं । आगमेन ततोऽन्येन व्यभिचारोऽत्र विद्यते ॥ २१५ ॥
पशोर्मध्ये वधो वेद्याः प्रत्यवायाय कल्प्यते । तस्य दुःखनिमित्तत्वाद्यथा व्याधकृतो वधः २१६
स्वयंभुवा च लोकस्य सर्गो नेयर्ति सत्यतां । विचार्यमाणमेतद्धि पुराणतृणदुर्बलं ॥ २१७ ॥
कृतार्थो यद्यसौ सृष्टौ तस्यां किं स्यात्प्रयोजनं । क्रीडेति चेत्कृतार्थोऽसौ न भवत्यर्भको यथा ॥
साक्षादेव रतिं कस्मान्न सृजेत्स विनेतरैः । सृजतो वास्य के भावा व्रजेयुः करणादितां ॥२१९॥
किंचोपकारिणः केचित् केचिद्वास्यापकारिणः । सुखिनः कुरुते कांश्चिद्येन कांश्चिच्च दुःखिनः ॥
अथ नैव कृताऽर्थोसावेवं तर्हि स नेश्वरः । कर्मणा परतंत्रत्वाद्यथा कश्चिद्भवद्विधः ॥ २२१ ॥
सुबुद्धिनरयत्नोत्थसंस्थानाः कमलादयः । विशिष्टाकारयुक्तत्वाद्रथवेश्मादयो यथा ॥ २२२ ॥
यद्बुद्धिपूर्वका एते भविष्यंति स ईश्वरः । इत्येतच्च न सम्यक्त्वं व्रजत्येकांतवादिनः ॥ २२३ ॥
सुबुद्धिनरयत्नोत्थाः सर्वथा न रथादयः । व्यवस्थितं यतस्तत्र द्रव्यं चैवोपजन्यते ॥ २२४ ॥
क्लेशादियुक्तता चास्य व्यश्नुते तक्षकादिवत् । नामकर्म च मैवं स्यादीश्वरो यस्त्वयेष्यते २२५
विशिष्टाकारसंबद्धमीश्वरस्य पुनर्वपुः । ईश्वरांतरयत्नोत्थमिष्यते नो न निश्चयः ॥ २२६ ॥
अपरेश्वरयत्नोत्थमथैतदपि कल्प्यते । सत्येवमनवस्था स्यान्नच स्तस्याभिसर्जनं ॥ २२७ ॥

शरीरमथ नैवास्य विद्यते नैष सर्जकः । अमूर्तत्वाद्यथाकाशं तक्षवद्वा सविग्रहः ॥ २२८ ॥
यजनार्थं च स्रष्टानां पशूनां वाहनादिकं । क्रियमाणं विरुद्धयेत तद्धि स्तेयं प्रकल्प्यते ॥२२९॥
अतः कर्मभिरेवेदं रागादिभिरुपार्जितैः । वैचित्र्यं व्यश्नुते विश्वमनादौ भवसागरे ॥ २३० ॥
कर्म किं पूर्वमाहोश्चिच्छरीरमिति नेदृशः । युक्तः प्रश्नो भवेऽनादौ बीजपादपयोर्यथा ॥ २३१ ॥
अंतोऽपि तर्हि न स्याच्चेत्तन्न बीजविनाशतः । दृष्ट्वा हि पादपोद्भूतेरसंभूतिरिदं तथा ॥२३२॥
तस्माद्दुष्टेन केनापि प्राणिना पापकर्मणा । कुग्रंथरचनां कृत्वा यज्ञकर्म प्रवर्तितं ॥ २३३ ॥
संप्राप्तोऽसि कुले जन्म बुद्धिमानसि मानवः । निवर्तस्व ततः पापादेतस्माद्व्याधकर्मणः २३४
यदि प्राणिवधः स्वर्गसंप्राप्तौ कारणं भवेत् । ततः शून्योभवेदेष लोकोऽल्पैरेव वासरैः ॥ २३५ ॥
प्राप्तेन वापि किं तेन च्युतिर्यस्मात्पुनर्भवेत् । दुःखेन च समासक्तं सुखं स्वल्पं च बाह्यजं २३६
यदि प्राणिवधाद् ब्रह्मलोकं गच्छंति मानवाः । तस्यानुमतनात्कस्मात्पतितो नरके वसुः ॥२३७॥
उत्तिष्ठ भो वसो स्वर्गं व्रजेति कृतनिस्वनैः । सूत्रकंठैर्दुराचारैः स्वपराशुभेकारिभिः ॥ २३८ ॥
स्वपक्षानुमतप्रीतैरुपम्याद्यापि यद्द्विजैः । आहुतिः क्षिप्यते वह्नौ नितांतं क्रूरमानसैः ॥ २३९ ॥
पिष्टेनापि पशुं कृत्वा निघ्नंतो नरकं गताः । संकल्पादशुभात्कैव कथेतरपशोर्वधः ॥ २४० ॥

यज्ञकल्पनया नैव किंचिदस्ति प्रयोजनं । अथापि स्याच्तथाप्येवं न कर्तव्या बुधोत्तमैः ॥ २४१ ॥
यजमानो भवेदात्मा शरीरस्तु वितर्दिकः । पुरोडाशस्तु संतोषः परित्यागस्तथा हविः ॥२४२॥
मूर्धजा एव दर्भाणि दक्षिणा प्राणिरक्षणं । प्राणायामः सितं ध्यानं यस्य सिद्धपदं फलं ॥२४३॥
सत्यं यूपस्ततो वह्निर्मानसं चपलं पशुः । समिधश्च हृषीकाणि धर्मयज्ञोयमुच्यते ॥ २४४ ॥
यज्ञेन क्रियते तृप्तिर्देवानामिति चेन्मतिः । तत्र तेषां यतोऽस्त्येव दिव्यमन्नं यथेप्सितं ॥ २४५ ॥
स्पर्शतो रसतो रूपाद्गंधाद्येषां मनोहरं । अन्नमस्ति किमेतेन तेषां मांसादिवस्तुना ॥ २४६ ॥
शुक्रशोणितसंभूतममेध्यकृमिसंभवं । दुर्गंधदर्शनं मांसं भक्षयंति कथं सुराः ॥ २४७ ॥
त्रयोऽग्नयो वपुष्येव ज्ञानदर्शनजाठराः । दक्षिणाग्न्यादिविज्ञानं कार्यं तेष्वेव सूरिभिः ॥ २४८ ॥
सुरा यदि हुतेनाग्नौ तृप्तिं यांति बुभुक्षिताः । श्वेतोनाम ततो देवस्तृप्तिं किमिति नागतः॥२४९॥
ब्रह्मलोकात्किलागत्य दुर्गंधं योनिजं वपुः । चखाद ध्वांक्षगोमायुसारमेयसमो भवेत् ॥ २५० ॥
लालाक्लिन्ने मुखे क्षिप्तं कथं वान्नं द्विजातिभिः । विट्पूर्णकुक्षिसंप्राप्तं तर्पयेत्स्वर्गवासिनः॥२५१॥
एवं ततो गदंतंतमनेकांतदिवाकरं । देवर्षितेजसा दीप्तं शास्त्रार्थज्ञानजन्मना ॥ २५२ ॥
ऋत्विक्पराजयोद्भूतक्रोधसंभारकंपिताः । वेदार्थाभ्यसनात्यंतदयानिर्मुक्तमानसाः ॥ २५३ ॥

आशीविषसमाशेषदृष्टतारकलोचनाः । आवृत्य सर्वतः क्षुब्धाः कृत्वा कलकलं महत् ॥ २५४ ॥
बध्वा परिकरं पापाः सूत्रकंठाः समुद्धताः । हस्तपादादिभिर्हंतुं वायसा इव कौशिकं ॥ २५५ ॥
नारदोऽपि ततः कांश्चिन्मुष्टिमुद्गरताड़नैः । पार्ष्णिनिर्घातपातैश्च कांश्चिदन्यान्यथागतान्॥२५६॥
शस्त्रायमाणैर्निःशेषैर्गात्रैरेव सुदुस्सहैः । द्विजान् जघान कुर्वाणो रेचकभ्रमणं बहून् ॥ २५७ ॥
अथ घ्नन् स चिरात्खिन्नः क्रूरैर्बहुभिरावृतः । गृहीतः सर्वगात्रेषु भंजन्नाकुलतां परां ॥ २५८ ॥
पक्षीव निबिडं बद्धः पाशकैरतिदुःखितः । वियदुत्पतनाशक्तः संप्राप्तः प्राणसंशयं ॥ २५९ ॥
एतस्मिन्नंतरे दूतो दाशवक्त्रः समागतः । हन्यमानामिमं दृष्ट्वा प्रत्यभिज्ञाय नारदं ॥ २६० ॥
निवृत्य त्वरयात्यंतमेवं रावणमब्रवीत् । यस्यांतिकं महाराज ! दूतोहं प्रेषितस्त्वया ॥ २६१ ॥
राज्ञः पश्यत एवास्य नारदो बहुभिर्द्विजैः । एकाकी हन्यते क्रूरैः शलभैरिव पन्नगः ॥ २६२ ॥
अशक्तस्तत्र राजानमहं दृष्ट्वा भयार्दितः । निवेदयितुमायातो वृत्तांतमिति दारुणं ॥ २६३ ॥
तमुदंतं ततः श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । वितानधरिणीं गंतुं प्रवृत्तो जविवाहनः ॥ २६४ ॥
समीररंहसश्चास्य पुरःसंप्रस्थिता नराः । परिवारविनिर्मुक्तखड्गाः सूत्कारभासिनः ॥ २६५ ॥
निमेषेण मखक्षोणीं प्राप्ता दर्शनमात्रतः । विमोचयन्दयायुक्तो नारदं शत्रुपंजरात् ॥ २६६ ॥

निस्त्रिंशनरवृंदैश्च रक्षिताः पशुसंहतीः । मोचितास्तै सहुंकारं चक्षुर्निक्षेपमात्रतः ॥ २६७ ॥
भज्यमानैस्ततो यूपैस्ताड्यमानैर्द्विजातिभिः । पशुभिर्मुच्यमानैश्च जातं सांराविणं महत् ॥२६८॥
अब्रह्मण्यकृता रावास्ताड्यंते तावदेकशः । यावन्निपतिता भूमौ विप्रा निस्पंदविग्रहाः ॥ २६९ ॥
भटैश्च पर्यचोद्यंत यथा वो दुःखमप्रियं । सुखं च दयितं तद्वत्पशूनामपि दृश्यतां ॥ २७० ॥
यथाहि जीवितं कांतं त्रैलोक्यस्यापि भावतः । भवतां सर्वजंतूनामियमेव व्यवस्थितिः ॥२७१॥
भवतां ताड्यमानानां कष्टा तावदियं व्यथा । शस्त्रैर्विशस्यमानानां पशूनां तु किमुच्यतां॥२७२॥
दुष्कृतस्याधुना पापाः सहध्वं फलमागतं । येन नो पुनरप्येवं कुरुध्वं पुरुषाधमाः ॥ २७३ ॥
सुत्रामापि समं देवैर्यद्यायाति तथापि न । अस्मत्स्वामिनि वः क्रुद्धे जायते परिरक्षणं ॥ २७४ ॥
अश्वैर्मतंगजैस्तत्स्थैः रथस्थैर्गगनस्थितैः । भूमिस्थैः पुरुषैरस्त्रैराहन्यंते द्विजातयः ॥ २७५ ॥
अब्रह्मण्यमहो राजन् हा मातर्यज्ञपालये । जीवामि मुंच मां नैवं करिष्यामि पुनर्भटाः ॥२७६॥
एवंविधमलं दीनं विलपंतो विचेष्टितं । गंडूपदा इव प्राप्ता समताड्यंत ते भटैः ॥ २७७ ॥
हन्यमानं ततो दृष्ट्वा सूत्रकंठकदंबकं । सहस्रकिरणग्राहमित्यवोचत नारदः ॥ २७८ ॥
कल्याणमस्तु ते राजन् येनाहं मोचितस्त्वया । हन्यमान इमैर्व्याधैः सूत्रकंठैर्दुरात्मभिः ॥२७९॥

अवश्यमेवमेतेन भवितव्यं यतस्ततः । कुर्वेतेषां दयां क्षुद्रा जीवंतु प्रियजीविताः ॥ २८० ॥
ज्ञानं किंन तथोत्पन्नाः कुपाखंडा यथा नृप । शृण्वस्यामवसर्पिण्यां तुरीयसमयागमे ॥ २८१ ॥
ऋषभो नाम विख्यातो बभूव त्रिजगतोन्नतः । कृत्वा कृतयुगं येन कलानां कल्पितं शुतं ॥२८२॥
जातमात्रश्च यो देवैर्नीत्वा मंदिरमस्तकं । क्षीरोदवारिणा तुष्टैरभिषिक्तो महाद्युतिः ॥ २८३ ॥
ऋषभस्य विभोर्दिव्यं चरितं पापनोदनं । स्थितं लोकत्रयं व्याप्य पुराणां न श्रुतं त्वया ॥२८४॥
भर्त्ता बभूव कौमारः स भुवो भूतवत्सलः । गुणांस्तस्य क्षमो वक्तुं न सुरेंद्रोऽपि विस्तरात्२८५
उद्वहंतीं स्तनौ तुंगौ विंध्याग्रालेय पर्ततौ । आर्यदेशमुखीरम्यां नगरीं वलयैर्युतां ॥ २८६ ॥
अब्धिकांचीगुणां नीलसत्काननशिरोरुहां । नानारत्नकृतच्छायामत्यंतप्रवणां सतीं ॥ २८७ ॥
यः परित्यज्यभूमार्यां मुमुक्षुर्भवसंकटं । प्रतिपेदे विशुद्धात्मा श्रामण्यं जगते हितं ॥ २८८ ॥
स्थितो वर्षसहस्रं च वज्रांगो स्थिरयोगभृत् । प्रलंबितमहाबाहुः प्राप्तभूमिजटाचयः ॥ २८९ ॥
स्वामिनश्चानुरागेण गृहीतोग्रपरीषहैः । कच्छाद्यैर्नग्नतामुक्ता वल्कलादि समाश्रितं ॥ २९० ॥
अज्ञातपरमार्थैस्तैः क्षुधादिपरिपीड़ितैः । फलाद्याहारसंतुष्टैः प्रणीतास्तापसादयः ॥ २९१ ॥
ऋषभस्य तु संजातं केवलं सर्वभासनं । महान्यग्रोधवृक्षस्य स्थितस्यासन्नगोचरे ॥ २९२ ॥

तत्प्रदेशे कृता देवैस्तस्मिन्काले विभोर्यतः । पूजास्तेनैव मार्गेण लोकोऽद्यापि प्रवर्तते ॥ २९३ ॥
प्रतिमाश्च सुरैस्तस्य तस्मिन्देशे सुमानसैः । स्थापिता रम्यचैत्येषु मनुजैश्च महोत्सवैः ॥ २९४ ॥
भरतेनास्य पुत्रेण सृष्टा ये चक्रवर्तिना । पुरा मरीचिना ये च प्रमादस्मययोगतः ॥ २९५ ॥
विसर्पणमिमे सूत्रकंठास्तु भुवने गताः । प्राणिनां दुःखदा यद्वत्सलिले विषविंदवः ॥ २९६ ॥
उद्वृत्तकुहुकाचारैर्बहुडिंभैः कुलिंगकैः । प्रचंडदंडैरत्यंतं तैरिदं मोहितं जगत् ॥ २९७ ॥
जातं शश्वत्प्रवृत्तातिक्रूरकर्मतमश्चितं । प्रनष्टसुकृतालोकं साधुसत्कारतत्परं ॥ २९८ ॥
एकविंशतिवारान्ये निधनं प्रापिताः क्षितौ । सुभूमचक्रिणा प्राप्ता न नितांतमभावतां ॥ २९९ ॥
ते कथं वद शाम्यंते त्वया विप्रा दशानन । उपशाम्यानया किंचिन्नकृत्यं प्राणिहिंसया॥३००॥
जिनैरपि कृतं नैतत्सर्वज्ञैर्निःकुमार्गकं । जगत् किमुत शक्यते कर्तुमस्मद्विधैर्जनैः ॥ ३०१ ॥
इति देवयतेः श्रुत्वा कैकसीकुक्षिसंभवः । पुराणकथया प्रीतो नमश्चक्रे जिनाधिपं ॥ ३०२ ॥
संकथाभिश्च रम्याभिर्महापुरुषजन्मभिः । स्थितः क्षणं विचित्राभिर्नारदेन समं सुखी ॥ ३०३ ॥
मरुतोऽथांजलिं बध्वा क्षितिसक्तशिरोरुहः । प्रणनाम यमोन्मादं नयविच्चैवमब्रवीत् ॥ ३०४ ॥
भृत्योऽहं तव लंकेश ! भज नाथ ! प्रसन्नतां । अज्ञानेन हि जंतूनां भवत्येव दुरीहितं ॥३०५॥

गृह्यतां कन्यका चेयं नाम्ना मे कनकप्रभा । वस्तूनां दर्शनीयानां भवानेव हि भाजनं ॥३०६॥
प्रणतेषु दयाशीलस्तां प्रतीयेष रावणः । उपयेमे च सात्यंतप्रवृत्तपरमोदयः ॥ ३०७ ॥
तत्सामंताश्च तुष्टेन मरुतेन यथोचितं । भटाश्च पूजिता कानवासोऽलंकरणादिभिः ॥ ३०८ ॥
कनकप्रभया सार्धं रममाणस्य चाजनि । सुता संवत्सरस्यांते कृतचित्रेति नामतः ॥ ३०९ ॥
रूपेण हि कृतं चित्रं तया लोकस्य पश्यतः । मूर्तियुक्तेव सा शोभा चक्रे चित्तस्य चोरणं ३१०
जयार्जितसमुत्साहाः शूरास्तेजस्विविग्रहाः । सामंता दशवक्त्रस्य रेमिरे धरणीतले ॥ ३११ ॥
धत्ते यो नृपतिख्यातिं तान् दृष्ट्वा स बलीयसः । जगामात्यंतदीनत्वं स्वभोगभ्रंशकातरः ॥३१२॥
मध्यभागं समालोक्य वर्षस्यांबरगोचराः । कनकाद्रिनदीरम्यं विस्मयं प्रापुरुत्तमं ॥ ३१३ ॥
ऊचुः केचिद्वरं भद्रा अत्रैवावस्थिता वयं । नूनं स्वर्गोऽपि नैतस्माद्भजते रामणीयकं ॥ ३१४ ॥
अन्येऽवदन्निमं देशं दृष्ट्वा लंकानिवर्तने । कटुंबदर्शनं शुद्धं कारणं नो भविष्यति ॥ ३१९ ॥
एकेऽवोचन गृहे वासो न मनागपि शोभते । दृश्यतामस्य देशस्य पार्थिवं चित्तहारिणः ॥३१६॥
समुद्रविपुलं सैन्यं पश्यतात्र कथं स्थितं । मरुत्तमखभंगस्य यथान्योन्यं न दृश्यते ॥ ३१७ ॥
अहो धैर्यमहोदारं लोकस्य क्षणहारिणः । एतस्य खेचरांणां प्रशस्तोऽयं निरूप्यते ॥ ३१८ ॥

मरुत्तमखविध्वंसो यं यं देशमुपागतः । रम्यं तस्याकरोल्लोकः पंथानं तोरणादिभिः ॥ ३१९ ॥
शशांकसौम्यवक्त्राभिर्नेत्रे सरसिजोपमे । बिभ्रतीभिः सुलावण्यपूर्णदेहाभिरादरात् ॥ ३२० ॥
महीगोचरनारीभिर्विद्याधरकुतूहलात् । वीक्ष्यमाणा ययुर्भूम्यां खेचरास्तद्दिदृक्षया ॥ ३२१ ॥
नगरस्य समीपेन व्रजंतं कैकसीसुतं । निर्धूतसायकश्यामं पक्वबिंबफलाधरं ॥ ३२२ ॥
मुकुटन्यस्तमुक्तांशुसलिलक्षालितालिकं । इंद्रनीलप्रभोदारस्फुरत्कुंतलतारकं ॥ ३२३ ॥
सहस्रपत्रनयनं शर्वरीतिलकाननं । सद्यचापानतस्निग्धनीलभ्रूयुगराजितं ॥ ३२४ ॥
कंबुग्रीवं हरिस्कंधं पीनविस्तीर्णवक्षसं । दिग्नागनाशिकाबाहुं वज्रवन्मध्यदुर्विधं ॥ ३२५ ॥
नागाभोगसमाकारप्रसृतं मग्नजानुकं । सरोजचरणां न्याय्यप्रमाणास्थितविग्रहं ॥ ३२६ ॥
श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिंशल्लक्षणांचितं । रत्नरश्मिज्वलन्मौलिं विचित्रमणिकुंडलं ॥ ३२७ ॥
केयूरकरदीप्तांशं हारराजितदक्षसं । प्रत्यर्धचक्रभृद्भोगं द्रष्टुमुत्सुकमानसाः ॥ ३२८ ॥
आपूरयन् परित्यक्त समस्तप्रस्तुतक्रियाः । वातायनानि सद्वेषाः स्त्रियोऽन्योन्यविपीडिताः ॥३२९॥
निश्चिक्षिपुश्च पुष्पाणि समेधानि मधुव्रतैः । तुष्टाश्च विविधालापाश्चक्रुस्तद्दर्शनामिति ॥ ३३० ॥
अयं स रावणो येन जितो मातृश्वसुः सुतः । यमश्च यश्च कैलाशं समुत्क्षेप्तुं समुद्यतः ॥ ३३१ ॥

नीतः सहस्ररश्मिश्च राज्यभारविमुक्ततां । मरुतस्य च विध्वस्तो वितानः शौर्यशालिना ॥३३२॥
अहो समागमः साधुः कृतोयं कर्मभिश्चिरात् । रूपस्य केकसीक्षुनोर्गुणानां च जनोत्सवः ३३३
योषित्पुण्यवती सोयं धृतो गर्भे ययोत्तमः । पिताप्यसौ कृतार्थत्वं प्राप्तः कृत्वास्य संभवं ३३४
श्लाघ्यः स बंधुलोकोऽपि यस्यायं प्रेमगोचरः । अनेनोपयता यास्तु तासां स्त्रीणां किमुच्यते ३३५
आलापमिति कुर्वन्त्यस्तावदैक्ष्यंत ताः स्त्रियः । गोचरत्वमवापायं यावद्विततचक्षुषां ॥ ३३६ ॥
गते तस्मिन्मनश्चौरे चक्षुर्गोचरतात्ययं । मुहूर्तमभवन्नार्यः पुस्तकर्मगता इव ॥ ३३७ ॥
तेनोपहृतचित्तानां वांछंतीनां मनोगतं । कर्तुमन्यदभूत्कर्म कियताचिदनेहसा ॥ ३३८ ॥
बभूवेति दशग्रीवे देशे तत्संगमोज्झिते । नारीणां पुरुषाणां च त्यक्तान्याशेषसंकथा ॥ ३३९ ॥
विषये नगरे ग्रामे घोषे वा ये प्रधानतां । भजंते पुरुषस्ते तमुपायनभृतोऽगमन् ॥ ३४० ॥
गत्वा जनपदाश्चैवमुपनीय यथोचितं । रचितांजलयो नत्वा परितुष्टा व्यजिज्ञपन् ॥ ३४१ ॥
नंदनादिषु रम्याणि यानि द्रव्याणि पार्थिव । सुलभत्वं प्रपन्नानि तव तान्यपि चिंतनात् ३४२
महविभवपात्रस्य किमपूर्वं भवेत्तव । उपनीय प्रमोदंते यत्कुर्मो द्रविणं वयं ॥ ३४३ ॥
तथापि शुन्यहस्तानामस्माकं तव दर्शनं । न युक्तमिति यत्किंचिदुपादाय समागताः ॥३४४॥

जिनेन्द्रः प्रापितः पूजाममरैः कनकांबुजैः । द्रुमपुष्पादिभिः किन्न पूज्यतेऽस्मद्विधैर्जनैः ॥३४५॥
नानाजनपदैरेव सामंतैश्च महर्द्धिभिः । पूजितः प्रतिसन्मानं तेषां चक्रे प्रियोदितैः ॥ ३४६ ॥
परां प्रीतिमवापासौ पश्यन् रम्यां वसुंधरां । कांतामिव निजां नानारत्नालंकारशालिनीं॥३४७॥
संगं देशेन येनासौ ययौमार्गवशाद्विभुः । अकृष्टपच्यसस्याढ्यं तत्रासीद्वसुधातलं ॥ ३४८ ॥
प्रमोदं परमं विभ्रज्जनोस्य धरणीतलं । अनुरागांभसा कीर्तिमभ्यसिंचत्सुनिर्मलं ॥ ३४९ ॥
कृषीवलजनाश्चैवमूचुः पुण्यजुषो वयं । येन देशमिमं प्राप्तो देवो रत्नश्रवःसुतः ॥ ३५० ॥
अन्यदा कृषिसक्तानां रूक्षांगानां कुवाससां । वहतांकर्कशस्पर्शं पाणिपादं सवेदनं ॥ ३५१ ॥
क्लेशात्कालो गतोऽस्माकं सुखस्वादविवर्जितः । प्रभावादस्यभव्यस्य सांप्रतं वयमीश्वराः ३५२
पुण्येनानुगृहीतास्ते देशाः संपत्समाश्रिताः । येषु कल्याणसंभारो विचरत्येष रावणः ॥ ३५३ ॥
कृत्यं किं बांधवैर्ये न समर्था दुःखनोदने । अयमेव महाबंधुः सर्वेषां प्राणिनामभूत् ॥ ३५४ ॥
अनुरागं गुणैरेवं स लोकस्य प्रवर्द्धयन् । चकार तस्य हेमंतं निदाघं च सुखप्रदं ॥ ३५५ ॥
आसतां चेतनास्तावद्येऽपि भावा विचेतना । तेऽपि भीता इवाम्मुष्माद्बभूवुर्लोकसौख्यदाः॥३५६॥
तावच्च व्रजतस्तस्य प्रादुरासीद्धनागमः । अभ्युत्थानं दशास्यस्य कुर्वन्निव ससंभ्रमः ॥ ३५७ ॥

बलाकाविद्युदिंद्रास्त्रकृतभूषा घनाघनाः । महानीलगिरिच्छाया कुर्वंतः पटुनिस्वनं ॥ ३५८ ॥
हेमकक्षाभृतः कंबुध्वजभूषितविग्रहाः । प्रहता भांति शक्रेण रावणस्य गजा इव ॥ ३५९ ॥
दिशौंधकारिता-सर्वा जीमूतपटलैस्तथा । रात्रिंदिवस्य न ज्ञातो भेद एव यथा जनैः ॥ ३६० ॥
अथवा युक्तमेवेदं कर्तुं मलिनताभृतां । यत्प्रकाशतमोयुक्तान् कुर्वंति भुवने समान् ॥ ३६१ ॥
भूमिर्जीमूतसंसक्ताः स्थूला विच्छेदवर्जिताः । नाज्ञायंत घनाधारा उत्पतंति पतंति नु ॥३६२॥
मानसे मानसंभारोमानिनीभिश्चिरं धृतः । पटुनोमेघरटितान् क्षणेन ध्वंसमागतः ॥ ३६३ ॥
घनध्वनितवित्रस्ता मानिन्यो रमणं भृशं । आलिलिंगू रणत्कारिबलयाकुलबाहवः ॥ ३६४ ॥
शीतला मृदवो धारा पथिकानां घनोज्झिता । द्रष्टृणां समतां जग्मुः कुर्वत्योमर्मदारणं ॥ ३६५ ॥
भिन्नं धाराकदंबेन हृदयं दूरवर्तिनः । चक्रेणेव सुतीक्ष्णेन पथिकस्याकुलात्मनः ॥ ३६६ ॥
नीतो वनेन पीनेन मूढतां पथिको यथा । पुस्तकर्मसमोजातो वराकः क्षणमात्रकं ॥ ३६७ ॥
क्षीरोदपायिनो मेघा प्रविष्टा इवधेनुषु । अन्यथा क्षीरधारास्ताश्चक्षरुः सततं कथं ॥ ३६८ ॥
वर्षाणां समये तस्मिन्न बभूवुः कृषीबला । समाकुलाः प्रभावेण रावणस्य महाधनाः ॥ ३६९ ॥
अकामेकस्य हेतोर्यत्कुटुंबिन्या प्रसाधितं । भुज्यमानं कुटुंबेन तन्निष्ठां समुपागमत् ॥ ३७० ॥

महोत्सवो दशग्रीवो बभूव प्राणधारिणां । पुण्यसंपूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ॥ ३७१ ॥
इंदीवरचयश्यामः स्त्रीणामौत्सुक्यमाहरत् । साक्षादिव बभूवासौ वर्षाकालो महाध्वनिः ॥३७२॥
गर्जितेन पयोदानां रावणस्येव शासनात् । घोषणेन कृता सर्वैः प्रणतिः पतिभिर्नृणां ॥ ३७३ ॥
कन्या दृष्टिहराः प्रापुर्दशवक्त्रं स्वयंवराः । भूगोचराः परित्यक्तगगना इव विद्युतः ॥ ३७४ ॥
रेमिरे तास्तमासाद्य महीधरणतत्परं । पयोधरभराक्रांताः सद्वर्षा इव भूभृतं ॥ ३७५ ॥
जिगीषोर्यक्षमर्दस्य दृष्ट्वेव परमां द्युतिं । भास्वान् पलायितः क्वापि त्रपात्राससमाकुलः ॥ ३७६ ॥
दशाननस्य यद्वक्त्रं तदेव कुरुते क्रियां । मदीयामिति मत्वेव जगाम क्वापि चंद्रमाः ॥३७७॥
दशवक्त्रस्य वक्त्रेण जितं ज्ञात्वा निजंपतिं । भयेनेव समाक्रांतास्ताराः क्वापि पलायिताः ३७८
सुरक्तं पाणिचरणं कैकसेयस्य योषितां । विदित्वेव त्रपायुक्ता तिरोभूदब्जसंहतिः ॥ ३७९ ॥
रसना विद्युता युक्ता रक्तांशुकसुरायुधाः । नार्यः पयोधराक्रांता तस्य वर्षाइवाभवन् ॥ ३८० ॥
आमोदं रावणो जज्ञे केतकीनां न योषितां । विश्वासमरुताकृष्ट गुंजद्भ्रभरपंक्तिना ॥ ३८१ ॥
भागीरथ्यास्तटमतितरां रम्यमासाद्य दूरं । प्रांतोद्भूतप्रचुरविलसत्कांतिशिष्यं विशालं ॥
नानापुष्पप्रभवनिबिडघ्राणसंरोधिगंधं । क्षोणीबंधुर्जलदसमयं सर्वसौख्येन निन्ये ॥ ३८२ ॥

नाम श्रुत्वा प्रणमति जनः पुण्यभाजां नराणां । चारुस्त्रीणां निखिलविषयप्राप्यसंधा भवंति ॥
उत्पद्यंते परमविभवा विस्मयानां निवासा । शैत्यं यात्राद्रविरपि ततः पुण्यबंधे यतध्वं ॥३८३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते मरुत्तयज्ञध्वंसनपदानुगाभिधानं नाम एकादशं पर्व।

द्वादशं पर्व ।

तत्राथ मंत्रिभिः सार्धं चक्रेऽसौ संप्रधारणं । कस्मै तु दीयतामेषा कन्येति रहसिस्थितः ॥ १ ॥
इंद्रेण सह संग्रामे जीविते नास्ति निश्चयः । अतो वरं कृतं बालापाणिग्रहणमंगलं ॥ २ ॥
तं च चिंतापरं ज्ञात्वा कन्यावरगवेषणे । हरिवाहनराजेन सूनुराहानितेंतिकं ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा तं सुंदराकारं प्रणतं तोषमागतः । दशाननः सुतां चास्मै दातुं चक्रे मनोरथं ॥ ४ ॥
उचिते चासने तस्मिन्नासीने सचिवान्विते । अचिंतयद्दशग्रीवो नयशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥
मथुरानगरीनाथः सुगोत्रो हरिवाहनः । अस्मद्गुणगणे कीर्तिसतातासक्तमानसः ॥ ६ ॥
अस्य च प्राणभूतोऽयं बंधूनां च मधुः सुतः । श्लाघ्यो विनयसंपन्नो योग्यः प्रीत्यनुवर्तते ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा चेतीव वृत्तांतमयं सुंदरविभ्रमः । प्रख्यातगुणसंघातः परिप्राप्तो मदंतिकं ॥ ८ ॥
ततो मधोरिदं प्राह मंत्री देव तवाग्रतः । अस्य दुःखेन वर्ण्यते गुणाविक्रमशालिनः ॥ ९ ॥
तथापि भवतु ज्ञाता स्वामिनोस्य यथात्मना । इत्यावेदयितुं किंचित्क्रियते प्रक्रमो मया ॥१०॥
आमोदं परमं विभ्रत्सर्वलोकमनोहरः । मधुशब्दमयं धत्ते यथार्थं पृथिवीगतं ॥ ११ ॥
गुणा एतावतैवास्य गुणपर्याप्तवर्णना । असुरेन्द्रेण यद्दत्तं शूलरत्नं महागुणं ॥ १२ ॥
यत्प्रत्यरिबलं क्षिप्तममोघं भासुरं भृशं । द्विषत्सहस्रं नीत्वा तं करं प्रति निवर्तते ॥ १३ ॥
क्रियतैव च देवोस्य गुणान् ज्ञास्यति वाचिरात् । वाचा हि प्रकटीकारस्तेषां हास्यस्य कारणं ॥
तदस्य युक्तये बुद्धिं करोतु परमेश्वरः । सम्बंधं भवतो लब्ध्वा कृतार्थोऽयं भविष्यति ॥ १५ ॥
इत्युक्ते निश्चितो बुद्धया जामातासौ निरूपितः । समस्तं च यथायोग्यं कृतांतस्य प्रकल्पितं १६
चिंतितप्राप्तिनिश्शेषकारणश्च तयोरभूत् । विवाहविधिरत्यंतप्रीतलोकसमाकुलः ॥ १७ ॥
पुष्पलक्ष्मीमिव प्राप्य दुराख्यानां समागतः । आमोदं जगतो हृद्यं मधुस्तां नेत्रहारिणीं ॥१८॥
इंद्रभूतिमिहोद्देशे प्रत्युत्पन्नकुतूहलः । अप्रच्छन्मगधाधीशः कृत्वाभिनवमादरं ॥ १९ ॥
असुराणामधीशेन मधवे केन हेतुना । शूलरत्नं मुनिश्रेष्ठ दत्तं दुर्लभसंगमं ॥ २० ॥

इत्युक्तः पुरुणा युक्तस्तेजसा धर्मवत्सलः । शूलरत्नस्य संप्राप्तेः कारणं गौतमोऽवदत् ॥ २१ ॥
धातकी लक्ष्मणि द्वीपे क्षेत्रे चैरावतश्रुतौ । शतद्वारपुरेऽभूतां मित्रे सुप्रेमबंधने ॥ २२ ॥
एकः सुमित्रनामासीदपरः प्रभवश्रुतिः । उपाध्यायकुले चैतौ जातावतिविचक्षणौ ॥ २३ ॥
सुमित्रस्याभवद्राज्यं सर्वसामंतसेवितं । पुण्योपार्जितसत्कर्मप्रभावात्परमोदयं ॥ २४ ॥
दरिद्रकुलसंभूतः कर्मभिर्दुष्कुलैः पुरा । सुमित्रेण महास्नेहात्प्रभवोऽपि कृतः प्रभुः ॥ २५ ॥
सुमित्रोऽथान्यदारण्ये हृतो दुष्टेन वाजिना । दृष्टो द्विरददंष्ट्रेण म्लेच्छेन स्वैरचारिणा ॥ २६ ॥
आनीयासौ ततः पल्लिं संप्राप्य समयं दृढं । पत्या म्लेच्छविरूथिन्यास्तनयां परिणायितः ॥२७॥
तां च कन्यां समासाद्य साक्षादिव वनश्रियं । वनमालाश्रुतिं तत्र स्थितोऽसौमासमात्रकं ॥२८॥
अनुज्ञातस्ततस्तेन शतद्वारपुरोत्तमं । प्रस्थितः कांतया साकं वृतः शबरसेनया ॥ २९ ॥
गवेषणे विनिष्क्रांतः प्रभवोथ ददैक्षत । कांतया सहितं मित्रं स्मरस्येव पताकया ॥ ३० ॥
चक्रे च मित्रभार्यायां मानसं पापकर्मणः । उदयान्नष्टनिश्शेषकृत्याकृत्यविचेतनः ॥ ३१ ॥
मनोभवशरैरुग्रैस्ताड्यमानः समंततः । अवाप न क्वचित्सौख्यं मनसा भृशमाकुलः ॥ ३२ ॥
ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणां मदनो मतिसूदनः । येन संप्राप्यते दुःखं नरैरक्षतविग्रहैः ॥ ३३ ॥

प्रधानंदिवसाधीशः सर्वेषां ज्योतिषां यथा । तथा समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते ॥ ३४ ॥
विचित्तोऽसि किमित्येवमित्युक्तः सुहृदा च सः । जगाद सुंदरीं दृष्ट्वा विक्लवत्वस्य कारणं॥३५॥
श्रुत्वा प्राणसमस्यास्य दुःखं स्वस्त्रीनिमित्तकं । तामाशु प्राहिणोत्प्राज्ञः सुमित्रो मित्रवत्सलः३६
प्रेक्ष्य च प्रभवागारं गवाक्षे गूढविग्रहः । सतीमैक्षत किंकुर्यादियमस्येति तत्परः ॥ ३७ ॥
अचिंतयच्च यद्येषा भवेन्नास्यानुकूलिका । ततोनिग्रहमेतस्याः कर्तास्मि सुविनिश्चितं ॥ ३८ ॥
अथैतस्याश्रवा भूत्वा कामं संपादयिष्यति । ततो ग्रामसहस्रेण पूजयिष्यामि सुंदरीं ॥ ३९ ॥
समीपं प्रभवस्यापि वनमाला च सोत्सुका । प्रदोषसमये स्पृष्टे ताराप्रकरमंडिते ॥ ४० ॥
आसीनां चासने रम्ये पुरोदोषविवर्जितः । तामपृच्छदहो भद्रे का त्वमित्युत्कटादरः ॥ ४१ ॥
ततोविवाहपर्यंतं तस्याः श्रुत्वा विचेष्टितं । प्रभवो निष्प्रभो जातो निर्वेदं च गतः परं ॥ ४२ ॥
अचिंतयच्च हा कष्टं मया मित्रस्य कामिनी । किमपि प्रार्थिता कर्तुं धिङ्मामुच्छिन्नचेतनं ॥४३॥
पापादस्मान्न मुच्येहमृते स्वस्य विपादनात् । किंवा कलंकयुक्तेन जीवितेन मयाधुना ॥ ४४ ॥
इति संचिंत्य मूर्धानं स्वंलुलूषं चकर्ष सः । कोशतः सायकं सांद्रच्छायादिग्धदिगंतरं ॥ ४५ ॥
उपकंठं च कंठस्य यावदेनं चकार सः । निपत्य सहसा तावत्सुमित्रेण निरुध्यते ॥ ४६ ॥

जगाद च त्वरायुक्तं परिष्वज्य स तं सुहृत् । आत्मघातितया दोषः प्राज्ञः किं नाम बुध्यसे ४७
आमगर्भेषु दुःखानि प्राप्नुवंति चिरं जनाः । ये शरीरस्य कुर्वंति स्वस्याविधिनिपातनं ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा सुहृदः खड्गं करात्तस्य सुचेतसा । सांत्वितश्च चिरं वाक्यैर्मनोहरणकारिभिः ॥ ४९ ॥
ईदृशी च तयोः प्रीतिरन्योन्यगुणयोजिता । प्राप्स्यत्यंतमहो कष्टः संसारः सारवर्जितः ॥ ५० ॥
पृथक् पृथक् प्रपद्यंते सुखदुःखकरीं गतिं । जीवाः स्वकर्मसंपन्नाः कोत्र कस्य सुहृज्जनः ॥५१॥
अन्यदाथ विबुद्धात्मा श्रमणत्वं समाश्रितः । ईशानकल्प ईशत्वं सुमित्रः प्राप्तवान् सुखी ॥५२॥
ततश्च्युत्वेह संभूतो द्वीपे जंबूपदांतिके । हरिवाहनराजस्य मथुरायां सुरः पुरि ॥ ५३ ॥
माधव्यास्तनयो नाम्ना मधुः स मधुमोहितः । नभसो हरिवंशस्य यश्चंद्रत्वमुपागतः ॥ ५४ ॥
मिथ्यादृक्प्रभवो मृत्वा दुःखमासाद्य दुर्गतौ । विश्वावसोरभूत्पुत्रो ज्योतिष्मत्यां शिखिश्रुतिः ५५
श्रवणत्वधरः कृत्वा तपः कष्टं निदानतः । दैत्यानामधिपो जातश्चमराख्योऽधमामरः ॥ ५६ ॥
ततोवधिकृतालोकः स्मृत्वा पूर्वभवान् निजान् । गुणान् सुमित्रमित्रस्य चक्रे मनसि निर्मलान् ॥
सुमित्रराजचरितं स्मर्यमाणं सुपेशलं । असुरेंद्रस्य हृदयं चकर्त करपत्रवत् ॥ ५८ ॥
दध्यौ चेति पुनर्भद्रः सुमित्रोऽसौ महागुणः । आसीन्मम महामित्रः सहायः सर्ववस्तुषु ॥५९॥

तेन सार्धं मया विद्या गृहीता गुरुवेश्मनि । दरिद्रकुलसंभूतस्तेनाहं स्वसमः कृतः ॥ ६० ॥
आत्मीया तेन मे पत्नी द्वेषवर्जितचेतसा । प्रेषिता पापचित्तस्य वितृष्णेन दयावता ॥ ६१ ॥
ज्ञात्वा वयस्यपर्वीति परमुद्वेगमागतः । शिरः स्वमसिना छिंदंस्तेनाहं परिरक्षितः ॥ ६२ ॥
अश्रद्दधज्जिनेंद्राणां शासनं पंचतां गतः । प्राप्तोऽस्मि दुर्गतौ दुःखं स्मरणेनापि दुस्सहं ॥ ६३ ॥
निंदनं साधुवर्गस्य सिद्धिमार्गानुवर्तिनः । यत्कृतं तस्य तत्प्राप्तं फलं दुःखासु योनिषु ॥ ६४ ॥
सचापि चरितं श्रुत्वा निर्मलं सुखमुत्तमं । ऐशाननिलये भुक्त्वा च्युतोयं वर्तते मधुः ॥ ६५ ॥
उपकारसमाकृष्टस्ततोऽसौ भुवनान्निजात् । निर्जगामक्षणोद्भूतपरप्रेमार्द्रमानसः ॥ ६६ ॥
दृष्ट्वादरेण कृत्वा च महरत्नादिपूजनं । शूलरत्नं ददावस्मै सहस्रांतिकसंज्ञितं ॥ ६७ ॥
शूलरत्नं स तत्प्राप्य परां प्रीतिं गतः क्षितौ । अस्त्रविद्याधिराजश्च सिंहवाहनजोऽभवत् ॥ ६८ ॥
एतन्मधोरुपाख्यानमधीते यः शृणोति वा । दीप्तिमर्थं परं चायुः सोऽधिगच्छति मानवः ॥ ६९ ॥
सामंतानुगतोथासौ मरुत्तमखनाशकृत् । प्रभावं प्रलयं लोके प्रवणीकृतविद्विषं ॥ ७० ॥
संवत्सरान् दशाष्टौ च विहरञ्जनिताद्भूतं । भुवने जनितप्रेम्णि देवेंद्रस्त्रिदिवे यथा ॥ ७१ ॥
गुंचन्नारात्समुद्रस्य धरणीं धरणीपतिः । चिरेण जिनचैत्याढ्यं प्रापाष्टापदभूधरं ॥ ७२ ॥

प्रसन्नसलिला तत्र भाति मंदाकिनी भृशं । महिषी सिंधुनाथस्य कनकांभ्जरजस्तथा ॥ ७३ ॥
सन्निवेश्य समीपेऽस्या वाहिनीं परमाप तां । मनोज्ञं रमणं चक्रे कैलाशस्य स कुक्षिषु ॥ ७४ ॥
नुनुदुः खेचराः खेदं भूचराश्च यथाक्रमं । मंदाकिन्याः सुखस्पर्शसलिले स्फटिकामले ॥ ७५ ॥
नमेरुपल्लवायास्तलोठनोपात्तपांशवः । नमिताः सप्तयः पीतपयसोविनयास्थिताः ॥ ७६ ॥
शीकरार्दितदेहत्वाद्ग्राहिताः सुघनं रजः । तटन्यस्तमहाभेदास्नापिताः कुंजराश्चिरं ॥ ७७ ॥
स्मृत्वानु वालिवृत्तांतं नमस्कृतजिनालयः । यमध्वंसः स्थितः कुर्वंश्चेष्टां धर्मानुगामिनीं ॥ ७८ ॥
अथ योसौ सुरेंद्रेण नियुक्तो नलकूबरः । लोकपालतयाख्यातः पुरे दुर्लंघ्यसंज्ञके ॥ ७९ ॥
उपश्रुत्यं सविज्ञाय रावणं चरवर्गतः । जिगीषया समायातं सैन्यसागरवर्तिनं ॥ ८० ॥
लेखारोपितवृत्तांतं प्राहिणोदाशुगामिनं । खेचरं सुरनाथाय त्रासाध्यासितमानसः ॥ ८१ ॥
मंदिरंप्रस्थितायास्मै वंदितुं जिनपुंगवान् । प्रणम्य लेखवाहेन लेखोऽवस्थापितः पुरः ॥ ८२ ॥
वाचयित्वा च तं कृत्वा हृदयेर्थमशेषतः । आज्ञापयत्सुराधीशो वास्तिवदं लेखदानतः ॥ ८३ ॥
यत्नात्तावदिहास्थ त्वममोघास्त्रस्य पालकः । जिनानां पांडुके कृत्वा वंदनां यावदेम्यहं ॥ ८४ ॥
इति संदिश्य गर्वेण सेनामगणयन् द्विषः । गतो सौ पांडुकोद्यानं वंदनासक्तमानसः ॥ ८५ ॥

समस्तास्त्रसमेतश्च प्रयत्नान्नलकूबरः । पुरस्यार्चितयद्रक्षामितिकर्तव्यतत्परः ॥ ८६ ॥
योजनानां शतं तुंगप्राकारो विद्यया कृतः । वज्रशाल इतिख्यातः परिधिस्त्रिगुणान्वितः ॥८७॥
रावणेन च विज्ञाय नगरं शत्रुगोचरं । गृहीतं प्रेषितो दंडः प्रहस्तो नाकिनीपतिः ॥ ८८ ॥
निवृत्य रावणायासावाख्यदेव न शक्यते । गृहीतुं तत्पुरं तुंगप्राकारकृतवेष्टनं ॥ ८९ ॥
पश्य दृश्यत एवायं दिक्षु सर्वासु दारुणः । शिखरी विवरी दंष्ट्राकरालास्यशयूपमः ॥ ९० ॥
दह्यमानमिवोदारं कीचकानां घनं वनं । स्फुलिंगराशिदुष्प्रेक्ष्यज्वालाजालसमाकुलं ॥ ९१ ॥
दंष्ट्राकरालवेतालरूपाण्यस्य नरान्बहून् । हरंत्युदारयंत्राणि योजनाभ्यंतरस्थितं ॥ ९२ ॥
तेषांवक्राणि ये प्राप्ता यंत्राणां प्राणिनां गणाः । तेषां जन्मांतरे भूयः शरीरेण समागमः ॥९३॥
इति विज्ञाय कर्तव्यस्त्वया कुशलसंगमः । उपायो विजिगिषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिता ॥ ९४ ॥
निस्सर्पणामरं तावदस्माद्देशाद्विराजते । संशयः परमोप्यत्र दृश्यते दुर्निराकृतः ॥ ९५ ॥
ततः कैलाशकुक्षिस्था दशवक्त्रस्य मंत्रिणः । उपायं चिंतयांचक्रुर्नयशास्त्रविशारदाः ॥ ९६ ॥
अथ रंभागुणाकारा नलकूबरकामिनी । उपरंभेति विख्याता शुश्रावांते दशाननं ॥ ९७ ॥
पूर्वमेव गुणैरक्ता तत्रोत्कंठापरामसौ । जगाम रजनीनाथे यथा कुमुदसंहतिः ॥ ९८ ॥

सखीं विचित्रमालाख्यामेकांते चेत्यभाषत । शृणु सुंदरि कास्त्यन्यसखी प्राणसमा मम ॥ ९९ ॥
समानं ख्यातिं येनातः सखिशब्दः प्रवर्तते । अतो न मे मतेर्भेदं कर्तुमर्हसि शोभने ॥ १०० ॥
नियमात्कुरुषे यस्माद्दक्षे मत्कार्यसाधनं । ततो ब्रवीमि सख्यो हि जीवितालंबनं परं ॥ १०१ ॥
एवमुक्ता जगदासौ किमेवं देवि भाषसे । भृत्याहं विनियोक्तव्या त्वया वांछितकर्मणि ॥ १०२ ॥
न करोमि स्तुतिं स्वस्य साहि लोकेऽतिनिंदिताः । एतावन्तु ब्रवीम्येषा सिद्धिरेवास्मि रूपिणी ॥
वद विस्रब्धिका भूत्वा यत्ते मनसि वर्तते । मयि सत्यां वृथा खेदः स्वामिन्या धार्यते त्वया ॥
उपरंभा ततोवादीन्निश्वस्याहितमंथरं । पद्माभे ? चंद्रमःकांते करे न्यस्य कपोलकम् ॥ १०५ ॥
निष्क्रांतस्तंभितान् वर्णान् प्रेरयंती पुनः पुनः । आरुढपतितं धाण्यें कृच्छान्निदधती मनः १०६.
सखि बाल्यत आरभ्य रावणे मे मनोगतं । लोकावगामिनस्तस्य गुणाः कांता मया श्रुताः १०७
अप्रगल्भतया प्राप्ता साहमप्रियसंगमं । वहामि परमं प्रीतेः पश्चात्तापमनारतं ॥ १०८ ॥
जानामि च तथा नैतत्प्रशस्यमिति रूपिणि । तथापि मरणं सोढुं नास्मि सक्ता सुभाषिते १०९
सोयमासन्नदेशस्थो वर्तते मे मनोहरः । कथंचिदमुना योगं प्रसीद कुरु मे सखि ॥ ११० ॥
एषा नमामि ते पादावित्युक्ता तावदुद्यता । शिरो नमायितं तावत्सख्या तत्संभमाद्धृतं ॥१११॥

वरं स्वामिनि कामं ते साधयामि क्षणादिति । गदित्वा निर्गता गेहाद्दूती ज्ञातांखिलास्थितिः॥
सांभोजीमूतसंकाशसूक्ष्मवस्त्रावगुंठिता । खमुत्पत्य क्षणात्प्राप वसतिं रक्षसां प्रभोः ॥ ११३ ॥
अंतःपुरं प्रविष्टा च प्रतीहार्या निवेदिता । कृत्वा प्रणतिमासीना दत्ते सविनयासने ॥ ११४ ॥
ततो जगाद देवस्य भुवनं सकलं गुणैः । दोषसंगोज्झितैर्व्याप्तं यत्तद्युक्तं तवेदृशः ॥ ११५ ॥
उदारो विभवो यस्ते याचकांस्तर्पयन् भुवि । कारणेनामुना वेद्मि सर्वेषां त्वां हि ते स्थितं ११६
आकारस्यास्य जानामि न ते प्रार्थनभंजनं । भूतिर्भवद्विधानां हि परोपकृतिकारणं ॥ ११७ ॥
स त्वमुत्सारिताशेषपरिवर्गो विभो क्षणं । अवधानस्य दानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ११८ ॥
तथा कृते ततः कर्णे दशवक्त्रस्य सा जगौ । सकलं पूर्ववृत्तांतं सर्ववृत्तांतवेदिनी ॥ ११९ ॥
ततः पिधाय पाणिभ्यां श्रवणौ पुरुषोत्तमः । धुन्वन् शिराश्चिरं चक्षुः संकोचं परमानयत् ॥१२०॥
विचित्रवनितावांछाचिंताखिन्नमतिः क्षणं । बभूव केससीसुनुः सदाचारपरायणः ॥ १२१ ॥
जगाद च स्मितं कृत्वा भद्रे चेतसि ते कथं । स्थितमीदृगिदं वस्तु पापसंगमकारणं ॥ १२२ ॥
ईदृशे याचितेऽत्यंतं दरिद्रः किं करोम्यहं । अभिमानं परित्यज्य तथेदमुदितं त्वया ॥ १२३ ॥
विधवा भर्तृसंयुक्ता प्रमदा कुलबालिका । वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नतः ॥ १२४ ॥

विरोधवदिदं कर्म परत्रेह च जन्मनि । लोकद्वयपरिभ्रष्टः कीदृशो वद मानवः ॥ १२५ ॥
नरांतरमुखक्लेदपूर्णेऽन्यांगविमर्दिते । उच्छिष्टभोजने वक्तुं भद्रे वांछति को नरः ॥ १२६ ॥
मिथो बिभीषणायेदं प्रीत्यानेनाथ वेदितं । नयज्ञः स जगादैवं सततं मंत्रिगणाग्रणीः ॥ १२७ ॥
देव प्रक्रम एवायमीदृशो वर्तते यतः । अलीकमपि वक्तव्यं राज्ञा नयवता सदा ॥ १२८ ॥
तुष्टाभ्युपगमात्किंचिदुपायं कथयिष्यति । उपरंमा परिप्राप्तौ विश्रंभं परमागता ॥ १२९ ॥
ततस्तद्वचनात्तेन दूती छद्मानुगामिना । इत्यभाष्यत तन्नाम भद्रे यदुचितं त्वया ॥ १३० ॥
वराकी मद्गतप्राणा वर्तते सा सुदुःखिता । रक्षणीया ममोदारा भवंति हि दयापराः ॥ १३१ ॥
ततश्चानय तां गत्वा प्राणैर्यावन्न मुच्यते । प्राणिनां रक्षणे धर्मः श्रूयते प्रकटो भुवि ॥ १३२ ॥
इत्युक्ता परिसृष्टा सा गत्वा तामानयत्क्षणात् । आदरश्च महा तस्याःकृतो यमविमर्दिना ॥१३३॥
ततो मदनसंप्राप्तौ सा तेनैवमभाष्यत । दुर्लंघ्यनगरे देवि रंतुं मम परा स्पृहा ॥ १३४ ॥
अटव्यामिह किं सौख्यं किंवा मदनकारणं । तथा कुरु यथैतस्मिन् त्वया सह पुरे रमे ॥१३५॥
ततस्तत्तस्य कौटिल्यमविज्ञाय स्मरातुरा । स्त्रीणां स्वभावमुग्धत्वात्पुरस्यागमनाय सा ॥ १३६ ॥
ददावाशालिकां विद्यां प्राकारत्वेन कल्पितां । व्यंतरैः कृतरक्षाणि नानास्त्राणि च सादरा १३७

अपयातश्च शालोऽसौ विद्यालाभादनंतरं । स्थितं प्रकृतिशालेन केवलेनावृतं पुरं ॥ १३८ ॥
बभूव रावणः साकं सैन्येन महतांतिकः । पुरस्य निंदनं श्रुत्वा क्षुब्धश्च नलकूबरः ॥ १३९ ॥
तमदृष्ट्वा ततः शालं लोकपालो विषादवान् । गृहीतमेव नगरं मेने यक्षविमर्दिना ॥ १४० ॥
तथापि पौरुषं बिभ्रद् योद्धुं समभरेण सः । निष्क्रांतोऽत्यंत विक्रांतः सामंतशतवेष्टितः ॥१४१॥
ततो महति संग्रामे प्रवृत्ते शस्त्रसंकुले । अदृष्टपद्मिनीनाथकिरणे क्रूरनिःस्वने ॥ १४२ ॥
विभीषणेन वेगेन निपात्य नलकूबरः । गृहीतः कूवरं भंक्त्वा स्पंदनस्यांघ्रिताडनात् ॥ १४३ ॥
सहस्रकिरणे कर्म दशवक्त्रेण यत्कृतं । विभीषणेन क्रुद्धेन तत्कृतं नलकूबरे ॥ १४४ ॥
देवासुरभयोत्पादे दक्षं चक्रं च रावणः । त्रिदशाधिपसंबंधि प्रापन्नाम्ना सुदर्शनं ॥ १४५ ॥
उपरंभा दशास्येन रहसीदमथोदिता । विद्यादानाद्गुरुत्वं मे वर्तते प्रवरांगने ॥ १४६ ॥
जीवति प्राणनाथे ते न युक्तं कर्तुमीदृशं । ममापि सुतरामेव न्यायमार्गोपदेशिनः ॥ १४७ ॥
समाश्वास्य ततो नीतो भार्यां तां नलकूबरः । शस्त्रदारितसन्नाहदिष्टविक्षतविग्रहः ॥ १४८ ॥
अनेनैव समं भर्त्रा भुंक्ष्व भोगान् यथेप्सितान् । कामवस्तुनि कोभेदो मम चास्य च भोजने ॥
मलीमसा च मे कीर्तिः कर्मेदं कुर्वतो भवेत् । अपरोऽपि जनः कर्म कुर्वीतेदं मया कृतं ॥१५०॥

सुताकाशध्वजस्यासि संभूता विमले कुले । संजाता मृदुकांतायां शीलं रक्षितुमर्हसि ॥ १५१ ॥
उच्यमानेति सा तेन नितांतं त्रपयान्विता । स्वभर्तरि समं चक्रे मानसं प्रतिबोधिनी ॥१५२॥
व्यभिचारमविज्ञाय कांताया नलकूबरः । रेमे तया समं प्राप्तः सन्मानं दशवक्त्रतः ॥ १५३ ॥
रावणः संयुगे लब्ध्वा परध्वंसात्परं यशः । वर्धमानश्रिया प्राप विजयार्धागिरेर्महीं ॥ १५४ ॥
अभ्यर्णं रावणं श्रुत्वा शक्रः प्रचलितं ततः । देवानास्थानसंप्राप्तान् समस्तानिदमभ्यधात् १५५
विश्वाश्वप्रमुखा देवाः संनह्यंत किमासनं । विश्रब्धं कुरुत प्राप्तः प्रभुरेष स रक्षसां ॥ १५६ ॥
इत्युक्त्वा जनकोदेशं संप्रधारयितुं ययौ । उपविष्टो नमस्कृत्य धरण्यां विनयान्वितः ॥ १५७ ॥
उवाच च विधातव्यं किमस्मिन्नंतरे मया । प्रबलोऽयमरिः प्राप्तः बहुशो विजिताहितः ॥१५८॥
आत्मकार्यविरुद्धोयं तवात्यंतं मया कृतः । अनयः स्वल्प एवासौ प्रलयं यन्न लंभितः ॥१५९॥
उत्तिष्ठतो मुखं भंक्तुमधरेणापि शक्यते । कंटकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुषः ॥ १६० ॥
उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वंसनं सुखं । व्यापीतु बद्धमूलः स्याद्ध्वंस क्षत्रियोऽथवा ॥१६१॥
अनेकशः कृतोद्योगस्तस्यास्मि विनिपातने । निवारितस्त्वया व्यर्थं येन क्षांतिर्मया कृता १६२
नयमार्गं प्रपन्नेन मयेदं तात भाष्यते । मर्यादैषेति पृष्टोऽसि नत्वशक्तोऽस्मि तद्वधे ॥ १६३ ॥

स्मयरोषविमुक्तं तच्छ्रुत्वा वाक्यं सुतेरितं । सहस्रारोऽगदत्पुत्र त्वरावानिति मास्मभूः ॥ १६४ ॥
तावद्विमृश्य कार्याणि प्रवरैः मंत्रिभिः सह । जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणां ॥ १६५ ॥
भवत्यर्थस्य संसिद्ध्यै केवलं च न पौरुषं । कर्षकस्य विना कृष्ट्या कासिद्धिः कर्मयोगिनः १६६
समानमीहमानानां पठतां च समादरं । अर्थभाजोभवंत्येके नापरे कर्मणां वशात् ॥ १६७ ॥
एवं गतेऽपि संधानं रावणेन समं कुरु । तस्मिन् सति जगत्सर्वं विधत्स्वोद्धृतकंटकं ॥ १६८ ॥
रूपिणीं च सुतां तस्मै यच्छ रूपवतीं सुतां । एवं सति न दोषोऽस्ति तथावस्था च राज्यता ॥
विविक्तधिषणेनासाविति पित्रा प्रबोधितः । रोषराशिवशोद्दारशोणचक्षुः क्षणादभूत् ॥ १७० ॥
रोषज्वलनसंतापसंजातस्वेदसंततिः । बभाण भासुरः शक्रः स्फोटयन्निव खं गिरा ॥ १७१ ॥
बध्यस्य दीयते कन्येत्येतत्तात क युज्यते । प्रकृष्टवयसां पुसां धीर्यात्येवाथवा क्षयं ॥ १७२ ॥
वद केनाधरस्तस्मादहं जनक वस्तुना । अत्यंतकातरं वाक्यं येनेदं भाषितं त्वया ॥ १७३ ॥
रवेरपि कृतस्पर्शः पादैर्मूर्ध्नाति खिद्यते । यो मेरुः कथमन्यस्य तुंगः प्रणतिमाचरेत् ॥ १७४ ॥
पौरुषेणाधिकस्तावदेतस्मान्नितरामहं । दैवं तस्यानुकूलं ते कथं बुद्धावस्थितं ॥ १७५ ॥
विजिता बहवोनेन विपक्षा इति चेन्मतिः । हतानेककुरंगं किं शबरो हंति नो हरिं ॥ १७६ ॥

संग्रामे शस्त्रसंपातजातज्वलनजालके । वरंप्राणपरित्यागो नतुप्रतिनरानतिः ॥ १७७ ॥
सोयमिंद्रो दशास्यस्य राक्षसस्यानतिं गतः । इति लोके चहास्यत्वं न दृष्टं ते कथं मया १७८
नभश्चरत्वसामान्यं नच संधानकारणं । वनगोचरसामान्यं यथा सिंहशृगालयोः ॥ १७९ ॥
इति ब्रुवत एवास्य शब्दः पूरितविष्टपः । प्रविष्टः श्रोत्रयोः शत्रुबलजो वासरानने ॥ १८० ॥
ततोपकर्णाभं कृत्वा पितुः सन्नाहमंडपं । गत्वा सन्नाहसंज्ञार्थं तूर्यं तारमवीवदत् ॥ १८१ ॥
उपाहर गजं शीघ्रं सप्तिं पर्याणय द्रुतं । मंडलाग्रमितो देहि पटु चाहर कंटकं ॥ १८२ ॥
धनुराहर धावस्व शिरस्त्राणमितः कुरु । यच्छार्धबाहकां क्षिप्रं देहि सायकपुत्रिकां ॥ १८३ ॥
चेट यच्छ समायोगं सज्जमाशु रथं कुरु । एवमादि कृतारावं सुरलोकश्चलोऽभवत् ॥ १८४ ॥
अथ क्षुब्धेषु वीरेषु रटत्सु पटहेषु च । तुंगरणत्सु शंखेषु सांद्रं गर्जत्सु दंतिषु ॥ १८५ ॥
मुंचत्सु दीर्घहुंकारं स्पष्टनेत्रेषु सप्तिषु । संक्रीडत्सु रथौघेषु ज्याजाले पटु गुंजति ॥ १८६ ॥
भटानामट्टहासेन जयशब्देन वादिनां । अभूत्तदा जगत्सर्वं शब्देनेव विनिर्मितं ॥ १८७ ॥
असिभिस्तोमरैः पाशैर्ध्वजैश्छत्रैः शरासनैः । ककुभश्छादिताः सर्वा प्रभावोपहृतो रवेः ॥१८८॥
निष्क्रांताश्च सुसंनद्धाः सुरा रभसरागिणः । गोपुरे कृतसंघट्टा घंटाभिर्वरदंतिनां ॥ १८९ ॥

स्यंदनं परतो देहि प्राप्तोयं मत्तवारणः । आधोरणगजं देशादस्मात्सारय सत्वरं ॥ १९० ॥
स्तंभितोसीह किं सादिंनयाश्वंद्रुतमग्रतः । मुंच मुग्धे निवर्तस्व कुरु मा मां समाकुलं ॥ १९१ ॥
एवमादिसमालापाः सत्वरा मंदिरात्सुराः । निष्क्रांता गर्भनिर्मुक्तसुतारभटगर्जिताः ॥ १९२ ॥
आलीने च यथा जातप्रतिपक्षं चमूमुखे । विषमाहत तूर्येण परमुत्साहमाहते ॥ १९३ ॥
ततो राक्षससैन्यस्य मुखभंगः सुरैः कृतः । मुंचद्भिः शास्त्रसंघातमंतर्हितनभस्तलं ॥ १९४ ॥
सेनामुखावसादेन कुपिता राक्षसास्ततः । अध्यूषुः पृतनावक्त्रं निजमूर्जितविक्रमाः ॥ १९५ ॥
वज्रवेगः प्रहस्तोथ हस्तो मारीच उद्भवः । वज्रवक्रः शुको घोरः सारणो गगनोज्वलः ॥१९६॥
महाजठरसंध्याभ्रक्रूरप्रभृतयस्तथा । सुसंबद्धा सुपानाश्च सुशास्त्राश्च पुरस्थिताः ॥ १९७ ॥
ततस्तैरुत्थितैः सैन्यं सुराणां क्षणमात्रतः । कृतं विहितवित्रस्तं शस्त्रसंघातशत्रुकं ॥ १९८ ॥
भज्यमानं ततः सैन्यवक्त्रं दृष्ट्वा महासुराः । उत्थिता योद्धुमत्युग्रकोपापूरितविग्रहाः ॥ १९९ ॥
मेघमाली तडित्पिंगो ज्वलिताक्षोऽरिसंज्वरः । पावकस्पंदनाद्याश्च सुराः प्रकटतां ययुः ॥२००॥
उत्थाय राक्षसास्तैस्ते मुंचद्भिः शस्त्रसंहतिं । अवष्टब्धाः समुद्भूततीव्रकोपातिभासुरैः ॥ २०१ ॥
ततो भंगं परिप्राप्ताश्चिरं कृतमहाहवाः । प्रत्येकं राक्षसा देवैर्बहुभिः कृतवेष्टनाः ॥ २०२ ॥

आवर्तेष्विव निक्षिप्ता राक्षसा वेगशालिषु । बभ्रमुर्विगलच्छस्त्रशिथिलास्थितपाणयः ॥ २०३ ॥
परावृत्ताथाप्यन्ये राक्षसा मानशालिनः । प्राणानभिमुखीभूता मुंचंति न तु सायकान् ॥२०४॥
ततो वसादनाङ्गंगं दृष्ट्वा तद्रक्षसां बलं । सूनुर्महेंद्रसेनस्य कपिकेतोर्महाबलः ॥ २०५ ॥
दक्षः प्रसन्नकीर्त्याख्यां धारयन्नर्थसंगतां । त्रासयन् द्विषतां सैन्यं जन्यस्य शिरसि स्थितं ॥२०६॥
रक्षता बलमात्मीयं तेन तत्रेदृशं बलं । शरैः पराङ्मुखं चक्रे निष्क्रामद्भिरनंतरं ॥ २०७ ॥
अतिमात्रं ततो भूरिविजयाधिनिवासिनां । सैन्यं प्राप्तं महोत्साहं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलं ॥ २०८ ॥
दृष्ट्वैव कपिलक्ष्म्यास्य ध्वजे छत्रेण भीषणं । अवाप मानसे भेदं विजयार्धाद्रिजंबलं ॥ २०९ ॥
तत्तेन विशिखैः पश्चात्स्फुरत्तेजःशिखैः क्षणात् । भिन्नं कुतीर्थहृदयं यथा मन्मथविभ्रमैः ॥२१०॥
ततोन्यदपि संप्राप्तं सैन्यं त्रिदशगोचरं । कनकासिगदाशक्तिचापमुद्गरसंकुलं ॥ २११ ॥
ततोऽतंराल एवातिवीरो माल्यवतः सुतः । श्रीमालीतिप्रतीतात्मा पुरोस्य समवस्थितः ॥२१२॥
तेन ते क्षणमात्रेण सुराः सूर्यसमत्विषः । कनीता इति न ज्ञाता मुंचता शरसंहतीः ॥ २१३ ॥
दृष्टा तमभ्रमित्रीणभनिवार्यैरयं ततः । क्षोभयंतं द्विषां सैन्यं महाग्राहमिवार्णवं ॥ २१४ ॥
मत्तद्विपेंद्रसंघट्टघटितारातिमंडलं । करवालकरोदार भटमंडलमध्यगं ॥ २१५ ॥

अमी समुत्थिता देवा निजं पालयितुं बलं । महाक्रोधपरीतांगाः समुल्लासितहेतपः ॥ २१६ ॥
शिखिकेसरिदंडोग्रकनक प्रवरादयः । छादयंतो नभो दूरं प्रावृषेण्या इवांबुदाः ॥ २१७ ॥
स्वश्रीयाश्च सुरेंद्रस्य मृगचिह्नादयोऽधिकं । दीप्यमाना रणोद्भूततेजसा सुमहाबलाः ॥ २१८ ॥
ततः श्रीमालिना तेषां शिरोभिः कमलैरिव । सशैवलैर्मही छन्ना चित्रचंद्रार्धसायकैः ॥ २१९ ॥
अचिंतयत्ततः शक्रो येनैते नरपुंगवाः । कुमाराः क्षयमानीताः सममेभिर्वरैः सुरैः ॥ २२० ॥
तस्याम्य को रणे स्थातुं पुरोवांछेद्दिवौकसां । राक्षसस्य महातेजो दुरीक्षस्यातिवीर्यवान् ॥२२१॥
तस्मादस्य स्वयं युद्धश्रद्धाध्वंसं करोम्यहं । अपरानमरान्यावन्नयते नैष पंचतां ॥ २२२ ॥
इति ध्वात्वा समाश्वास्य बलं स त्रासकंपितं । योद्धुं समुद्यतो यावत्त्रिदशानामधीश्वरः ॥२२३॥
निपत्य पादयोस्तावज्जनस्पृष्ट महीतलः । तमुवाच महावीरो जयंत इति विश्रुतः ॥ २२४ ॥
सत्येव मयि देवेंद्र करोषि यदि संयुगं । ततो भवत्कृतं जन्म त्वया मम निरर्थकं ॥ २२५ ॥
बालकोऽके जनत्क्रीडां पुत्रप्रीत्या यदीक्षितः । त्वयाहं फलमेतस्य जनयामि तवाधुना ॥२२६॥
सत्वं निराकुलो भूत्वा तिष्ठ तात यथेक्षितं । शत्रून् क्षणेन निश्शेषानयं व्यापादयाम्यहं ॥२२७॥
नखेन प्राप्यते छेदं वस्तु यत्स्वल्पयत्नतः । व्यापारः परशोस्तत्र ननु तात निरर्थकः ॥ २२८ ॥

वारयित्वेत्यसौ तातं संयुगाय समुद्यतः । कोपावेशाच्छरीरेण ग्रसमान इवांबरं ॥ २२९ ॥
प्रतिश्रीमालि चायासीदायासपरिवर्जितः । गुप्तः पवनवेगेन सैन्येनोज्वलहेतिना ॥ २३० ॥
श्रीमाली चापि संप्राप्तं चिराद्योग्यं प्रतिद्विषं । दृष्ट्वा तुष्टो दधावास्य संमुखं सैन्यमध्यगः २३१
अमुंचतां ततः क्रुद्धौ शरासारं परस्परं । कुमारौ स तदाकृष्ट दृष्टकोदंडमंडलौ ॥ २३२ ॥
तयोः कुमारयोर्युद्धं निश्चलं पृतनीद्वयं । ददर्श विस्मयप्राप्तमानसं रेखया स्थितं ॥ २३३ ॥
कनकेन ततो भित्वाजयंतो विरथीकृतः । श्रीमालिना स्वसैन्यस्य कुर्वता शर्मदं परं ॥ २३४ ॥
मूर्छया पतिते तस्मिन् स्ववर्गस्यापतन्मनः । मूर्छायाश्च परित्यागादुत्थिते पुनरुत्थितं ॥ २३५ ॥
आहत्य भिंडिमालेन जयंतेन ततः कृतः । श्रीमालिर्विरथो रोषात्प्रहारेणातिवर्धितान् ॥२३६॥
ततः परबले तोषनिर्घोषोनिर्गतो महान् । निजे च यातुधानस्य समाक्रंदध्वनिर्बभौ ॥ २३७ ॥
गतमूर्छस्तु संक्रुद्धः श्रीमाली भृशभीषणः । किरन् प्रहरणव्रातं जयंताभिमुखो ययौ ॥ २३८ ॥
मुंचंतौ हेतिजालं तौ कुमारौ रेजतुस्तरां । सिंहार्भकाविवोद्भूत दीप्तकेसरसंचयौ ॥ २३९ ॥
ततो माल्यवतः पुत्रः सुरराजस्य सूनुना । स्तनांतरे हतो गाढं गदया पतितो भुवि ॥ २४० ॥
वदनेन ततो रक्तं विमुंचन् धरणीं गतः । अस्तंगत इवाभाति कमलाकरबांधवः ॥ २४१ ॥

हृतः श्रीमालिकः प्राप्य रथं वासवनंदनः । दध्मौ शंखं मुदा भीता राक्षसाश्च विदुद्रुवुः ॥२४२॥
माल्यवत्तनयं दृष्ट्वा ततो निर्गतजीवितं । जयंतं च सुसन्नद्धं तोषमुक्तभटस्वनं ॥ २४३ ॥
आश्वासयन्निजं सैन्यं पलायनपरायणं । इंद्रजित्संमुखीभूतो जयंतस्योत्कटो रुषा ॥ २४४ ॥
ततोऽभिभवने सक्तं जनानां तं कलिं यथा । जयंतमिंद्रजिच्चक्रे जर्जरं वर्मवच्छरैः ॥ २४५ ॥
दृष्ट्वा च छिन्नवर्माणं रुधिरारुणविग्रहं । जयंतं शरसंघातैः प्राप्तं सलिलतुल्यतां ॥ २४६ ॥
अमरेंद्रः स्वयं योद्धुमुत्थितश्छादयन्नभः । नीरंध्रं वाहनैरुग्रैरायुधैश्च चलत्करैः ॥ २४७ ॥
अवादीत्सारथिश्चैवं रावणं सन्मतिश्रुतिः । अयं स देव संप्राप्तः स्वयं नाथो दिवौकसां ॥२४८॥
चक्रेण लोकपालानां परितः कृतपालनः । मत्तैरावतपृष्टस्थो मौलिरत्नप्रभावृतः ॥ २४९ ॥
पांडुरेणोपरिस्थेन छत्रेणावृतभास्करः । क्षुब्धेन सागरेणेव सैन्येन कृतवेष्टनः ॥ २५० ॥
महाबलोयमेतस्य कुमारो नोचितो रणे । उद्यच्छस्वयमेव त्वं जहि शत्रोरहंयुतां ॥ २५१ ॥
ततोऽभिमुखमायांतं दृष्ट्वाखंडलमूर्जितं । संस्मृत्य मालिमरणं श्रीमालिवधदीपितः ॥ २५२ ॥
दृष्ट्वा च शत्रुभिः पुत्रं वेष्ट्यमानं समंततः । दधाव रावणः क्रोधाद्रथेनानिलरंहसा ॥ २५३ ॥
भटानामभवद्युद्धमेतयोरोमहर्षणं । तुमुलं शस्त्रसंघातघनध्वांतसमावृतं ॥ २५४ ॥

ततः शस्त्रकृतध्वांते रक्तनीहारवर्तिनि । अज्ञायंत भटाः शूरास्तारारावेण केवलं ॥ २५५ ॥
प्रेरिताः स्वामिनो भक्त्या पूर्वमारवचोदिताः । प्रहारोत्थेन कोपेन भटा युयुधिरे भृशं ॥२५६॥
गदाभिः शक्तिभिः कुंतैर्मुशलैरसिभिः शरैः । परिघैः कनकैश्चक्रैः करवालिभिरंघ्रिपैः ॥ २५७ ॥
शूलैः पाशैर्भुषंडीभिः कुठारैर्मुद्गरैर्घनैः । ग्रावभिर्लांगलैर्दंडैः कौणैः सायकवेणुभिः ॥ २५८ ॥
अन्यैश्च विविधैः शस्त्रैरन्योन्यच्छेदकारिभिः । करालमभवद्व्योम तदाघातोत्थितानलं ॥२५९॥
क्वचिद्ग्रसदिंते ध्वानो भवत्यन्यत्र शूदिति । क्वचिद्रणरणारावः क्वचित्किणिकिणिस्वनः२६०
त्रपत्रपायतेन्यत्र तथा दमदमायते । छमाछमायतेऽन्यत्र तथा पटपटायते ॥ २६१ ॥
छल छलायतेऽन्यत्र टद्दटद्दायते तथा । तटत्तटायतेऽन्यत्र तथा चटचटायते ॥ २६२ ॥
घग्घग्घग्घायतेऽन्यत्र रणं शस्त्रोत्थितैः स्वरैः । शब्दात्मकमिवोद्भूतं तदा त्वजिरमंडलं ॥२६३॥
हन्यते वाजिना वाजी वारणेन मतंगजः । तत्रस्थेन च तत्रस्थो रथेन ध्वस्यते रथः ॥ २६४ ॥
पदातिभिः समं युद्धं कर्तुं पादातमुद्यतं । यथा पुरोगतैकैकभटपाटनतत्परं ॥ २६५ ॥
गजमुत्कृतनिस्सर्पच्छीकराकारसंहतिः । शस्त्रपातसमुद्भूतधूमकेतुमशीशमत् ॥ २६६ ॥
प्रतिमा गुरवो दंता भ्रष्टा अपि गजाननात् । पतंतः कुर्वते भेदं भटपंक्तेरधोमुखाः ॥ २६७ ॥

प्रहारं मुंच भो शूर माभूः पुरुष कातरः । प्रहारं भट सहासेः सहस्व मम सांप्रतं ॥ २६८ ॥
अयं मृतोऽसि मां प्राप्य गतिस्तव कुतोधुना । दुःशिक्षित न जानासि गृहीतुमपि सायकं २६९
रक्षात्मानं व्रजाम्युष्माद्रणकंडूर्मुधा तव । कंडूरेव न मे भ्रष्टा क्षतं स्वल्पं त्वया कृतं ॥ २७० ॥
मुधैव जीवनं भुक्तं पांडुकेन प्रभोस्त्वया । किं गर्जसि फले व्यक्तिर्भटतायाः करोम्यहं ॥२७१॥
किं कंपसे भव स्थैर्यं गृहाण त्वरितं शरं । दृढमुष्टिं कुरुखंसं खड्गोयं तव यास्यति ॥ २७२ ॥
एवमादि समालापाः परमोत्साहवर्तिनां । भटानामाहवे जाताः स्वामिनामग्रतो मुहुः ॥२७३॥
अलसः कस्यचिद्बाहुराहतो गदया द्विषः । बभूव विशदोत्संतं क्षणनर्तनकारिणः ॥ २७४ ॥
प्रयच्छत्प्रतिपक्षस्य साधुकारं मुहुः शिरः । पपात कस्यचिद्वेगनिष्क्रामद्भूरिशोणितं ॥ २७५ ॥
अभिद्यत शरैर्वक्षो भटानां नतु मानसं । शिरः पतात नो मानः कांतो मृत्युर्न जीवितं ॥२७६॥
कुर्वाणा यशसो रक्षां दक्षा वीरा महौजसः । भटाः संकटमायाता प्राणान् शस्त्रभृतोऽमुचन्॥२७७॥
म्रियमाणो भटः कश्चिच्छत्रुमारणकांक्षया । पपात देहमाक्रम्य रिपोः कोपेन पूरितः ॥ २७८ ॥
च्युते शस्त्रांतराघाताच्छस्त्रे कश्चिद्भटोत्तमः । मुष्टिमुद्गरघातेन चक्रे शत्रुं गतासुकं ॥ २७९ ॥
आलिंग्य मित्रवत्कश्चिद्दोर्भ्यां गाढं महाभटः । चकार विगलद्रक्तधारं शत्रुं विजीवितं ॥ २८० ।

कश्चिच्चकार पंथानमृजुं निघ्नन्भटावलिं । समरे पुरुषैरन्यैर्भयादकृतसंगमं ॥ २८१ ॥
पतंतोऽपि न पृष्ठस्य दर्शनं भटसत्तमाः । वितेरुः प्रतिपक्षस्य गर्वोत्तानितवक्षसः ॥ २८२ ॥
अश्वै रथैर्भटैर्नागैः पतद्भिरतिरंहसा । अश्वा रथा भटा नागा न्यपात्यंत सहस्रशः ॥ २८३ ॥
रजोभिः शस्त्रनिक्षेपसमुद्भूतैः सशोणितैः । दानांभसा च संच्छन्नं शक्रचापैरभून्नभः ॥ २८४ ॥
कश्चित्करेण संरुद्ध वामेनांत्राणि सद्भटः । तरसा खड्गमुद्यस्य ययौ प्रत्यरिभीषणः ॥ २८५ ॥
कश्चिन्निजैः पुरीतद्भिर्वद्धा परिकरं दृढं । दष्टोऽष्ठोभिययौ शत्रुं दृष्टाशेषकनीनिकाः ॥ २८६ ॥
कश्चित्कीलालमादाय निजं रोषपरायणः । कराभ्यां द्विषतो मूर्ध्नि चिक्षेप गलितायुधः ॥२८७॥
गृहीत्वा कीकसं कश्चिन्निजं छन्नमरातिना । डुढौके तं गलद्रक्तधारांशुकविराजितः ॥ २८८ ॥
पाशेन कश्चिदानीय रिपुं युद्धसमुत्सुकः । मुमोच दूरनिर्मुक्तं रणसंभवसंभ्रमः ॥ २८९ ॥
कश्चिच्च्युतायुधं दृष्ट्वा प्रतिपक्षमनिच्छया । डुढौके शस्त्रमुज्झित्वा न्याय्यसंग्रामतत्परः ॥ २९० ॥
पिनाकाननलग्नेन रिपून् कश्चित्प्रतिद्विषा । जघान घनकीलालधारानिकरवर्षिणा ॥ २९१ ॥
कश्चित्कबंधतां प्राप्तः शिरसा स्फुटरंहसा । मुंचंस्तं दिशि कीलालं प्रतिपक्षमताऽयत् ॥ २९२ ॥
कृतोऽपि कस्यचिन्मूर्द्धा गर्वनिर्भरचेतसः । दष्टदंतच्छदोपप्तद्धुंकारमुखरश्चिरं ॥ २९३ ॥

अन्येनाशीविषेणेव पतताऽत्यंतभीषणा । दृष्टिरुल्कानिभाक्षेपि प्रतिपक्षस्य विग्रहे ॥ २९४ ॥
अर्धकृत्तं शिरोऽन्येन धृत्वा वामेन पाणिना । पातितं प्रतिपक्षस्य शिरो विक्रमशालिना॥२९५॥
कश्चिद्विक्षिप्य कोपेन शस्त्रमप्राप्तशत्रुकं । हंतुं परिघतुल्येन बाहुनेव समुद्यतः ॥ २९६ ॥
अरातिं मूर्छितं कश्चित्सिषेच स्वासृजा भृशं । शीतीकृतेन वस्त्रांतवायुना संभ्रमान्वितः ॥२९७॥
विश्रांतं मूर्छया शूरैः शस्त्रघातैः सुखायितं । मरणेन कृतार्थत्वं मेने कोपेन कंपितः ॥ २९८ ॥
एवं महति संग्रामे प्रवृत्ते भीतिभीषणे । भटानामुत्तमानंदसंपादनपरायणे ॥ २९९ ॥
गजनासासमाकृष्टवीरकल्पिततत्करे । जवनाश्वखुराघातपतत्तत्कर्तनोद्यते ॥ ३०० ॥
सारथिप्रेरणात्कृष्टरथवीक्षितवाजिनि । जंघावष्टंभसंक्रांतक्षतकुंभमहागजे ॥ ३०१ ॥
परस्परजवाघातदलत्पादातविग्रहे । भटोत्तमकराकृष्टपुच्छनिस्यंदवाजिनि ॥ ३०२ ॥
कराघातदलत्कुंभिकुंभनिष्ठ्यूतमौक्तिके । पतन्मातंगनिर्भग्नरथाहतपतद्भटे ॥ ३०३ ॥
कीलालपटलच्छन्नगगनाशाकदंबके । गजकर्णसमुद्भूततीव्राकुलसमीरणे ॥ ३०४ ॥
उवाच सारथिं वीरः सुमतिं कैकसीसुतः । न किंचिदिवमन्वानो रणं रणकुतूहली ॥ ३०५ ॥
तस्यैव शक्रसंज्ञस्य संमुखो वाह्यतां रथः । असमानैः किमत्रान्यैः सामंतैस्तस्यमारितैः ॥ ३०६ ॥

तृणतुल्येषु नामीषु मम शस्त्रं प्रवर्तते । मनश्च सुमहावीरग्रासग्रहणघस्मरं ॥ ३०७ ॥
आखंडलत्वमस्याद्य कृतं क्षुद्राभिमानतः । करोमि मृत्युना दूरं स्वविडंबनकारिणः ॥ ३०८ ॥
अयं शक्रो महानेते लोकपालाः प्रकल्पिताः । अन्ये च मानुषा देवा नाकश्च धरणीधरः ॥३०९॥
अहो लोकापहासस्य मत्तस्य क्षुद्रया श्रिया । आत्मा विस्मृत एवास्य भुकुंशस्येव दुर्मतेः ॥३१०॥
शुक्रशोणितमांसास्थिमज्जादिघटिते चिरं । उषित्वा जठरेपापस्त्रिदशंमन्यतां गतः ॥ ३११ ॥
विद्याबलेन यत्किंचित्कुर्वाणोधैर्यदुर्विधः । एष देवायते ध्वांक्षो वैनते यायते यथा ॥ ३१२ ॥
एवमुक्तेन शक्रस्य बलं सम्मतिना रथः । प्रवेशितो महाशूरः सामंतः परिपालितः ॥ ३१३ ॥
पश्यन्निंद्रस्य सामंतान् युद्धाशक्तपलायितान् । ऋजुना चक्षुषा राजा कीटकोपमचेष्टितान् ३१४
अशक्यः शत्रुभिर्धर्तुं कूलैः पूरो यथांभसः । चेतोवेगश्च सक्रोधो मिथ्यादृष्टिव्रताश्रितैः ॥३१५॥
दृष्ट्वातपत्रमेतस्य क्षीरोदावर्तपांडुरं । नष्टं सुरबलं क्वापि तमश्चंद्रोदये यथा ॥ ३१६ ॥
इंद्रोऽपि गजमारूढः कैलाशगिरिसन्निभं । शरं समुद्धरस्तूणादभीयाय दशाननं ॥ ३१७ ॥
शरानाकर्णमाकृष्टान् चिक्षेप च यमद्विषि । महीधर इवांभोदः स्थूलधारामहाचयं ॥ ३१८ ॥
दशवक्त्रोऽपि तां बाणैराच्छिदंतरवर्तिनः । ततस्तैर्गगनं चक्रे निखिलं मंडपाकृति ॥ ३१९ ॥

आच्छिद्यंत शरा बाणैरभिद्यंत च भूरिशः । भ्रांता इव रवेः पादाः क्वापि नष्टा निरन्वयाः३२०
अंतरेऽस्मिन्नवद्वारगतिनिस्सारगोचरं । ननर्त कलहप्रेक्षासंभूतपुरुसंमदः ॥ ३२१ ॥
असाध्यं प्रकृतास्त्राणां ततो ज्ञात्वा दशाननं । निक्षिप्तमस्त्रमाग्नेयं नाथेन स्वर्गवासिनां ॥३२२॥
इंधनत्वं गतं तस्य खमेव विततात्मनः । धनुरादौ तु किं शक्यं वक्तुं पुद्गलवस्तुनि ॥ ३२३ ॥
कीचकानामिवोदारो दह्यमाने वने ध्वनिः । ज्वालावलीकरालस्य संबभूवाशुशुक्षणेः ॥ ३२४ ॥
ततस्तेनाकुलं दृष्ट्वा स्वबलं कैकसीसुतः । चिक्षेप क्षेपनिर्मुक्तमस्त्रं वरुणलक्षितं ॥ ३२५ ॥
तेन क्षणसमुद्भूत महाजीमूतराशिना । पर्वतस्थूलधारौघवर्षिणा रावशालिना ॥ ३२६ ॥
रावणस्येव कोपेन विलीनेन विहायसा । क्षणात्तद्धूमलक्ष्मांसं विध्यापितमशेषतः ॥ ३२७ ॥
सुरेंद्रेण ततोऽसर्जि तामसास्त्रं समंततः । तेनांधकारिता चक्रे ककुभां नभसा समं ॥ ३२८ ॥
ततस्तेन दशास्यस्य विततं सकलं बलं । स्वदेहमपि नापश्यत्कुतः शत्रोरनीकिनीं ॥ ३२९ ॥
ततो निजबलं मूढं दृष्ट्वा रत्नश्रवःसुतः । प्रभास्त्रममुचत्कालवस्त्रयोजनकोविदः ॥ ३३० ॥
तेन तन्निखिलं ध्वांतं विध्वस्तं क्षणमात्रतः । जिनशासनतत्त्वेन मतं मिथ्यादृशामिवः ॥ ३३१ ॥
ततोयमविमर्देन कोपान्नागास्त्रमुज्झितं । वितेने गगनं तेन भोगिनीरत्नभासुरैः ॥ ३३२ ॥

कामरूपधृतो बाणास्ते गत्वा वृत्रविद्विषः । चेष्टया रहितं चक्रुः शरीरं कृतवेष्टनाः ॥ ३३३ ॥
महानीलनिभैरेनिर्वलयाकारधारिभिः । जगामाकुलतां शक्रश्चलद्रसनभीषणैः ॥ ३३४ ॥
प्रययावस्वतंत्रत्वं कुलिशी व्यालचेष्टितः । वेष्टितः कर्मजालेन यथाजंतुर्भवोदधौ ॥ ३३५ ॥
गरूडास्त्रं ततो दध्यौ सुरेंद्रस्तदनंतरं । हेमपक्षप्रभाजालैः पिंगतां गगनं गतं ॥ ३३६ ॥
पक्षवातेन तस्याभून्निर्तांतोदाररंहसा । दोलारूढमिवाशेषं प्रेक्षणप्रवणं बलं ॥ ३३७ ॥
स्पृष्टा गरुडवातेन न ज्ञाता नागसायकाः । क्व गता इति विस्पष्टबंधस्थानोपलक्षिताः ॥३३८॥
गरुत्मता कृताश्लेषो बंधलक्षणवर्जितः । बभूव दारुणः शक्रो निदाघरविसन्निभः ॥ ३३९ ॥
विमुक्तं शक्रजालेन दृष्ट्वा शक्रं दशाननः । आरूढस्त्रिजगद्भूषं क्षरद्दानं जगद्द्विषं ॥ ३४० ॥
शक्रोप्यैरावतं रोषादस्यात्यासन्नमानयत् । ततो महदभूद्युद्धं दंतिनोः पुरदर्पयोः ॥ ३४१ ॥
क्षरद्दानौ स्फुरद्धेमकक्षविद्युद्गुणान्वितौ । दधतुस्तौ घनाकारं सांद्रगर्जितकारणौ ॥ ३४२ ॥
परस्पररदाघातनिर्घातैरिव दारुणैः । पतद्भिर्भुवनं कंपं प्रययौ शब्दपूरितं ॥ ३४३ ॥
पिंडयित्वा स्थवीयांसौ करौ चपलविग्रहौ । पुनः प्रसारयंतौ च ताडयंतौ महारयौ ॥ ३४४ ॥
दंतिनौ दृष्टविस्पष्टतारकाक्रूरवीक्षणौ । चक्रतुः सुमहद्युद्धं स्तब्धकर्णौ महाबलौ ॥ ३४५ ॥

तत उत्पत्य विन्यस्य पादमिंद्रेभमूर्धनि । नितांतं लाघवोपेतपादनिर्धूतसारथिः ॥ ३४६ ॥
बद्धांशुकेन देवेंद्रं मुहुराश्वासयद्विभुः । आरोपयद्यमध्वंसो निजं वाहनमूर्जितः ॥ ३४७ ॥
राक्षसाधिपपुत्रोऽपि गृहीत्वा वासवात्मजं । समर्प्य किंकरौघस्य सुरसैन्यस्य संमुखं ॥ ३४८ ॥
धावमानो जयोद्भूतमहोत्साहपरं तपः । उक्तो द्विषंतपेनैवं मरुत्तमखविद्विषा ॥ ३४९ ॥
अलं वत्स प्रयत्नेन निवर्तस्व रणादरात् । शिरोगृहीतमेतस्याः सेनाया गिरिवासिनां ॥ ३५० ॥
गृहीतेऽस्मिन् परिस्पंदमत्र कः कुरुते परः । क्षुद्रा जीवंतु सामंता गच्छंतु स्थानमीप्सितं॥३५१॥
तंदुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापतः । त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद्विना ॥ ३५२ ॥
इत्युक्तः समरोत्साहादिंद्रजिद्विनिवर्तनं । चक्रे चक्रेण महता नृपाणां बद्धमंडलः ॥ ३५३ ॥
ततः सुरबलं सर्वं विशीर्णं क्षणमात्रतः । शारदानामिवाब्दानां वृंदमत्यंतमायतं ॥ ३५४ ॥
सैन्येन दशवक्त्रस्य जयशब्दो महान्कृतः । पटुभिः पटलैः शंखैर्झर्झरैर्वृंदिनां गणैः ॥ ३५५ ॥
शब्देन तेन विज्ञाय गृहीतममराधिपं । सैन्यं राक्षसनाथस्य बभूवाकुलितोज्झितं ॥ ३५६ ॥
ततः परमया युक्तो विभूत्या कैकसीसुतः । प्रतस्थे निर्वृतो लंकां साधनाच्छांदितांबरः॥३५७॥
आदित्यरथसंकाशैरथैर्ध्वजविराजितैः । नानारत्नकरोद्भूतशुनासीरशरासनैः ॥ ३५८ ॥

तुरंगैश्चंचलच्चारुचामरालीविभूषितैः । नृत्यद्भिरिव विस्रब्धकृतविभ्रमहारिभिः ॥ ३५९ ॥
महानिनदसंघट्टैः प्रवृत्तमदनिर्झरैः । गर्जद्भिर्मधुरं नागैः षट्पदालीनिषेवितैः ॥ ३६० ॥
अनुयानसमारूढैर्महासाधनखेचरैः । उपकंठं क्षणात्प्राप लंकायां राक्षसाधिपः ॥ ३६१ ॥
ततो दृष्ट्वा समासन्नं गृहीतार्घा विनिर्ययुः । पुरस्य पालकाः पौरा बांधवाश्च समुत्सुकाः ॥३६२॥
कृतपूजनस्ततः कैश्चित्केषांचित्कृतपूजनः । नम्यमानोपरैः कांश्चित्प्रणमन्मदवर्जितः ॥ ३६३ ॥
दृष्ट्या सन्मानयन् कांश्चित्स्निग्धया नतवत्सलः । स्मितेन कांश्चिद्वाचान्यान् परिज्ञातजनांतरः३६४
मनोहरां निसर्गेण विशेषणविभूषितां । समुच्छ्रितसमुत्तुंगरत्ननिर्मिततोरणां ॥ ३६५ ॥
मंदानिलविधूनांतबहुवर्णध्वजाकुलां । कुंकुमादिमनोज्ञांबुसिक्तनिश्शेषभूतलां ॥ ३६६ ॥
सर्वर्तुकुसुमव्याप्तराजमार्गविराजितां । अनेकभक्तिभिः पंचवर्णैश्चूर्णैरलंकृतां ॥ ३६७ ॥
द्वारदेशसुविन्यस्तपूर्णकुंभां महाद्युतिं । सरसैः पल्लवैर्बद्धमालां वस्त्रविभूषितां ॥ ३६८ ॥
वृतो विद्याधरैर्देवैर्यथेंद्रोऽत्यंतभूरिभिः । सुखमासादयन् प्राज्यं पूर्वोपार्जितकर्मणा ॥ ३६९ ॥
आरूढः परमे कांति पुष्पके कामगामिनि । स्फुरन्मौलिमहारत्नकेयूरधरसद्भुजः ॥ ३७० ॥
दधानो वक्षसा हारं प्रस्फुरद्विमलप्रभं । वसंत इव संजातकुसुमौघविराजितः ॥ ३७१ ॥

वितृप्तिहर्षपूर्णाभिर्वधूभिः कृतवीक्षणः । स्वयं मृदुसमुद्भूतचामरामिः ससंभ्रमं ॥ ३७२ ॥
नानावादित्रशब्देन जयशब्देन चारुणा । आनंदितसुवेश्याभिर्नृत्यंतीभिः समन्वितः ॥ ३७३ ॥
प्रविष्टो मुदितो लंकां समुद्भूतमहोत्सवां । भवनं च निजं बंधूभृत्यवर्गाभिनंदितः ॥ ३७४ ॥
सुसन्नद्धान् जित्वा तृणामिव समस्तानरिगणान् । पुरोपात्तात्पुण्यात्समधिगतसुप्राज्यविभवो ॥
क्षयं प्राप्ते तस्मिन्विगतरुचिप्रभ्रष्टविभवो । बभूवासौ शक्रोधिगतिचपलं मानुषसुखं ॥ ३७५ ॥
असौ प्राप्तो वृद्धिं दशमुखखगः पूर्वचरिता च्छुभान्निर्धूयालं प्रबलमहितव्रातमखिलं ॥
इति ज्ञात्वा भव्या जगति निखिलं कर्मजनितं । विमुक्तान्यासंगा रविरुचिकरं यातु सुकृतं ३७६

इत्यर्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते इंद्रपराभवाभिधानं नाम द्वादशं पर्व ।

त्रयोदशं पर्व ।

ततः शक्रस्य सामंताः स्वामिदुःखसमाकुलाः । पुरस्कृतसहस्रारा प्राप्ता रावणमंदिरं ॥ १ ॥
प्रविष्टाश्च प्रतीहारज्ञापिता विनयान्विताः । प्रणाम्य च स्थिता दत्तेष्वासनेषु यथोचितं ॥ २ ॥

दृष्टोऽथ गौरवेणोच्चे सहस्रारो दशाननं । जितस्तातस्त्वया शक्रो मुंचेदानीं गिरा मम ॥ ३ ॥
बाहोः पुण्यस्य चोदात्तं सामर्थ्यं दर्शितं त्वया । परगर्वावसादं हि समीहंते नराधिपाः ॥ ४ ॥
इत्युक्ते लोकपालानां वदनेभ्यः समुत्थितः । शब्दोयमेव विस्पष्टः प्रतिनिस्वनसन्निभः ॥ ५ ॥
लोकपालानथोवाच विहस्योद्भासितांतकः । समयोऽस्ति विमुंचामि येन नाथं दिवौकसां ॥ ६ ॥
अद्यप्रभृति मे सर्वे यूयं कर्म यथोचितं । संमार्जनादि सेवध्वं सर्वमंतर्बहिःपुरः ॥ ७ ॥
पुरीयं सांप्रतं कृत्वा भवद्भिः प्रतिवासरं । परागाशुचिपाषाणतृणकंटकवर्जिता ॥ ८ ॥
गृहीत्वा कुंभमिंद्रोऽपि वारिणामोदचारुणा । महीं सिंचतु कर्मेदमस्य लोके प्रकीर्त्यते ॥ ९ ॥
पंचवर्णैश्च कुर्वंतु पुष्पैर्गंधमनोहरैः । संभ्रांताः प्रकरं देव्यः सर्वालंकारभूषिताः ॥ १० ॥
समयेनामुना युक्ता यदि तिष्ठंति सादराः । विमुंचामि ततः शक्रं कुतो निर्मुक्तिरन्यथा ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा वीक्षमाणोऽसौ लोकपालांस्त्रपानतान् । जहास मुहुरास्तानां ताडयन्पाणिना करं ॥१२॥
ततो विनयनम्रः सन् सहस्रारमवोचत । सभाहृदयहारिण्या क्षरन्निवगिरामृतं ॥ १३ ॥
यथा तात प्रतीक्ष्यस्त्वं वासवस्य तथा मम । अधिकं वा ततः कुर्यां कथमाज्ञामहं न ते ॥१४॥
गुरवः परमार्थेन यदि न स्युर्भवादृशाः । अधस्ततो धरित्रीयं व्रजेन्मुक्ताधरैरिव ॥ १५ ॥

पुण्यवानस्मि यत्पूज्यो ददाति मम शासनं । भवद्विधनियोगानां न पदं पुण्यवर्जितः ॥ १६ ॥
तदद्यारभ्य संचिन्त्य मनोज्ञं क्रियता तथा । यथा शक्रस्य सौस्थित्यं जायते मम च प्रभो १७
अयं शक्रो मम भ्राता तुरीयः सांप्रतं बली । एवं प्राप्य करिष्यामि पृथिवीं वीतकंटकां ॥१८॥
लोकपालास्तथैवास्य तच्च राज्यं यथा पुरा । ततोधिकं वा गृह्णातु विवेकेन किमावयोः ॥१९॥
आज्ञा च मम शक्रे वा दातव्या भृत्यवस्तुनि । गुरुभिः सा हि शेषेव रक्षालं कारकारणं ॥२०॥
आस्यतामिहसल्लंदादथवा रथनूपुरे । यत्र वेच्छत का भूमिर्भृत्ययोरावयोर्नते ॥ २१ ॥
इति प्रियवचोवारिसमार्द्रीकृतमानसः । अवोचत सहस्रारस्तातोऽपि माधुरं वचः ॥ २२ ॥
नूनं भद्रसमुत्पत्तिः सज्जनानां भवादृशां । सममेव गुणैः सर्वलोकाल्हादनकारिभिः ॥ २३ ॥
आयुष्मच्चस्य शौर्यस्य विनयोयं तवोत्तमः । अलंकारसमस्तेऽस्मिन्भुवने श्लाघ्यतां गतः ॥ २४ ॥
भवतो दर्शनेनेदं जन्म मे सार्थकं कृतं । पितरौ पुण्यवंतौ तौ त्वया यौ कारणीकृतौ ॥ २५ ॥
क्षमावता समर्थेन कुंदनिर्मलकीर्तिना । दोषाणां संभवाशंका त्वया दूरमपाकृता ॥ २६ ॥
एवमेतद्यथा वक्षि सर्वं संपाद्यते त्वयि । ककुप्करिकराकारौ कुरुतः किंतु ते भुजौ ॥ २७ ॥
किंतु मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुंधरा । साहि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलं ॥ २८ ॥

अशक्ताः स्वभुवं त्यक्तुं तत्र नो मित्रबांधवाः । चातका इव सोत्कंठास्तिष्ठंत्यध्वावलोकिनः २९
कुलक्रमसमायातां सेवमानो गुणालयः । लंकां यासि परां प्रीतिं जन्मभूमिः किमुच्यतां ॥ ३० ॥
तस्मात्तामेव गच्छामो महाभागो भवावनिं । देवानांप्रिय निर्विघ्नं रक्षताद्भुवनं चिरं ॥ ३१ ॥
इत्युक्त्वानुगतो दूरं कैलाशक्षोभकारिणा । सहस्रारो गतः सेंद्रो लोकपालैः समं गिरिं ॥ ३२ ॥
यथास्वं च स्थिताः सर्वे पूर्ववल्लोकपालिनः । भंगादसारतां प्राप्ताश्चलयंत्रमया इव ॥ ३३ ॥
विजयार्धजलोकेन दृश्यमाना महात्रपाः । नाज्ञासिषुः क्व गच्छाम इति भोगद्विषः सुराः ॥ ३४ ॥
इंद्रोऽपि न पुरे प्रीतिं लेभे नोद्यानभूमिषु । न दीर्घिकासु राजीवरजःपिंजरवारिषु ॥ ३५ ॥
न दृष्टिमपि कांतासु चक्रे प्रगुणवर्तिनीं । तनौ तु संकथा कैव त्रपानिर्भरचेतसः ॥ ३६ ॥
अथाप्युद्विजमानस्य तस्य लोकोनुवर्तनं । चकारान्यकथासंगैः कुर्वन् भंगस्य विस्मृतिं ॥ ३७ ॥
अथैकस्तंभमूर्ध्वस्थे स्वसद्मांतरवर्तिनि । गंधमादनशृंगाभे स्थितो जिनवरालये ॥ ३८ ॥
बुधैः परिवृतो दध्याविति शक्रो निरादरं । वदन्नंगं गतच्छायं स्मरन् भंगमनारतं ॥ ३९ ॥
धिग्विद्यागोचरैश्वर्यं विलीनं यदिति क्षणात् । शारदानामिवाब्दानां वृंदमत्यंतमुन्नतं ॥ ४० ॥
यानि यानानि ते नागास्ते भटास्ते तुरंगमाः । सर्वं तृणसमं जातं मम पूर्वं कृताद्भुतं ॥ ४१ ॥

अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्यं कोन्यथा नरः । कर्तुं शक्नोति तेषां हि सर्वमन्यद्बलाधरं ॥ ४२ ॥
नूनं पुराकृतं कर्म भोगसंपादनक्षमं । परिक्षयं मम प्राप्तं येनैषा वर्तते दशा ॥ ४३ ॥
वरं समर एवास्मिन्मृतः स्याच्छत्रुसंकटे । नाकीर्तिर्यत्र जायेत सर्वविष्टपगामिनी ॥ ४४ ॥
चरणं शिरसि न्यस्य शत्रुणां येन जीवितं । शत्रुणानुमतां सोहं सेवे लक्ष्मीं कथं हरिः ॥ ४५ ॥
परित्यज्य सुखे तस्मादभिलाषं भवेद्भुवि । निश्रेयसः पदप्राप्तिकारणानि भजाम्यहं ॥ ४६ ॥
रावणो मे महाबंधुरागतः शत्रुवेषभृत् । येनासारसुखास्वादसक्तोऽस्मि परिबोधितः ॥ ४७ ॥
अत्रांतरे मुनिः प्राप्तो नाम्नानिर्वाणसंगमः । विहरन् क्वापि योग्यानि स्थानानि गुणवाससां ४८
सहसा व्रजतस्तस्य गतिस्तंभमुपागता । प्राणिघाय ततश्चक्षुरघोऽसौ चैत्यमैक्षत ॥ ४९ ॥
प्रत्यक्षज्ञानसंपन्नस्तस्मिंश्च जिनपुंगवं । वंदितु नभसैः शीघ्रमवतीर्णो महायतिः ॥ ५० ॥
संतोषेण च शक्रेण कृताभ्युत्थानपूजनं । चक्रे जिननमस्कारं विधिना यतिसत्तमः ॥ ५१ ॥
आसीनस्य ततो जोषं वंदित्वा चरणौ मुनेः । पुरा स्थित्वा हरिश्चक्रे चिरमात्मनिगर्हणं ॥५२॥
सर्वसंसारवृत्तांतवेदनात्यंतकोविदैः । मुनिना परमैर्वाक्यैः परिसांत्वनमाहृतः ॥ ५३ ॥
अपृच्छत्स भवं पूर्वमात्मनो मुनिपुंगवं । स चैत्यकथयत्तस्मै गुणग्रामविभूषितः ॥ ५४ ॥

चतुर्गतिगतानेकयोनिदुःखमहावने । भ्राम्यन्, शिखापदाभिख्ये नगरे मानुषीं गतिं ॥ ५५ ॥
प्राप्तो जीवं कुले जातो दरिद्रस्त्रैणसंगतः । कुलंकांतेति विभ्राणो नामार्थेन समागतं ॥ ५६ ॥
सा चिल्लाचिपिटाध्याधिशतसंकुलविग्रहा । कथंचित्कर्मसंयोगाल्लोकोच्छिष्टेन जीविता ॥ ५७ ॥
दुश्चेला दुर्भगा रूक्षा स्फुटितांगा कुमूर्धजा । उत्त्रास्यमाना लेकेन लेभे सा शर्म न क्वचित् ५८
मुहूर्तं परिवर्ज्याभं शरीरं च सुमानसा । जाता किंपुरुषस्य स्त्री क्षीरधारेति नामतः ॥ ५९ ॥
च्युता च रत्ननगरे धरणीगोमुखाख्ययोः । विभ्रत्सहस्रभागाख्यां तनयोभूत्कुटुंबिनोः ॥ ६० ॥
लब्ध्वा परमसम्यक्त्वमणुव्रतसमन्वितः । पंचतां प्राप्य शुक्राहे जातो विबुधसत्तमः ॥ ६१ ॥
च्युतो महाविदेहेऽथ नगरे रत्नसंचये । गुणवल्यां मणोर्जातोऽमात्यात्सामंतवर्द्धनः ॥ ६२ ॥
निष्क्रांतो विभुना सार्धं महाव्रतधरोऽभवत् । अतितीव्रतपा नित्यं तत्त्वार्थगतमानसः ॥ ६३ ॥
परीषहगणस्यालं षोढा निर्मलदर्शनः । कषायरहितः प्रेत्य परं ग्रैवेयकं गतः ॥ ६४ ॥
अहमिंद्रपरं सौख्यं तत्र भुक्त्वा चिरं च्युतः । जातो हृदयसुंदर्यां सहस्राराख्यखेचरात् ॥ ६५ ॥
पूर्वाभ्यासेन शक्रस्य सुखे संसक्तमानसः । इंद्रस्त्वं खेचराधीशो नगरे रथनूपुरे ॥ ६६ ॥
स त्वमिंद्र विषण्णः किं वृथैव परितप्यसे । विद्याधिको जितोस्मीति वहन्नात्मन्यनादरं ॥ ६७ ॥

निर्बुद्धिकोद्रवानुप्त्वा शालीन् प्रार्थयसे वृथा । कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां फलं ॥६८॥
क्षीणं पुराकृतं कर्म तव भोगस्य साधनं । हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतं ॥ ६९ ॥
निमित्तमात्रमेतस्मिन् रावणस्ते पराभवे । जन्मन्यत्रैव यत्कर्म कृतं तेनैव लंभितं ॥ ७० ॥
किं न स्मरसि यत्पूर्वं क्रीडता दुर्नयं कृतं । ऐश्वर्यजनितो भ्रष्टो मदस्ते स्मर सांप्रतं ॥ ७१ ॥
चिरसुप्ततया बुद्धौ वृत्तांतस्ते त्वयाकृतः । नारोहति यतस्तस्माच्छृण्वेकाग्रचेतसा ॥ ७२ ॥
अरिंजयपुरे वह्निवेगाख्यः खेचरोऽभवत् । स्वयंवरार्थमहल्यां चक्रे वेगवतीसुतां ॥ ७३ ॥
तत्र विद्याधराः सर्वे यथाविभवशोभिताः । समागताः परित्यज्य श्रेण्यामत्यंतमुत्सुकाः ॥ ७४ ॥
भवानपि गतस्तत्र युक्तः परमसंपदा । अन्यश्चानंदमालाख्यश्चंद्रावर्तपुराधिपः ॥ ७५ ॥
संत्यज्य खेचरान् सर्वान् पूर्वकर्मानुभावतः । कन्ययानंदमालोऽसौ वृतः सर्वांगकांतया ॥ ७६ ॥
परिणीय स तां भोगान्प्राप चिंततसंगता । यथामराधिपः स्वर्गे प्रतिघासरवर्द्धिनः ॥ ७७ ॥
ततः प्रभृति कोपेन त्वमीर्ष्यो येन भूरिणा । गृहीतो वैरितामस्य संप्राप्तोति गरीयसीं ॥ ७८ ॥
ततोऽस्य सहसा बुद्धिरियं जाता स्वकर्मतः । देहोयमध्रुवः किंचित्कृत्यमेतेन नो मम ॥ ७९ ॥
तपः करोमि संसारदुःखं येन विनश्यति । का वा भोगेषु प्रत्याशा विप्रलंभनकारिषु ॥ ८० ॥

अवधार्येदमत्यंतं विबुद्धेनांतरात्मना । त्यक्त्वा परिग्रहं सर्वं चचार परमं तपः ॥ ८१ ॥
हंसावलीनदीतीरे स्थितः प्रतिमयान्यदा । स त्वया प्रत्यभिज्ञातो रथावर्तमहीधरे ॥ ८२ ॥
दर्शनेंधनसंवृद्धपूर्वकोपाग्निना ततः । त्वयासौ कुर्वतां नर्मगर्वेण हसितो मुहुः ॥ ८३ ॥
अहल्यारमणः स त्वं कामभोगातिवत्सलः । अधुना किं स्थितोस्येवमितिभाषणकारिणा ॥८४॥
वेष्टितो रज्जुभिः क्षोणीधरनिष्कंपविग्रहः । तत्त्वार्थचिंतनासंगनितांतस्थिरमानसः ॥ ८५ ॥
दृष्ट्वाभिभूयमानं तं त्वयास्य निकटस्थितः । कल्याणसंज्ञको भ्राता साधुः क्रोधेन दुःखितः ८६
संहृत्य प्रतिमायोगमृद्धिप्राप्तः स ते ददौ । शापमेवमलं दीर्घं निश्वस्योष्णं च दुःखितः ॥ ८७ ॥
अयं निरपराधःसंस्त्वया यन्मुनिपुंगवः । तिरस्कृतस्तदत्यंतं तिरस्कारमवाप्स्यसि ॥ ८८ ॥
निश्वासेनामितेनासीद्धूमेव निरूपितः । सर्वश्रीसंज्ञया किंतु शमितस्तव कांतया ॥ ८९ ॥
सम्यग्दृष्टिरलं सा हि साधुपूजनकारिणी । मुनयोऽपि वचस्त्वस्या कुर्वते साधुचेतसः ॥ ९० ॥
यदि नाम तया साध्व्या नासौ नीतः शमं भवेत् । ततस्तस्य स कोपाग्निः केन शक्येत वारितुं ॥
लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते । बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलं ॥९२॥
न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कांतिर्द्युतिर्धृतिः । तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिणः ॥९३॥

विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत् । दुःखमत्र प्रपद्यंते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥ ९४ ॥
मनसापि हि साधूनां पराभूतिं करोति यः । तस्य सा परमं दुःखं परत्रेह च यच्छति ॥ ९५ ॥
यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रंथं हंति वा क्रूरमानसः । तत्र किं शक्यते वक्तुं जंतौ दुष्कृतकर्मणि ॥ ९६ ॥
कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवाः । कुर्वते तानि यच्छंति निकचानि फलं ध्रुवं॥९७॥
कर्मणामिति विज्ञाय पुण्यापुण्यात्मिकां गतिं । दृढां कृत्वा मतिं धर्मे स्वमुत्तारय दुःखतः ॥९८॥
इत्युक्ते पूर्वजन्मानि स्मरन् विस्मयसंगतः । शक्रः प्रणम्य निर्ग्रंथमिदमाह महादरः ॥ ९९ ॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां । सांप्रतं दुरितं सर्वं मन्ये त्यक्तमिव क्षणात् ॥१००॥
साधोःसंगमनाल्लोके न किंचिद्दुर्लभं भवेत् । बहु जन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ॥१०१॥
इत्युक्त्वा वंदितस्तेन मुनिर्यतो यथेप्सितं । शक्रोऽपि परमं प्राप्तो निर्वेदं गृहवासतः ॥ १०२ ॥
पुण्यकर्मोदयाज् ज्ञात्वा रावणं परमोदयं । स्तुत्वा च वीर्यदंष्ट्राय महाभूभृत्तटक्षितौ ॥ १०३ ॥
जलबुद्बुदनिस्सारामवबुध्य मनुष्यतां । कृत्वा सुनिश्चलां धर्मे मतिं निदन् दुरीहितं ॥ १०४ ॥
श्रियमिंद्रः सुते न्यस्य महात्मा रथनूपुरे । ससुतो लोकपालानां समूहेन समन्वितः ॥ १०५ ॥
दीक्षां जैनेश्वरीं प्राप सर्वकर्मविनाशिनीं । विशुद्धमानसोत्यंतं त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ १०६ ॥

ततस्तत्तादृशेनापि भोगेनाप्युपलालितं । वपुस्तस्य तपोभारमुवाहेतरदुर्वहं ॥ १०७ ॥
प्रायेण महतां शक्तिर्यादृशी रौद्रकर्मणि । कर्मण्येवं विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥ १०८ ॥
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा विशुद्धध्यानसंगतः । कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा निर्वाणं वासवोऽगमत् ॥१०९॥

पश्यत चित्रमिदं पुरुषाणां चेष्टितमूर्जितवीर्यसमृद्धं ।
यच्चिरकालमुपार्जितभोगा यांति पुनः पदमुत्तमसौख्यं ॥ ११० ॥
स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसंगं ।
यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयंति बृहंतः ॥ १११ ॥
अर्जितमत्पुरुकालविधाना–दिंधनराशिमुदारमशेषं ।
प्राप्य परं क्षणतो महिमानं किं न दहंत्यनलः क्षणमात्रः ॥ ११२ ॥
इत्यवगम्य जनाः सुविशुद्धं यत्नपराः करणं वहतांतः ।
मृत्युदिनस्य न केचिदपेताः ज्ञानरवेः कुरुत प्रतिपत्तिं ॥ ११३ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते इंद्रनिर्वाणाभिधानं नाम त्रयोदशं पर्व ।

अथ चतुर्दशं पर्व ।

अथ नाकाभिधप्रख्यो भोगसंमूढमानसः । यथाभिमतनिर्वृत्तः परदुर्ललितक्रियः ॥ १ ॥
असौ देवाधिपग्राहो यातो मंदिरमन्यदा । जिनेंद्रवंदनां कृत्वा प्रत्यागच्छन्निजेच्छया ॥ २ ॥
विभक्तपर्वतान्पश्यन् वास्यानां विविधांघ्रिपान् । सरितश्चातिचक्षुष्याः स्फटिकादपि निर्मला ३
आदित्यभवनाकारविमानस्य विभूषणः । संगतः परया लक्ष्म्या लंकासंगमनोत्सुकः ॥ ४ ॥
सहसा निनदं तुंगं शुश्राव परुषेतरं । पप्रच्छ च महाक्षुब्धो मारीचमतिसत्वरः ॥ ५ ॥
अयि मारीच मारीच कुतोयं निनदो महान् । एताश्च ककुभः कस्मान्महारजतलोहिताः ॥ ६ ॥
ततो जगाद मारीचो देव ! देवागमो मुनेः । महाकल्याणसंप्राप्तावेष कस्यापि वर्तते ॥ ७ ॥
देवानामेष तुष्टानां नानासंपातकारिणां । आकुलो भुवनव्यापी प्रशस्तःश्रूयते ध्वनिः ॥ ८ ॥
एताश्च ककुभस्तेषां मुकुटादिमरीचिभिः । निचिता दधते भासं कौसुंभीमिव भास्वरां ॥ ९ ॥
सुवर्णपर्वतेऽमुष्मिन्ननंतबलसंज्ञया । कथितो मुनिरुत्पन्नं नूनं तस्याद्य केवलं ॥ १० ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्यग्दर्शनभावितः । परं पुरंदरग्राहः प्रमोदं प्रतिपन्नवान् ॥ ११ ॥

अवतीर्णश्च खादेशाद्विप्रकृष्टान्महाद्युतिः । द्वितीय इव देवेंद्रो वंदनाय महामुनेः ॥ १२ ॥
वंदित्वा तुष्टुवुः साधुमिंद्रप्राग्रहरास्ततः । आसीनाश्च यथास्थानं बद्धांजलिपुटाः सुराः ॥ १३ ॥
रावणोऽपि नमस्कृत्य स्तुत्वा चोदात्तभक्तितः । विद्याधरजनाकीर्णः स्थितः स्वमुचितावनौ १४
ततश्चतुर्विधैर्देवैस्तिरश्चिर्मनुजैस्तथा । कृतशंसं मुनिश्रेष्ठः शिष्येणैवमपृच्छयत ॥ १५ ॥
भगवान् ज्ञातुमिच्छंति धर्माधर्मफलं जनाः । समस्ता मुक्तिहेतुं च तत्सर्वं वक्तुमर्हथ ॥ १६ ॥
ततः सुनिपुणं शुद्धं विपुलार्थं मिताक्षरं । अप्रधृष्यं जगौ वाक्यं यतिः सर्वहितप्रियं ॥ १७ ॥
कर्मणाष्टप्रकारेण संततेन निरादिना । बद्धेनांतर्हितात्मीयशक्तिर्भ्राम्यति चेतनः ॥ १८ ॥
सुभूरिलक्षसंख्यासु योनिष्वनुभवत्सदा । वेदनीयं यथोपात्तं नानाकरणसंभवं ॥ १९ ॥
रक्तो द्विष्टोऽथवा मूढो मंदमध्यविपाकतः । कुलालचक्रवत्प्राप्तचतुर्गतिविवर्तनः ॥ २० ॥
बुध्यते स्वहिताभासौ ज्ञानावरणकर्मणा । मनुष्यतामपि प्राप्तोऽत्यंतदुर्लभसंज्ञकं ॥ २१ ॥
रसस्पर्शपरिग्राहिहृषीकवशतां गतः । कृत्वातिनिंदितं कर्म पापभारगुरूकृतः ॥ २२ ॥
अनेकोपायसंभूतमहादुःखविधायिनि । पतंति नरके जीवा ग्रावाण इव वारिणि ॥ २३ ॥
मातरं पितरं भ्रातॄन् सुतां पत्नीं सुहृज्जनान् । धनादिचोदिताः केचिद् घ्नंति निर्दयमानसाः ॥२४॥

गर्भस्थानर्भकान् वृद्धांस्तरुणान् योषितोनराः । घ्नंति कोचिन्महाक्रूरा मानसाः पक्षिणो मृगान् २५
स्थलजान् जलजान् धर्मगताचित्तान् कुचेतसः । मृत्वा पतंति ते सर्वे नरके पुरुवेदने ॥ २६ ॥
मधुघातकृतश्रामी चांडाला वनदाहिनः । हिंसापरायणाः पापाः कैवर्ताधमलुब्धकाः ॥ २७ ॥
वितथव्याहृताशक्काः परस्वहरणोद्यताः । पतंति नरके घोरे प्राणिनः शरणोज्झिताः ॥ २८ ॥
येन येन प्रकारेण कुर्वते मासभक्षणं । तेनैव ते विधानेन भक्ष्यंते नरके परैः ॥ २९ ॥
महापरिग्रहोपेताः महारंभाश्च ये जनाः । प्रचंडाध्यवसायास्ते वसंति नरके चिरं ॥ ३० ॥
साधूनां द्वेषकाः पापा मिथ्यादर्शनसंगताः । रौद्रध्यानमृता जीवा गच्छंति नरकं ध्रुवं ॥ ३१ ॥
कुठारैरसिभिश्चक्रैः करपत्रैर्विदारिताः । अन्यैश्च विविधैः शस्त्रैस्तीक्ष्णतुंडैश्च पक्षिभिः ॥ ३२ ॥
सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिः सर्पैः शरभैर्वृश्चिकैर्वृकैः । अन्यैश्च प्राणिभिश्चित्रैः प्राप्यंते दुःखमुत्तमं ॥३३॥
नितांतं ये तु कुर्वंति संगं शब्दादिवस्तुनि । मायिनस्ते प्रपद्यंते तिर्यक्त्वं प्राणधारिणः ॥३४॥
परस्परवधास्तत्र शस्त्रैश्च विविधैः कृताः । प्रपद्यंते महादुःखं वाहा देहादिभिस्तथा ॥ ३५ ॥
सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेंभसि गिरौ तरौ । गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसंकटे ॥ ३६ ॥
एकद्वित्रिचतुःपंचहृषीककृतसंगतिः । अनादिनिधनो जंतुः सेवते मृत्युजन्मनी ॥ ३७ ॥

तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जंतुना । प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ३८
मार्दवेनान्विताः केचिदार्जवेन च जंतवः । स्वभावलब्धसंतोषाः प्रपद्यंते मनुष्यतां ॥ ३९ ॥
क्षणमात्रसुखस्यार्थे हित्वा पापं प्रकुर्वते । श्रेयः परमसौख्यस्य कारणं मोहसंगताः ॥ ४० ॥
आर्या म्लेच्छाश्च तत्रापि जायंते पूर्वकर्मतः । तथा केचिद्वनेनाद्याः केचिदत्यंतदुर्विधाः ॥ ४१॥
मनोरथशतानन्ये कुर्वंते कर्मवेष्टिताः । कालं नयंति कृच्छ्रेण प्राणिनः परवेश्मसु ॥ ४२ ॥
विरूपा धनिनः केचिन्निर्धनाः रूपिणोऽपरे । केचिद्दीर्घायुषः केचिदत्यंतस्तोकजीविनः ॥ ४३ ॥
इष्टा यथास्विनः केचित्केचिदत्यंतदुर्भगाः । केचिदाज्ञां प्रयच्छंति तामन्ये कुर्वते जनाः ॥४४॥
प्रविशंति रणं केचित्केचिद्गच्छंति वारिणि । यांति देशांतरं केचित्केचित्कृष्यादि कुर्वते ॥ ४५ ॥
एवं तत्रापि वैचित्र्यं जायते सुखदुःखयोः । सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितं ॥ ४६ ॥
सरागसंयमाः केचित्संयमासंयमास्तथा । अकामनिर्जरातश्च तपसश्च समोहतः ॥ ४७ ॥
देवत्वं च प्रपद्यंते चतुर्भेदसमन्वितं । केचिन्महर्द्धयोऽत्रापि केचिदल्पपरिच्छदाः ॥ ४८ ॥
स्थित्या द्युत्या प्रभावेण धिया सौख्येन लेश्यया । अभिमानेन मानेन ते पुनः कर्मसंग्रहं ॥४९॥
कृत्वा चतुर्गतौ नित्यं भवे भ्राम्यंति जंतवः । अरघट्टघटीयंत्रसमानत्वमुपागताः ॥ ५० ॥

सैकल्पादशुभाद्दुःखं प्राप्नोति शुभतःसुखं । कर्मणोऽष्टप्रकारस्य जीवो मोक्षमुपक्षयात् ॥ ५१ ॥
दानेनापि प्रपद्यंते जंतवो भोगभूमिषु । भोगान्पात्रविशेषेण वैश्वरूपमुपागतः ॥ ५२ ॥
प्राणातिपातविरतं परिग्रहविवर्जितं । उत्तमाश्चक्षते पात्रं रागद्वेषोज्झितं जिनाः ॥ ५३ ॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धं तपसापि विवर्जितं । पात्रं प्रशस्यते मिथ्यादृष्टेः कायस्य शोधनात् ॥ ५४ ॥
आपद्भ्यः पाति यस्तस्मात्पात्रमित्यभिधीयते । सम्यग्दर्शनशक्त्या च त्रायंते मुनयो जनान् ५५
दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितं । चारित्रेण च तत्पात्रं परमं परिकीर्तितं ॥ ५६ ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तथा यः सुखदुःखयोः । तृणकांचनयोश्चैष साधुः पात्रं प्रशस्यते ॥५७॥
सर्वग्रंथविनिर्मुक्ता महातपसि ये रताः । श्रमणास्ते परं पात्रं तत्त्वध्यानपरायणाः ॥ ५८ ॥
तेभ्यो भावेन यद्दत्तं शक्त्या पानान्नभेषजं । यथोपयोगमन्यच्च तद्यच्छति महाफलं ॥ ५९ ॥
क्षिप्तं यथैव सत्क्षेत्रे बीजं तत्संपदं परां । प्रयच्छति तथा दत्तं सत्पात्रे शुद्धचेतसा ॥ ६० ॥
रागद्वेषादिभिर्युक्तं यत्तु पात्रं न तन्मतं । प्रयच्छति फलं दूरं तत्र लाभविचिंतनं ॥ ६१ ॥
क्षिप्तं यदि रणे बीजं न किंचिदुपजायते । मिथ्यादर्शनसंयुक्तं पापं पात्रोद्यतं तथा ॥ ६२ ॥
कूपादुद्धृतमेकस्मात्सलिलं प्रतिपद्यते । माधुर्यमिक्षुभिः पीतं निंबपीतं तु तिक्तता ॥ ६३ ॥

सरस्यां जलमेकस्यां गवात्तं पन्नगेन च । क्षीरभावमवाप्नोति विषतां च यथा तथा ॥ ६४ ॥
विन्यस्तं भावतो दानं सम्यग्दर्शनभाविते । मिथ्यादर्शनयुक्ते तु शुभाशुभफलं भवेत् ॥ ६५ ॥
दीनांधादिजनेभ्येस्तु करुणापरिचोदितं । दानमुक्तं फलं तस्माद्यद्यपि स्यान्न सत्तमं ॥ ६६ ॥
वदंति लिंगिनः सर्वे स्वानुकूलं प्रयत्नतः । धर्मं स तु विशेषेण परीक्ष्यः शुभमानसैः ॥ ६७ ॥
द्रव्यं यदात्मतुल्येषु गृहस्थेषु विसृज्यते । कामक्रोधादियुक्तेषु तत्र का फलभोगिता ॥ ६८ ॥
अहो महानयं मोहः सर्वावस्थेषु यज्जनाः । स्वापतेयं विमुंचंति विप्रलब्धाः कुशासनैः ॥ ६९ ॥
धिगस्तु तान् खलानेष जनो यैर्विप्रतारितः । लोभात्कुग्रंथकंथाभिर्वराको नेयमानसः ॥ ७० ॥
मृष्टत्वाद्बलकारित्वान्मांसं भक्ष्यमुदाहृतं । पापैर्दंभप्रसिद्ध्यर्थं परिसंख्या च कीर्तिता ॥ ७१ ॥
क्रूरास्ते दापयित्वा तद्भक्षयित्वा च लोभिनः । गच्छंति नरकं सार्धं दातृभिर्घोरवेदनं ॥ ७२ ॥
जीवदानं तु यत्प्रोक्तं गर्द्धावद्भैर्दुरात्मभिः । ऋषिमन्यैस्तदत्यंतं निंदितं तत्त्ववेदिभिः ॥ ७३ ॥
तस्मिन् हि दीयमानस्य वहनांकनताडनैः । संपद्यते महादुःखं तेनान्येषां च भूयसां ॥ ७४ ॥
भूमिदानमपक्षिप्तं तद्गतं प्राणिपीड़नात् । प्राणिघातनिमित्तेन पुण्यं पाषाणतः पयः ॥ ७५ ॥
सर्वेषामभयं तस्माद्देयं प्राणभृतां सदा । ज्ञानभेषजमन्नं च वस्त्रादि च गतासुकं ॥ ७६ ॥

दानं निंदित मप्येति प्रशंसां पात्रभेदतः । शुक्तिपीतं यथा वारि मुक्तीभवति निश्चयं ॥ ७७ ॥
पशुभूम्यादिकं दत्तं जिनानुद्दिश्य भावतः । ददाति परमान् भोगानत्यंतचिरकालगान् ॥ ७८ ॥
अंतरंगं हि संकल्पं कारणं पुण्यपापयोः । विना तेन वहिर्दानं वर्षःपर्वतमूर्धनि ॥ ७९ ॥
वीतरागान्समस्तज्ञानतो ध्यात्वा जिनेश्वरान् । दानं यद्दीयते तस्य कः शक्तो भाषितुं फलं ८०
आयुधग्रहणादन्ये देवा द्वेषसमन्विताः । रागिणः कामिनीसंगाद्भूषणानां च धारणात् ॥ ८१ ॥
रागद्वेषानुमेयश्च तेषां मोहोऽपि विद्यते । तयोर्हि कारणं मोहो दोषाः शेषास्तु तन्मयाः ॥ ८२ ॥
मनुष्या एव ये केचिदेभ्यः पूजनभाजनं । कषायतनवः कालदेशकामादिसेविनः ॥ ८३ ॥
एवंविधाः कथं देवा दानगोचरतां गताः । अधमा यदि वा तुल्याः फलं कुर्युर्मनोहरं ॥ ८४ ॥
दृष्टेऽपि तावदेतेषां विपाके शुभकर्मणः । कुत एव शिवस्थानं संप्राप्तौ दुःखितात्मनां ॥ ८५ ॥
तदेतत्सिकतामुष्टिपीड़नात्तैलवांछितं । विनाशनं च तृष्णायाः सेवनादाशुशुक्षिणः ॥ ८६ ॥
पंगुना नीयते पंगुर्यदि देशांतरं ततः । एतेभ्यः क्लिश्यतो जंतोर्देवेभ्यो जायते फलं ॥ ८७ ॥
एषां तावदियं वार्ता देवानां पापकर्मणां । तद्भक्तानां तु दूरेण सत्पात्रत्वं न युज्यते ॥ ८८ ॥
लोभेन चोदितः पापो जनो यज्ञे प्रवर्तते । कुर्वतो हि तथा लोको धनं तस्मै प्रयच्छति ॥ ८९ ॥

तस्मादुद्दिश्य यद्दानं दीयते जिनपुंगवं । सर्वदोषविनिर्मुक्तं तद्ददाति फलं महत् ॥ ९० ॥
वाणिज्यसदृशो तत्रान्वेष्याल्पभूरिता । बहुना हि पराभूतिः क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥ ९१ ॥
यथा विषकणः प्राप्तः सरसीं नैव दुष्यति । जिनधर्मोद्यतस्यैवं हिंसालेशो वृथोद्भवः ॥ ९२ ॥
प्रासादादि ततः कार्यं जिनानां भक्तितत्परैः । माल्यधूमप्रदीपादि सर्वं च कुशलैर्जनैः ॥ ९३ ॥
स्वर्गे मनुष्यलोके च भोगानत्यंतमुन्नतान् । जंतवः प्रतिपद्यंते जिनानुद्दिश्य दानतः ॥ ९४ ॥
तन्मार्गप्रस्थितानां च दत्तं दानं यथोचितं । करोति विपुलान् भोगान् गुणानामितिभाजनं ९५
यथाशक्ति ततो भक्त्या सम्यग्दृष्टिषु यच्छतः । दानं तदेकमत्रास्ति शेषं चौरैर्विलुंठितं ॥ ९६ ॥
स्थितं ज्ञानस्य साम्राज्ये केवलं परिकीर्त्यते । निर्वाणं तस्य संप्राप्तावुपैति ध्यानयोगतः ॥९७॥
विमुक्ताशेषकर्माणः सर्वबाधाविवर्जिताः । अनंतसुखसंपन्ना आनंदज्ञानदर्शनाः ॥ ९८ ॥
अशरीराः स्वभावस्था लोकमूर्ध्नि प्रतिष्ठिताः । प्रत्यापत्तिविनिर्मुक्ताः सिद्धा वक्तव्यवर्जिताः ॥९९॥
गृद्धा पवनसंवृद्धदुःखपावकमध्यगाः । क्लिश्यंते पापिनो नित्यं विना सुकृतवारिणा ॥ १०० ॥
पापांधकारमध्यस्थाः कुदर्शनवशीकृताः । बोधं केचित्प्रपद्यंते धर्मादित्यमरीचिभिः ॥ १०१ ॥
अशुभाऽयोमयात्यंतधर्मपंजरमध्यगाः । आशापाशवशा जीवा मुच्यंते धर्मबंधनाः ॥ १०२ ॥

सिद्धो व्याकरणाल्लोकविंदुसारैकदेशतः । धारणार्थो धृतो धर्मशब्दो वाचि परिस्थितः ॥१०३॥
पतंतं दुर्गतौ यस्मात्सम्यगाचरितो भवेत् । प्राणिनं धारत्यस्माद्धर्म इत्यभिधीयते ॥ १०४ ॥
लभिर्धातुः स्मृतः प्राप्तौ प्राप्तिः संपर्क उच्यते । तस्य धर्मस्य यो लाभो धर्मलाभः स उच्यते ॥
जिनैरभिहितं धर्मं कथयामि समासतः । कांश्चित्तत्फलभेदांश्च शृणुतैकाग्रमानसाः ॥ १०६ ॥
हिंसातोऽलीकतस्तेयान्मैथुनाद्द्रव्यसंगमात् । विरतिर्व्रतमुद्दिष्टं विधेयं तस्य धारणं ॥ १०७ ॥
ईर्यावाक्यैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका । समितिः पालनं तस्याः कार्यं यत्नेन साधुना ॥१०८॥
वाङ्मनःकायवृत्तीनामभावो ग्रादिमाथवा । गुप्तिराचरणं तस्यां विधेयं परमादरात् ॥ १०९ ॥
क्रोधो मानस्तथा माया लोभश्चेति महाद्विषः । कषायाद्यैरयं लोकः संसारे परिवर्तते ॥ ११० ॥
क्षमातो मृदुतः संगाद्दजुत्वाद्वृत्तियोगतः । विधेयो निग्रहस्तेषां सूत्रनिर्दिष्टकारिणा ॥ १११ ॥
धर्मसंज्ञमिदं सर्वं व्रतादिपरिकीर्तितं । त्यागश्चोदितो धर्मो विशेषोऽस्य निवेदितः ॥ ११२ ॥
रसनस्पर्शनघ्राणचक्षुःश्रोत्राभिधावतः । ग्रसिद्धानींद्रियाण्येषां निर्जयो धर्म उच्यते ॥ ११३ ॥
उपवासोवमौदर्यं परिसंख्यानवृत्तिता । रसानां च परित्यागो विविक्तं शयनासनं ॥ ११४ ॥
कायक्लेश इति प्रोक्तं बाह्यं षोढा तपःस्थितं । तपसोऽभ्यंतरस्यैतद्वृतिस्थानीयमिष्यते ॥११५॥

प्रायश्चित्तं विनीतिश्च वैयावृत्यकृतिस्तथा । स्वाध्यायेन च संबंधो व्युत्सर्गोध्यानमुत्तमं ॥ ११६ ॥
एतदभ्यंतरे षोढा तपश्चरणमिष्यते । तपः समस्तमप्येतद्धर्म इत्यभिधीयते ॥ ११७ ॥
धर्मेणानेन कुर्वंति भव्याः कर्मवियोजनं । कर्म चाद्भुतमत्यंतव्यवस्थापरिवर्तनं ॥ ११८ ॥
शक्नोति बाधितुं सर्वान् मानुषानमरांस्तथा । लोकाकाशं च संरोद्धुं वपुषा विक्रियात्मना ॥११९॥
एकग्रासत्वमानेतुं त्रैलोक्यं च महाबलः । अष्टभेदमहैश्वर्यं योगं चाप्नोतिदुर्लभं ॥ १२० ॥
हंति तापं सहस्रांशोस्तुषारत्वमुडुप्रभोः । करोति पूरणं दृष्ट्या सर्वस्य जगतः क्षणात् ॥ १२१ ॥
भस्मतां नयते लोकमाशीविषवदीक्षणात् । कुरुते मंदरोत्क्षेपं विक्षेपणमुदन्वतां ॥ १२२ ॥
ज्योतिश्चक्रं समुद्धर्तुमिंद्ररुद्रादिसाध्वसं । रत्नकांचनवर्षं च ग्रावसंघातसर्जनं ॥ १२३ ॥
व्याधीनामतितीव्राणां शमनं पादपांशुना । नृणामद्भुतहेतूनां विभवानां समुद्भवं ॥ १२४ ॥
जीवः करोति धर्मेण तथान्यदपि दुष्करं । नैव किंचिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥ १२५ ॥
धर्मेण मरणं प्राप्ता ज्योतिश्चक्रतिरस्कृतिं । कृत्वा कल्पान् प्रपद्यंते सौधर्मादीन् गुणालयान् १२६
सामानिकाः सुराः केचिद्भवंत्यन्ये सुराधिपाः । अहमिंद्रस्तथान्ये च कृत्वा धर्मस्य संग्रहं १२७
हेमस्फटिकवैडूर्यस्तंभसंभारनिर्मितान् । तद्भक्तिभासुरान् तुंगान् प्रासादान्बहुभूमिकान् ॥ १२८ ॥

अंभोजदधिमध्वादिविचित्रमणिकुट्टिमान् । मुक्ताकलापसंयुक्तान् वातायनविराजितान् ॥ १२९ ॥
रुरुभिश्चमरैः सिंहैर्गजैरन्यैश्च चारुभिः । रूपैर्निचितपार्श्वाभिर्वेदिकाभिरलंकृतान् ॥ १३० ॥
चंद्रशालादिभिर्युक्तान् ध्वजामालाविभूषितान् । सोपासनमनोहारि शयनासनसंगतान् ॥१३१॥
आतोद्यवरसंपूर्णानिच्छासंचारकारिणः । युक्तान् सत्परिवर्गेण पुंडरीकादिलक्षितान् ॥ १३२ ॥
विमानप्रभृतीन् जीवा निलयान् धर्मकारिणाः । प्रपपद्यंतेर्कशीतांशुदीप्तिकांत्यभिभाविनः॥१३३॥
सुखनिद्राक्षये यद्वद्विबुद्धं विमलेंद्रियं । अचिरोदिततिग्मांशुदीप्तं कांत्या समं विधोः ॥ १३४ ॥
रजःस्वेदरुजामुक्तं सामोदममलं मृदु । श्रिया परमया युक्तं चक्षुष्यमुपपादजं ॥ १३५ ॥
शरीरं लभ्यते धर्मात्प्राणिभिः सुरसद्मसु । अलंकाराश्च भाचक्रतिरोहितादिगंतरं ॥ १३६ ॥
सरोरुहदलस्पर्शचरणाः कांतिवन्नखाः । तुलाकोटिकसंदष्टरक्तांशुकदशाननाः ॥ १३७ ॥
रंभास्तंभसमस्पर्शजंघांतर्गतजानुकाः । कांचीगुणांचितोदारनितंबा द्विरदक्रमाः ॥ १३८ ॥
अनुदारवलीभंगतनुमध्यविराजिताः । नवोदितक्षपानाथप्रतिमस्तनमंडलाः ॥ १३९ ॥
रत्नावलीप्रभाजालनिर्मुक्तघनचंद्रिकाः । मालतीमार्दवोपेततनुबाहुलताभृतः ॥ १४० ॥
महार्घमणिवाचालवलयाकुलपाणयः । अशोकपल्लवस्पर्शकरांगुलिगलत्प्रभाः ॥ १४१ ॥

कंबुकंठारदच्छायापिहितद्विजवाससः । लावण्यलिप्तसर्वांशकपोलामलदर्पणाः ॥ १४२ ॥
लोचनांतघनच्छायाकृतकर्णावतंसकाः । मुक्तापरीतपद्माभमणिसीमंतभूषणाः ॥ १४३ ॥
भ्रमरासितसूक्ष्मातिमृदुकेशकलापिकाः । मृणालकोमलस्पर्शवपुषो मधुरस्वराः ॥ १४४ ॥
अत्यंतसुपचारज्ञा नितांतसुभगक्रियाः । नंदनप्रभवामोदसमनिश्वाससौरभाः ॥ १४५ ॥
इंगितज्ञानकुशलाः पंचेंद्रियसुखावहाः । कामरूपधरा धर्मात्प्राप्यंतेऽप्सरसो दिवि ॥ १४६ ॥
संकल्पमात्रसंभूतसर्वोपकरणं पुरु । विषयोत्थं सुखं ताभिः प्राप्नुवंति समं सुराः ॥ १४७ ॥
सुखं यत्त्रिदशावासे यच्च मानुषविष्टपे । फलं तद्ददितं सर्वं धर्मस्य जिनपुंगवैः ॥ १४८ ॥
ऊर्ध्वाधोमध्यलोकेषु यो नामसुखसंज्ञितः । भोक्तृणां जायते भावः स सर्वो धर्मसंभवः ॥१४९॥
दाता भोक्ता स्थितेः कर्ता यो नरः प्रतिवासरं । रक्ष्यते नृसहस्रौघैः सर्वं तद्धर्मजं फलं ॥१५०॥
यत्तत्सुरसहस्राणां हारिभूषणधारिणां । प्रभुत्वं कुरुते शक्रस्तत्फलं धर्मसंभवं ॥ १५१ ॥
यन्मोहरिपुमुद्धास्य रत्नत्रयसमन्विताः । सिद्धस्थानं प्रपद्यंते शुद्धधर्मस्य तत्फलं ॥ १५२ ॥
अप्राप्य मानुषं जन्म सत्त्वधर्मो न लभ्यते । तस्मान्मनुष्यसंप्राप्तिः परमा सर्वजन्मसु ॥ १५३ ॥
राजा श्रेष्ठो मनुष्याणां मृगाणां केसरी यथा । पक्षिणां विनतापुत्रो भवानां मानुषो भवः ॥१५४॥

सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेंद्रियसुखप्रदः । क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥ १५५ ॥
तृणानां शालयः श्रेष्ठाः पादपानां च चंदनाः । उपलानां च रत्नानि भवानां मानुषो भवः॥१५६॥
उत्सर्पिणीसहस्राणि परिभ्रम्य कथंचन । लभ्यते वा नवा जन्म मनुष्याणां शरीरिणा ॥ १५७ ॥
अवाप्य दुर्लभं तद्यः क्लेशनिर्मोक्षकारणं । जनो न कुरुते धर्मं यात्यसौ दुर्गतीः पुनः ॥ १५८ ॥
पतितं तन्मनुष्यत्वं पुनर्दुर्लभसंगमं । समुद्रसलिले नष्टं यथा रत्नं महागुणं ॥ १५९ ॥
इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितं । स्वर्गादिषु प्रपद्यंते सर्वप्राणभृतः फलं ॥ १६० ॥
सर्वज्ञोक्तमिदं श्रुत्वा भानुकर्णः ससंभ्रमः । भक्त्या प्रणम्य पद्माक्षः पर्यपृच्छत्कृतांजलिः ॥१६१॥
भगवन्न ममाद्यापि जायते प्राप्ततृप्तिता । अतो विधानतो धर्मं निवेदयितुमर्हसि ॥ १६२ ॥
ततोऽनंतबलोऽवोचद्विशेषं सौकृतं शृणु । संसाराद्येन मुच्यंते प्राणिनो भव्यताभृतः ॥ १६३ ॥
द्विविधो गदितो धर्मो महत्त्वादाणवात्तथा । आद्योऽगारविमुक्तानामन्यश्च भववर्तिनां ॥ १६४ ॥
विसृष्टसर्वसंगानां श्रमणानां महात्मनां । कीर्तयामि समाचारं दुरितक्षोदनक्षमं ॥ १६५ ॥
मते सुव्रतनाथस्य लीलानिखिलवेदिनः । मृत्युजन्मसमुद्भूतमहत्त्वाससमन्विताः ॥ १६६ ॥
एरंडसदृशं ज्ञात्वा मनुष्यत्वमसारकं । संज्ञेनरहिता धन्या श्रवणत्वमुपाश्रिताः ॥ १६७ ॥

रता महत्त्वयुक्तेषु पंचसंख्येषु साधवः । व्रतेष्वाविग्रहत्यागात्तत्त्वावगमतत्पराः ॥ १६८ ॥
समितिष्वपि तत्संख्यासंगतासु सुचेतसः । अभियुक्ता महासत्त्वास्त्रिसंख्यासु च गुप्तिषु ॥१६९॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं यथोदितं । येषामस्ति न तेषां स्यात्परिग्रहसमाश्रयः ॥ १७० ॥
देहेऽपि ये न कुर्वंति निजे रागे मनीषिणः । कःस्यात्परिग्रहस्तेषां यत्रास्तामितशायिनां ॥१७१॥
अपि बालाग्रमात्रेण पापोपार्जनकारिणा । ग्रंथेन रहिता धीरा मुनयः सिंहविक्रमाः ॥ १७२ ॥
समस्तप्रतिबंधेन समीरणवदुज्झिताः । खगानामपि संगः स्यान्नतु तेषां मनागपि ॥ १७३ ॥
व्योमवन्मलसंबंधरहिताः श्लाघ्यचेष्टिताः । रजनीनाथवत्सौम्या दीप्ता दिवसनाथवत् ॥ १७४ ॥
निम्नगानाथगंभीरा धीरा भूधरनाथवत् । भीतकूर्मवदत्यंतगुप्तेंद्रियकदंबकाः ॥ १७५ ॥
क्षमया क्षमया तुल्याः कषायोद्रेकवर्जिताः । अशीत्या गुणलक्षाणां चतुःसहितयान्विताः १७६
अष्टदशजिनोद्दिष्टशीलसहस्र (?) चान्विता । अत्यंताढ्यास्तपोभूत्या सिद्ध्याकांक्षणतत्पराः ॥
जिनोदितार्थसंसक्ता विदितापरशासनाः । श्रुतसागरपारस्था मुनयो यमधारिणः ॥ १७८ ॥
नियमानां विधातारः समुन्नद्धतयोज्झिताः । नानालब्धिकृतासंगा महामंगलमूर्तयः ॥ १७९ ॥
एवंगुणाः समस्तस्य जगतः कृतमंडनाः । श्रमणास्तनुकर्माणः प्रयांत्युत्तमदेवतां ॥ १८० ॥

द्वित्रैर्भवैश्च निश्शेषं कलुषं ध्यानवन्हिना । निर्दह्यं प्रतिपद्यंते सुखं सिद्धसमाश्रितं ॥ १८१ ॥
स्नेहपंजररुद्धानां गृहाश्रमनिवासिनां । धर्मोपायं प्रवक्ष्यामि शृणु द्वादशधा स्थितं ॥ १८२ ॥
व्रतान्यमूनि पंचैषां शिखा चोक्ता चतुर्विधा । गुणास्त्रयो यथाशक्ति निर्यमास्तु सहस्रशः १८३
प्राणातिपाततः स्थूलाद्विरतिर्वितथा तथा । ग्रहणात्परवित्तस्य परदारसमागमात् ॥ १८४ ॥
अनंतायाश्च गर्द्धायाः पंचसंख्यमिदं व्रतं । भावना चेयमेतेषां कथिता जिनपुंगवैः ॥ १८५ ॥
इष्टो यथात्मनो देहः सर्वेषां प्राणिनां तथा । एवं ज्ञात्वा सदा कार्या दया सर्वासुधारिणां १८६
एषैव हि पराकाष्ठा धर्मस्योक्ता जिनाधिपैः । दयारहितचित्तानां धर्मः स्वल्पोऽपि नेष्यते १८७
वचनं परपीडायां हेतुत्वं यत्प्रपद्यते । अलीकमेव तत्प्रोक्तं सत्यमस्माद्विपर्यये ॥ १८८ ॥
वधादि कुरुते जन्मन्यस्मिंस्तेयमनुष्ठितं । कर्तुः परत्र दुःखानि विविधानि कुयोनिषु ॥ १८९ ॥
तस्मात्तत्सर्वयत्नेन मतिमान् वर्जयेन्नरः । लोकद्वयविरोधस्य निमित्तं क्रियते कथं ॥ १९० ॥
परिवर्ज्या भुजंगीव वनितान्यस्य दूरतः । सा हि लोभवशा पापा पुरुषस्य विनाशिका ॥१९१॥
यथा च जायते दुःखं रुद्धायामात्मयोषिति । नरांतरेण सर्वेषामियमेव व्यवस्थितिः ॥ १९२ ॥
उदारश्च तिरस्कारः प्राप्यतेऽत्रैव जन्मनि । तिर्यङ्नरकयोर्दुःखं प्राप्यमेवातिदुस्सहं ॥ १९३ ॥

प्रमाणं कार्यमिच्छाया सा हि दद्यान्निरंकुशा । महद्दुःखमिहाख्येयौ भद्रकांचनसंज्ञकौ ॥१९४॥
विक्रेता वदरादीनां भद्रो दीनारमात्रकं । द्रविणं प्रत्यजानीत दृष्ट्वातोवर्त्मनि च्युतं ॥ १९५ ॥
प्रसेवकमितोऽगृह्णादीनारं तु कुतूहली । तत्र कांचननामा तु सर्वमेव प्रसेवकं ॥ १९६ ॥
दीनारस्वामिना राज्ञा कांचनो वीक्ष्य नाशितः । स्वयमर्पितदीनारो भद्रस्तु परिपूजितः ॥१९७॥
विरमोऽनर्थदंडेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनं । भोगोपभोगसंख्यानं त्रयमेतद्गुणव्रतं ॥ १९८ ॥
सामायिकं प्रपन्नेन प्रोषधानशनं तथा । सविभागोऽतिथीनांच संलेखश्चायुषः क्षये ॥ १९९ ॥
संकेतो न तिथौ यस्य कृतो यश्चापरिग्रहः । गृहमेति गुणैर्युक्ताः श्रमणः सोऽतिथिः स्मृतः २००
संविभागोऽस्य कर्तव्यो यथाविभवमादरात् । विधिना लोभयुक्तेन भिक्षोपकारणादिभिः २०१
मधुनो मद्यतो मांसाद्द्यूततो रात्रिभोजनात् । वेश्यासंगमनाच्चास्य विरतिर्नियमः स्मृतः ॥२०२॥
गृहधर्ममिमं कृत्वा समाधिप्राप्तपंचतः । प्रपद्यते सुदेवत्वं च्युत्वा च सुमनुष्यतां ॥ २०३ ॥
भवानामेवमष्टानामंतः कृत्वानुवर्तनं । रत्नत्रयस्य निर्ग्रंथो भूत्वा सिद्धिं समश्नुते ॥ २०४ ॥
नरत्वं दुर्लभं प्राप्य यथोक्ताचरणक्षमः । श्रद्धाति जिनोक्तं यः सोप्यासन्नशिवालयः ॥ २०५ ॥
सम्यग्दर्शनलाभेन केवलेनापि मानवः । सर्वलाभवरिष्ठेन दुर्गतित्रासमुज्झति ॥ २०६ ॥

कुरुते यो जिनेंद्राणां नमस्कारं स्वभावतः । पुण्याधारः स पापस्य लवेनापि न युज्यते ॥२०७॥
यःस्मरत्यपि भावेन जिनांस्तस्याशुभं क्षयं । सद्यः समस्तमायाति भवकोटिभिरर्जितं ॥ २०८ ॥
प्रशस्ताः सततं तस्य गृहाः सर्वे शकुंतयः । त्रैलोक्यं साररत्नं यो दधाति हृदये जिनं ॥ २०९ ॥
अर्हते नम इत्येतत्प्रयुंक्ते यो वचो जनः । भावात्तस्याचिरात्कृत्स्नकर्ममुक्तिरसंशया ॥ २१० ॥
जिनचंद्रकथारश्मिसंगमादेति फुल्लतां । सिद्धियोग्यासुमत्स्वांतः कुमुदं परमालयं ॥ २११ ॥
अर्हत्सिद्धमुनिभ्यो यो नमस्यां कुरुते जनः । स परीतभवो ज्ञेयः सुशासनजनप्रियः ॥ २१२ ॥
जिनबिंबं जिनाकारं जिनपूजां जिनस्तुतिं । यः करोति जनस्तस्य न किंचिद् दुर्लभं भवेत् ॥२१३॥
नरनाथः कुटुंबी वा धनाढ्यो दुर्विधोऽथवा । जनो धर्मेण यो युक्तः स पूज्यः सर्वविष्टपे ॥२१४॥
महाविनयसंपन्नाः कृत्याकृत्यविचक्षणाः । जना गृहाश्रमस्थानां प्रधाना धर्मसंगमात् ॥ २१५ ॥
मधुमांससुरादीनामुपयोगं न कुर्वते । ये जनास्ते गृहस्थानां ललामत्वे प्रतिष्ठिताः ॥ २१६ ॥
शंकया कांक्षया मुक्ता तथा ये विचिकित्सया । सुदूररहितमानः परदृष्टिप्रशंसया ॥ २१७ ॥
अन्यशासनसंबद्धसंस्तवेन विवर्जिताः । जंतवस्ते गृहस्थानां प्रधानपदमाश्रिताः ॥ २१८ ॥
सुचारुवसनोऽत्यंतसुरभिः प्रियदर्शनः । शस्यमानः पुरस्त्रीभिर्याति यो वंदितु जिनं ॥ २१९ ॥

ईक्षमाणो महीं मुक्तविकारश्चारुभावनः । साधुकृत्यसमुद्युक्तः पुण्यं तस्यांतवर्जितं ॥ २२० ॥
तृणोपमं परद्रव्यं पश्यंति स्वसमं परं । परयोषां समां मातुर्ये ते धन्यतमा जनाः ॥ २२१ ॥
प्रतिपद्य कदा दीक्षां विहरिष्यामि मेदिनीं । क्षपयित्वा कदा कर्म प्रपत्स्ये सिद्धसंश्रयं ॥२२२॥
एवं प्रतिदिनं यस्य ध्यानं विमलचेतसः । भीतानीव न कुर्वंति तेन कर्माणि संगतिं ॥ २२३ ॥
सप्ताष्टजन्मभिः केचित्सिद्धिं गच्छंति जंतवः । केचिदुग्रतपः कृत्वा द्वित्रैरेव सुचेतसः ॥ २२४ ॥
क्षिप्रं यांति महानंदं मध्यमा भव्यजंतवः । असमर्थास्तु विश्राम्य मार्गस्य यदि वेदकाः॥२२५॥
अह्नोऽपि योजनशतमविद्वान्वर्त्मयोजनः । भ्राम्यतीष्टमवाप्नोति सपदं न चिरादपि ॥ २२६ ॥
तथोग्रमपि कुर्वाणास्तपो वितथदर्शनाः । प्राप्नुवंति पदं नैव जन्ममृत्युविवर्जितं ॥ २२७ ॥
मोहांधकारसंछन्ने कषायोरगसंकुले । ते भ्रमंति भवारण्ये नष्टमुक्तिपथा जनाः ॥ २२८ ॥
न शीलं न च सम्यक्त्वं न त्यागः साधुगोचरः । यस्य तस्य भवांबोधितरणं जायते कथं २२९
विंध्यस्य स्रोतसा नागा यत्रोह्यंते नगोन्नताः । वराकाः शशकास्तत्र चिरं नीता विसंशयं॥२३०॥
मृत्युजन्मजरावर्तभवस्रोतोविवर्तिनः । कुतीर्थ्या यत्र नीयंते तद्भक्तेष्वत्र का कथा ॥ २३१ ॥
यथा तरयितुं शक्ता न शिला सलिले शिलां । तथा परिग्रहासक्ता कुतीर्थ्याः शरणागतान्२३२

तपोनिर्दग्धपापा ये लघवस्तत्त्ववेदिनः । त एव तारणे शक्ता जनानामुपदेशतः ॥ २३३ ॥
संसारसागरे भीमे रत्नद्वीपोयमुत्तमः । यदेतन्मानुषं क्षेत्रं तद्धि दुःखेन लभ्यते ॥ २३४ ॥
तस्मिन्नियमरत्नानि गृहीतव्यानि धीमता । अवश्यं देहमुत्सृज्य कर्तव्यो भवसंक्रमः ॥ २३५ ॥
अतो यथात्र क्षुत्रार्थं कश्चित्संचूर्णयेन्मणीन् । विषयार्थं तथा धर्मरत्नानां चूर्णको जनः ॥ २३६ ॥
अनित्यत्वं शरीरादेरभावं शरणस्य च । अशुचित्वं तथान्यत्वमात्मनो देहपंजरात् ॥ २३७ ॥
एकत्वमथ संसारो लोकस्य च विचित्रता । आस्रवः संवरः पूर्वकर्मणां निर्जरा तथा ॥ २३८ ॥
बोधिदुर्लभताधर्मस्वाख्यातत्त्वं जिनेश्वरैः । द्वादशैवमनुप्रेक्षा कर्तव्या हृदये सदा ॥ २३९ ॥
आत्मनः शक्तियोगेन धर्मं यो यादृशं भजेत् । स तस्य तादृशं भुंक्ते फलं देवादिभूमिषु॥२४०॥
एवं वदन्नसौ पृष्टो भानुकर्णेन केवली । सभेदं नियमं नाथ ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतं ॥ २४१ ॥
ततो जगाद भगवान् भानुकर्णावधारय । नियमश्च तपश्चेति द्वयमेतन्न भिद्यते ॥ २४२ ॥
तेन युक्तो जनः शक्त्या तपस्वीति निगद्यते । तत्र सर्वप्रयत्नेन मतिः कार्या सुमेधसा ॥ २४३ ॥
स्वल्पं स्वल्पमपि प्राज्ञैः कर्तव्यं सुकृतार्जनं । पतद्भिर्विंदुभिर्जाता महानद्यः समुद्रगाः ॥२४४॥
अहो मुहूर्तमात्रं यः कुरुते भुक्तिवर्जनं । फलं तस्योपवासेन समं मासेन जायते ॥ २४५ ॥

तत्र स्वर्गे सहस्राणि समानां दश कीर्तितं । भुंजानस्य जनस्योर्ध्वभोगं चित्तोपपादितं ॥२४६॥
श्रद्दधानो मतं जैनं यः करोति पुरोदितं । पल्यैस्तस्योपमानीयकालः स्वर्गे महात्मनः ॥२४७॥
च्युत्वा तत्र मनुष्यत्वे लभते भोगमुत्तमं । यथोपवनया लब्धं तापसान्वयजातया ॥ २४८ ॥
दुःखिन्युपवनाऽबंधुर्वदराद्युपजीविनी । आदरादीक्षिता राज्ञा मुहूर्तव्रतसंभवात् ॥ २४९ ॥
कुमारी व्रतकस्यांते परया द्रव्यसंपदा । योजिता सुतरां जाता धर्मसंविग्नमानसा ॥ २५० ॥
जिनेंद्रवचनं यस्तु कुरुतेंतरवर्जितं । अनंतरमसौ सौख्यं परलोके गतोश्नुते ॥ २५१ ॥
मुहूर्तद्वितयं यस्तु न भुक्ते प्रतिवासरं । षष्ठोपवासिता तस्य जंतोर्मासेन जायते ॥ २५२ ॥
मुहूर्तत्रिंशतं कृत्वा काले यावति तावति । आहारवर्जनं जंतुरुपवासफलं भजेत् ॥ २५३ ॥
मुहूर्तयोजनं कार्यमेवमेवाष्टमादिषु । अधिकं तु फलं वाच्यं हेतुवृद्ध्यनुरूपतः ॥ २५४ ॥
अवाप्यास्य फलं नाके नियमस्य शरीरिणः । मनुष्यतां समासाद्य जायंतेऽद्भुतचेष्टिताः ॥२५५॥
लावण्यपंकलिप्तानां हारिविभ्रमकारिणां । भवंति कुलदाराणां पतयो धर्मशेषतः ॥ २५६ ॥
स्त्रियोऽपि स्वर्गतश्च्युत्वा मनुष्यभवमागताः । महापुरुषसंसेव्या यांति लक्ष्मीसमानतां ॥ २५७ ॥
आदित्येऽस्तमनःप्राप्ते कुरुते योन्नवर्जनं । भवेदभ्युदयोस्यापि सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥ २५८ ॥

अप्सरोमंडलांतस्थो विमाने रत्नमासुरे । बहुपल्योपमं कालं धर्मेणानेन तिष्ठति ॥ २५९ ॥
मनुष्यत्वं समासाद्य दुर्लभं तत्परायणैः । महेशानस्य कर्तव्यं जिनस्य समुपासनं ॥ २६० ॥
यस्य कांचननिर्माणा योजनं जायते मही । आसने जायते देवतिर्यग्मानुषसेविता ॥ २६१ ॥
प्रातिहार्याणि यस्याष्टौ चतुस्त्रिंशन्महाद्भुतं । सहस्रभास्कराकारं रूपं लोचनसौख्यदं ॥ २६२ ॥
भव्यः प्रणाममेतस्य यः करोति विचक्षणः । समुत्तरति कालेन स स्तोकेन भवार्णवं ॥ २६३ ॥
उपायमेतमुज्झित्वा शांतिप्राप्तौ शरीरिणां । नान्यः कश्चिदुपायोस्ति तस्मात्सेव्यः स यत्नतः ॥
मार्गा गोदंडकाकाराः संत्यन्येऽपि सहस्रशः । कुतीर्थसंचिता येषु विमुह्यंति प्रमादिनः ॥२६५॥
न सम्यक्करुणा तेषु मधुमांसादिसेवनात् । जैने तु कणिकाप्यस्ति न दोषस्य प्ररूपणे ॥ २६६ ॥
त्याज्यमेतत्परं लोके यत्प्रपीड्य दिवा क्षुधा । आत्मानं रजनीभुक्त्या गमयत्यर्जितं शुभं॥२६७॥
निशि भुक्तिरधर्मो यैर्धर्मत्वेन प्रकल्पितः । पापकर्मकठोराणां तेषां दुःखप्रबोधनं ॥ २६८ ॥
दर्शनागोचरीभूते सूर्ये परमलालसः । भुंक्ते पापमना जंतुर्दुर्गतिं नावबुद्ध्यते ॥ २६९ ॥
मक्षिका कीटकेशादि भक्ष्यते पापजंतुना । तमः पटलसंछन्नचक्षुषा पापबुद्धिना ॥ २७० ॥
डाकिनीप्रेतभूतादिकुत्सितप्राणिभिः समं । भक्तं तेन भवेद्येन क्रियते रात्रिभोजनं ॥ २७१ ॥

सारमेयाखुमार्जारप्रभृतिप्राणिभिः समं । मांसाहारैर्भवेद्भुक्तं तेन यो निशि वल्गते ॥ २७२ ॥
अथवा किं प्रपंचेन पुलाकेनेह भाव्यते । क्षपायामश्नता सर्वं भवेदशुचिभक्षितं ॥ २७३ ॥
विरोचनेऽस्तसंसर्गं गते ये भुंजते जनाः । ते मानुषतया बद्धा पशवो गदिता बुधैः ॥ २७४ ॥
नक्तं दिवा च भुंजानो विमुखो जिनशासने । कथं सुखी परत्र स्यान्निर्व्रतो नियमोज्झितः २७५
दयामुक्तो जिनेंद्राणां पापः कुत्सामुदाहरन् । अन्यदेहं गतो जंतुः पूतिगंधमुखो भवेत् ॥२७६॥
मांसं मद्यं निशाभुक्तिं स्तेयमन्यस्य योषितं । सेवते यो जनस्तेन भवे जन्मद्वयं हतं ॥ २७७ ॥
ह्रस्वायुर्वित्तमुक्तश्च व्याधिपीडितविग्रहः । परत्र सुखहीनः स्यान्नक्तं यः प्रत्यवश्यति ॥ २७८ ॥
प्राप्नोति जन्ममृत्युं च दीर्घकालमनंतरं । पच्यते गर्भवासेषु दुखेन निशि भोजनात् ॥ २७९ ॥
वराहवृकमार्जारहंसकाकादियोनिषु । जायते सुचिरं कालं रात्रिभोजी कुदर्शनः ॥ २८० ॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः सहस्राणि कुयोनिषु । आपनीपद्यते दुःखं कुधीर्यो निशि वल्भते ॥२८१॥
अवाप्य यो मतं जैनं नियमेष्ववतिष्ठते । अशेषकिल्विषं दग्ध्वा सुस्थानं सोधिगच्छति ॥२८२॥
रत्नत्रितयसंपूर्णा अणुव्रतपरायणाः । तरणावुदिते भव्या भुंजते दोषवर्जितं ॥ २८३ ॥
अपापास्तेऽधिगच्छंति विमानेशास्त्रिविष्टपे । परं भोगं न ये रात्रौ भुंजते करुणापराः ॥ २८४ ॥

ततश्च्युत्वा मनुष्यत्वं प्राप्य निंदाविवर्जितं । भुंजते चक्रवर्त्यादिविभवोपहृतं सुखं ॥ २८५ ॥
सौधर्मादिषु कल्पेषु मानुषातीतकारणं । प्राप्नुवंत परं भोगं सिद्धिं च शुभचेष्टिताः ॥ २८६ ॥
जगद्धिता महामात्या राजानः पीठमर्दिनः । संमताः सर्वलोकस्य भवंति दिनभोजनात्॥२८७॥
धनवंतो गुणोदाराः सुरूपा दीर्घजीविताः । जिनबोधिसमायुक्ताः प्रधानपदसंस्थिताः ॥२८८॥
असह्यतेजसः संख्ये पुरादीनामधीश्वराः । विचित्रवाहनोपेताः सामंतकृतपूजनाः ॥ २८९ ॥
भवनेशाः सुरेशाश्च चक्रांकविभवाश्रिताः । महालक्षणसंपन्ना भवंति दिनभोजनात् ॥ २९० ॥
आदित्यवत्प्रभावंतश्चंद्रवत्सौम्यदर्शनाः । अनस्तमितभोगाढ्यास्ते येऽनस्तमितोद्यताः ॥ २९१ ॥
अनाथा दुर्भगा मातृपितृभ्रातृविवर्जिताः । शोकदारिद्र्यसंपूर्णाः स्त्रियः स्युर्निशि भोजनात् २९२
रूक्षस्फुटितहस्तादिस्वांगाश्चिपिटनासिकाः । वीभत्सदर्शनाः क्लिन्नचक्षुषो दुष्टलक्षणाः ॥२९३॥
दुर्गंधविग्रहा भग्नसुमह्नादशनच्छदाः । उल्वणश्रुतयः पिंगस्फुटिताग्रशिरोरुहाः ॥ २९४ ॥
अलाबूबीजसंस्थानदशनाः शुक्लविग्रहाः । काणकुंठगतच्छाया विवर्णा परुषत्वचः ॥ २९५ ॥
अनेकरोगसंपूर्णमलिनाश्छिद्रवाससः । कुत्सिताशनजीविन्यः परकर्मसमाश्रिताः ॥ २९६ ॥
उत्कृतश्रवणं व्यग्रं धनबंधुविवर्जितं । प्राप्नुवंति पतिं नार्यो रात्रिभोजनतत्पराः ॥ २९७ ॥

दुःखभारसमाक्रान्ता बालवैधव्यसंगताः । अंबुकाष्ठादिवाहिन्यो दुःपूरोदरतत्पराः ॥ २९८ ॥
सर्वलोकपराभूता वाग्वासीनष्टचेतसः । अंकव्रणशताधारा भवंति निशि भोजनात् ॥ २९९ ॥
उपशांताशया यास्तु नार्यःशीलसमन्विताः । साधुवर्गहिता रात्रिभोजनाद्विरतात्मिका ॥ ३०० ॥
लभंते ता यथाभीष्टं भोगं स्वर्गे समाहृताः । परिवारेण मूर्धस्थपाणिना शासनैषिणाः ॥ ३०१ ॥
ततश्च्युताः स्फुरंत्युच्चैः कुले विभवधारिणि । शुभलक्षणसंपूर्णा गुणैः सर्वैः समन्विताः ॥३०२॥
कलाविशारदा नेत्रमानसस्नेहविग्रहाः । विमुंचंत्योमृतं वाचा ह्लादयंत्योऽखिलं जनं ॥ ३०३ ॥
भवंत्युत्कंठया युक्तास्तासु विद्याधराधिपाः । हरयो बलदेवाश्च तथा चक्रांकिताश्रियः ॥ ३०४ ॥
विद्युद्रक्तोत्पलच्छायाः स्फुरल्ललितकुंडलाः । नरेंद्रकृतसंबंधा भवंति दिनभोजनात् ॥ ३०५ ॥
अन्नं यथेप्सितं तासां जायते भृत्यकल्पितं । निशासु या न कुर्वंति भोजनं करुणापराः ॥३०६॥
श्रीकांतासुप्रभातुल्याः सुभद्रासदृशस्तथा । लक्ष्मीसमत्विषो योषा भवंति दिनभोजनात् ॥३०७॥
तस्मान्नरेण नार्या वा नियमस्तेन चेतसा । वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसंगता ॥ ३०८ ॥
अत्यल्पेन प्रयासेन शर्मैवमुपलभ्यते । ततो भजत तं नित्यं स्वसुखं को न वांछति ॥ ३०९ ॥
धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणं । इति ज्ञात्वा भजेद्धर्ममधर्मं च विवर्जयेत् ॥ ३१० ॥

आगोपालांगना लोके प्रसिद्धामेदमागतं । यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दुःखिता ॥ ३११ ॥
धर्मस्य पश्य माहात्म्यं येन नाकच्युता नराः । उत्पद्यंते महाभोगा मनुष्यत्वे मनोहराः॥३१२॥
जलस्थलसमुद्भूतरत्नानां ते समाश्रयाः । औदासीन्यमपि प्राप्ता भवंति सुखिनः सदा ॥३१३॥
सुवर्णवस्त्रसस्यादिभांडागाराणि मानवैः । रक्ष्यंते सततं तेषां विचित्रायुधपाणिभिः ॥ ३१४ ॥
प्रभूतं गोमहिष्यादि वारणास्तुरगा रथा । भृत्या जनपदा ग्रामाः प्रासादा नगराणि च ॥३१५॥
दासवर्गो विशाला श्रीर्विष्टरं हरिभिर्धृतं । मानसस्येंद्रियाणां च विषयाहरणक्षमाः ॥ ३१६ ॥
हंसीविभ्रमगामिन्यो घनलावण्यविग्रहाः । माधुर्ययुक्तनिस्वानाः पीनस्तन्यः सुलक्षणा ॥३१७॥
चक्षुषां वागुरातुल्यास्तरुण्यो हारचेष्टिता । नानालंकारधारिण्यो दास्यः पुण्यफलात्मिकाः ३१८
उपायं केचिदज्ञात्वा धर्माख्यं सुखसंततेः । मूढा तस्य समारंभे न यतंतेऽसुधारिणः ॥ ३१९ ॥
पापकर्मवशात्मानः केचिच्छ्रुत्वापि मानवाः । शर्मोपायं न सेवंते धर्मं दुष्कृततत्पराः ॥ ३२० ॥
उपशांतिं गते केचित् सचेष्टारोधिकर्मणि । अभिगम्य गुरुं धर्मं पृच्छंत्युद्यतचेतसः ॥ ३२१ ॥
उपशांतेरधर्मस्य कर्मणस्तद्गुरोर्वचः । अर्थवज्जायते तेषु श्रेष्ठानुष्ठानकारिषु ॥ ३२२ ॥
इमं ये नियमं प्राज्ञाः कुर्वते मुक्तदुष्कृताः । एके भवंति ते नाके द्वितीया वा महागुणाः॥३२३॥

समयं येऽनगाराणां भुंजंतेऽतीत्यभक्तितः । तेषां स्वर्गे सुखप्रेक्षामाकंक्षंति सुराः सदा ॥३२४॥
इंद्रत्वं देवसंघानां ते प्रयांति सुतेजसः । जनाः सामानिकत्वं वा संपादितयथेप्सिताः ॥ ३२५ ॥
न्यग्रोधस्य यथा स्वल्पं बीजमुच्चैस्तरुर्भवेत् । तपोऽल्पमपि तद्वत्स्यान्महाभोगफलावहं ॥ ३२६ ॥
समः कुबेरकांतस्य नेत्रबंधनविग्रहः । धर्मशक्तमतिर्नित्यं जायते पूर्वधर्मतः ॥ ३२७ ॥
मुनिवेलाव्रतो दत्वा मुनेर्भिक्षां समागतः । रत्नवृष्टिं सहस्राक्षः कुबेरदयितो भवेत् ॥ ३२८ ॥
महीमंडलविख्यातो नामोदारपराक्रमः । धनेन महता युक्तो भृत्यमंडलमध्यगः ॥ ३२९ ॥
पौर्णमास्यां यथा चंद्रकांतिदर्शनविग्रहः । भुंजानः परमं भोगं सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥ ३३० ॥
पूर्वधर्मानुभावेन परं निर्वेदमागतः । अभियाति महादीक्षां जिनेंद्रसुखनिर्गतां ॥ ३३१ ॥
अनगारमहर्षीणां वेलामर्चंति ये जनाः । भोगोत्सवं प्रपद्यंते परं ते हरिषेणवत् ॥ ३३२ ॥
मुनिवेलाप्रतीक्ष्यत्वादुपार्ज्य सुकृतं महत् । हरिषेणः परिप्राप्तो लक्ष्मीमत्यंतमुन्नतां ॥ ३३३ ॥
मुनेरंतिकमासाद्य समाधानप्रचोदिताः । एकभक्तं जना ये तु कुर्वंते शुद्धदर्शनाः ॥ ३३४ ॥
एकभक्तेन ते कालं नीत्वा पंचत्वमागताः । उत्पद्यंते विमानेषु रत्नभाचक्रवर्तिषु ॥ ३३५ ॥
नित्यालोकेषु ते तेषु विमानेषु सुचेतसः । रमंते सुचिरं कालं रमंते मध्यवर्तिनः ॥ ३३६ ॥

हारिणः कटकाधाराः प्रकोष्टाः कटिसूत्रिणः । मौलिमंतो भवंत्येते छत्रचामरिणोऽमराः ॥३३७॥
उत्तमव्रतसंसक्ता ये चाणुव्रतधारिणः । शरीरमध्रुवं ज्ञात्वा प्रशांतहृदया जनाः ॥ ३३८ ॥
उपवासं चतुर्दश्यामष्टम्यां च सुमानसाः । सेवंते तेन बध्नंति चिरमायुस्त्रिविष्टपे ॥ ३३९ ॥
सौधर्मादिषु कल्पेषु यांति केचित्समुद्भवं । अपरे त्वहमिंद्रत्वं मुक्तिमन्ये विशुद्धितः ॥ ३४० ॥
विनयेन परिष्वक्ता गुणशीलसमन्विताः तपःसंयोजितस्वांता यांति नाकमसंशयं ॥ ३४१ ॥
तत्र कामेन भुक्त्वासौ भोगान्प्राप्तो मनुष्यतां । भुंक्ते राज्यं महज्जैनं मतं च प्रतिपद्यते ॥३४२॥
जिनशासनमासाद्य स क्रमात्साधुचेष्टितः । सर्वकर्मविमुक्तानामालयं प्रतिपद्यते ॥ ३४३ ॥
स्तुत्वा कालत्रये यस्तु नमस्यति जिनं त्रिधा । शैलराजवदक्षोभ्यः कुतीर्थमतवायुभिः ॥३४४॥
गुणालंकारसंपन्नः सुशीलसुरभीकृतः । सर्वेंद्रियहरं भोगं भजते त्रिदशालये ॥ ३४५ ॥
ततः कतिचिदावृत्तीः कृत्वा शुभगतिद्वये । प्रयाति परमं स्थानं सर्वकर्मविवर्जितः ॥ ३४६ ॥
विषया हि समभ्यस्ताश्चिरं सकलजंतुभिः । ततस्तैर्मोहिताः कर्तुं विरतिं विभवो न ते ॥३४७॥
इदं तत्र परं चित्रं ये तान् दृष्ट्वा विषात्मवत् । निर्वाणकारणं कर्म सेवंते पुरुषोत्तमाः ॥ ३४८ ॥
संसारे भ्रमतो जंतोरेकापि विरतिः कृता । सम्यग्दर्शनयुक्तस्य मुक्तेरायाति बीजतां ॥ ३४९ ॥

एकोऽपि नास्ति येषां तु नियमः प्राणधारिणां । पशवस्तेऽथवा भग्नकुंभा गुणविवर्जिता ॥३५०॥
गुणवृत्तसमृद्धेन नियमस्तेन जंतुना । भाव्यं प्रमादमुक्तेन संसारतरणैषिणा ॥ ३५१ ॥
दुष्कर्म ये न मुंचंति मानवा मतिदुर्विधाः । भ्रमंति भवकांतारं जात्यंधा इव ते चिरं ॥ ३५२ ॥
ततस्तेऽनंतवीर्येंदुवाङ्मरीचिसमागमात् । प्रमोदं परमं प्राप्ता तिर्यङ्मानवनाकजाः ॥ ३५३ ॥
सम्यग्दर्शनमायाताः केचित्केचिदणुव्रतं । महाव्रतधराः केचिज्जाता विक्रमशालिनः ॥ ३५४ ॥
अथ धर्मरथाख्येन मुनिनाऽभाषि रावणः । गृहाण नियमं भव्य कंचिदित्यात्मशक्तितः ॥३५५॥
द्वीपोयं धर्मरत्नानामनगारमहेश्वरः । गृह्यतामेकमप्यस्माद्रत्नं नियमसंज्ञकं ॥ ३५६ ॥
किमर्थमेवमारेभे चिंताभारवशीकृतः । महतां हि ननु त्यागो न मतेः खेदकारणं ॥ ३५७ ॥
रत्नद्वीपं प्रविष्टस्य यथा भ्रमति मानसं । इदं वृत्तं तथैवास्य परमाकुलतां गतं ॥ ३५८ ॥
अथास्य मानसं चिंता समारूढेयमुत्कटा । भोगानुरक्तचित्तस्य व्याकुलत्वमुपेयुषः ॥ ३५९ ॥
स्वभावेनैव मे शुद्धमंधो गंधमनोहरं । स्वादु वृष्यं परित्यक्तमांसादिमलसंगमं ॥ ३६० ॥
स्थूलप्राणिवधादिभ्यो विरतिं गृहवासिनां । एकामपि न शक्तोहं कर्तुं कान्यत्र संकथा ॥३६१॥
मनोभवद्रुमं चेतस्तद्भावत्सर्ववस्तुषु । हस्तेनेवात्मभावेन धर्तुं न प्रभवाम्यहं ॥ ३६२ ॥

हुताशनशिखा पेया बद्धव्यो वायुरंशुके । उत्क्षेप्तव्यो धराधीशो निर्ग्रंथत्वमभीप्सता ॥ ३६३ ॥
शूरोऽपि न समर्थोहं सेवितुं यत्तपोव्रतं । अहो चित्रमिदं तद्धे धारयंति नरोत्तमाः ॥ ३६४ ॥
किमेकमाश्रयाम्येतं नियमं शोभनामपि । अवष्टंभामि नानिच्छामन्ययोषां बलादिभिः ॥३६५॥
अथवा ननु न क्षुद्रे कुतः शक्तिरियं मयि । स्वस्याप्यस्य न शक्नोमि वोढुं चित्तस्य निश्चयं ३६६
यद्वा लोकत्रये नासौ विद्यते प्रमदोत्तमा । दृष्ट्वा मां विकलत्वं या न व्रजेन्मन्मथार्दिता ॥३६७॥
का वा नरांतराश्लेषदूषितप्रमदा तनौ । उष्ट्रचर्मदधानायां परदंतकृतव्रणं ॥ ३६८ ॥
दुर्गंधायां स्वभावेन वर्चोराशौ भवेद्रतिः । नरस्य दधताश्चित्तं मानसंस्कारभाजनं ॥ ३६९ ।
अवधार्येतिभावेन प्रणम्यानंतविक्रमं । देवासुरसमक्षं स प्रकाशमिदमभ्यधात् ॥ ३७० ॥
भगवन्न मया नारी परस्येच्छाविवर्जिता । गृहीतव्येति नियमो ममायं कृतनिश्चयः ॥ ३७१ ॥
चतुः शरणमाश्रित्य भानुकर्णोऽपि कर्णवान् । इमं नियममातस्थे मंदरस्थिरमानसः ॥ ३७२ ॥
करोमि प्रातरुत्थाय सांप्रतं प्रतिवासरं । स्तुत्वा पूजां जिनेंद्राणामभिषेकसमन्वितां ॥ ३७३ ॥
वरिवस्यामवस्त्राणामकृत्वा विधिनान्वितं । अद्यप्रभृति नाहारं करोमीति ससंमदः ॥ ३७४ ॥
जानुभ्यां भुवमाक्रम्य प्रणम्य मुनिमादरात् । अन्यानपि महाशक्तिनियमान् स समार्जयत् ३७५

ततो देवा सुरा भक्ताः प्रणम्य मुनिपुंगवं । यथास्वं निलयं जग्मुर्हर्षविस्तरितेक्षणाः ॥ ३७६ ॥
अभिलंकां दशास्योऽपि प्रतस्थे पृथुविक्रमः । खमुत्पत्य दधच्छीलां सुरनाथसमुद्भवां ॥ ३७७ ॥
वरस्त्रीजनसंघातैः कृतप्रणतिपूजनः । नगरीं स्वां विवेशासौ वस्त्रादिकृतभूषणां ॥ ३७८ ॥
प्रविश्य वसतिं स्वां च समस्तविभवार्चितां । अनावृत इवातिष्ठद्गंभीरां मांदरीं गुहां ॥ ३७९ ॥

भवंति कर्माणि यदा शरीरिणां । प्रशांतियुक्तानि विमुक्तिभाविनां ॥
तदोपदेशं परमं गुरोर्मुखा । दवाप्नुवंति प्रभवं शुभस्य ते ॥ ३८० ॥
इति प्रबुद्धोद्यतमानसा जनाः । जिनश्रुतौ सज्जत भो पुनः पुनः ॥
परेण धर्मं विनयेन शृण्वतां । भवत्यमंदोवगमो यथा रविः ॥ ३८१ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते अनंतबलधर्माभिधानं नाम चतुर्दशं पर्व ।

अथ पंचदशं पर्व ।

तस्यैव च मुनेः पार्श्वे हनूमान् गृहिणां व्रतं । विभीषणश्च जग्राह कृत्वा भावं सुनिश्चितं ॥ १ ॥
न तथा गिरिराजस्य स्थिरत्वं शस्यते बुधैः । हनूमच्छीलसम्यक्त्वं यथा परमनिश्चलं ॥ २ ॥

सौभाग्यादिभिरत्यंतं हनूमति ततस्तुष्टे । इत्यूचे मगधाधीशो रोमांचं विभ्रदुत्कटं ॥ ३ ॥
हनूमान् को गणाधीश! किंविशिष्टः कुतः कवा । मगवन्नस्य तत्त्वेन ज्ञातुमिच्छामि चेष्टितं॥४॥
ततः सत्पुरुषाभिख्या संजातपुरुसम्मदः । वाचाल्हादनकारिण्या गणग्राग्रहरोऽवदत् ॥ ५ ॥
दक्षिणस्यां नृप श्रेण्यां विजयार्धस्य भूभृतः । दशयोजनमध्वानमतिक्रम्य व्यवस्थितं ॥ ६ ॥
आदित्यनगराभिख्यं पुरमस्ति मनोहरं । प्रल्हादस्तत्र राजास्य नाम्ना केतुमती प्रिया ॥ ७ ॥
शुभो वायुगतिर्नाम बभूव तनयोऽनयोः । लक्ष्म्या वक्षःस्थलं यस्य विपुलं निलयीकृतं ॥ ८ ॥
संपूर्णयौवनं दृष्ट्वा तं तद्दारक्रियां प्रति । चक्रार जनकश्चिंतां संतानच्छेदकातरः ॥ ९ ॥
आस्तां तावदिदं राजन्निदमन्यन्मतौ कुरु । वचनं येन तद्दारसंभवः परिकीर्त्यते ॥ १० ॥
वासस्य भरतस्यांते सन्निकृष्टे महोदधेः । पूर्वदक्षिणदिग्भागे दंतीत्यस्ति महीधरः ॥ ११ ॥
विपुलाभ्रंलिहोदारतेजःशिखरसंकटः । नानाद्रुमौषधिव्याप्तः सुनिर्झरमहातटः ॥ १२ ॥
यतः प्रभृति तत्रस्थात्सन्निवेश्य वरं पुरं । विद्याधरो महेंद्राख्यो महेंद्रोपमविक्रमः ॥ १३ ॥
तत आरभ्य संप्राप महेंद्राख्यां रसाधरः । महेंद्रनगरं तच्च पुरं तत्र प्रकीर्तितं ॥ १४ ॥
नाम्नां हृदयवेगायामजायत महेंद्रतः । गुणवंतः शतं पुत्रा नामतोऽरिंदमादयः ॥ १५ ॥

उदयाद्यनुजास्तेषां कीर्तितांजनसुंदरी । त्रैलोक्यसुंदरीरूपसंदोहेनैव निर्मिताः ॥ १६ ॥
नीलनीरजनिर्भासा प्रशस्तकरपल्लवा । पद्मगर्भाभचरणा कुंभिकुंभनिभस्तनी ॥ १७ ॥
तनुमध्या पृथुश्रेणी सुजानूरुसुलक्षणा । प्रफुल्लमालतीमाला मृदुबाहुलतायुगा ॥ १८ ॥
कर्णांतसंगते कांतिकृतपुंखे सुदूरगे । इषू ते कामदेवस्य ननु तस्या विलोचने ॥ १९ ॥
गंधर्वादिकलाभिज्ञा साक्षादिव सरस्वती । लक्ष्मीरिव च रूपेण सा बभूव गुणान्विता ॥ २० ॥
अन्यदा कंदुकेनासौ रममाणा सरेचकं । जनकेनेक्षिताभ्यग्रयौवनोचितविग्रहा ॥ २१ ॥
सुलोचनासुताभर्तृवरचिंतातिदुःखितः । अकंपननृपस्येव सद्गुणार्पितचेतसः ॥ २२ ॥
तद्वरान्वेषणे तस्य ततः सक्ताभवन्मतिः । अत्यंतव्याकुलप्रायः कन्यादुःखं मनस्विनां ॥२३॥
गमिष्यति पतिं श्लाघ्यं रमयिष्यति तं चिरं । भविष्यत्युज्झिता दोषैरतिचिंता नृणां सुता॥२४॥
आहूय सुहृदः सर्वांस्ततो विज्ञानभूषणान् । राजा वरविनिश्चित्यै रहो गेहमशिश्रयत् ॥ २५ ॥
जगाद मंत्रिणश्चैवमहो निखिलवेदिनः । सूरयो मम कन्याया वदत प्रवरं वरं ॥ २६ ॥
तत्र मंत्री जगादैकः कन्येयं भरताधिपे । योज्यतां रक्षसामीश इति मे निश्चयं मतं ॥ २७ ॥
रावणं स्वजनं प्राप्य सर्वविद्याधराधिपं । जगत्यां सागरांतायां प्रभावस्ते भ्रमिष्यति ॥ २८ ॥

अथवेंद्रजिते यूने मेघनादाय वा नृप । दीयतामेवमप्येष रावणस्तव बांधवः ॥ २९ ॥
अथ तं न तवाभीष्टं ततः कन्या स्वयंवरा । विमुच्यतां न वैरी ते तथासत्युपजायते ॥ ३० ॥
इत्युक्त्वा विरतिं याति मंत्रिण्यमरसागरे । विद्वान् सुमतिसंज्ञाको जगाद वचनं स्फुटं ॥ ३१ ॥
दशास्योऽनेकपत्नीको महाहंकारगोचरः । इमां प्राप्यापि नो तस्य प्रीतिरस्मासु जायते ॥ ३२ ॥
षोडशाब्दसमानेऽपि सत्याकारेऽस्य भोगिनः । उत्कृष्टमेव विज्ञेयं वयः परमतेजसः ॥ ३३ ॥
इंद्रजिन्मेघवाहाय सति दाने प्रकुप्यति । मेघवाहस्तथा तस्मै तस्मात्तावपि नो वरौ ॥ ३४ ॥
श्रीषेणसुतयोरासीद्गणिकार्थं तदा महत् । पितृदुःखकरं युद्धं स्त्रीहेतोः किं न वेष्यते ॥ ३५ ॥
वाक्यं ततोनुमन्येदं नाम्ना तारांधरायणः । जगाद वचनं स्वेन भावेन हृतमानसः ॥ ३६ ॥
जयाद्रिदक्षिणं स्थानं कनकं नाम विद्यते । राजा तत्र हिरण्याभः सुमनास्तस्य भामिनी ॥३७॥
अभवत्तनयस्तस्य नाम्ना सौदामिनीप्रभः । महता यशसा कांत्या वयसा चातिशोभनः ॥ ३८ ॥
सर्वविद्याकलापारो लोकनेत्रमहोत्सवः । गुणैरनुपमश्चेष्टारंजिताखिलविष्टपः ॥ ३९ ॥
सुरविद्याधरैः सर्वैरेकीभूयापि यत्नतः । अजय्यस्त्रिजगच्छक्तिसंग्रहेण विनिर्मितः ॥ ४० ॥
कन्येयं दीयतां तस्मै भवतां यदि सम्मतं । चिरादुत्पद्यतां योगो दंपत्योरनुरूपयोः ॥ ४१ ॥

उत्तमांगं ततो धूत्वा संमील्य नयने चिरं । जगाद वचनं मंत्री नाम्ना संदेहपारगः ॥ ४२ ॥
भव्योयं पूर्वजा याता मम केति विचिंतयन् । संसारप्रकृतिं बुद्ध्वा निर्वेदं परमेष्यति ॥ ४३ ॥
विषयेष्वप्रसक्तात्मा वर्षेष्टादशसंज्ञके । भुक्त्वा भोगमहालाभं गृहितां परिहास्यति ॥ ४४ ॥
बहिरंतश्च स संगं परित्यज्य महामनाः । केवलज्ञानमुत्पाद्य किल निर्वाणमेष्यति ॥ ४५ ॥
वियुक्तानेन बालेयं भ्रष्टशोभा भविष्यति । शर्वरीव शशांकेन जगदालोककारिणा ॥ ४६ ॥
शृणुतातोऽस्ति नगरमादित्यपुरसंज्ञकं । पुरंदरपुराकारं रत्नैरादित्यभासुरं ॥ ४७ ॥
नभश्चरशशांकोऽत्र प्रह्लादो नाम भोगवान् । तस्य केतुमती पत्नी केतुर्मानसवासिनः ॥ ४८ ॥
तयोर्विक्रमसंभारो रूपशीलो गुणाब्धिः । पवनंजयनामास्ति तनयो नयमंडनः ॥ ४९ ॥
शुभलक्षणसंछन्नविशालो तुंगविग्रहः । कलानां निलयो वीरो दूरीभूतदुरीहितः ॥ ५० ॥
संवत्सरशतेनापि तस्य वक्तुं न शक्यते । गुणग्रामोऽखिलप्राप्तः समस्तजनचेतसः ॥ ५१ ॥
अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते । अतो गत्वैव वीक्षध्वमिमं देवसमद्युतिं ॥ ५२ ॥
ततः केतुमतस्योद्यैर्गुणैः श्रोत्रपथं गतैः । सर्वे ते परमं प्राप्ताः प्रमोदं कृतसम्मदाः ॥ ५३ ॥
श्रुत्वा कन्यापि तां वार्तां विचकास प्रमोदतः । निशाकरकरालोकमात्रादिव कुमुद्वती ॥ ५४ ॥

अत्रांतरेत्ययं प्राप्तः कालो हिमकणान्वितः । कामिनीवदनांभोजलावण्यहरणोद्यतः ॥ ५५ ॥
नवं पटलमब्जानां नलिनीनामजायत । चिरोतकंठितमधुवाससमूहकृतसंगमं ॥ ५६ ॥
घनः शाखाभृतां जज्ञे पत्रपुष्पांकुरोद्भवः । मधुलक्ष्मीपरिष्वंगसंजातपुलकाकृतिः ॥ ५७ ॥
चूतस्य मंजरीजालं मधुव्रतकृतस्वनं । मनोलोकस्य विव्याध पटलं स्मरपत्रिणां ॥ ५८ ॥
कोकिलानां स्वनश्चक्रे मानिनीमानभंजनः । जनस्य व्याकुलीभावं वसंतालापतां गतः ॥ ५९ ॥
रमणद्विजदष्टानामोष्ठानां वेदनाभृतां । उपपद्यत वैशद्यं चिरेण वरयोषितां ॥ ६० ॥
स्नेहो बभूव चात्यंतमन्योन्यं जगतः परं । उपकारसमाधानपरेहा प्रकटीकृतः ॥ ६१ ॥
भ्रमरीं भ्रमणश्रांतां रमणः पक्षवायुना । परितो भ्रमणं कुर्वंश्चकार विगतश्रमां ॥ ६२ ॥
दूर्वाप्रवालमुद्धृत्य सारंग्यै पृषतो ददौ । तस्यास्तेनामृतेनेव कापि प्रीतिरजायत ॥ ६३ ॥
करिकंडूयितं रेजे वदनं भ्रंशिपल्लवं । करिण्यां सुखसंभारनिमीलितविलोचनं ॥ ६४ ॥
स्तवकस्तननम्राभिश्चलत्पल्लवपाणिभिः । समालिंग्यंत वल्लीभिर्भ्रमराक्षीभिरंघ्रिपाः ॥ ६५ ॥
दक्षिणाशामुखोद्दीर्णाः प्रावर्तत समीरणः । प्रेर्यमाण इवानेन रविरासीदुदग्गतिः ॥ ६६ ॥
समीरणकृताकंपः केसरप्रकरः पतन् । मधुसिंहस्य पांथेन ददृशे केसरोत्करः ॥ ६७ ॥

दंष्ट्रा वसंतसिंहस्य मानस्तंबेरमांकुशः । अकोटकेसरं रेजे प्रेषितस्त्रीभयंकरं ॥ ६८ ॥
घनं कौरवकं जालं कर्णद्भृंगकदंबकं । वियोगिनीमनांसीव मधुनाकृष्टमुज्झितं ॥ ६९ ॥
कुड्मलोद्दीपितोऽशोकप्रचलन्नवपल्लवः । प्राचुर्याद्वनितोदीर्णरागराशिरिवाबभौ ॥ ७० ॥
किंशुकं घनमत्यंतं दिदीपे वनराजिषु । वियोगिनीमनस्थातिरिक्तदुःखानिलोपमं ॥ ७१ ॥
व्यासदिक्चक्रवालेन रजसा पुष्पजन्मना । वसंतः पटवासेन चकारेव महोत्सवं ॥ ७२ ॥
निमेषमपि सेहाते न स्त्रीपुंसावदर्शनं । कुत एवान्यदेशेन संगमं प्रेमबंधनौ ॥ ७३ ॥
गंतुमारेभिरे देवा जिनभक्तिप्रचोदिताः । नंदीश्वरं महामोदाः फाल्गुनाष्टदिनोत्सवे ॥ ७४ ॥
जग्मुरष्टापदे तत्र काले विद्याधराधिपाः । पूजोपकरणव्यग्रकरभृत्यगणान्विताः ॥ ७५ ॥
पूज्यं नाभेयनिर्वृत्या तमद्रिं भक्तिनिर्भरः । समेतो बंधुवर्गेण महेंद्रोऽपि समीयिवान् ॥ ७६ ॥
स तत्र जिनमर्चित्वा स्तुत्वा नत्वा च भावतः । रौक्म्ये शिलातले श्रीमानासांचक्रे यथासुखं ७७
प्रह्लादोऽपि तदायासीत्तं गिरिं वंदितुं जिनं । कृताभीष्टं श्रमन्नासीन्महेंद्रेण खगोचरः ॥ ७८ ॥
महेंद्रस्य ततोभ्यासं सुतप्रीत्या महादरः । ससर्प निकसन्नेत्रः प्रह्लादः प्रीतिमानसः ॥ ७९ ॥
अभ्युत्थाय महेंद्रोऽपि मुदितः पुरुसंभ्रमः । आलिंगंतं समालिंगत्प्रह्लादं ह्लादकारणं ॥ ८० ॥

उपविष्टौ च विश्रब्धौ तौ मनोज्ञशिलातले । परस्परं शरीरादिकुशलं पर्यपृच्छतां ॥ ८१ ॥
उवाचेति महेंद्रोथ सखे किं कुशलं मम । कन्यानुरूपसंबंधचिंताव्याकुलितात्मनः ॥ ८२ ॥
अस्ति मे दुहिता योग्या वरं प्राप्तुं मनोहरा । कस्मै तां प्रददामीति मम भ्राम्यति मानसं ॥८३॥
रावणो बहुपत्नीकस्तत्सुतौ व्रजतो रुषं । दानेनान्यतरस्यातो न तेषु रुचिरस्ति मे ॥ ८४ ॥
पुरे हेमपुराभिख्ये तनयः कनकद्युतेः । विद्युत्प्रभो दिनैरल्पैर्निर्वाणं प्रतिपत्स्यते ॥ ८५ ॥
मयेयं विदिता वार्ता प्रकटा सर्वविष्टपे । केनापि कथितं नूनं संज्ञानेनेति योगिना ॥ ८६ ॥
मंत्रिमंडलयुक्तस्य ततो मम विनिश्चतः । पुत्रस्तव वरत्वेन निर्वाच्यः पवनंजयः ॥ ८७ ॥
मनोरथोपमायातस्त्वया प्रह्लाद पूरितः । समयेनास्मि संजातः क्षणेन परिनिर्वृतः ॥ ८८ ॥
ततोवोचदलं प्रीतः प्रह्लादो लब्धवांछितः । चिंता ममापि पुत्रस्य द्वितीयान्वेषणं प्रति ॥८९॥
ततोहमपि वाक्येन त्वदीयेनामुना सुहृत् । शब्दगोचरतामुक्ता परिप्राप्तः सुखासिकां ॥ ९० ॥
सरसो मानसाख्यस्य तटेथात्यंतचारुणि । गुरुभ्यां वांछितं कर्तुं तयोर्वैवाहमंगलं ॥ ९१ ॥
स्थिते तत्रोभयोः सेने क्षणकल्पितसंश्रये । गजवाजिपदातीनामनुकूलरवाकुले ॥ ९२ ॥
दिनेषु त्रिषु यातेषु तयोः सांवत्सरा जगुः । कल्याणदिवसं ज्ञातनिखिलज्योतिरीहितः ॥ ९३ ॥

श्रुत्वा परिजनादेतां सर्वावयवसुंदरीं । दिवसानां त्रयं सेहे न प्राल्हादिः प्रतीक्षितुं ॥ ९४ ॥
संगमोत्कंठितः सोयमेभिर्मन्मथसंभवैः । पूरितो दशभिर्वेगैर्भटो बाणैरिवाहवे ॥ ९५ ॥
आद्ये तद्विषया चिंता वेगे समुपजायते । द्वितीये द्रष्टुमाकारो बहिः समभिलष्यते ॥ ९६ ॥
तृतीये मंददीर्घोष्णनिश्वासानां विनिर्गमः । चतुर्थे सज्वरो दृष्टज्वलनोपमचंदनः ॥ ९७ ॥
विवर्तः पंचमेऽगस्य कुसुमप्रस्तरादिषु । मन्यते विविधं स्वादु षष्ठे भक्तं विषोपमं ॥ ९८ ॥
सप्तमे तत्कथासक्त्या विप्रलापसमुद्भवः । उन्मत्तताष्टमे गीतनृत्यविभ्रमकारिणी ॥ ९९ ॥
मदनोरगदष्टस्य नवमे मूर्छनोद्भवः । दशमे दुःखसंभारः स्वसंवेद्यः प्रवर्तते ॥ १०० ॥
विवेकिनोऽपि तस्येदं तदा जातमनंकुशं । चरितं वायुवेगस्य हताशं धिगनंगकं ॥ १०१ ॥
अथ चेतोभुवो वेगैरसौ धैर्यात्परिच्युतः । उद्वर्तितकरच्छन्ननिश्वासप्रचलाननः ॥ १०२ ॥
करसंगारुणीभूतस्वेदवद्गंडमंडलः । उष्णातिदीर्घनिश्वासग्लपितासनपल्लवः ॥ १०३ ॥
जृंभणं कंपनं जंभां मंदं कुर्वन्पुनः पुनः । निस्सहं धारयन्कायं गाढाकल्पकशल्यतः ॥ १०४ ॥
रामाभिध्यानतो मोघं हृषीकं पटलं दधत् । मनोज्ञेष्वपि देशेषु महतीमधृतिं व्रजन् ॥ १०५ ॥
दधानः शून्यमात्मानं परित्यक्ताखिलक्रियः । क्षणमात्रधृतां भूयः परिमुंचन्नपत्रपां ॥ १०६ ॥

तनुभूतसमस्तांगः परिभ्रष्टविभूषणः । दध्याविति सचित्तेन परिवारेण वीक्षितः ॥ १०७ ॥
कदा नु तामहं कांतां वीक्षे स्वांकनिवेशितां । स्पृशे कमलतुल्यानि गात्राणि कृतसंकथः ॥१०८॥
श्रुत्वा तावदियं जाता ममावस्थातिदुःखदा । आलोक्य तां तु नोऽपश्यद्भवेयं पंचतां गतः १०९
अहो महदिदं चित्रं मनोज्ञापि सखी मम । यदसौ दुःखभारस्य कारणत्वमुपागता ॥ ११० ॥
अयि भद्रे कथं यस्मिन्तुष्यते हृदयं त्वया । दग्धं तदेव शक्तासि पंडिते दुःखवन्हिना ॥१११॥
मृदुचित्ताः स्वभावेन भवंति किल योषितः । मद्दुःखदानतोजातं विपरीतमिदं तव ॥ ११२ ॥
अनंगः सन् व्यथामेतामनंगत्वं करोषि मे । यदि नाम भवेत्सांगस्ततः कष्टतमं भवेत् ॥ ११३ ॥
कृतं नचात्र मे देहे वेदना च गरीयसी । तिष्ठन्नेकत्र चोद्देशे भ्रमसि कापि संततं ॥ ११४ ॥
दिवसानां त्रयं नैतन्मम क्षेमेण गच्छति । यदि तां विषयीभावमानयामि न चक्षुषः ॥ ११५ ॥
अतस्तद्दर्शनोपायः कतरो मे भविष्यति । यस्याधिगमताश्चित्तं प्रशांतिमधियास्यति ॥ ११६ ॥
अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टपे । मित्रं परमसुज्झित्वा कारणं नान्यदीक्ष्यते ॥ ११७ ॥
इति ध्यात्वा स्थितं पार्श्वे छायाबिंबमिवानुगं । विक्रियातः समुत्पन्नं शरीरं स्वमिवापरं ॥११८॥
नाम्ना प्रहसितं मित्रं सर्वविश्रंभभाजनं । मंदगद्गदया वाचा जगाद पवनंजयः ॥ ११९ ॥

जानस्येव ममाकूतमतः किं ते निवेद्यते । केवलं मुखरत्वं मे करोत्यत्यंतदुःखितां ॥ १२० ॥
सखे कस्य वदान्यस्य दुःखमेतन्निवेद्यते । मुक्त्वा त्वां विदिताशेषजगत्त्रयविचेष्टितं ॥ १२१ ॥
कुटंबी क्षितिपालाय, गुरवेंतेवसन्, प्रिया । पत्यै, वैद्याय रोगार्तो, मात्रे शैशवसंगतः ॥ १२२ ॥
निवेद्य मुच्यते दुःखाद्यथात्यंतपुरोरपि । मित्रायैवं नरः प्राज्ञस्ततस्ते कथयाम्यहं ॥ १२३ ॥
श्रुत्वैव तामहं हृद्यां महेंद्रतनुसंभवां । मन्मथस्य शरैर्दूरं विकलत्वमुपागतः ॥ १२४ ॥
तामदृष्ट्वातिचञ्चुष्यां प्रियां मानसहारिणीं । अतिवाहयितुं नाहं प्रभवामि दिनत्रयं ॥ १२५ ॥
अतो विधत्स्व तं यत्नं येन पश्यामि तामहं । तद्दर्शनादहं स्वस्थो मयि स्वस्थे भवानपि १२६
जीवितं ननु सर्वस्मादिष्टं सर्वशरीरिणां । सति तत्रान्यकार्याणामात्मलाभस्य संभवः ॥ १२७ ॥
एवमुक्तस्ततोवोचदाशु प्रहसितो हसन् । लब्धार्थमिव कुर्वाणः सद्यो मित्रस्य मानसं ॥ १२८ ॥
सखे किं बहुनोक्तेन कृत्यकालातिपातिना । वद किं करवाणीति ननु नान्यत्वमावयोः ॥१२९॥
यावत्तयोः समालापो वर्ततेऽयं सुचित्तयोः । तावत्तदुपकारीव गतोऽस्तं धर्मदीधितिः ॥ १३० ॥
प्राह्लादेरापि रागेण संध्यालोकेन भानुना । प्रेरितो ध्वांतसंभूतिमिच्छता प्रियकारिणा ॥१३१॥
कांतया रहितस्यास्य दुःखं दृष्ट्वेव संध्यया । करुणायुक्तया भर्त्रा तेजसामनुवर्तितः ॥ १३२ ॥

ततो भास्करनाथस्य वियोगादिव कृष्णता । आशा पौरंदरी प्राप तमसात्यंतभूरिणा ॥ १३३ ॥
नीलेनेव च वस्त्रेण क्षणाल्लोकास्तिरस्कृतः । रजो नीलांजनस्येव प्रवृत्तं पतितुं घनं ॥ १३४ ॥
ततः समुचिते काले तस्मिन् प्रस्तुतकर्मणः । इत्यवोचत सोत्साहः सुहृदं पवनंजयः ॥ १३५ ॥
उत्तिष्ठाग्रे सखे तिष्ठ कुरु मार्गोपदेशनं । व्रजावस्तत्र सा यत्र तिष्ठति स्वांतहारिणी ॥ १३६ ॥
इत्युक्ते प्रस्थितौ गंतुं पूर्वप्रस्थितमानसौ । मीनाविव महानीलनीलव्योमतलार्णवे ॥ १३७ ॥
क्षणेन च परिप्राप्तौ गृहमांजनसुंदरं । सुंदरं तत्समा भक्त्या रत्नौघसममंदिरं ॥ १३८ ॥
सप्तमं स्कंधमारुह्य तस्य वातायनस्थितौ । मुक्ताजालतिरोधानावंगनां तामपश्यतां ॥ १३९ ॥
संपूर्णवस्त्रचंद्रांशुविफलीकृतदीपिकां । सितासितारुणच्छायचक्षुः शारितदिङ्मुखां ॥ १४० ॥
आभोगिनौ समुत्तुंगौ प्रियार्थं हारिणौ कुचौ । कलशाविव बिभ्राणा शृंगाररसपूरितौ ॥ १४१ ॥
नवपल्लवसच्छायं पाणिपादं सुलक्षणं । समुद्भिरदिवाभाति लावण्यं नखरश्मिभिः ॥ १४२ ॥
स्तनभारादिवोदारान्मध्यं भंगाभिशंकया । त्रिवलीदामभिर्बद्धं दधतीं तनुतां भृशं ॥ १४३ ॥
तूणौ मनोभुवस्तंभौ बंधनं मदकामयोः । सुवृत्तौ बिभ्रतीमुरू नदौ लावण्यवाहिनौ ॥ १४४ ॥
इंदीवरावलीछायां युक्तां मुक्ताफलोडुभिः । आसक्तां प्रियचंद्रेण मूर्तामेव विभावरीं ॥ १४५ ॥

आसेचनकवीक्ष्यां तामेकतानस्थितेक्षणः । संप्राप्तः सुखितामुर्वीमैक्षिष्ट पवनंजयः ॥ १४६ ॥
अत्रांतरे प्रियात्यंतं वसंततिलकाभिधा । अभाषत सखी वाक्यमिदमंजनसुंदरीं ॥ १४७ ॥
अहो परमधन्यत्वं सुरूपे भर्तृदारिके । पित्रा वायुकुमाराय यद्दत्तासि महौजसे ॥ १४८ ॥
गुणैस्तस्य जगत्सर्वं शशांककिरणामलैः । व्याप्तमन्यगुणख्यातितिरस्करणकारणैः ॥ १४९ ॥
कलशब्दा महारत्नप्रभापटलरंजिता । अंके स्थास्यति वीरस्य तस्य वेलेव वारिधेः ॥ १५० ॥
पतिता वसुधारा त्वं तटे रत्नमहीभृतः । श्लाघ्या संबंधजस्तोषो वधूनामभवत्परः ॥ १५१ ॥
कीर्तयंत्यां गुणानेवं तस्य संख्यां सुमानसा । लिलेख लज्जयांगुल्या कन्यांघ्रिनखमानता ॥१५२॥
नितांतं च हृतो दूरं पूरेणानंदवारिणः । विकसन्नयनांभोजच्छन्नास्यः पवनंजयः ॥ १५३ ॥
नान्नाथ मिश्रकेशीति वाक्यं सख्यपरावदत् । संकुचत्पृष्टविंबोष्टं धृतधाम्मिल्लपल्लवं ॥ १५४ ॥
अहो परममज्ञानं त्वया कथितमात्मनः । विद्युत्प्रभं परित्यज्य वायोर्गृह्णासि यद्गुणान् ॥१५५॥
कथा विद्युत्प्रभस्यास्मिन्मया स्वामिगृहे श्रुता । तस्मै देया न देयेयं कन्येति मुहुरुद्गता ॥१५६॥
उदन्वदंभसो विंदुसंख्यानं योवगच्छति । तद्गुणानां मतिः पारं व्रजेत्तस्यामलत्विषां ॥ १५७ ॥
युवा सौम्यो विनीतात्मा दीप्तो धीरः प्रतापवान् । पारे विद्यास्थितः सर्वजगद्वांछितदर्शनः ॥

विद्युत्प्रभो भवेदस्याः कन्याया यदि पुण्यतः । भर्त्ता ततोनया लब्धं जन्मनोऽस्य फलं भवेत् ॥
वसंतमालिके भेदो वायोर्विद्युत्प्रभस्य च । स गतो जगति ख्यातिं गोष्पदस्यांबुधेश्चयः १६०
असौ संवत्सरैरल्पैर्मुनितां यास्यतीति सः । अस्याः पित्रा परित्यक्तस्तन्मे नाभाति शोभनं ॥
वरं विद्युत्प्रभेणामा क्षणोऽपि सुखकारणं । सत्रानंतोऽपि नान्येन कालः क्षुद्रासुधारिणा १६२
ततः प्राह्लादिमित्युक्ते क्रोधानलविदीपितः । क्षणाच्छायापरावृत्तं संप्राप्तः पुरुवेपथुः ॥ १६३ ॥
दष्टाधरः समाकर्षन् सायकः परिवारितः । निरीक्षणस्फुरच्छोणछायाछन्नदिगाननः ॥ १६४ ॥
ऊचे प्रहसितावश्यमस्या एवेदमीप्सितं । कन्याया यद्वदत्येवमियं नारी जुगुप्सितं ॥ १६५ ॥
लुनाम्यतोऽनयोः पश्य मूर्द्धानमुभयोरपि । विद्युत्प्रभोधुना रक्षां करोतु हृदयप्रियः ॥ १६६ ॥
समाकर्ण्य ततो वाक्यं मैत्रं प्रहसितो रुषा । जगाद भृकुटीबंधभीषणालिकपट्टिकः ॥ १६७ ॥
सखे सखेलमेतेन यत्नेनागोचरे तव । ननु ते सायकस्यारिनरनाशः प्रयोजनं ॥ १६८ ॥
अतः पश्यत वाक्रोशप्रसक्तां दुष्टयोषितां । इमामेतेन दंडेन करोमि गतजीवितां ॥ १६९ ॥
ततो दृष्ट्वास्य संरंभं महांतं पवनंजयः । विस्मृतात्मीयसंरंभः खड्गं कोश्यां प्रतिक्षिपन् ॥ १७० ॥
निजप्रकृतिसंप्राप्तिप्रवणाशेषविग्रहः । जगाद सुहृदं क्रूरकर्मनिश्चितमानसं ॥ १७१ ॥

अयि मित्र शमं गच्छ तवाप्येष न गोचरः । कोपस्यानेकसंग्रामजयोपार्जनशालिनः ॥ १७२ ॥
इतरस्यापि नो युक्तं कर्तुं नारीविपादनं । किं पुनस्तव मत्तेभकुंभदारणकारिणः ॥ १७३ ॥
पुंसां कुलप्रसूतानां गुणख्यातिमुपेयुषां । यशो मलिनताहेतुं कर्तुमेवमसांप्रतं ॥ १७४ ॥
तस्मादुत्तिष्ठ गच्छावस्तेनैव पुनरध्वना । विचित्रा चेतसोवृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥ १७५ ॥
नूनमस्याः प्रियोसौ ना कन्याया येन पार्श्वगां । मज्जुगुप्सनसंसक्तां न मनागप्यवीवदत् ॥१७६॥
ततः समागतौ ज्ञातौ न केनचिदिमौ भृशं । स्वैरं निस्सृत्य निर्व्यूहाद्गतौ वसतिमात्मनः ॥१७७॥
ततः परममापन्नो विरागं पवनंजयः । इति चिंतनमारेभे प्रशांतहृदयो भृशं ॥ १७८ ॥
संदेहविषमावर्तां दुर्भावग्राहसंकुला । दूरतः परिहर्तव्या पररक्तांगनापगा ॥ १७९ ॥
कुभावगहनात्यंतं हृषीकव्यालजालिनी । बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥ १८० ॥
किं राजसेवनं शत्रुसमाश्रयसमागमं । श्लथं मित्रं स्त्रियं चान्यसक्तां प्राप्य कुतः सुखं ॥ १८१ ॥
दृष्ट्वा बंधून् सुतान् दारान् बुधा मुंचंत्यसत्कृताः । पराभवजलाध्माता क्षुद्रा नश्यंति तत्र तु१८२
मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितं । अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्महिंसनसंगतं ॥ १८३ ॥
मूर्खगोष्ठीं कुमर्यादं देशं चंडं शिशुं नृपं । वनितां च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत् ॥ १८४ ॥

एवं चिंतयतस्तस्य कन्याप्रीतिरिवागता । क्षयं विभावरी तूर्यमाहतं च प्रबोधकं ॥ १८५ ॥
ततः संध्याप्रकाशेन कौशिकीया दिगावृता । पवनंजयनिर्मुक्तरागेणेव निरंतरं ॥ १८६ ॥
उदियाय च तिग्मांशुः स्त्रीकोपादिव लोहितं । दधानस्तरलं बिंबं जगच्चेष्टितकारणं ॥ १८७ ॥
ततो वहन्विरागेण नितांतमलसां तनुं । ऊचे प्रहसितं जायाविमुखः पवनंजयः ॥ १८८ ॥
सखेऽत्र न समीपेऽपि युज्यतेवस्थितिर्मम । तत्सक्तपवनासंगो माभूदिति ततः शृणु ॥ १८९ ॥
उत्तिष्ठ स्वपुरं यामो न युक्तमवलंबनं । सेना प्रयाणशंखेन कार्यतामवबोधिनी ॥ १९० ॥
तथेति कारिते तेन क्षुब्धसागरसन्निभा । चचाल सा चमू क्षिप्रं कृतयानोचितक्रिया ॥ १९१ ॥
ततो रथाश्वमातंगपादातप्रभवो महान् । शब्दो भेर्यादिजन्मा च कन्यायाः श्रवणेऽविशत् १९२
प्रयाणसूचिना तेन नितांतं दुःखिताभवत् । विशता मुद्गराघातवेगतः शंकुनेव सा ॥ १९३ ॥
अचिंतयच्च हा कष्टं दत्त्वा मे विधिना हतं । निधानं किं करोम्यत्र कथमेतद्भविष्यति ॥१९४॥
अंगेऽस्य पुरुषेंद्रस्य क्रीडिष्यामीति ये कृताः । तेऽन्यथैव परावृत्ता मंदाया मे मनोरथाः १९५
क्रियमाणमिमं ज्ञात्वा कथंचिद्भेदमेतया । वैरिणीभूतया सख्या मयि विद्वेषमागतः ॥ १९६ ॥
विवेकरहितामेतां धिक् पापां क्रूरभाषिणीं । यया मे दयितोवस्थामीदृशीमेष लंभितः ॥ १९७ ॥

कुर्यान्मह्यं हितं तात जीवितेशं निवर्तयेत् । अपि नाम भवेदस्य बुद्धिर्व्यावर्तनं प्रति ॥ १९८ ॥
तत्त्वतो यदि नाथो मे परित्यागं करिष्यति । आहारवर्जनं कृत्वा ततो यास्यामि पंचतां १९९
इति संचिंतयंती सा प्राप्ता मूर्छां महीतले । पपाताश्वर्यनिर्मुक्ता लूनमूललता यथा ॥ २०० ॥
ततः किमिदमित्युक्त्वा संभ्रमं परमागते । शीतलक्रियया सख्यौ चक्रतुस्तां विमूर्छतां ॥२०१॥
पृच्छ्यमाना च यत्नेन मूर्छाहेतुं श्लथांगिका । शशाक त्रपया वक्तुं न सा स्तिमितलोचना२०२
अथ वायुकुमारस्य सेनायामिति मानवः । आकुला मानसे चक्रुरहेतुगतिविस्मिताः ॥ २०३ ॥
अविधायेप्सितं कस्मादयं गंतुं समुद्यतः । कोपोऽस्य जनितः केन केन वा चोदितोऽन्यथा २०४
विद्यते सर्वमेवास्य कन्योपादानकारणं । अतः किमित्ययं कस्मादभूदपगताशयः ॥ २०५ ॥
हसित्वा केचिदित्यूचुर्नामास्येदं सहार्थकं । पवनंजय इत्येवं तस्माज्जेतास्य वेगतः ॥ २०६ ॥
ऊचुरन्येऽयमद्यापि न जानात्यंगनारसं । नूनं येन विहायेमां कन्यां गंतुं समुद्यतः ॥ २०७ ॥
यदि स्यादस्य विज्ञाता रतिः परमुदारजा । बद्धः स्यात्प्रेमबंधेन ततो वनगजो यथा ॥२०८॥
इत्युपांशुकृतालापसामंतशतमध्यगः । वेगवद्वाहनो गंतुं प्रवृत्तः पवनंजयः ॥ २०९ ॥
ततः कन्यापिता ज्ञात्वा प्रयाणं तस्य संभ्रमात् । समस्तैर्बंधुभिः सार्धमाजगाम समाकुलैः २१०

प्रह्लादेन समं तेन ततोसावित्यभाष्यत । भद्रेदं गमनं कस्मात्क्रियते शोककारणं ॥ २११ ॥
ननु केन विमुक्तोऽसि कस्य नेष्टोऽसि शोभन । चिंतयत्यपि नो कश्चिद्यत्ते बुध न रोचते २१२
पितुर्मम च ते वाक्यं दोषे सत्यपि युज्यते । कर्तुं किमुत निःशेषदोषसंगविवर्जितं ॥ २१३ ॥
ततः क्षुरे निवर्तस्व क्रियतां नवमीप्सितं । भवादृशां गुरोराज्ञा नत्वानंदस्य कारणं ॥ २१४ ॥
इत्युक्त्वापत्यरागेण वीरो विनतमस्तकः । श्वसुरेण धृतः पाणौ जनकेन च सादरं ॥ २१५ ॥
ततस्तद्गौरवं भक्तुमसमर्थोन्यवर्तत । दध्याविति च कन्यायाः कोपाद्दुःखस्य कारणं ॥ २१६ ॥
समुद्य शातयाम्येनां दुःखेनासंगजन्मना । येनान्यतोऽपि नैवैषा प्राप्नोति पुरुषात्सुखं ॥ २१७ ॥
चकार विदितार्थं च मित्रं तेनेतिभाषितः । साधु ते विदितं बुद्ध्या मयाप्येतन्निरूपितं ॥२१८॥
निवृत्तं दयितं श्रुत्वा कन्यायाः सम्मदोऽभवत् । निरंतरसमुद्भिन्नरोमांचाशेषविग्रहः ॥ २१९ ॥
ततः समयमासाद्य तयोर्वैवाहमंगलं । प्रश्रुतं बंधुभिः कर्तुं प्राप्तसर्वसमीहितं ॥ २२० ॥
अशोकपल्लवस्पर्शः कन्यायाः स करोऽभवत् । विरक्तचेतसस्तस्य कृशानुरसनोपमः ॥ २२१ ॥
अनिच्छतो गता दृष्टिः कथंचित्तस्य तत्तनौ । क्षणमात्रमपि स्थातुं न सेहे तुल्यविद्युतिः २२२
एष भावं न वेत्तास्या इति विज्ञाय पावकः । स्फुटल्लाजसमूहेन जहासैव कृतस्वनं ॥ २२३ ॥

ततो विधानयोगेन कृत्वोपयमनं तयोः । परमं प्रमदं प्राप्ताः सशब्दाः सर्वबांधवाः ॥ २२४ ॥
नानाद्रुमलताकीर्णे फलपुष्पविराजिते । मासं तत्र वने कृत्वा विभूत्या परमोत्सवं ॥ २२५ ॥
यथोचितं कृतालापाः कृतपूजाः परस्परं । यथास्वं ते ययुः सर्वे वियोगाद्दुःखिता क्षणं ॥२२६॥

अविदिततत्त्वस्थितयो । विदधति यज्जंतवः परे शर्म ॥
तत्तत्र मूलहेतौ । कर्म रवौ तापके दृष्टं ॥ २२७ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते अंजनासुन्दरी विवाहाभिधानं नाम पंचदशं पर्व ।

अथ षोडशं पर्व ।

ततोऽसंभाषणादस्याश्चक्षुषश्चानिपातनात् । चकार परमं दुःखं वायुरज्ञाततन्मनाः ॥ १ ॥
रात्रावपि न सा लेभे निद्रां विद्राणलोचना । अनारतगलद्बाष्पमलिनौ दधती स्तनौ ॥ २ ॥
वायुमप्यभिनंदंती दयितेनैकनामकं । तन्नामश्रवणोत्कंठावष्टब्धश्रवणा भृशं ॥ ३ ॥
कुर्वती मानसे रूपं तस्य वेद्यां निरूपितं । अस्पष्टं क्षणनिश्चेष्टस्थिता स्तिमितलोचना ॥ ४ ॥

अंतर्निरूप्य वांछंती बहिरप्यस्य दर्शनं । कुर्वती लोचने स्पृष्टे यात्यदृष्टे पुनः शुचं ॥ ५ ॥
सकृदस्पष्टदृष्ट्वाचित्रकर्माणि कृच्छ्रतः । लिखंती वेपथुग्रस्तहस्तप्रच्युतविग्रहा ॥ ६ ॥
संचारयंती कृच्छ्रेण वदनं करतः करं । कृशीभूतसमस्तांगश्लथसस्वनभूषणा ॥ ७ ॥
दीर्घोष्णतरनिश्वासदग्धपाणिकपोलिका । अंशुकस्यापि भारेण खेदमंगेषु विभ्रती ॥ ८ ॥
निंदंती भृशमात्मानं स्मरंती पितरौ मुहुः । दधाना हृदयं शून्यं क्षणं निष्पंदविग्रहा ॥ ९ ॥
दुःखनिसृतया वाचा वाष्पसंरुद्धकंठतः । उपालंभं प्रयच्छंती दैवायात्यंतविक्लवा ॥ १० ॥
करैः शीतकरस्यापि विभ्रती दाहमुत्तमं । प्रासादेऽपि विनिर्यांती याति मूर्छां पुनः पुनः ॥११॥
अयि नाथ तवांगानि मनोज्ञानि कथं मम । अंगानां हृदयस्थानि कुर्वते तापमुत्तमं ॥ १२ ॥
ननु ते जानतः कश्चिन्नापराधो मया प्रभो । कारणेन विना कस्मात्कोपं यातोऽसि मे परं॥१३॥
प्रसीद तव भक्तास्मि कुरु मे चित्तनिर्वृतिं । बहिर्दर्शनदानेन रचितोंजलिरेष ते ॥ १४ ॥
द्यौरेवादित्यनिर्मुक्ता चंद्रहीनेव शर्वरी । त्वया विना न शोभेहं विद्येव च गुणोज्झिता ॥ १५ ॥
प्रयच्छंतीत्युपालंभं पत्ये मानसवासिने । विंदून् मुक्ताफलस्थूलान्मुंचंती लोचनांमसः ॥ १६ ॥
खिद्यमानात्र दिष्टेषु कुसुमस्तरेष्वपि । गुरुवाक्यानुरोधेन कुर्वती वपुषः स्थितिं ॥ १७ ॥

चक्रारूढमिवाजस्रं संदधाना कृतभ्रमं । संस्कारविरहाद्रूक्षं भ्रमंती केशसंचयं ॥ १८ ॥
तेजोमयीव संतापाज्जलात्मेवाश्रुसंततेः । शून्यत्वाद्गगनात्मेव पार्थिवीवाक्रियात्मतः ॥ १९ ॥
संततोत्कलिकायोगाद्वायुनेव विनिर्मिता । तिरोवस्थितचैतन्याद्रूपमात्रोपमात्मिका ॥ २० ॥
भूमौ निक्षिप्तसर्वांगा नोपवेष्टुमपि क्षमा । उपविष्टा च नोत्थातुं देहं नोद्वर्तुमुत्थिता ॥ २१ ॥
सखीजनांसविन्यस्तविगलत्पाणिपल्लवा । भ्राम्यंति कुट्टिमांकेऽपि प्रस्खलच्चरणा मुहुः ॥ २२ ॥
स्पृहयंत्यनुयाताभ्यः प्रियैश्चाटुविधायिभिः । वराकी छेककांताभ्यस्तद्गतास्पंदवीक्षणा ॥ २३ ॥
प्रियात्परिभवं प्राप्ता कारणेन विवर्जिता । निन्ये सा दिवसान् कृच्छ्राद्दीना संवत्सरोपमान् २४
तस्यामेतदवस्थायां समोऽस्या दुःखतोऽथवा । अधिकः परिवारोऽभूत्किंकर्तव्याकुलात्मकः ॥२५॥
अचिंतयच्च किंत्वेतत्कारणेन विना भवत् । किं वा जन्मांतरोपात्तं कर्म स्यात्पकमीदृशं ॥ २६ ॥
किंवांतरायकर्म स्याज्जनितं जन्मांतरे । जातं वायुकुमारस्य फलदानपरायणं ॥ २७ ॥
येनायमनया साकं मुग्धया वीतदोषया । न भुंक्ते परमान्भोगान् सर्वेंद्रियसुखावहान् ॥ २८ ॥
शृणु दुःखं यथा पूर्वं न प्राप्तं भवने पितुः । सेयं कर्मानुभावेन दुःखभारमिमं श्रिताः ॥ २९ ॥
उपायमत्र कं कुर्मो वयं भाग्यविवर्जिताः । अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणां ॥ ३० ॥

राजपुत्री भवत्वेषा प्रेमसंभारभाजनं । भर्तुरस्मत्कृतेनापि पुण्यजातेन सर्वथा ॥ ३१ ॥
अथवा विद्यते नैव पुण्यं नोत्यंतमण्वपि । निमग्ना येन तिष्ठामो बाला दुःखमहार्णवे ॥ ३२ ॥
भविष्यति कदा श्लाघ्यः सुमुहूर्तोंकवर्तिनी । बालामिमां प्रियो नर्मगिरा यत्र लपिष्यति ॥३३॥
अत्रांतरे विरोधोऽभूद्रक्षसां विभुना सह । वरुणस्य परं गर्वं केवलं बिभ्रतो बलं ॥ ३४ ॥
कैकसीसुनुना दूतः प्रेषितोऽथेत्यभाषत । वरुणं स्वामिनः शक्त्या दधानः परमां द्युतिं ॥ ३५ ॥
श्रीमान् विद्याधराधीशो वरुण त्वाह रावणः । यथा कुरु प्रणामं मे सज्जीभव रणाय वा ॥३६॥
प्रकृतिस्थिरचित्तोथ विहस्य वरुणोऽवदत् । दूत को रावणो नाम क्रियते तेन का क्रिया ॥३७॥
नाहमिंद्रो जगन्निंद्यवीर्यवैश्रवणोऽथवा । सहस्ररश्मिसंज्ञो वा मरुत्तो वाथवा यमः ॥ ३८ ॥
देवताधिष्ठितैरत्नैर्दर्पोस्याभवदुत्तमः । आयातु सममेभिस्तं नयाम्यद्य विसंज्ञतां ॥ ३९ ॥
नूनमासन्नमृत्युस्त्वं येनैवं भाषसे स्फुटं । अभिधायेति तं दूतो गत्वा भर्त्रे न्यवेदयत् ॥ ४० ॥
ततः परमकोपेन परितो वारुणं पुरं । अरुणद्रावणो युक्तः सेनयोदधिकल्पया ॥ ४१ ॥
प्रतिज्ञां च चकारेमां रत्नैरेष मया विना । नेतव्यश्चपलो भंगं मृत्युं वेति ससंभ्रमः ॥ ४२ ॥
राजीवपौंड्रीकाद्याः क्षुब्धा वरुणनंदनाः । विनिर्ययुः सुसन्नद्धाः श्रुत्वा प्राप्तं बलं द्विषः ॥ ४३ ॥

रावणस्य बलेनामा तेषां युद्धमभूत्परं । अन्योन्यापातसंच्छन्नविविधायुधसंहतिः ॥ ४४ ॥
गजागजैः समं सक्ता वाजिनोऽश्वैरथारथैः । भटाभटैः कृता रावा दष्टोष्ठा रक्तलोचनाः ॥ ४५ ॥
पराचीनं ततः सैन्यं त्रिकूटैर्वारुणं कृतं । चिराय कृतसंग्रामदत्तसोढा युधोत्करं ॥ ४६ ॥
जलकांतस्ततः क्रुद्धः कालाग्निरिव दारुणः । अधावद्रक्षसां सैन्यं हेतिपंजरमध्यगः ॥ ४७ ॥
ततो दुर्वारवेगं तं दृष्ट्वा यांतं रणांगणे । गोपायितः स्वावाहिन्या रावणो दीप्तशस्त्रया ॥ ४८ ॥
वरुणेन कृताश्वासास्ततस्तस्य सुताः पुनः । परमं योद्धुमारब्धा विध्वस्तभटकुंजराः ॥ ४९ ॥
ततो यावद्दशग्रीवः क्रोधदीधितमानसः । गृह्णाति कार्मुकं क्रूरः भृकुटीकुटिलालिकः ॥ ५० ॥
दत्तयुद्धश्चिरं तावत्खेदवर्जितमानसः । वारुणीनां शतेनाशु गृहीतः खरदूषणः ॥ ५१ ॥
ततश्चित्ते दशग्रीवश्चकारात्यंतमाकुलः । यथा न शोभतेऽस्माकमधुना रणधीरिति ॥ ५२ ॥
खरदूषणभद्रस्य प्रवृत्ते परमाहवे । माभून्मरणसंप्राप्तिस्तस्माच्छांतिरिहोचिता ॥ ५३ ॥
इति निश्चित्य संग्रामशिरसोसमसाहसः । नोदाराणां यतः कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥ ५४ ॥
ततः स मंत्रिभिः साकं प्रवीणैर्मंत्रवस्तुनि । संमंत्र्य निजसामंतान् स्वदेशसमवस्थितान् ॥ ५५ ॥
समग्रबलसंयुक्तान्सर्वान् दीर्घाध्वगामिभिः । आहाय यच्छिरोबद्धलेखमालैरिति द्रुतं ॥ ५६ ॥

प्रह्लादमपि तत्रायाद्रावणप्रेषितो नरः । स्वामिभक्त्या कृतं चास्य करणीयं यथोचितं ॥ ५७ ॥
विद्यावतां प्रभोर्भद्रं भद्रमित्यर्थचोदितः । सादरं भद्रमित्युक्त्वा सलेखं न्यक्षिपत्पुरः ॥ ५८ ॥
ततः स्वयं समादाय कृत्वा शिरसि संभ्रमात् । प्रह्लादोऽवाचयल्लेखमस्यार्थस्याभिधायकं ॥५९॥
स्वस्तिस्थाने पुरस्यारादलंकारस्य नामतः । निविष्टपृतनः क्षेमी विद्याभृत्स्वामिनां पतिः ॥६०॥
सौमालिनंदनो रक्षःसंतानांबरचंद्रमाः । आदित्यनगरे भद्रं प्रह्लादं न्यायवेदिनं ॥ ६१ ॥
कालदेशविधानज्ञमस्मत्प्रीतिपरायणं । आज्ञापयति देहादिकुशलप्रश्नपूर्वकं ॥ ६२ ॥
यथा मे प्रणताः सर्वे क्षिप्रं विद्याधराधिपाः । करांगुलिनखच्छायाकपिलीकृतमूर्द्धजाः ॥ ६३ ॥
पातालनगरेयं तु सुसन्नद्धः स्वशक्तितः । वरुणः प्रत्यवस्थानमकरोदिति दुर्मतिः ॥ ६४ ॥
हृदयव्यथविद्याभृच्चक्रेण परिवारितः । समुद्रमध्यमासाद्य दुरात्मायं सुखी किल ॥ ६५ ॥
ततो निगहने युद्धे प्रवृत्ते खरदूषणः । शतेनैतस्य पुत्राणां कथंचिदपवर्तितः ॥ ६६ ॥
संग्रामे संशयो माभूत्प्रमादोस्येति निश्चयः । परित्यक्ता महायुद्धधिषणा कालवेदिना ॥ ६७ ॥
अतस्तत्प्रतिकाराय त्वयावश्यमिहागमः । कर्तव्यो नैव कर्तव्ये प्रस्खलंति भवादृशाः ॥ ६८ ॥
अवधार्य त्वया सार्धं विधास्यामोऽत्र सांप्रतं । भर्तापि तेजसां कृत्यं कुरुते रणसंगतः ॥ ६९ ॥

ततो लेखार्थमावेद्य वायवे निर्विलंबितं । गमने सम्मतिं चक्रे कृतमंत्रः सुमंत्रिभिः ॥ ७० ॥
अथ तं गमने सक्तं जानुस्पृष्टमहीतलः । वायुर्व्यज्ञापयत्कृत्वा प्रणामं रचितांजलिः ॥ ७१ ॥
नाथ ते गमनं युक्तं विद्यमाने कथं मयि । अलिंगनफलं कृत्यं जनकस्य सुतैर्ननु ॥ ७२ ॥
ततो न जात एवास्मि यदि ते न करोमि तत् । गमनाज्ञाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे ततः ॥ ७३ ॥
ततः पिता जगादैनं कुमारोऽसि रणे भवान् । आगतो न क्वचित्खेदं तस्मादास्व व्रजाम्यहं ७४
उन्नमय्य ततो वक्षःकनकाद्रितटोपमं । पुना राज्योद्धुरं वाक्यं जगाद पवनंजयः ॥ ७५ ॥
तात मे लक्षणं शक्तेस्त्वयैव जननं ननु । जगद्दाहे स्फुलिंगस्य किंवा वीर्यं परीक्ष्यते ॥ ७६ ॥
भवच्छासनशेषातिपवित्रीकृतमस्तकः । भंगे पुरंदरस्यापि समर्थोऽस्मि न संशयः ॥ ७७ ॥
अभिधायेति कृत्वा च प्रणामं प्रमदी पुनः । उत्थायानुष्ठितस्नानभोजनादिवपुःक्रियः ॥ ७८ ॥
सादरं कुलवृद्धाभिर्दत्ताशीः कृतमंगलः । प्रणम्य भावतः सिद्धान् दधानः परमां द्युतिं ॥ ७९ ॥
वाष्पाकुलितनेत्राभ्यां मंगलध्वंसभीतितः । आशीर्दानप्रवृत्ताभ्यां पितृभ्यां मूर्ध्नि चुंबितः ॥८०॥
आपृच्छ्य बांधवान् सर्वानभिवाद्य च सस्मितः । संभाष्य प्रणतं भक्तं परिवर्गमशेषतः ॥८१॥
दक्षिणेनांघ्रिणा पूर्वं कृतोच्चालः स्वभावतः । दक्षिणेन कृतानंदः स्फुरता बाहुना मुहुः ॥ ८२ ॥

स पल्लवमुखे पूर्णकुंभे निहितलोचनः । क्रामन् भवनादेष सहसैक्षत गेहिनीं ॥ ८३ ॥
द्वारस्तंभनिषण्णांगां वाष्पस्थगितलोचनां । नितंबनिहितभ्रंसिनिरादरचलद्भुजां ॥ ८४ ॥
तांबूलरागनिर्मुक्तधूसरद्विजवाससं । तस्मिन्नेव समुत्कीर्णां मलिनां स्रालभंजिकां ॥ ८५ ॥
विद्युतीव ततो दृष्टिं तस्यामापतितां क्षणात् । संहृत्य कुपितोऽवादीदिति प्रह्लादनंदनः ॥ ८६ ॥
अमुष्मादवसर्पाशु देशादपि दुरीक्षणे । उल्कामिव समर्थोहं भवतीं न निरीक्षितुं ॥ ८७ ॥
अहो कुलांगनायास्ते प्रगल्भत्वमिदं परं । यत्पुरोनिष्ठ्यमाणापि तिष्ठसि त्रपयोज्झिते ॥ ८८ ॥
ततोत्यंतमपि क्रूरं तद्वाक्यं भर्तृभक्तितः । तृषितेव चिराल्लब्धममृतं मनसा पपौ ॥ ८९ ॥
जगाद चांजलिं कृत्वा तत्पादगतलोचना । संस्खलंती मुहुर्वाचमुद्विरंती प्रयत्नतः ॥ ९० ॥
तिष्ठतापि त्वया नाथ भुवनेऽत्र विवर्जिता । त्वत्सामीप्यकृताश्वासा जीवितास्म्यतिकृच्छ्रतः ९१
जीविष्याम्यधुना स्वामिन्कथं दूरंगते त्वयि । त्वत्सद्वचोमृतास्वादस्मरणेन विनातुरा ॥ ९२ ॥
कृतं छेकगणस्यापि त्वया संभाषणं प्रभो । यियासुना परं देशमतिस्नेहार्द्रचेतसा ॥ ९३ ॥
अनन्यगतचित्ताहं त्वदसंगमदुःखिता । कथं नान्यसुखेनापि त्वया संभाषिता विभो ॥ ९४ ॥
त्यक्तायां मे त्वया नाथ समस्तेप्यत्र विष्टपे । विद्यते शरणं नान्यदथवा मरणं भवेत् ॥ ९५ ॥

ततस्तेन प्रियस्वेति संकोचितमुखेन सा । सती निगदितापप्तद्विषण्णा धरणीतले ॥ ९६ ॥
वायुरप्युत्तमामृद्धिं दधानः कृपयोज्झितः । परमं नागमारुह्य सामंतैः प्रस्थितः समं ॥ ९७ ॥
वासरे प्रथमे वासौ संप्राप्तो मानसं सरः । आवासयत्तटे तस्य सेनामश्रांतवाहनः ॥ ९८ ॥
तस्यावतरतः सेना शुशुभे नभसस्तलात् । सुरसंततिवन्नानायानशस्त्रविभूषणा ॥ ९९ ॥
आत्मनो वाहनानां च चक्रे कार्यं यथोचितं । स्नानप्रत्यवसानादि विद्याभृद्भिः सुमानसैः १००
अथ विद्यावलादाशु रचिते हेमभूमिके । युक्तविस्तारतुंगत्वे प्रासादे चित्तहारिणि ॥ १०१ ॥
सहोपरितले कुर्वन् स्वैरं मित्रेण संकथां । वरासनगतो भाति संग्रामकृतसम्मदः ॥ १०२ ॥
गवाक्षजालमार्गेण छिद्रेण तटभूरुहान् । ईक्षांचक्रे सरो वायुर्मंदवायुविघट्टितं ॥ १०३ ॥
भीमैः क्रूरैर्झषैर्नक्रैर्मकरैर्दर्पधारिभिः । भिन्नवीचिकमन्यैश्च यादोभिरिति भूरिभिः ॥ १०४ ॥
धौतस्फटिकतुल्यांभः कमलोत्पलभूषितं । हंसैः कारंडवैः क्रौंचैः सारसैश्चोपशोभितं ॥ १०५ ॥
मंदकोलाहलं देशं मनःश्रोत्रमलिम्लुचं । तदंतरश्रुतोदात्तभ्रमरीकुलझंकृतं ॥ १०६ ॥
तत्र चैकाकिनीमेकामाकुलां चक्रवाकिकां । वियोगानलसंतप्तां नानाचेष्टितकारिणीं ॥ १०७ ॥
अस्ताचलसमासन्नभानुबिंबगतेक्षणां । पद्मिनीदलरंध्रेषु मुहुर्न्यस्तनिरीक्षणां ॥ १०८ ॥

धुन्वानां पक्षती वेगात्पातोत्पातकृतश्रमां । मृणालशकलं स्वादु पश्यंती दुःखिता विषं ॥१०९॥
प्रतिबिंबं निजं दृष्ट्वा जले दयितशंकिनीं । आह्वयंतीं तदप्राप्त्या व्रजंतीं परमां शुचं ॥ ११० ॥
नानादेशोद्भवं श्रुत्वा प्रतिशब्दं प्रियाशया । भ्रमं चक्रमिवारूढां कुर्वतीं साधुलोचनां ॥ १११ ॥
तटपादपमारुह्य न्यस्यंतीं दिक्षु लोचने । तत्रादृष्ट्वा पुनः पातमाचरंतीं महाजवं ॥ ११२ ॥
उन्नयंतीं रजो दूरं पद्मनां पक्षधूतिभिः । चिरं तद्गतया दृष्ट्या ददर्शासौ कृपादृतः ॥ ११३ ॥
इति चाचिंतयत्कष्टं प्राप्तमस्या इदं वरं । यत्प्रियेण वियुक्तेयं दह्यते शोकबह्निना ॥ ११४ ॥
तदेवेदं सरो रम्यं चंद्रचंदनशीतलं । दावकल्पमभूदस्याः प्राप्य नाथवियुक्ततां ॥ ११५ ॥
रमणेन वियुक्तायाः पल्लवोप्येति खड्गतां । चंद्रांशुरपि वज्रत्वं स्वर्गोऽपि नरकायते ॥ ११६ ॥
इति चिंतयतस्तस्य प्रियायां मानसं गतं । तत्प्रीत्या चैक्षतोद्देशांस्तद्विवाहेनिषेवितान् ॥११७॥
चक्षुषो गोचरीभूतास्तस्य ते शोकहेतवः । बभूवुर्मर्मभेदानां कर्तार इव दुस्सहा ॥ ११८ ॥
अध्यासीच्चेति हा कष्टं मया सा क्रूरचेतसा । मुक्तेयमिव चक्राह्वा वैक्लव्यं दयितागमत् ॥११९॥
यदि नाम तदा तस्याः सख्याभाष्यत निष्ठुरं । ततोन्यदीयदोषेण कस्मात्सा वर्जिता मया१२०
धिगस्मत्सदृशान्मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिणः । जनस्य जीविना युक्तं ये कुर्वत्यसुखासनं ॥ १२१ ॥

मम वज्रमयं नूनं हृदयं पापचेतसः । प्रत्यवस्थित यत्कालमियंतं तां प्रियां प्रति ॥ १२२ ॥
किं करोम्यधुना तातमापृच्छय निरितो गृहात् । कथं तु विनिवर्तेहमहो प्राप्तोऽस्मि संकटं १२३
व्रजेयं यदि संग्रामं जीवेन्नासौ ततः स्फुटं । तदभावे ममाभावः स्वतश्च गुरु नापरं ॥ १२४ ॥
अथवा सर्वसंदेहग्रंथिभेदनकारणं । विद्यते मे परं मित्रं तत्रेदं तिष्ठते शुभे ॥ १२५ ॥
तस्मात्पृच्छाम्यमुं तावत्सर्वाचारविशारदं । निश्चित्य विहिते कार्ये लभंते प्राणिनः सुखं॥१२६॥
इति च ध्यातमेतेन दृष्ट्वा चैवं विचेतसं । मंदं प्रहसितोऽपृच्छद्देवं तद्दुःखदुःखितः ॥ १२७ ॥
सखे प्रतिनरोच्छेदकृतये प्रस्थितस्य ते । कस्माद्वदनमद्यैवं विषण्णमिव दृश्यते ॥ १२८ ॥
अपत्रपां विमुच्याशु मह्यं सुजन वेदय । नितांतमाकुलीभावो जातो मे भवतीदृशि ॥ १२९ ॥
ततोसावेवमुक्तः सन् कृच्छानिस्रपया गिरा । जगादेति परं भ्रंशं दूरधैर्यादुपागतः ॥ १३० ॥
शृणु सुंदर कस्यान्यत्कथनीयमिदं मया । ननु सर्वरहस्यानां त्वमेव मम भाजनं ॥ १३१ ॥
स त्वं कथयितुं नैतदन्यस्मै सुहृदर्हसि । त्रपा हि वस्तुनानेन जायते परमा मम ॥ १३२ ॥
ततः प्रहसितोऽवोचद्विश्रब्धस्त्वं निवेदय । त्वयाहि वेदितो मेऽर्थस्तस्माऽयोगत-वारिवत् ॥१३३॥
ततो वायुरुवाचेदं शृणु मित्रांजना मया । न कदाचित्कृतप्रीतिरिति मे दुःखितं मनः ॥ १३४ ॥

क्रूरेऽपि मयि सामीप्यादियंतं समयं तया । आत्मा संधारिता नित्यं प्रवृत्तनयनांभसा ॥१३५॥
आगच्छता मया दृष्टा तस्याश्चेष्टाधुना तु या । तया जानामि सा नूनं न प्राणिति वियोगिनी ॥
तस्या विनाऽपराधेन मया परिभवः कृतः । द्वयग्रं विंशतिमब्दानां पाषाणसमचेतसा ॥ १३७ ॥
आगच्छता मया दृष्टं तस्यास्तन्मुखपंकजं । शोकप्रालेयसंपर्कान्मुक्तं लावण्यसंपदा ॥ १३८ ॥
तस्यास्ते नयने दीर्घे नीलोत्पलसमप्रभे । इषुवत्स्मृतिमारूढे हृदयं विध्यतेधुना ॥ १३९ ॥
तदुपायं कुरु त्वं तमावयोर्येन संगमः । जायेत मरणं माभूदुभयोरपि सज्जन ॥ १४० ॥
ऊचे प्रहसितोप्येवं क्षणनिश्चलविग्रहः । उपायचिंतनात्यंतचलदोलास्थमानसः ॥ १४१ ॥
कृत्वा गुरुजनापृच्छां निर्गतस्य तवाधुना । शत्रुनिर्जेतुकामस्य साम्प्रतं न निवर्तनं ॥ १४२ ॥
समक्षं गुरुलोकस्य नानीता प्रथमं च या । लज्यते तामिहानेतुमधुनांजनसुंदरीं ॥ १४३ ॥
तस्मादविदितो गत्वा तत्रैवैतां त्वमानय । नेत्रयोर्गोचरीभावं संभाषणसुखस्य च ॥ १४४ ॥
जीवितालंबनं कृत्वा चिरात्तस्याः समागमं । ततः क्षिप्रं निवर्तस्व शीतलीभूतमानसः ॥१४५॥
निरपेक्षस्ततो भूत्वा वहन्नुत्साहमुत्तमं । गमिष्यसि रिपुं जेतुमुपायोयं सुनिश्चितः ॥ १४६ ॥
ततः परमित्युक्त्वा सेनान्यं मुद्गराभिधं । नियुज्य बलरक्षायां व्याजतो मेरुवंदनात् ॥१४७॥

माल्यानुलेपनादीनि गृहीत्वा त्वरयान्वितः । पुरः प्रहसितं कृत्वा वायुर्गगनमुद्ययौ ॥ १४८ ॥
तावच्च भानुरैदस्तं कृपयेव प्रचोदितः । विश्रब्धमेतयोर्योगो निशीथे जायतामिति ॥ १४९ ॥
संध्यां लोकपरिध्वंसहेतुना तमसान्वितां । जगत्स्पर्शनविज्ञेयपदार्थमभवत्ततः ॥ १५० ॥
प्राप्तश्चांजनसुंदर्या गृहे प्रग्रीवकोदरे । वायुरस्थात्प्रविष्टस्तु तस्याः प्रहसितोंतिकं ॥ १५१ ॥
ततस्तं सहसा दृष्ट्वा मंददीपप्रकाशतः । अंजना विव्यथेऽत्यर्थं कः कोयमिति वादिनी ॥ १५२ ॥
सखीं वसंतमालां च सुप्तां पार्श्वे व्यनिद्रयत् । कुशलोत्थाय सा तस्याश्चकार भयनाशनं १५३
ततः प्रहसितोस्मीति गदित्वासौ नमस्कृतिं । प्रयुज्याऽकथयत्तस्यै पवनंजयमागतं ॥ १५४ ॥
ततः स्वप्नसमं श्रुत्वा प्राणनाथस्य सागमं । ऊचे प्रहसितं दीनमिदं गद्गदया गिरा ॥ १५५ ॥
किं मां प्रहसितापुण्यां हससि प्रियवर्जितां । ननु कर्मभिरेवाहं हासितातिमलीमसैः ॥ १५६ ॥
प्रियेण परिभूतेति विदित्वा वद केन नो । परिभूतास्मि निर्भाग्या दुःखावस्थानविग्रहा ॥१५७॥
विशेषतस्त्वया कांतः प्रोत्साह्य क्रूरचेतसा । एतामारोपितोऽवस्थां मम कृच्छ्रविधायिनीं १५८
अथवा भद्र ते कोऽत्र दोषः कर्मवशीकृतं । जगत्सर्वमवाप्नोति दुःखं वा यदि वा सुखं ॥१५९॥
इति साश्रुवदंतीं तामात्मनिंदनतत्परां । नत्वा प्रहसितोऽवोचद्दुःखार्द्रीकृतमानसः ॥ १६० ॥

कल्याणि मामणीरेवं क्षमस्व जनितं मया । आगो विचारशून्येन पापावष्टब्धचेतसा ॥ १६१ ॥
प्राप्तानि विलयं नूनं दुष्कर्माणि तवाधुना । येन प्रेमगुणाकृष्टो जीवितेशः समागतः ॥ १६२ ॥
अधुनास्मिन् प्रसन्नेति किं न जातं सुखावहं । ननु चंद्रेण शर्वर्याः संगमे का न चारुता ॥१६३॥
ततः क्षणं स्थिता चेदं जगादांजनसुंदरी । प्रतिनिस्वनवत्येवं सख्यनूदितया गिरा ॥ १६४ ॥
असंभाव्यमिदं भद्र ? यथा वर्षं जलोज्झितं । भवत्यप्यथवा काले कल्याणं कर्म चोदितं १६५
तथास्तु स्वागतं तस्य जीवितस्येशितुर्मम । अद्य मे फलितः पूर्वशुभानुष्ठानपादपः ॥ १६६ ॥
वदंत्यामेवमेतस्यामानंदात्प्राप्तचक्षुषि । तत्सख्येवांतिकं नीतस्तस्याः करुणया प्रियः ॥ १६७ ॥
त्रस्तसारंगकांताक्षी दृष्ट्वा तं परमोत्सवं । जानुद्वयासकृन्न्यस्तस्रस्तपाणिसरोरुहा ॥ १६८ ॥
स्तंभवत्प्रसृता कांडा वेपथुश्रितविग्रहा । शनैरुत्थातुमारब्धा शयनस्था प्रयासिनी ॥ १६९ ॥
अथालमलमेतेन देवि क्लेशविधायिना । संभ्रमेणेति वचनं विमुंचन्नमृतोपमं ॥ १७० ॥
समुत्थितां प्रियां कृच्छ्रादंजलिं बद्धुमुद्यतां । गृहीत्वा दयितः पाणौ शयने समुपाविशत् ॥१७१॥
स्वेदी पाणिरसौ तस्याः परमं पुलकं वहन् । प्रियस्पर्शामृतेनेव सिक्तो व्यामुंचदंकुरान् ॥ १७२ ॥
नत्वा वसंतमाला तं कृत्वा भाषणमादरात् । साकं प्रहसितेनास्थाद्रम्ये कक्षांतरे सुखं ॥ १७३ ॥

अथानादरतः पूर्वं त्रपमाणः स्वयंकृतात् । पवनः कुशलं पृष्टुं न प्रावर्तत चेतसा ॥ १७४ ॥
विलक्षस्तु प्रिये मृष्य मया कर्मानुभावतः । निकारं कृतमित्यूचे तत्क्षणाकुलमानसः ॥ १७५ ॥
आद्यसंभाषणात्सापि वहंती नतमाननं । जगाद मंदया वाचा निश्चलाखिलविग्रहा ॥ १७६ ॥
न कश्चिज्जनितो नाथ त्वया परिभवो मम । अधुना कुर्वता स्नेहं मनोरथसुदुर्लभं ॥ १७७ ॥
त्वत्स्मृतिबद्धं मे वहंत्या ननु जीवितं । त्वदायत्तो निकारोऽपि महानंदसमोऽभवत् ॥ १७८ ॥
अथैव भाषमाणाया विधाय चिबुकेंगुलिं । उन्नमय्य मुखं पश्यन् जगाद पवनंजयः ॥ १७९ ॥
देवि सर्वापराधानां विस्मृत्यै तव पादयोः । प्रणाममेष यातोस्मि प्रसादं परमं व्रज ॥ १८० ॥
इत्युक्त्वा स्थापितं तेन मूर्द्धानं पादयोः प्रिया । त्वरया करपद्माभ्यामुन्नेतुं व्यापृताभवत् १८१
तथावस्थित एवासौ ततोवोचत्प्रियं वचः । प्रसन्नोस्मीति येनाहमुद्यच्छामि शिरः प्रिये ॥१८२॥
क्षांतमित्युदितोथासावुन्नमय्यांगमुत्तमं । चक्रे प्रियासमाश्लेषं सुखमीलितलोचनः ॥ १८३ ॥
आश्लिष्टा दयितस्यासौ तथा गात्रेष्वलीयत । पुनर्वियोगभीतेव ज्ञातांतर्विग्रहं यथा ॥ १८४ ॥
आलिंगनविमुक्तायास्तस्यास्तिमितलोचनं । मुखं मुक्तनिमेषाभ्यां लोचनाभ्यां पपौ प्रियः १८५
पादयोः करयोर्नाभ्यां स्तनयोश्चिबुकेऽलिके । गंडयोर्नेत्रयोश्चास्याश्चुंबनं मदनातुरः ॥ १८६ ॥

पुनः पुनश्चकारासौ स्वेदिना पाणिना स्पृशन् । आप्तसेवा हि सा नूनं क्रियते वक्त्रचुंबने १८७
ततः प्रबुद्धराजीवगर्भच्छदसमप्रभं । स पपावधरं तस्या विमुंचंतमिवामृतं ॥ १८८ ॥
नीवीविमोचनव्यग्रपाणिमस्यत्र पावती । रोद्धुमैच्छन्नचाशक्ता पाणिना वेपथुश्रिता ॥ १८९ ॥
ततो नितंबफलकं दृष्ट्वास्या वसनोज्झितं । उवाह हृदयं वायुर्मनोभूवेगरंगितं ॥ १९० ॥
अथ केनापि वेगेन परायत्तीकृतात्मना । गृहीता दयिता गाढं पवनेनाब्जकोमला ॥ १९१ ॥
यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथा ज्ञापयति स्मरः । अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः १९२
तथा तयो रतिः प्राप्ता दंपत्योर्बुद्धिमुत्तमां । काले तत्र हि यो भावो नैवाख्यातुं स पार्यते १९३
स्तनयोः कुंभयोरेष जघने चांगनोत्तमां । आस्फालयन् समारूढो मनोभवमहागजं ॥ १९४ ॥
तिष्ठ मुंच गृहाणेति नानाशब्दसमाकुलं । तयोर्युद्धमिवोदारं रतमासीत्सविभ्रमं ॥ १९५ ॥
अधरग्रहणे तस्याः पुरुसीत्कारपूर्वकं । प्रविधूतः करो रेजे लताया इव पल्लवः ॥ १९६ ॥
प्रियदत्ता नवास्तस्या नखांका जघने बभुः । वैडूर्यजगतीभागे पद्मरागोद्गमा इव ॥ १९७ ॥
तस्याः सेचनकत्वं तु जगाम जघनस्थलं । निमेषमुक्ततन्निष्ठमुकुलीभूतचक्षुषः ॥ १९८ ॥
वलयानां रणत्कारः कलालापसमन्वितः । तदा मनोहरो जज्ञे भ्रमरौघरवोपमः ॥ १९९ ॥

तस्यास्ते काम्यमानाया नेत्रकेकरतारके । मुकुले दधतुः शोभां चलालींदीवरस्थिती ॥ २०० ॥
प्रस्वेदबिंदुनिकरस्तस्या मुखकुचोद्गतः । स्वच्छमुक्ताफलाकारो रतस्यांतेऽत्यराजत ॥ २०१ ॥
रदग्रहारुणीभूतं साधरं बिभ्रती बभौ । पलाशवनराजीव समुद्भूतैककिंशुकः ॥ २०२ ॥
प्रियमुक्कातनुस्तस्या ऊहे कांतिमनुत्तमां । कनकाद्रितटाश्लिष्टघनपंक्तिकृतोपमां ॥ २०३ ॥
ततः संप्राप्तकृत्ये तौ समाप्ते सुरतोत्सवे । दंपती सेवितुं निद्रां खिन्नदेहाववांछतां ॥ २०४ ॥
परस्परगुणध्यानवशमानसयोस्तु सा । इर्ष्ययेव तयोर्दूरं कोपात्कापि पलायिता ॥ २०५ ॥
ततः प्रियां स देशस्थदयितामूर्द्वदेशकं । कृतान्योन्यभुजाश्लेषं परमप्रेमकीलितं ॥ २०६ ॥
महासौरभनिश्वासवासितास्यसरोरुहं । विकटोरःपरिष्वंगचक्रितस्तनमंडलं ॥ २०७ ॥
नरोर्वंतरनिक्षिप्तवनितैकोरुभारकं । यथेष्टदेशविन्यस्तनानाकारोपधानकं ॥ २०८ ॥
नामीयमिव तत्कांतं मिथुनं कथमप्यगात । निद्रां स्पर्शसुखांभोधिनिमग्नालीनविग्रहं ॥ २०९ ॥
जाते मंदप्रभातेथ शयनीयात्समुत्थिता । पार्श्वासन्नस्थिता कांतमंजना पर्यषेवत ॥ २१० ॥
दृष्ट्वा परिमलं देहे स्वस्मिन् साभूत्त्रपावती । प्रमदं च परिप्राप्ता चिराल्लब्धमनोरथा ॥ २११ ॥
तयोरज्ञातयोरेवं यथोचितविधायिनोः । अतीयाय निशानेका क्षणादर्शनभीतयोः ॥ २१२ ॥

दोदुंदुक (?) सुरौपम्यं प्राप्तयोरुभयोस्तदा । इंद्रियाण्यन्यकार्येभ्यः प्राप्तानि विनिवर्तनं २१३
अन्यदा सौख्यसंभारविस्मृतस्वामिशासनं । मित्रं प्रमादवद्बुध्वा तद्धितध्यानतत्परः ॥ २१४ ॥
सुधीर्वसंतमालायां प्रविष्टायां कृतध्वनिः । प्रविश्य वासभवनं मंदं प्रहसितोऽवदत् ॥ २१५ ॥
सुंदरोत्तिष्ठ किं शेषे नत्वेष रजनीपतिः । जितस्त्वन्मुखकांत्येव गतोविच्छायतां परां ॥ २१६ ॥
इति वाचास्य जातोऽसौ प्रबोधं श्लथविग्रहः । कृत्वा विजृंभणं निद्राशेषारुणनिरीक्षणः २१७
श्रवणं वामतर्जन्या कंडूयन्मुकुलेक्षणः । संकोच्य दक्षिणं बाहुं निक्षिपञ्जनितस्वरं ॥ २१८ ॥
कांतायां निदधन्नेत्रे त्रपाविनतचक्षुषि । एहीति निगदन्मित्रमुत्तस्थौ पवनंजयः ॥ २१९ ॥
कृत्वा स्मितमथापृच्छ्य सुखरात्रिकृतस्मितं । पृच्छंतं रात्रिकुशलं तद्वेदी तन्निवेदनं ॥ २२० ॥
निवेश्य तत्प्रियोद्दिष्टे समासन्ने सुखासने । सुहृदेनं जगादैवं नयशास्त्रविशारदः ॥ २२१ ॥
उत्तिष्ठ मित्र गच्छावः सांप्रतं बहवो गताः । दिवसास्ते प्रसक्तस्य प्रियासन्मानकर्मणि ॥२२२॥
यावत्कश्चिन्न जानाति प्रत्यागमनमावयोः । गमनं युज्यते तावदन्यथा लज्जनं भवेत् ॥२२३॥
तिष्ठत्युदीक्षमाणश्च रथनूपुरकस्तव । नृपः कैश्चरगीतश्च यियासुः स्वामिनोंतिकं ॥ २२४ ॥
मंत्रिणश्च किलाजस्रं पृच्छंत्यादरसंगतः । पवनो वर्तते केति मरुत्तमखसूदनः ॥ २२५ ॥

उपायो गमनस्यायं मया विरचितस्तव । दयितासंगमस्तस्मादिदानीं तत्र त्यज्यतां ॥ २२६ ॥
आज्ञेयं करणीया ते स्वामिनो जनकस्य च । क्षेमादागम्य सततं दयितां मानयिष्यते ॥२२७॥
एवं करोमि साधूक्तं सुहृदेत्यभिधाय सः । कृत्वा तनुगतं कर्म सन्निधापितमंगलं ॥ २२८ ॥
रहस्यांलिंग्य दयितां चुंबित्वा स्फुरिताधरं । जगाद देवि माकार्षीरुद्वेगं त्वं व्रजाम्यहं ॥२२९॥
अचिरेणैव कालेन विधाय स्वामिशासनं । आगमिष्यामि निर्वृत्त्या तिष्ठेति मधुरस्वरः ॥२३०॥
ततो विरहतो भीता तद्वक्त्रगतलोचना । कृत्वा करयुगांभोजं जगादांजनसुंदरी ॥ २३१ ॥
आर्यपुत्रर्तुमत्यस्मिन् भवता कृतसंगमा । ततस्त्वद्विरहे गर्भो ममावाच्यो भविष्यति ॥ २३२ ॥
तस्मान्निवेद्य गच्छ त्वं गुरुभ्यो गर्भसंभवं । क्षेमाय दीर्घदर्शित्वं कल्प्यते प्राणधारणं ॥ २३३ ॥
एवमुक्तो जगादासौ देवि पूर्वं त्वया विना । निष्क्रांतो निश्चितो गेहाद्गुरूणां सन्निधावहं २३४
अधुना गमनं तेभ्यस्तदर्थं गदितुं त्रपे । चित्रचेष्टं च विज्ञाय मां जन स्मेरतां व्रजेत् ॥ २३५ ॥
तस्माद्यावदयं गर्भस्तव नैति प्रकाशतां । तावदेवाव्रजिष्यामि मात्राजीर्विमनस्कतां ॥ २३६ ॥
इमं प्रमादनोदार्थं मन्नामकृतलक्षणं । गृहाण वलयं भद्रे शांतिस्तेऽतो भविष्यति ॥ २३७ ॥
इत्युक्त्वा वलयं दत्वा सांत्वयित्वा मुहुःप्रियां । उक्त्वा वसंतमालां च तदर्थं समुपासनं ॥२३८॥

रतव्यतिकरच्छिन्नहारमुक्ताफलाचितात् । पुष्पगंधपरागोरुसौरभाकृष्टषट्पदात् ॥ २३९ ॥
तरंगिप्रच्छदपटाद् दुग्धाब्धिद्वीपसन्निभात् । शयनीयात्समुत्तस्थौ प्रियावस्थितमानसः ॥२४० ॥
मंगलःवंसभीत्या च प्रियया साश्रुनेत्रया । अदृष्टिगोचरं दृष्टः समित्रो वियदुद्ययौ ॥ २४१ ॥
कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदया । त्सुखं जगति संगमादभिमतस्य सद्वस्तुनः ॥
कदाचिदपि संभवत्यसुभृतामसौख्यं परं । भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतःसर्वदा २४२
अथापि जननात्प्रभृत्यविरतं सुखं प्राणिनां । मृतोरविरतो भवेत्तनु तथाप्यमुत्रासुखं ॥
ततो भजत भो जनः सततभूरिसौख्यावहं । भवासुखतमिच्छदं जिनवरोक्तधर्मं रविं ॥२४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते पवनांजनासंभोगाभिधानं नाम षोडशं पर्व ।

अथ सप्तदशं पर्व ।

कियत्यपि प्रयातेऽथ काले गर्भस्य सूचकाः । विशेषाः प्रादुरभवन्महेंद्रतनयातनौ ॥ १ ॥
इयाय पांडुतां छाया यशसेव हनूमतः । मतिर्मंदतरत्वं च मतिर्दिग्रागविभ्रमा ॥ २ ॥
स्तनावत्युन्नतिं प्राप्तौ श्यामलीभूतचूचुकौ । आलस्याद्भ्रूसमुत्क्षेपं चकार विषयो गिरः ॥ ३ ॥

ततस्तां लक्षणैरेभिः श्वश्रूर्विज्ञाय गर्भिणीं । पप्रच्छ तव केनेदं कृतं कर्मेत्यसूयिका ॥ ४ ॥
सांजलिः सा प्रणम्योचे निखिलं पूर्वचेष्टितं । प्रतिषिद्धापि कांतेन गतिमन्यामविंदती ॥ ५ ॥
ततः केतुमती क्रुद्धा जगादेति सुनिष्ठुरं । वाणीभिर्ग्राविदेहाभिस्ताडयंतीव यष्टिभिः ॥ ६ ॥
यो न त्वत्सदृशं पापे द्रष्टुमाकारमिच्छति । शब्दं वा श्रवणे कर्तुमतिद्वेषपरायणः ॥ ७ ॥
स कथं स्वजनापृच्छां कृत्वा गेहाद्विनिर्गतः । भवत्यां संगमं धीरः कुर्वीत विगतत्रपे ॥ ८ ॥
धिक् त्वां पापां शशांकांशुशुभ्रसंतानदूषिणीं । आचरंतीं क्रियामेतां लोकद्विषन्निंदितां ॥ ९ ॥
सखी वसंतमाला ते साध्वीमेतां मतिं ददौ । वेश्या वा कुलटानां किं कुर्वंति परिचारिका ॥१०॥
दर्शितेऽपि तदा तस्मिन्कटके क्रूरमानसा । प्रतीयाय न सा श्वश्रूकोपात्यंतमुग्रवाक् ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा क्रूरनामानं क्रूर माहूय किंकरं । कृतप्रणाममित्यूचे कोपारुणनिरीक्षणा ॥ १२ ॥
अयि क्रूराशु नीत्वेमां महेंद्रपुरगोचरं । यानेन सहितां सख्या निक्षिप्यैहि निरंतरं ॥ १३ ॥
ततस्तद्वचनादेतां पृथुवेपथुविग्रहां । महापवननिर्धूतां लतामिव निराश्रयां ॥ १४ ॥
ध्यायंतीमाकुलं भूरिदुःखमागामि निष्प्रभां । विलीनमिव विभ्राणां हृदयं दुःखवह्निना ॥ १५ ॥
भीत्या निरुत्तरीभूतां सखीनिहितलोचनां । निंदंतीमशुभं कर्म मनसा पुनरुद्धतं ॥ १६ ॥

अश्रुधारां विमुंचतीं शलाकास्फाटिकीमिव । स्तनमध्ये क्षणं न्यस्तपर्यंतामनवस्थितां ॥ १७ ॥
सख्या समं समारोप्य यानं तत्कर्मदक्षिणः । क्रूरः प्रवर्तते गंतुं महेंद्रनगरं प्रति ॥ १८ ॥
दिनांते तत्पुरस्यांतं संप्राप्योवाच सुंदरीं । एवं मधुरया वाचा क्रूरः कृतनमस्कृतिः ॥ १९ ॥
स्वामिनीशासनाद्देवि कृतमेतन्मया तव । दुःखस्य कारणं कर्म ततो न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २० ॥
एवमुक्त्वावतार्यैतां यानात्सख्या समन्वितां । स्वामिन्यै द्रुतमागत्य कृतामाज्ञां न्यवेदयत् २१
ततोंजना समालोक्य दुःखभारादिवोत्तमां । मंदीभूतप्रभाचक्रविरस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥
लोचनच्छाययेवास्या रोदनात्यंतशोणया । रवित्राणाय पश्यंत्या पश्चिमाशारुणाऽभवत् ॥ २३ ॥
ततस्तद्दुःखितो मुक्तैर्वाष्पैरिव घनैरलं । दिग्भिर्निरंतरं चक्रे श्यामलं नभसस्तलं ॥ २४ ॥
तद्दुःखादिव संप्राप्ता दुःखसंघातकारिणः । कुलायेष्वाकुलाश्चक्रुर्वयः कोलाहलं परं ॥ २५ ॥
ततो दुःखमविज्ञाय सा क्षुदादिसमुद्भवं । अभ्याख्यानमहादुःखसागरप्लवकारिणी ॥ २६ ॥
भीतांतर्वदनं साश्रु कुर्वती परिदेवनं । सख्या विरचिते तस्थौ पल्लवे संस्तरेंऽजना ॥ २७ ॥
न तस्या नयने निद्रा तस्यां रात्रावढौकत । दाहादिव भयं प्राप्ता संततोष्णाश्रुसंभवात् ॥ २८ ॥
पाणिसंवाहनात्सख्या विनिर्धूतपरिश्रमा । सांत्वमाना निशां निन्ये कृच्छ्रेणासौ समासमं ॥२९॥

ततो दीर्घोष्णनिश्वासनितांतम्लानपल्लवं । प्रभाते शयनं त्यक्त्वा नानाशंकातिविक्लवा ॥ ३० ॥
कृतानुगमना सख्या छाययेवानुकूलया । ऐत्पितुर्मंदिरद्वारं सकृपं वीक्षिता जनैः ॥ ३१ ॥
ततस्तत्प्रविशंती सा निरुद्धा द्वाररक्षिणा । प्राप्ता रूपांतरं दुःखादविज्ञाता व्यवस्थिता ॥ ३२ ॥
ततो निखिलमेतस्याः सख्या कृतनिवेदितं । विज्ञाय स्थापयित्वान्यत्नरं द्वारे ससंभ्रमः ॥ ३३ ॥
गत्वा शिलाकवाटाख्यो द्वारपालः कृतानतिः । सुतागमं महीपाणिरुपांश्वीशं व्यजिज्ञपत् ॥३४॥
ततः प्रसन्नकीर्ताख्यं महेंद्रः पार्श्वगं सुतं । आज्ञापयन् महाभूत्या तस्याः शीघ्रं प्रवेशनं ॥३५॥
पुरस्य क्रियतां शोभा साधनं परिसज्जतां । स्वयं प्रवेशयामीति पुनरूचे नराधिपः ॥ ३६ ॥
जगादासौ ततस्तस्मै द्वारपालो यथास्थितं । सुतायाश्चरितं कृत्वा वदने पाणिपल्लवं ॥ ३७ ॥
ततः श्रुत्वा त्रपाहेतुं पिता तस्या विचेष्टितं । प्रसन्नकीर्तिमित्यूचे परमं कोपमागतः ॥ ३८ ॥
निर्वास्यतां पुरादस्मादरं सा पापकारिणी । यस्या मे चरितं श्रुत्वा वज्रेणेवाहते श्रुती ॥ ३९ ॥
ततो नाम्ना महोत्साहः सामंतोऽस्यातिवल्लभः । जगाद नाथ नो कर्तुमेवं कर्तुमिमां प्रति ४०
वसंतमालया ख्यातं यथास्मै द्वाररक्षिणे । एवमेव न युक्ता तु विचिकित्सा विकारिणा ॥ ४१ ॥
श्वश्रूः केतुमती क्रूरा लौकिकश्रुतिभाविता । अत्यंतमविचारास्या विना दोषात्कृतोज्झिता ॥४२॥

क्रूरयेयं यथा त्यक्ता कल्याणाचारतत्परा। भवतापि विनिर्धूता शरणं कं प्रपद्यतां ॥ ४३ ॥
व्याघ्रदृष्टमृगीवेयं मुग्धास्या त्रासमागता। श्वश्रूतस्त्वां महाकक्षसमं शरणमागता ॥ ४४ ॥
सेयं निदाघसूर्यांशुसंतापादिव दुःखिता। महातरूपमं बाला विदित्वा त्वां समागता ॥ ४५ ॥
श्रीवत्स्वर्गात्परिभ्रष्टा वराकी विह्वलात्मिका। अभ्याख्यानतया लीढा कल्पवल्लीव कंपिनी ४६
द्वारपालनिरोधेन सुतरामागता त्रपां। वैलक्ष्यादंशुकेनांगमवगुंठ्य समूर्द्धकं ॥ ४७ ॥
पितृस्नेहान्विता द्वारे सदा दुर्लडितात्मिका। तिष्ठतीत्यमुना ख्यातं द्वारपालेन पार्थिव ॥ ४८ ॥
स त्वं कुरु दयामस्यां निर्दोषयं प्रवेश्यतां। ननु केतुमती ज्ञाता क्रूरा कस्य न विष्टपे ॥ ४९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रोत्रे राज्ञश्चक्रे न संश्रयं। नलिनीदलविन्यस्तं विंदुजालमिवांसभः ॥ ५० ॥
जगाद च सखी स्नेहात्कदाचित्सत्यमप्यदः। अन्यथाऽकथयत्केन निश्चयोऽत्रावधार्यते ॥ ५१ ॥
तस्मात्संदिग्धशीलेयमाशु निर्वास्यतामतः। नगराद्यावदमले कुले नो जायते मलं ॥ ५२ ॥
विशुद्धविनया चार्वी चारुचेष्टाविधायिनी। भवेदभ्यर्हितात्यंतं कस्य नो कुलबालिका ॥ ५३ ॥
पुण्यवंतो महासत्वा पुरुषास्तेऽतिनिर्मलाः। यैः कृतो दोषमूलानां दाराणां न परिग्रहः ॥ ५४ ॥
परिग्रहे तु दाराणां भवत्येवंविधं फलं। यस्मिन्गते सति ख्यातिं भूप्रदेशोऽभिवांछयते ॥५५॥

दुःखप्रत्यायनस्वांतस्तावल्लोकोऽवतिष्ठतां । जातमेव ममाप्यत्र मनोऽद्य कृतशंकनं ॥ ५६ ॥
एषा भर्तुरचक्षुष्या श्रुता पूर्वं मयाऽसकृत् । ततस्तेन न संभूतिरस्या गर्भस्य निश्चिता ॥ ५७ ॥
तस्मादन्योऽपि यस्तस्मै प्रयच्छति समाश्रयं । वियोज्यः स मया प्राणैरित्येष मम संगरः॥५८॥
कुपितेनेति सा तेन द्वारादविदिता परैः । निर्घाटिता समं सख्या दुःखपूरितविग्रहा ॥ ५९ ॥
यद्यत्स्वजनगेहं सा जगामाश्रयकांक्षया । तत्र तत्राप्यधीयंत द्वाराणि नृपशासनान् ॥ ६० ॥
यत्रैव जनकः क्रुद्धो विदधाति निराकृतिं । तत्र शेषजने कास्था तच्छंदकृतचेष्टिते ॥ ६१ ॥
एवं निर्घाट्यमाणा सा सर्वत्रात्यंतविक्लवा । सखीं जगाद वाष्पौघसमार्द्रीकृतदेहिका ॥ ६२ ॥
अंबे इहात्र किं भ्रांतिं कुर्वत्यावास्वहे सखि । पाषाणहृदयो लोको जातोऽयं नः कुकर्मभिः ॥६३॥
वनं तदेव गच्छावस्तत्रैवास्तु यथोचितं । अपमानात्ततो दुःखान्मरणं परमं सुखं ॥ ६४ ॥
इत्युक्त्वासौ समं सख्या तदेव प्राविशद्वनं । मृगीव मोहसंप्राप्ता मृगराजविभीषिता ॥ ६५ ॥
वातातपपरिश्रांता दुःखसंभारपीडिता । उपविश्य वनस्यांतं सा चक्रे परिदेवनं ॥ ६६ ॥
हा हता मंदभाग्यास्मि विधिना दुःखदायिना । अहेतुवैरिणा कष्टं कं परित्राणमाश्रये ॥ ६७ ॥
दौर्भाग्यसागरस्यांते प्रसादं कथमप्यगात् । नाथो मे स गतस्त्यक्त्वा दुष्कर्मपरिचोदितः॥६८॥

श्वश्रूवादिकृतदुःखानां नारीणां पितुरालये । अवस्थानं ममापुण्यैरिदमप्यवसारितं ॥ ६९ ॥
मात्रापि न कृतं किंचित्परित्राणं कथं मम । भर्तृच्छंदानुवर्तिन्यो जायंते च कुलांगनाः ॥ ७० ॥
त्वया विज्ञातगर्भायामेष्यामीति त्वयोदितं । हा नाथ वचनं कस्मात्स्मर्यते न कृपावता ॥७१॥
अपरीक्ष्य कथं श्वश्रु त्यक्तुं मामुचितं तव । ननु संदिग्धशीलानां संत्यपायाः परीक्षणे ॥ ७२ ॥
उत्संगलालिता बाल्ये सदा दुर्लडितात्मिकां। निष्परीक्ष्य पितस्त्यक्तुं मां कथं तेऽभवन्मतिः ७३
हा मातः साधुवाक्यं ते न कथं निर्गतं मुखात् । सकृदप्युत्तमा प्रीतिरधुना सा किमुज्झिता ७४
एकोदरोषितां भ्रातस्त्रातुं ते मां सुदुःखितां । कथं न काचिदुद्भूता चेष्टा निष्ठुरचेतसः ॥७५॥
यत्र यूयमिदंचेष्टाः प्रधाना बंधुसंहतिः । तत्र कुर्वंतु किं शेषा वराका दूरबांधवाः ॥ ७६ ॥
अथवा कोऽत्र वो दोषः पुण्यार्तो मम निष्ठिते (?)। फलिते पुण्यवृक्षोयं निषेव्यो वशया मया ७७
प्रतिशब्दसमं तस्या विलापमकरोत्सखी । तदाक्रंदविनिर्धूतधैर्यदूरितमानसा ॥ ७८ ॥
अत्यंतदीनमेतस्यां रुदंत्यां तारनिस्वनं । मृगीभिरपि निर्मुक्ताः सुस्थूला वाष्पविंदवः ॥ ७९ ॥
ततश्चिरं रुदित्वैनामरुणीभूतलोचनां । सखी दोर्भ्यां समालिंग्य जगादैवं विचक्षणा ॥ ८० ॥
स्वामिन्यलं रुदित्वा ते नन्ववश्यं पुराकृतं । नेत्रे निमील्य षोढव्यं कर्म पाकमुपागतं ॥ ८१ ॥

सर्वेषामेव जंतूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः । कर्म तिष्ठति यद्देवि तत्र कोऽवसरः शुचः ॥ ८२ ॥
अप्सरःशतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः । प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतांते सुरा अपि ॥ ८३ ॥
चिंतयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा । लोकव्यापारशक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधिः॥८४॥
हितंकरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात् । कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरं ॥ ८५ ॥
गतयः कर्मणां कस्य विचित्राः परिनिश्चिताः । तस्मात्त्वमस्य माकार्षीर्व्यथां गर्भस्य दुःखिताः८६
आक्रम्य दशनैर्दंतान् कृत्वा ग्रावसमं मनः । कर्म स्वयं कृतं देवि सहस्वाशक्यवर्जनं ॥ ८७ ॥
ननु स्वयं विबुद्धाया मया ते शिक्षणं कृतं । अधिक्षेप इवाभाति वद ज्ञातं न किं तव ॥ ८८ ॥
अभिधायेति सा तस्या नयने शोणरोचिषी । न्यमार्ष्ट वेपथोर्युक्ता पाणिना सांत्वतत्परा ॥८९॥
भूयश्चोचे प्रदेशोयं देवि संश्रयवर्जितः । तस्मादुत्तिष्ठ गच्छावः पार्श्वमस्य महीभृतः ॥ ९० ॥
गुहायामत्र कस्यांचिदगम्यायां कुजंतुभिः । सूतिकल्याणसंप्राप्त्यै समयं किंचिदास्वहे ॥ ९१ ॥
ततस्तयोपदिष्टा सा पदवीं पादचारिणी । गर्भभाराद्विपच्चारमसमर्था निषेवितुं ॥ ९२ ॥
अनुयांती महारण्यधरणीं समयागिरिं । व्यालजालसमाकीर्णां तत्रादात्यंतभीषणां ॥ ९३ ॥
महानोकहसंरुद्धदिवाकरकरोत्करां । महीभृत्पादसंकीर्णां दर्भसूचीसुदुश्चरां ॥ ९४ ॥

युक्तां मतंगमालाभिर्न्यस्यंती कृच्छ्रतः पदं । मतंगमालिनीं नाम प्राप मानसदुर्गमां ॥ ९५ ॥
सक्तापि गगने गंतुं पद्भ्यां तस्याः सखी ययौ । प्रेमबंधनसंबद्धा छायावृत्तिमुपाश्रिता ॥ ९६ ॥
भयानकां ततः प्राप्य तामसीं संकटाटवीं । वेपमानसमस्तांगा कांदिशीत्वमुपाययौ ॥ ९७ ॥
ततस्तामाकुलां ज्ञात्वा गृहीत्वा करपल्लवे । आली जगाद माभैषीः स्वामिन्येहीति सादरात् ९८
ततः सख्यैसविन्यस्तविस्वंशिकरपल्लवा । दर्भसूचीमुखस्पर्शकणितेक्षणकोणिका ॥ ९९ ॥
तत्र तत्रैव भूदेशे न्यस्यंती चरणौ पुनः । स्तनंती दुःखसंभारादेहं कृच्छ्रेण बिभ्रती ॥ १०० ॥
उत्तरंती प्रयासेन निर्झरान् वेगवाहिनः । स्मरंती स्वजनं सर्वं निष्ठुराचारकारिणं ॥ १०१ ॥
निंदंती स्वमुपालंभं प्रयच्छंती मुहुर्विधेः । कारुण्यादिव वल्लीभिश्लिष्यमाणाखिलांगिका १०२
त्रस्तसारंगजायाक्षी श्रमजस्वेदवाहिनी । सक्तं कंटकिगुच्छेषु मोचयत्यंशुकं चिरात् ॥ १०३ ॥
क्षतजेनाचितौ पादौ लाक्षिताविव बिभ्रती । शोकाग्निदाहसंभूतां श्यामतां दधतीं परां ॥१०४॥
दलेऽपि चलिते त्रासं व्रजंती चलविग्रहा । संत्रासस्तंभितावूरू वहंती खेददुर्वहौ ॥ १०५ ॥
मुहुर्विश्रम्यमानात्मा नितांतप्रियवाक्यया । गिरेः प्रापांजना मूलं शनकैरिति दुःखिताः॥१०६॥
तत्र धारयितुं देहमसक्ता साश्रुलोचना । अपकर्ण्य सखीवाक्यं महाखेदादुपाविशत् ॥ १०७ ॥

जगाद च न शक्नोमि प्रयातुं पदमप्यतः । तिष्ठाम्यत्रैव देशेहं प्राप्नोमि मरणं वरं ॥ १०८ ॥
सांत्वयित्वा ततो वाक्यैः कुशला हृदयंगमैः । विश्रमय्य प्रणम्योचे सख्येवं प्रेमतत्परा ॥१०९॥
पश्य पश्य गुहामेतां देवि नेदीयसीं परां । कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ स्थास्यावोऽत्र यथासुखं ॥११०॥
प्रदेशे संचरंतीह प्राणिनः क्रूरचेष्टिताः । ननु ते रक्षणीयोयं गर्भः स्वामिनि मामुह ॥ १११ ॥
इत्युक्त्वा सानुरोधेन सख्या वनभयेन च । गमनाय समुत्तस्थौ भूयोऽपि परितापिनी ॥ ११२ ॥
महानुभावतायोगादनुज्ञातेरभावतः । ह्रीतश्च नांतिकं वायोरयासिष्टामिमे तदा ॥ ११३ ॥
हस्तावलंबदानेन ततस्तां विषमां भुवं । लंघयित्वा सखी कृच्छ्रादूगुहाद्वारमुपाहरत् ॥ ११४ ॥
प्रवेष्टुं सहसा भीते तत्र ते तस्थतुः क्षणं । विषमग्रावसंक्रांतिसंजातविपुलश्रमे ॥ ११५ ॥
विश्रांताभ्यां चिराद्दृष्टिस्तत्राभ्यां न्यासि मंदगा । म्लानरक्तशितिश्वेतनीरजस्रकसमप्रभा ११६
अपश्यतां ततः शुद्धसमामलशिलातले । पर्यंकसुस्थितं साधुं चारणातिशयान्वितं ॥ ११७ ॥
निभृतोच्छ्वासनिश्वासं नासिकाग्राहितेक्षणं । ऋजुश्लथवपुर्यष्टिं स्थाणुवच्चलनोज्झितं ॥ ११८ ॥
अंकस्थवामपाण्यकन्यस्तान्योत्तानपाणिकं । निष्प्रकंपं नदीनाथगांभीर्यस्थितमानसं ॥ ११९ ॥
ध्यायंतं वस्तुयाथात्म्यं यथाशासनभावनं । निश्शेषसंगनिर्मुक्तं वायुवद्गगनामलं ॥ १२० ॥

शैलकूटगताशंकं वीक्ष्य ताभ्यां चिरादसौ । निरवायि महासत्वः सौम्यभासुरविग्रहः ॥ १२१ ॥
ततः पूर्वकृतानेकश्रमणासेवने मुदा । समीपं जग्मतुस्तस्य क्षणात्ते विस्मृतासुखे ॥ १२२ ॥
त्रिःपरीत्य च भावेन नेमतुर्विहितांजली । मुनिं परमिव प्राप्ते बांधवं विकचेक्षणे ॥ १२३ ॥
काले यदृच्छया तत्र तेन योगः समाप्यते । भवत्येव हि भव्यानां क्रिया प्रस्तावसंगता ॥ १२४ ॥
ते ततो वदतामेवमविभक्तकरद्वये । अनगारांघ्रिविन्यस्तनिरसुस्थिरलोचने ॥ १२५ ॥
भगवन्नयि ते देहे कुशलं कुशलाशय । मूलमेष हि सर्वेषां साधनानां सुचेष्टित ॥ १२६ ॥
उपर्युपरि संवर्द्धं तपः कश्चिद्गुणांबुधे । विहारोऽपि दमोद्वाहव्युपसर्गो महाक्षमः ॥ १२७ ॥
आचार इति पृच्छावो भवंतमिदमीदृशं । अन्यथा कस्य नो योग्या कुशलस्य भवद्विधाः १२८
भवंति क्षेमताभाजो भवद्विधसमाश्रिताः । स्वस्मिंस्तु कैव भावानां कथा साध्वितरात्मनां १२९
इत्युक्त्वा ते व्यरंसिष्टां विनयानतविग्रहे । निश्शेषभयनिर्मुक्ते तद्दृष्टे च बभूवतुः ॥ १३० ॥
अथ प्रशांतया वाचा श्रमणोऽमृतकल्पया । गंभीरया जगादैवं पाणिमुत्क्षिप्य दक्षिणं ॥ १३१ ॥
कल्याणि कुशलं सर्वं मम कर्मानुभावतः । ननु सर्वमिदं बाले नैजकर्मविचेष्टितं ॥ १३२ ॥
पश्यतां कर्मणां लीलां यदिहागोविवर्जिता । बंधुनिर्वास्यतां याता महेंद्रस्येययमात्मजा ॥१३३॥

ततोऽकथितविज्ञाततद्वृत्तांतं महामुनिं । कुतूहलसमाक्रांतमानसा सुमहादरा ॥ १३४ ॥
नत्वा वसंतमालोचे स्वामिनीप्रियतत्परा । पादयोर्नेत्रकांत्यास्य कुर्वतीवाभिषेचनं ॥ १३५ ॥
विज्ञापयामि नाथ त्वां कृपया वक्तुमर्हसि । परोपकारभूयस्यो ननु युष्मादृशां क्रियाः ॥१३६॥
हेतुना केन भर्तास्य चिरं कालं व्यरज्यत । अरज्यत पुनर्दुःखं प्राप्ता चैषा महावने ॥ १३७ ॥
कोवास्य मंदभाग्योऽयं जीवोस्याः कुक्षिमाश्रयत् । सुखोचितेयमानीता येन जीवितसंशयं॥१३८॥
ततः सोऽमितगत्याख्यो ज्ञानत्रयविशारदः । यथावृत्तं जगादास्या वृत्तिरेषा हि धीमतां १३९
वत्से शृणु यतः प्राप्ता भव्येयं दुःखमीदृशं । पूर्वमाचरितात्पापात्संप्राप्तपरिपाकतः ॥ १४० ॥
इह जंबूमति द्वीपे वास्ये भरतनामनि । नगरे मंदराभिख्ये प्रियनंदीति सद्गृही ॥ १४१ ॥
जायाजायास्य तत्राभूद्मयंताभिधः सुतः । महीसौभाग्यसंपन्नः कल्याणगुणभूषणः ॥ १४२ ॥
अथान्यदा मधौ क्रीडा परमा तत्पुरेऽभवत् । नंदनप्रतिमोद्याने पौरलोकसमाकुले ॥ १४३ ॥
चिक्रीडे दमयंतोऽपि तत्र मित्रैः समं सुखं । पटवासवलक्षांगकुंडलादिविभूषितः ॥ १४४ ॥
अथ तेन स्थितेनारात्क्रीड़ता गगनांबराः । दृष्टास्तपोधना ध्यानस्वाध्यायादिक्रियोदिता॥१४५॥
निस्सृत्य मंडलान्मित्राद्रश्मिवत्सोऽतिभासुरः । जगाम मुनिसंघातं मेरुशृंगौघसन्निभं ॥ १४६ ॥

ततः साधुं स वंदित्वा श्रुत्वा धर्मं यथाविधि । सम्यग्दर्शनसंपन्नो बभूव नियमस्थितः ॥१४७॥
दत्वा सप्तगुणोपेतामन्यदा पारणामसौ । साधुभ्यः पंचतां प्राप्य कल्पवासमशिश्रयत् ॥१४८॥
नियमाद्दानतश्चात्र भोगमन्वभवत्परं । देवीशतेक्षणच्छायानीलाब्जस्रग्विभूषितः ॥ १४९ ॥
च्युतस्तस्मादिह द्वीपे मृगांकनगरेऽभवत् । प्रियंगुलक्ष्मीसंभूतो हरिचंद्रनृपाज्मजः ॥ १५० ॥
सिंहचंद्र इतिख्यातः कलागुणविशारदः । स्थितः प्रत्येकमेकोऽपि चेतः सुप्राणधारिणां ॥१५१॥
तत्रापि मुक्तसद्भोगः साधुभ्योऽवाप्य सन्मतिं । कालधर्मेण संयुक्तो जगाम त्रिदशालयं ॥१५२॥
तत्रोदारं सुखं प्राप संकल्पकृतकल्पनं । देवीवदनराजीवमहाखंडदिवाकरः ॥ १५३ ॥
च्युत्वात्रैव ततो वास्तो विजयार्धमहीधरे । नगरेरुणसंज्ञाके सुकंठस्य नरप्रभोः ॥ १५४ ॥
जायायां कनकोदर्यां सिंहवाहनशब्दितः । उदपादि गुणाकृष्टसमस्तजनमानसः ॥ १५५ ॥
तत्र देव इवोदारसंभोगमनुभूतवान् । अप्सरोविभ्रमस्तेनः कांतालिंगनलालितः ॥ १५६ ॥
तीर्थे विमलनाथस्य सोऽन्यदा जातसन्मतिः । निक्षिप्य तनये लक्ष्मीं घनवाहननामनि १५७
पुरुसंवेगसंपन्नो विदितासारसंसृतिः । लक्ष्मीतिलकसंज्ञस्य मुनेरानर्च्छ शिष्यतां ॥ १५८ ॥
अनुपाल्य समीचीनं व्रतं जिनवरोदितं । अनित्यत्वादिभिः कृत्वा चेतनां भावनामयीं ॥१५९॥

तपः कापुरुषाचिंत्यं तप्त्वा तन्वादरोज्झितं । रत्नत्रितयतो जातं दधानः परमार्थतां ॥ १६० ॥
नानालब्धिसमुत्पन्नः शक्तोऽप्यहितवारणे । परीषहरिपून् घोरानधिसह्य सुमानसः ॥ १६१ ॥
आयुर्विराममासाद्य ध्यानमास्थाय निर्मलं । ज्योतिषां पटलं भित्त्वा लांतवेऽभूत्सुरो महान् १६२
इच्छानुरूपमासाद्य तत्र भोगं परस्थितिः । छद्मस्थजनधीवाचां स्थितं संचक्ष्यगोचरं ॥ १६३ ॥
च्युत्वा पुण्यावशेषेण प्रेरितः परमोदयः । कुक्षिमस्या विवेशायं जीवः सौख्यस्य भाजनं १६४
एवं तावदयं गर्भः स्वामिन्यास्ते तनुं श्रितः । हेतुं विरहदुःखस्य शृणु कल्याणचेष्टिते ॥ १६५ ॥
भवेऽस्याः कनकोदर्या लक्ष्मीनाम सपत्न्यभूत् । सम्यग्दर्शनपूतात्मा साधुपूजनतत्परा ॥१६६॥
प्रतिमा देवदेवानां प्रतीके सद्मनस्तया । स्थापयित्वार्चिता भक्त्या स्तुतिमंगलवक्त्रया ॥ १६७ ॥
महादेव्यभिमानेन सपत्न्यै क्रुद्धया तया । चक्रे बाह्यावकाशोसौ जिनेंद्रप्रतियातना ॥ १६८ ॥
अत्रांतरेऽविशद्देहमस्या भिक्षार्थमार्यिका । संयमश्रीरिति ख्याता तपसा विष्टपेऽखिले ॥ १६९ ॥
ततः परिभवं दृष्ट्वा साप्यर्हत्प्रतियातनं । ययावतिपरं दुःखं पारणापेतमानसा ॥ १७० ॥
इमां च मोहिनीं दृष्ट्वा परं कारुण्यमागता । साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः सुखमिच्छति १७१
अपृष्टोऽपि जनः साधुर्गुरुभक्तिप्रचोदितः । अज्ञप्राणिहितार्थं च धर्मवाक्ये प्रवर्तते ॥ १७२ ॥

अवोचत ततः सैवं शीलभूषणधारिणी । तदिमां मितया वाचा माधुर्यमुपमोज्झितं ॥ १७३ ॥
भद्रे शृणु मनः कृत्वा परमं परमद्युते । नरेंद्रकृतसन्माने भोगायतनविग्रहे ॥ १७४ ॥
भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन्, जीवो दुःखैश्चितः सदा । सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मणः ॥१७५॥
मनुष्यजातिमापन्ना सा त्वं पुण्येन शोभने । माभूज्जुगुप्सिताचारा कर्तुं योग्यासि सक्रियां१७६
लब्ध्वा मनुष्यतां कर्म यो नादत्ते जनः शुभं । रत्नं करगतं तस्य भ्रंशमायाति मोहिनः १७७
कायवाक्चेतसां वृत्तिः शुभाहितविधायिनी । सैवेतरेतराध्यानकारिणी प्राणधारिणां ॥ १७८ ॥
स्वस्य ये हितमुद्दिश्य प्रवर्तंते सुकर्मणि । उत्तमास्ते जना लोके निर्दिताचारभूयसि ॥ १७९ ॥
कृतार्था अपि ये संतो भवदुःखमहार्णवात् । तारयंति जनान् भव्यानुपदेशविधानतः ॥ १८० ॥
उत्तमोत्तमतां तेषां विकृतां धर्मचक्रिणां । अर्हतो ये तिरस्कारं प्रतिबिंबस्य कुर्वते ॥ १८१ ॥
जंतूनां मोहिनां तेषां यदनेकभवानुगं । दुःखं संजायते कस्तद्वक्तुं शक्नोति कात्स्न्यतः ॥१८२॥
यद्यप्येषां प्रपन्नेषु प्रासादो नोपजायते । नचापकारनिष्ठेषु द्वेषो माध्यस्थमीयुषां ॥ १८३ ॥
स्वस्मात्तथापि जंतूनां परिणामाच्छुभाशुभात् । तदुद्देशेन संजातात्सुखदुःखसमुद्भवः ॥ १८४ ॥
यथाग्नेः सेवनाच्छीतदुःखं जंतुरपोहते । क्षुत्तृष्णां परिपीडां च भक्तशीतांबुसेवनात् ॥ १८५ ॥

निस्सर्गोयं तथा येन जिनानामर्चनात्सुखं । जायते प्राणिनां दुःखं परमं च तिरस्कृतेः ॥१८६॥
यन्नाम दृश्यते लोके दुःखं तत्पापसंभवं । सुखं च चरितात्पूर्वसुकृतादिति विद्यतां ॥ १८७ ॥
सा त्वं पुण्यैरिमां वृद्धिं भक्तोरुं पुरुषाधिपं । पुत्रं चाद्भुतकर्माणं प्राप्ता श्लाघ्या सुधारिणं १८८
तथा कुरु यथा भूयो लप्स्यसे सुखमात्मनः । मद्वाक्यादवटे भव्ये मापप्तः सति भास्करे ॥१८९॥
अभविष्यं तवावासो नरके घोरवेदने । अहं नाबोधयिष्यं चेत्प्रमादोयमहो महान् ॥ १९० ॥
इत्युक्ता सा परित्रस्ता दुःखतो नरकोद्भवात् । प्रत्ययादिति शुद्धात्मा सम्यग्दर्शनमुत्तमं ॥१९१॥
अगृहीद्गृहिधर्मं च शक्तेश्च सदृशं तपः । जन्मान्यदिव मेने च सांप्रतं धर्मसंगमात् ॥ १९२ ॥
प्रतिमां च प्रविश्येनां पूर्वदेशे व्यतिष्ठपत् । आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभिः सुगंधिभिः १९३
कृतार्थं मन्यमाना स्वं तस्या धर्मनियोजनात् । जगाम स्वोचितं स्थानं संयमश्रीः प्रमोदिनी १९४
कनकोदर्यपि श्रेयः समुपार्ज्य गृहे रताः । श्रुत्वा कालं दिवं गत्वा भुक्त्वा भोगं महागुणं ॥१९५॥
च्युत्वा महेंद्रराजस्य महेंद्रपुटभेदने । मनोवेगासमाख्यायामंजनेति सुताभवत् ॥ १९६ ॥
सेयं पुण्यावशेषेण कृतेन जननांतरे । जातेहाढ्यकुले शुद्धे प्राप्ता च वरमुत्तमं ॥ १९७ ॥
प्रतिमां च जिनेंद्रस्य त्रिकालार्च्यस्य यद्बहिः । अकार्षीत्समयं कंचित्तेनातो दुःखमागमत् १९८

विद्युत्प्रभगुणस्तोत्रं क्रियमाणं पुरस्तव । मिश्रकेश्याः स्वनिंदां च समित्रः पवनंजयः ॥ १९९ ॥
श्रुत्वा गवाक्षजालेन त्रियामायां तिरोहितः । द्वेषमस्यै परिप्राप्तो वैधुर्यमकरोत्पुरः ॥ २०० ॥
युद्धाय प्रस्थितो दृष्ट्वा सोऽन्यदा चक्रवाकिकां । विरहादीपितां रम्ये मानसे सरसि द्रुतं ॥२०१॥
सख्येव कृपया नीतः समये तां मनोहरां । गतश्च गर्भमादाय कर्तुं जनकशासनं ॥ २०२ ॥
इत्युक्ता पुनरूचेऽसावंजनां मुनिपुंगवः । महाकरुण्यसंपन्नः क्षरन्निव गिरामृतं ॥ २०३ ॥
स त्वं कर्मानुभावेन बाले दुःखमिदं श्रिता । ततो भूयोऽपि माकार्षीरीदृशं कर्म निंदितं॥२०४॥
यानि यानि च सौख्यानि जायंते चात्र भूतले।तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्तेर्विशेषतः२०५
भक्ता भव जिनेंद्राणां संसारोत्तारकारिणां । गृहाण नियमं भक्त्या कुरु श्रमणपूजनं ॥ २०६ ॥
दिष्ट्या बोधिं प्रपन्नासि तदा दत्तां तदार्यया । उदहार्षीत्करालंबात्सा त्वां यांतीमधोगतिं२०७
अयं च ते महाभाग्यः कुक्षिं गर्भः समाश्रितः । पुरा निर्लोठिते सम्यग्बहुकल्याणभाजनं ॥२०८॥
परमां भूतिमेतस्मात्सुतात्प्राप्स्यसि शोभने । अखंडनीयवीर्योयं गीर्वाणैः सकलैरपि ॥ २०९ ॥
अल्पैरेव च तेऽहोभिः प्रियसंगो भविष्यति । ततो भव सुखस्वांता प्रमादरहिता शुभे ॥ २१० ॥
इत्युक्ताभ्यां ततस्ताभ्यां हृष्टाभ्यां मुनिसत्तमः । प्रणतो विकसन्नेत्रराजीवाभ्यां पुनः पुनः २११

सोऽपि दत्वाशिषं ताभ्यां समुत्पत्य नभस्तलं । संयमस्योचितं देशं जगामामलमानसः ॥२१२॥
पर्यंकासनयोगेन यस्मात्तस्यां स सन्मुनिः । तस्थौ जगाम पर्यंकगुहाख्यां सा ततो भुवि २१३
इत्थं निजभवान्, श्रुत्वा भवद्विस्मितमानसा । निंदंती दुष्कृतं कर्म पूर्वं यदधमं कृतं ॥२१४॥
महेंद्रदुहिता तस्यां सूतिकालव्यपेक्षया । तस्थौ मगधराजेंद्र ! पूतायां मुनिसंगमात् ॥ २१५ ॥
वसंतमालया तस्या विद्यावलसमृद्धया । पानाशनविधिश्चक्रे मनसा विषयीकृतः ॥ २१६ ॥
अथ प्रियविमुक्तां तां कारुण्येनेव भूयसा । असमर्थो रविर्द्रष्टुमस्तमैच्छन्निषेवितुं ॥ २१७ ॥
तद्दुःखादिव मंदत्वं भास्करस्य करा ययुः । चित्रकर्मार्पितादित्यकरोत्करकृतोपमात् ॥ २१८ ॥
शोकादिव रवेर्बिंबं सहसा पातमागतं । गिरिवृक्षाग्रसंसक्तं करजालं समाहरन् ॥ २१९ ॥
अथागंतुकसिंहस्य दृष्ट्येव क्रोधताम्रया । संध्यया विहितं सर्वं क्षणेन नभसस्तलं ॥ २२० ॥
ततो भाव्युपसर्गेण प्रेरितेव त्वरावती । उदियाय तमोलेखा वेतालीव रसातलात् ॥ २२१ ॥
कृतकोलाहलाः पूर्वं दृष्ट्वा तामिव भीतितः । निश्शब्दा गहने तस्थुर्वृक्षाग्रेषु पतत्रिणः ॥२२२॥
प्रावर्तंत शिवारावा महानिर्घातभीषणाः । वादिता उपसर्गेण प्रकटा पटहा इव ॥ २२३ ॥
अथ धूतेमकीलालशोणकेसरसंचयः । मृत्युपत्रांगुलिच्छायां भृकुटिं कुटिलां दधत् ॥ २२४ ॥

विमुंचन् विषमच्छेदान्नादान् स प्रतिशब्दकान् । वेगिनः सकलं व्योम कुर्वाणमिव खंडशः २२५
प्रलयज्वलनज्वालाविलासाञ्चलयन्मुहुः । महास्यगह्वरे जिह्वां प्रह्वां भूरिजनक्षये ॥ २२६ ॥
जीवाकर्षां कुशाकारां दंष्ट्रां तीक्ष्णाग्रसंकटां । कुटिलां धारयन् रौद्रां मृत्योरपि भयंकरां ॥२२७॥
उद्यत्प्रलयतीव्रांशुमंडलप्रतिमे वहन् । क्षुरयंती दिशां चक्रं नेत्रे वित्रासकारिणी ॥ २२८ ॥
मस्तकन्यस्तपुच्छाग्रो नखकोटिक्षतक्षतिः । अष्टापदतटोरस्को जघनं घनमुद्वहन् ॥ २२९ ॥
मृत्युर्दैत्यकृतोऽनु स्यात् प्रेतसोऽनु कलिक्षयः । अंतकस्यांतको नु स्याद्भास्करो नु तनूनपात् २३०
इतीरां जनिताशंकं जंतुभिर्वीक्षितोऽखिलैः । अविर्बभूव तद्देशे केसरी विकटःक्षणात् ॥ २३१ ॥
तस्य प्रतिनिनादेन पूरितोदारकंदराः । भीता इवातिगंभीरं रुरुधुर्धरणीधराः ॥ २३२ ॥
मुद्गरेणेव घोरेण शब्देनास्य तरस्विना । श्रोत्रयोस्ताडिताश्चक्रुरिति चेष्टाः शरीरिणः ॥ २३३ ॥
लोचने मुकुलीकुर्वन्नभिदुर्गे महीभृति । शार्दूलो दर्पनिर्मुक्तः सन् चुकोप सत्रेपथुः ॥ २३४ ॥
शरत्पुष्पसमाकारो हृष्टरोमांचसंभ्रमः । बभूस्तरलगुंजाक्षो विवेश विवरं गिरेः ॥ २३५ ॥
सारंगा मुखविभ्रंशिदूर्वाकोमलपल्लवाः । यथापूर्वक्षयास्तस्थुर्भयस्तंभितविग्रहाः ॥ २३६ ॥
संभ्रांतवभ्रूनेत्राणामुत्कर्णानां विचेतसां । दानौघनिश्चलांगानां मतंगानां विचिच्छिदुः ॥ २३७ ॥

मंडलस्यांतरे कृत्वा शावकान् भयवेपितान् । तस्थुः पुरुखगा संघायूथपन्यस्तलोचनाः ॥२३८॥
केसरिध्वनिवित्रस्ता कंपमानशरीरिका । वपुराहारयोस्त्यागं चक्रे सालंबमंजना ॥ २३९ ॥
उत्पत्य त्वरिता व्योम्नि सख्यस्यास्तद्ग्रहाक्षमा । बभ्राम पक्षिणीवालमंडलेनाकुलात्मिका २४०
भूयः समीपमाकाशमेति प्रेमगुणाहृता । पुनश्च तीव्रवित्रासात्प्रयाति नभसः शिरः ॥ २४१ ॥
अथ ते सभये दृष्ट्वा विशीर्णहृदये शुभे । गंधर्वस्तद्गुहावासी कारुण्याश्लेषमीयिवान् ॥ २४२ ॥
तमूचे मणीचूलाख्यं रत्नचूला निजांगना । कारुण्येनोरुणा साध्वी चोदिता द्रुतभाषिणी २४३
पश्य पश्य प्रिय ! त्रस्तां तां मृगेंद्रादिह स्त्रियं । एतद्भीतिसमादिष्टां द्वितीयां च नभोऽगणे ॥
कुरु नाथ प्रसादं मे रक्षैतामतिविह्वलां । अभिजातां वरां नारीं कुतोऽपि विषमाश्रितां ॥ २४५ ॥
एवमुक्तोथ गंधर्वो विकृत्य शरमाकृतिं । त्रैलोक्यभीषणद्रव्यसंभारेणैव निर्मितं ॥ २४६ ॥
हस्तत्रितयमात्रस्थामंजनामसमागतां । सिंहरिपुरकरोद्देहं छन्नसानुकदंबकः ॥ २४७ ॥
तयोस्तत्राभवद्भीभः संघट्टो रवसंकुलः । विद्युद्द्योतितप्रावृड्घनसंघं हसन्निव ॥ २४८ ॥
एवं विधेऽपि संप्राप्ते काले वीरभयावहे । अंजनासुंदरी चक्रे हृदये जिनपुंगवान् ॥ २४९ ॥
इत्थं वसंतमाला च मंडलेन कृतभ्रमा । विललाप महादुःखी कुररीव नभस्तले ॥ २५० ॥

हा भर्तृदारिके पूर्वं दौर्भाग्यमसि संगता । तस्मिन्नपि गते कृच्छ्राद्वार्जितासर्वबंधुभिः ॥२५१॥
संप्राप्तासि वनं भीमं कथमप्यागता गुहां । मुनिनाश्वासितासन्नप्रियावाप्तिनिवेदनात् ॥ २५२ ॥
सा त्वं केसरिणो वक्त्रमधुना देवि यास्यसि । दंष्ट्राकरालमुद्वृत्तद्विरदक्षयकारणं ॥ २५३ ॥
हा देवि ते गतः कालो दुर्जनस्य विधेर्वशात् । उपर्युपरिदुःखेन मर्मदुर्गतिकारणात् ॥ २५४ ॥
परित्रायस्व हा नाथ ! पवनंजय ! गेहिनीं । हा महेंद्र ! कथं नेमां तनयां परिरक्षसि ॥ २५५ ॥
हा किं केतुमति क्रूरे मुद्वास्या त्वयि का कृता । हा करुणे मनोवेगे तनयां किं न रक्षसि ॥२५६॥
मरणं राजपुत्रीयं प्राप्नोति विजने वने । कुरुत त्राणमेतस्याः कृपया वनदेवताः ॥ २५७ ॥
मुनेरपि तथा तस्य लोकतत्वावबोधिनः । शुभार्थसूचनं वाक्यं संभवेदन्यथा किमु ? ॥ २५८ ॥
आक्रंदमिति कुर्वाणा दोलारूढेव विह्वला । चक्रे वसंतमाला तु स्वामिन्यंतं गतागतं ॥ २५९ ॥
अथ भंगगतः सिंहः शरभेण तलाहतः । अंतर्दधे कृतार्थश्च शरभो निलये निजे ॥ २६० ॥
ततः स्वप्नोपमं दृष्ट्वा विरतं युद्धमेतयोः । द्रुतं वसंतमालागात् स्वेदिगात्रा पुनर्गुहां ॥ २६१ ॥
अतः पल्लवकांताभ्यां हस्ताभ्यां कृतमार्गणा । कासि कासीति भीशेषात्कृतगद्गदनिस्वना २६२
ज्ञात्वा वसंतमाला तां स्पर्शेनात्यंतनिश्चलां । तां प्रति प्राणनाशंकासमाकुलितमानसा ॥ २६३ ॥

ध्रियसे देविदेवीति चालयंती पुनः पुनः । जगाद स्वामिनीवक्षोविन्यस्तकरपल्लवा ॥ २६४ ॥
ततोऽसौ तत्करस्पर्शादागतस्पष्टचेतना । चिरात्सखीयमस्मीति जगादास्पष्टया गिरा ॥ २६५ ॥
ततस्ते संगमात्प्राप्य—कियंतीमपि निर्वृतिं । पुनर्जन्मेव मेनाते लब्धसंभाषणोद्यते ॥ २६६ ॥
भयशेषेण चाभीलां मुग्धे तां जज्ञतुर्निशां । समासमां कृताशेषबंधुनैष्ठुर्यसंकथे ॥ २६७ ॥
ततो विध्वस्य नागारिं नागारिरिव पन्नगं । प्रमोदवानसौ सद्यः प्रीतवान् सुमहागुणं ॥२६८॥
गंधर्वकांतयावाचि गंधर्वो लब्धवर्णया । तदूरौ बाहुमादाय तरत्तारकनेत्रया ॥ २६९ ॥
स्वनकं यच्छ मे नाथ जिज्ञासाम्यधुनोचितं । उपदेशो हि गातव्यं कादंबर्यामनुत्तमं ॥ २७० ॥
शेषं साध्वसमेते च वनिते परिमुंचतः । श्रुत्वा नौ मधुरं गीतं दैवीयं हृदयं गमं ॥ २७१ ॥
अर्धरात्रे ततस्तस्मिन्नन्यशब्दविवर्जिते । संस्कृत्यावीवदद्वीणां गंधर्वः श्रोत्रहारिणीं ॥ २७२ ॥
कासिके वादयंती च प्रियवक्त्राहितेक्षणा । रत्नचूला जगौ मंदं मुनिक्षोभनकारणं ॥ २७३ ॥
तयोर्घनं कृतं वाद्यं सुषिरं च कृतं ततं । परिवर्गेण गंभीरकरतालक्रमोचितं ॥ २७४ ॥
पाणिघैरेकतानेन मंद्रध्वनिसमन्वितं । तथा वैणविकैर्वाढं प्रवीणैर्भ्रूविलासिनः ॥ २७५ ॥
प्रवीणाभः प्रवालाभां वीणां चारूपमानिकां । कोणेनाताडयद्दक्षो गंधर्वः काकलीबुधः ॥२७६॥

मध्यमर्षभगांधारषड्जपंचमधैवतान् । निषादसप्तमांश्चक्रे स स्वरान्क्रममत्यजन् ॥ २७७ ॥
भेजे वृत्तीर्यथास्थानं द्रुतमध्यविलंबिताः । एकविंशतिसंख्याश्च मूर्छना तर्तितेक्षणा ॥ २७८ ॥
हाहा हूहूसमानं स गानं चक्रेऽथवाधिकं । प्रायो गंधर्वदेवानां प्रसिद्धिमिदमागतं ॥ २७९ ॥
स्वनान्येकोनपंचाशत्स जगौ परिनिष्ठितं । जिनेंद्रगुणसंबद्धैर्वचनैर्ललिताक्षरैः ॥ २८० ॥
देवा देवैर्भक्तिप्रह्वैः पुष्पैरर्घैर्नानागंधैः । अर्चामुच्चैर्नीतं वंद्यं देवं भक्त्या त्वामर्हतं ॥ २८१ ॥
त्रिभुवनकुशलमतिशयपूतं नमामि भक्त्या परया ।
मुनिसुव्रतचरणयुगं सुरपतिमुकुटप्रवृत्तनखमणिकिरणं ॥ २८२ ॥
ततो वसंतमाला तद्गेयमत्यंतशोभनं । प्रशंस साश्रुतंपूर्वं विस्मयव्याप्तमानसा ॥ २८३ ॥
अहो गीतमहो गीतं केनाप्येतन्मनोहरं । आर्द्रीकृतमिवानेन हृदयं मे सुधामुचा ॥ २८४ ॥
स्वामिनीं च जगादैवं दैवि कोप्यनुकंपकः । देवोयं येन नौ रक्षा कृता केसरिनोदनात्॥२८५॥
मन्येस्मद्वृत्तयेनेन गीतमेतच्छ्रुताप्रियं । कृत्वा कलकलध्वानमंतरे सकलांगकं ॥ २८६ ॥
देवि शीलवती कस्य नानुकंप्यासि शोभने । महारण्येऽपि भव्यानां भवंति सुहृदो जनाः २८७
उपसर्गस्य विध्वंसादेतस्मात्ते सुनिश्चितः । भविता प्रियसंपर्कः किंवा वक्त्यन्यथा मुनिः॥२८८॥

तस्मात्साधुमिमं देवं समाश्रित्य कृतोचितं । मुनिपर्यंकपूतायां गुहायामघसंक्षयात् ॥ २८९ ॥
मुनिसुव्रतनाथस्य विन्यस्य प्रतियातनां । अर्चयंत्यौ सुखप्राप्त्यै स्वमोदैः कुसुमैरलं ॥ २९० ॥
सुखप्रसूतिमेतस्य गर्भस्थाःयाय चेतसि । विस्मृत्य वैरहं दुःखं समयं किंचिदास्वहे ॥ २९१ ॥
त्वत्संगमं समासाद्य प्रमोदं परमागतः । नैर्झरैः शीकरैरेष हसतीव महीधरः ॥ २९२ ॥
फलभारविनम्राग्रा लसत्कोमलपल्लवाः । पुष्पहासकृतो वृक्षा इमे तोषमुपागताः ॥ २९३ ॥
मयूरसारिकाकीरकोकिलादिकलस्वनैः । कृतजल्पा इवैतस्य वनाभोगा महीभृतः ॥ २९४ ॥
नानाधातुकृतच्छायास्तरुसंघातवाससः । अस्मिन्गुहा विराजंते कुसुमामोदवासिता ॥ २९५ ॥
जिनपूजनयोग्यानि पंकजानि सरस्सु हि । विद्यंते तव वक्त्रस्य धारयंति समानतां ॥ २९६ ॥
विधत्स्व धृतिमत्रेशे माभूच्चिंतावशात्मिका । कल्याणमत्र ते सर्वं जनयिष्यंति देवताः ॥२९७॥
अधुना दिनवक्त्रे ते विज्ञायेवानघं वपुः । कोलाहकृतो जाताः प्रमोदेन पतत्त्रिणः ॥ २९८ ॥
पलाशाग्रस्थितानेते वृक्षा मंदानिलेरितान् । मुंचंत्यानंदवाष्पाभानवश्यायकणान् जडान् ॥२९९॥
संप्रेष्य प्रथमं संध्यां दूतीमिव सरागिकां । उदेतं ते परिज्ञातुमेष भानुः समुद्यतः ॥ ३०० ॥
एवमुक्तांजनावोचत्सखि मे सर्वबांधवाः । त्वमेव त्वयि सत्यां च ममेदं विपिनं पुरं ॥ ३०१ ॥

आपन्मध्योत्सवावस्थाः सेवते यस्य यो जनः । स तस्या बांधवो बंधुरपि शत्रुरसौख्यदः ३०२
इत्युक्त्वा देवदेवस्य विन्यस्य प्रतियातनां । पूजयंत्यौ स्थिते तत्र ते विद्याकृतवर्तने ॥ ३०३ ॥
गंधर्वोप्यनयोश्चक्रे सर्वतः परिरक्षणं । आतोद्यं प्रत्यहं कुर्वन् कारुण्याज्जिनभक्तितः ॥ ३०४ ॥
अथान्यदांजनावोचत्कुक्षिर्मे चलितः सखि । आकुलेव च जातास्मि किमिदं नु भविष्यति ३०५
ततो वसंतमालोचे समयः शोभने तव । अवश्यं प्रसवस्यैष प्राप्तो भव सुखस्थिता ॥ ३०६ ॥
ततो विरचिते तल्पे तया कोमलपल्लवैः । असूत सा सुतं चार्वी प्राचीवाशा विरोचनं ॥ ३०७ ॥
जातेन सा गुहा तेन तेजसा गात्रजन्मना । हिरण्मयीव संजाता निर्धूतध्वांतसंचया ॥ ३०८ ॥
ततस्तमंकमारोप्य प्रमोदस्यापि गोचरं । स्मृतोभयकुला दैन्यप्राप्ता प्ररुदिताभवत् ॥ ३०९ ॥
विललाप महावत्स कथं ते जननोत्सवः । क्रियतां किं मयैतस्मिञ्जनस्य गहने वने ॥ ३१० ॥
स्थानेऽजनिष्यथाश्चेत्त्वं पितुर्मातामहस्य वा । अभविष्यन्महानंदो जननोन्मत्तकारकः ॥ ३११ ॥
मुखचंद्रमिमं दृष्ट्वा तव चारुविलोचनं । न भवेद्विस्मयं कस्य भुवने शुभचेतसः ॥ ३१२ ॥
करोमि मंदभाग्या किं सर्ववस्तुविवर्जिता । विधिनाहं दशामेतां प्रापिता दुःखदायिनीं ॥३१३॥
जंतुना सर्ववस्तुभ्यो वांछ्यते दीर्घजीविता । यस्मात्त्वं जीवितात्तस्मान्मम वत्स परां स्थितिं ३१४

ईदृशे पतितारण्ये सद्यः प्राणापनोदिनि । यज्जीवामि तवैवायमनुभावः सुकर्मणः ॥ ३१५ ॥
मुंचंतीमिति तां वाचं जगादैवं हिता सखी । देवि कल्याणपूर्णा त्वं या प्राप्तासीदृशं सुतं ३१६
चारुलक्षणपूर्णोयं दृश्यतेऽस्य शुभा तनुः । अत्यंतमहतीमृद्धिं वहत्येषा मनोहरा ॥ ३१७ ॥
षट्पदैः कृतसंगीताश्चलत्कोमलपल्लवाः । तव पुत्रोत्सवादेता नृत्यंतीव लतांगनाः ॥ ३१८ ॥
तवास्य चानुभावेन बालस्याबालतेजसः । भविष्यत्यखिलं भद्रं मोन्मनीभूरनर्थकं ॥ ३१९ ॥
एवं तयोः समालापे वर्तमाने नभस्तले । क्षणेनाविरभूत्तुंगं विमानं भास्करप्रभं ॥ ३२० ॥
ततो वसंतमाला तं दृष्ट्वा देव्यै न्यवेदयत् । विप्रलापं ततो भूयः सैवमाशंकयाकरोत् ॥ ३२१ ॥
कोप्यकारणवैरी मे किमथोपनयेत्सुतं । उताहो बांधवः कश्चिद्भवेदेष समागतः ॥ ३२२ ॥
विप्रलापं ततः श्रुत्वा तद्विमानं चिरं स्थितं । अवातरत्कृपायुक्तो विद्याभृद्विद्यदंगणात् ॥ ३२३ ॥
स्थापयित्वा गुहाद्वारि विमानं स ततोऽविशत् । पत्नीभिः सहितः शंकां वहमानो महानयं ३२४
वसंतमालया दत्ते स्वागतेऽसौ सुमानसः । उपाविशत्स्वभृत्येन प्रापिते च समासने ॥ ३२५ ॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा स भारत्या गभीरया । सारंगानुत्सुखीकुर्वन् घनगर्जितशंकिनः । ३२६ ॥
ऊचे तां विनयं बिभ्रत्परं स्वागतदायिनीं । दशनज्योत्स्नया कुर्वन् बालभासं विमिश्रितं ३२७

सुमर्यादे वदेयं का दुहिता कस्य वा शुभा । पत्नी वा कस्य कस्माद्वा महारण्यमिदं श्रिता३२८
घटते माकृतेरस्याः समाचारो विनिंदितः । ततः कथमिमं प्राप्ता विरहं सर्वबंधुभिः ॥ ३२९ ॥
भवंत्येवाथवा लोके प्रायोऽकारणवैरिणः । माध्यस्थेऽपि निषण्णानां प्रेरिताः पूर्वकर्मभिः ३३०
ततो दुःखभरोद्वेला वाष्पसंरुद्धकंठिका । कृच्छ्रेणोवाच सानंदं भूतलन्यस्तवीक्षणा ॥ ३३१ ॥
महानुभाव वाचैव ते विशिष्टं मनः शुभं । रोगमूलस्य हिच्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ३३२
भावप्रवेदनस्थानं गुणिनस्त्वादृशा यतः । निवेदयामि ते तेन शृणु जिज्ञासितं पदं ॥ ३३३ ॥
दुःखं हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितं । महतां ननु शैलीयं यदापद्ग्रततारणं ॥ ३३४ ॥
शृण्वेषा विष्टपव्यापि यशसो विमलात्मनः । सुता महेंद्रराजस्य नामतः प्रथितांजना ॥ ३३५ ॥
प्रह्लादराजपुत्रस्य गुणाकूपारचेतसः । पत्नी पवनवेगस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३३६ ॥
सोऽन्यदा स्वैरविज्ञातः कृत्वास्यां गर्भसंभवं । शासनाज्जनकस्यागाद्राघणस्य सुहृद्युधे॥ ३३७॥
दुःस्वभावतयाश्वश्र्या ततः कारुण्यमुक्तया । मूढया जनकं गेहं प्रेषितेयं मलोज्झिता ॥ ३३८ ॥
ततो नादात्स्वितापास्याः स्थानमीतेरकीर्तितः । अलीकादपि हि प्रायो दोषाद्बिभ्यति सज्जनाः ॥
सेयमालंबनैर्मुक्ता सकलैः कुलबालिका । मृगीसामान्यमध्यस्थान्महारण्यं समं मया ॥ ३४० ॥

एतत्कुलक्रमायाता भृत्यास्म्यस्याः सुचेतसः । विश्रंभपदतां नीता प्रसादपरयानया ॥ ३४१ ॥
सेयमद्य प्रसूता नु वने नानोपसर्गके । न जानामि कथं साध्वी भविष्यति सुखाश्रया ॥ ३४२ ॥
निवेदितमिदं साधोर्वृत्तमस्याः पुलाकतः । सकलं तु न शक्नोमि कर्तुं दुःखनिवेदनं ॥ ३४३ ॥
अथैतदीयसंतापविलीनस्नेहपूरितात् । अमांतीव निरैदस्य हृदयात्साधु भारती ॥ ३४४ ॥
स्वस्रीया मम साध्वि त्वं चिरकालवियोगतः । प्रायेण नाभिजानामि रूपांतरपरिग्रहात् ॥३४५॥
पिता विचित्रभानुर्मे माता सुंदरमालिनी । नामतः प्रतिसूर्योहं द्वीपे हनूरुहाभिधे ॥ ३४६ ॥
इत्युक्त्वा वस्तु यद्वृत्तं कौमारे सकलं स तत् । अंजनायै पतद्बाष्पनयनस्तमवादयत् ॥ ३४७ ॥
निर्ज्ञातमातुलाथासौ पूर्ववृत्तनिवेदनात् । तस्य कंठं समारुह्य रुरोद चिरमूर्द्धनि ॥ ३४८ ॥
तस्यास्तत्सकलं दुःखं बाष्पेण सहनिर्गतं । स्वजनस्य हि संप्राप्तावेषैव जगतः स्थितिः ॥३४९॥
तयोः स्नेहभरेणैवं कुर्वतोरथ रोदनं । वसंतमालयाप्युच्चैरुदितं पार्श्वया तया ॥ ३५० ॥
रुदत्सु तेषु कारुण्यादरुदंस्तद्योषितः । कृतरोदास्वथैतासु रुरुदूरुरुयोषितः ॥ ३५१ ॥
गुहाक्रंदनमुक्तेन प्रतिनादेन भूयसा । पर्वतोपि रुषोदैवं संततैर्निर्झराश्रुभिः ॥ ३५२ ॥
ततः शब्दमयं सर्वं तद्बभूव तदा वनं । शकुंतैरपि कारुण्यादाकुलैः कृतनिस्वनं ॥ ३५३ ॥

सांत्वयित्वा ततस्तस्या दत्तेनोदकवाहिना । वारिणा क्षालयद्वक्त्रं स्वस्य च प्रतिभास्करः॥३५४॥
पारंपर्येण तेनैव ततस्तत्पुनरप्यभूत् । वनं मुक्तमहाशब्दं श्रोतुं वार्तामिवानयोः ॥ ३५५ ॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा निष्क्रांतौ दुःखगह्वरात् । अपृच्छतां मिथो वार्तां कुले कथयतां च तौ ॥
संभाषणं ततश्चक्रे तत्स्त्रीणामंजना क्रमात् । स्खलंति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ३५७
जगाद मातुलं चैवं पूज्यजातस्य मेऽखिलं । निवेदय यथावस्थं दिनद्योतिः कदंबकं ॥ ३५८ ॥
इत्युक्ते पार्श्वगं नाम्ना द्योतिर्गर्भविशारदं । सांवत्सरमपृच्छत्स जातकर्म यथास्थितं ॥ ३५९ ॥
ततः सांवत्सरोऽवोचत्कल्याणस्य निवेदय । जन्मसंबंधिनीं वेलामित्युक्ते चाख्यदंजना ॥३६०॥
अर्धयामावशेषायां रजन्यामद्य बालकः । प्रजात इति सख्या च कथितं निष्प्रमादया ॥ ३६१ ॥
मुहूर्तेन ततोऽवाचि यथास्य च पुराचितं । सुलक्षणैस्तथा मन्ये दारकं सिद्धिभाजनं ॥ ३६२ ॥
तथापि यद्यसंतोषः क्रियेयं लौकिकीति वा । ततः शृणु पुलाकेन कथयाम्यस्य जीवनं ॥३६३॥
वर्तते तिथिरद्येयं चैत्रस्य बहुलाष्टमी । नक्षत्रं श्रवणः स्वामी वासरस्य विभावसुः ॥ ३६४ ॥
आदित्यो वर्तते मेषे भवनं तुंगमाश्रितः । चंद्रमा मकरे मध्ये भवने समवस्थितः ॥ ३६५ ॥
लोहितांगो वृषमध्यो मध्ये मीने विधोः सुतः । कुलीरे धिषणोऽत्युच्चैरध्यास्य भवनं स्थितः ॥

मीने दैत्यगुरुस्तुंगस्तस्मिन्नेव शनैश्चरः । मीनस्यैवोदयोप्यासीत्तदा नृपतिपुंगवः ॥ ३६७ ॥
शनैश्चरं समग्राक्षस्तिग्मभानुर्निरीक्षितः । अर्धदृष्ट्या महीपुत्रो दिवसस्य पतिं तथा ॥ ३६८ ॥
गुरुपादनया दृष्ट्वा पतिमह्नोऽवलोकते । अर्धदृष्ट्या गिरामीशं वासरस्येक्षते विभुः ॥ ३६९ ॥
चंद्रसमस्तया दृष्ट्या वचसां पतिरीक्षते । असावप्येवमेवास्य विदधत्यवलोकनं ॥ ३७० ॥
गुरुः शनैश्चरं पादन्यूनया वीक्षते दृशा । अर्धावलोकनेनासौ भजते बृहतां पतिः ॥ ३७१ ॥
गुरुर्दैत्यगुरुं दृष्ट्वा वीक्ष्यते पादहीनया । दृष्टिं तथाविधामेव पातयत्येष तत्र च ॥ ३७२ ॥
ग्रहाणां परिशिष्टानां नास्त्यपेक्षा परस्परं । उदयक्षेत्रकालानां बलं चास्ति परं तदा ॥ ३७३ ॥
राज्यं निवेदयंस्तस्य रविभूमौ गुरस्तथा । शनिश्चरः सुयोगित्वं निवेदयति सिद्धिदं ॥ ३७४ ॥
एकोऽपि भारतीनाथस्तुंगस्थानस्थितोऽभवत् । सर्वकल्याणसंप्राप्तौ कारणत्वं प्रपद्यते ॥ ३७५ ॥
ब्राह्मो नाम तदा योगो मूहूर्तश्च शुभश्रुतिः । एतौ कथयतो ब्राह्मस्थानसौख्यसमागमं ॥ ३७६ ॥
एवमेतस्य जातस्य ज्योतिश्चक्रामेदं स्थितं । सूचयत्यखिलं वस्तु सर्वदोषविवर्जितं ॥ ३७७ ॥
रैशतनां सहस्रेण कालज्ञं पूजितं ततः । प्रतिस्मर्यो विधायोचे भागिनेयीं ससंमदः ॥ ३७८ ॥
एहीदानीं पुरं यामो वत्से हनूरुहं मम । जातकर्मास्य बालस्य तत्र सर्वं भविष्यति ॥ ३७९ ॥

एवमुक्त्वा विधायांकपृथुकं जिनवंदनां । कृत्वा स्थानपतिं देवं क्षमयित्वा पुनः पुनः ॥ ३८० ॥
निष्क्रांता सा गुहावासात्स्वजनौघसमन्विता । वनश्रीरिव जाता च विमानस्यांतिकं स्थिता३८१
ततस्तत्किंकिणीजाले प्रक्वणत्पवनेरितैः । सनिर्झरमिथोदारैर्मुक्ताहारैः सुनिर्मलैः ॥ ३८२ ॥
ललल्लंबूषकं काचकदलीवनराजितं । दिवाकरकरस्पर्शस्फुरत्कनकबुद्बुदं ॥ ३८३ ॥
नानारत्नकरासंगजातानेकसुरायुधं । वैजयंतीशतैर्नानावर्णैः कल्पतरूपमं ॥ ३८४ ॥
चित्ररत्नविनिर्माणं नानारत्नसमाचितं । दिव्यं परिवृतं स्वर्गलोकेनैव समं ततः ॥ ३८५ ॥
दृष्ट्वासौ पृथुको मातुरंकात्कौतुकसस्मितः । उत्पत्य प्रविविक्षुः सन्नपप्तद्गिरिगह्वरे ॥ ३८६ ॥
हाहाकारं ततः कृत्वा लोकस्तस्य समातृकः । स गतोऽनुपदं ज्ञातुमुहंतमिति विह्वलः ॥३८७॥
चकार विप्रलापं च सुदीनमिममंजना । तिरश्चामपि कुर्वाणा करुणाकोमलं मनः ॥ ३८८ ॥
हा पुत्र किमिदं वृत्तं दैवेन किमनुष्ठितं । प्रदर्श्य रत्नसंपूर्णं निधानं हरता पुनः ॥ ३८९ ॥
पत्यसंगमदुःखेन ग्रस्तायां मे भवानभूत् । जीवितालंबनं छिन्नं कथं तदपि कर्मणा ॥ ३९० ॥
ततः सहस्रशः खंडैर्नीयतां सुमहास्वनं । शिलायां पातवेगेन ददर्शैवं सुखस्थितं ॥ ३९१ ॥
अंतरास्यकृतांगुष्ठं क्रीडंतं स्मितशोभितं । उत्तानं प्रचलत्पाणिचरणं शुभविग्रहं ॥ ३९२ ॥

मंदमारुतसंपृक्तरक्तोत्पलवनप्रभं । कुर्वाणं सकलं पिंगं तेजसा गिरिगह्वरं ॥ ३९३ ॥
ततोऽनघशरीरं तं जननी पृथुविस्मया । गृहीत्वा शिरसि घ्रात्वा चक्रे वक्षःस्थलस्थितं ॥३९४॥
प्रतिसूर्यस्ततोऽवोचदहो चित्रमिदं परं । वज्रेणैव यदेतेन शिलाजातं विचूर्णितं ॥ ३९५ ॥
अर्भकस्य सतोप्येषा शक्तिः सुस्वरातिगा । यौवनस्थस्य किं वाच्यं चरमेयं ध्रुवं तनुः ॥३९६॥
इति ज्ञात्वा परीत्य त्रिः शिरःपाणिसरोरुहः । सहांगनासमूहेन चकारास्या नमस्कृतिं ॥ ३९७ ॥
असौ तस्य वरस्त्रीभिर्नेत्रभाभिः कृतस्मितं । सितासितारुणांभोजमालाभिरिव पूजितं ॥ ३९८ ॥
सपुत्रां यानमारोप्य भागिनेयीं ततोऽगमत् । प्रतिसूर्यो निजं स्थानं ध्वजतोरणभूषितं ॥ ३९९ ॥
ततः प्रत्युद्गतः पौरैर्नानामंगलधारिभिः । स विवेश पुरं तूर्यनादव्याप्तनभस्तलं ॥ ४०० ॥
तत्र जन्मोत्सवस्तस्य महान् विद्याधरैः कृतः । आखंडलसमुत्पत्तौ गीर्वाणैस्त्रिदशैर्यथा ॥४०१॥
जन्म लेभे यतः शैले शैलं चाचूर्णयत्ततः । श्रीशैल इति नामास्य चक्रे मात्रा ससूर्यया ४०२
पुरे हनूरुहे यस्माज्जातः संस्कारमाप्तवान् । हनूमानिति तेनागात्प्रसिद्धिं स महीतले ॥ ४०३ ॥
सर्वलोकमनोनेत्रमहोत्सववपुःक्रियः । तस्मिन् सुरकुमाराभः पुरे रेमे सुकांतिमान् ॥ ४०४ ॥

संभवतीह भूधररिपुः पविरपि कुसुमं । वह्निरपींदुपादशिशिरं पृथु कमलवनं ॥

खड्गलतापि चारुवनितासुमृदुभुजलता । प्राणिषु पूर्वजन्मजनितात्सुचरितबलतः ॥४०५॥
इत्यवगम्य दुःखकुशलाद्विरमतदुरिता । त्सज्जत सारशर्म चतुरे जिनवरचरिते ॥
एष तपत्यहो परिवृढं जगदनवरतं । व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ॥४०६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते हनूमत्संभवाभिधानं नाम सप्तदशं पर्व ।

अथाष्टादशं पर्व ।

इदं ते कथितं जन्म श्रीशैलस्य महात्मनः । शृणु संप्रति वृत्तांतं वायोर्मगधमंडन ॥ १ ॥
वायुना वायुनेवाशु गत्वाभ्यासं खगेशिनः । लब्धादेशेन संयुध्य नानाशस्त्राकुले रणे ॥ २ ॥
कृतयुद्धश्चिरं खिन्नो जलकांतोपवर्तितः । जातस्तस्य निमानोऽसौ पुष्कलः खरदूषणः ॥ ३ ॥
भूयश्च जलकांतेन निनाय्य खरदूषणः । कृत्वा संध्यमहं प्राप्य परमं राक्षसाधिपात् ॥ ४ ॥
अनुज्ञातो वहत्कांतां हृदयेन त्वरान्वितः । जगामाभिजनं स्थानं महासामंतमध्यगः ॥ ५ ॥
प्रविष्टश्च पुरं पौरैरभियातः सुमंगलैः । ध्वजतोरणमालाभिर्भासुराभिर्विभूषितं ॥ ६ ॥
जगाम च निजं वेश्म दृष्टो वातायनस्थितैः । मुक्तप्रस्तुतकर्तव्यैः पौरनारीकदंबकैः ॥ ७ ॥

विवेश च कृतार्थादि सन्मानो मानिनां वरः । वाग्भिर्मंगलसाराभिः स्वजनैरभिनंदितः ॥ ८ ॥
विधाय प्रणतिं तत्र गुरुणामितरैर्जनैः । नमस्कृतः क्षणं तस्थौ वार्ताभिर्वरमंडपे ॥ ९ ॥
ततः प्रासादमारुक्षदंजनायाः समुन्मनाः । युक्तः प्रहसितेनैव पूर्वभावनयान्वितः ॥ १० ॥
रिक्तकं तस्य तं दृष्ट्वा प्रासादं प्राणतुल्यया । चेतनामुक्तदेहाभं पपातेव मनः क्षणात् ॥ ११ ॥
ऊचे प्रहसितं चेव वयस्य किमिदं भवेत् । अंजना सुंदरी नात्र दृश्यते पुष्करेक्षणा ॥ १२ ॥
गृहमेतत्तया शून्यं वनं मे प्रतिभासते । आकाशमेव वा क्षिप्रं तस्या वार्ताधिगम्यतां ॥ १३ ॥
आप्तवर्गात्परिज्ञाय वार्तां प्रहसितोऽवदत् । यथावत्सकलां तस्मै हृदये क्षोदकारिणीं ॥ १४ ॥
वंचितः स्वजनं सोऽथ समं मित्रेण तत्क्षणं । महेंद्रनगरं तेन प्रवृत्तो गंतुमुन्मनाः ॥ १५ ॥
तस्यासन्नभुवं प्राप्य मित्रमेवमभाषत । मन्यमानोंकसंप्राप्तां दयितां प्रमदान्वितः ॥ १६ ॥
पश्य पश्य पुरस्यास्य वयस्य रमणीयतां । अंजना सुंदरी यत्र वर्तते चारुविभ्रमा ॥ १७ ॥
कैलासकूटसंकाशा यत्र प्रासादपंक्तयः । उद्यानपादपैर्गुप्ता प्रावृषेण्यघनप्रभैः ॥ १८ ॥
ब्रुवन्नेवं स संप्राप्तः पुरं पुरुषसत्तमः । सुहृदाद्वैतचित्तेन विहितप्रतिभाषणः ॥ १९ ॥
ततो जनौघतः श्रुत्वा संप्राप्तं पवनंजयं । अर्घादिनोपचारेण श्वसुरोऽस्य समागमत् ॥ २० ॥

पुरस्सरेण तेनासौ प्रीतियुक्तेन चेतसा । निजं प्रवेशितः स्थानं पौरैः सादरमीक्षितः ॥ २१ ॥
विवेश भवनं चास्य कांतादर्शनलालसः । संकथाभिर्मुहूर्तं च तस्थौ संवर्गणां भजन् ॥ २२ ॥
ततस्तत्राप्यसौ कांतामपश्यद्विरहातुरः । अपृच्छद्बालिकां कांचिदंतर्भवनगोचरं ॥ २३ ॥
अयि बालेऽत्र जानासि मत्प्रिया वर्ततेंजना । सावोचदेव नास्त्यत्र त्वत्प्रियेत्यसुखावहं ॥ २४ ॥
वज्रेणेव ततस्तस्य तेन वाक्येन चूर्णितं । हृदयं पूरितौ कर्णौ तप्तक्षारेंबुनेव च ॥ २५ ॥
वियुक्त इव जीवेन क्षणं चाभूत्सुनिश्चलः । शोकप्रालेयसंपर्कविच्छायमुखपंकजः ॥ २६ ॥
निर्गत्यासौ ततस्तस्माच्छ्वशुरात्पुरात् । बभ्राम धरणीं वार्तामधिगंतुं सुयोषितः ॥ २७ ॥
ज्ञात्वा वायुकुमारं च वायुनेवातुरीकृतं । ऊचे प्रहसितः सत्वं तद्दुःखादभिदुःखितः ॥ २८ ॥
किं वयस्य ! विषण्णोऽसि कुरु चित्तमनाकुलं । द्रक्ष्यसे दयिता सा ते कियद्वेदं महीतलं ॥२९॥
सोऽवोचद्गच्छ गच्छ त्वं सखे रविपुरं द्रुतं । इदं ज्ञापय वृत्तांतं गुरूणां मदनुष्ठितं ॥ ३० ॥
अहं पुनरसंप्राप्य दयितां क्षितिसुंदरीं । न मन्ये जीवितं तस्मात्पर्यटाम्यखिलां भुवं ॥ ३१ ॥
इत्युक्तस्तेन दुःखेन विमुच्य कथमप्यमुं । आदित्यनगरीं दीनः क्षिप्रं प्रहसितो ययौ ॥ ३२ ॥
पवनोऽपि समारुह्य नागमंबरगोचरं । विचरन् धरणीं सर्वामेवं चिंतामुपागतः ॥ ३३ ॥

शोकातपपरिम्लाना पद्मकोमलविग्रहा । क्व गता मे भवेत्कांता वहंती हृदयेन मां ॥ ३४ ॥
वैधुर्यारण्यमध्यस्था विरहानलदीपिका । वराकी कांदिशीकासौ दिशं स्यात्कामुपाश्रिता ॥ ३५ ॥
सत्यार्जवसमेतासौ गर्भगौरवधारिणी । वसंतमालया त्यक्ता भवेत्किं नु महावने ॥ ३६ ॥
शोकांधनयना किं नु व्रजंती विषमे पथि । पतिता स्याज्जरत्कूपे क्षुधिताजगरान्विते ॥ ३७ ॥
किं नु गर्भपरिक्लिष्टा श्वापदानां च भीषणं । श्रुत्वा शब्दं परित्रस्ता प्राणान्मुक्तवती भवेत् ॥३८॥
अहो तृष्णार्दिता शुष्कतालकंठा जलोज्झिते । विंध्यारण्ये विमुक्ता स्यात्प्राणैः प्राणसमा मम ३९
किं वा मंदाकिनीं मुग्धा विविधग्राहसंकुलां । अवतीर्णा भवेद् व्यूढा वारिणा तीव्रहंसा॥४०॥
दर्भसूचीविनिर्भिन्नचरणश्रुतशोणिता । अशक्ता पदमप्येकं गंतुं किं तु मृता भवेत् ॥ ४१ ॥
किं वा दुष्टेन केनापि नीता स्यात् खविचारिणा । कष्टं वार्तापि नो तस्याः केनचिन्मे न विद्यते ४२
किंवा दुःखाच्च्युते गर्भे निर्वेदं परमागता । आर्यिकाणां पदं प्राप्ता भवेद्धर्मानुसेविनी ॥ ४३ ॥
चिंतयन्निति पर्यट्य धरणीं मतिविह्वलः । ददर्श न यदा कांतां सर्वेंद्रियमनोहरां ॥ ४४ ॥
तदा पश्यञ्जगत्कृष्णं शून्यं विरहदीपितः । विनिश्चितमसौ चेतश्चकार मरणं प्रति ॥ ४५ ॥
न शैलेषु न वृक्षेषु न रम्यासु नदीष्वभूत् । धृतिरस्य विप्रयुक्तस्य तया सर्वस्वभूतया ॥ ४६ ॥

तस्या वार्तासु मुग्धेन तेन पृष्टा नगा अपि । विवेकेन हि निर्युक्ता जायंते दुःखिनो जनाः ४७
अथ भूतरवाभिख्यं वनं प्राप्य गजादसौ । अवतीर्य क्षणं स्थित्वा ध्यायन्मुनिरिव प्रियां ॥४८॥
अनादरेण निक्षिप्य धरण्यामस्त्रकंटकं । घनपादपशाखाग्रतिरोहितमहातपः ॥ ४९ ॥
जगाद गजनाथं तं विनयेन पुरःस्थितं । गिरा मधुरयात्यर्थं श्रमेण गुरुणान्वितः ॥ ५० ॥
व्रजेदानीं गजेंद्र त्वं भव स्वच्छंदविभ्रमः । तस्या वार्तासु मुग्धेन क्षमस्व च पराभवं ॥ ५१ ॥
तीरेऽस्या सरितः शष्पं शल्लकीनां च पल्लवान् । चरन् विहर यूथेन करिणीनां समन्वितः ॥५२॥
इत्युक्तः सुकृतज्ञोऽसौ स्वामिवात्सल्यदक्षिणः । न मुमोचांतिकं तस्य शोकार्तस्य सुबंधुवत् ॥५३॥
लप्स्ये यदि न तां सामामभिरामामहं ततः । यास्याम्यत्र वने मृत्युमिति वायुर्विनिश्चितः ॥५४॥
प्रियागतमनस्कस्य तस्य रात्रिरभूद्वने । शरच्चतुष्टयोदारा नानासंकल्पसंकुला ॥ ५५ ॥
एवं तावदिदं वृत्तं श्रणु श्रेणिक ते परं । कथयामि गते तस्मिन्यत्पितृभ्यां विचेष्टितं ॥ ५६ ॥
पवनंजयवृत्तांते तद्विप्रेण निवेदिते । समस्ता बांधवा वायोः परमं शोकमागता ॥ ५७ ॥
अथ केतुमती पुत्रशोकेनाभ्याहता भृशं । ऊचे प्रहसितं बाष्पधाराजनितदुर्दिना ॥ ५८ ॥
कुतः प्रहसितेदं ते कर्तुमीदृग्विचेष्टितं । मम पुत्रं परित्यज्य यदेकाकी समागतः ॥ ५९ ॥

सोऽवोचदंब तेनैव प्रेषितोऽहं प्रयत्नतः । न मे केनापि भावेन दत्तं स्थातुमुपांतिकं ॥ ६० ॥
उवाच सा गतः क्वासौ सोऽवोचद्यत्र सांजना । क्वांजनेति च पृष्टेन को वेत्तीति निवेदितं ६१
अपरीक्षणशीलानां सहसा कार्यकारिणां । पश्चात्तापो भवत्येव जनानां प्राणधारिणां ॥ ६२ ॥
कांतां यदि न पश्यामि मृत्युमेति ततो ध्रुवं । प्रतिज्ञैवं कृतानेन त्वत्पुत्रेण सुनिश्चिता ॥ ६३ ॥
इति श्रुत्वा विलापं सा चकारेति सुदुस्सहा । वेष्टिता स्त्रीसमूहेन स्रवल्लोचनवारिणा ॥ ६४ ॥
अज्ञातसत्यया कष्टं पापया किं मया कृतं । येन पुत्रः परिप्राप्तो जीवनस्य तु संशयं ॥ ६५ ॥
क्रूरसाधनधारिण्या वक्रमानसया मया । असमीक्षितकारिण्या मंदया किमनुष्ठितं ॥ ६६ ॥
मुक्तं वायुकुमारेण पुरमेतन्न शोभते । विजयार्धगिरीशो वा सेना वा रक्षसां विभोः ॥ ६७ ॥
दुष्करो रावणस्यापि संधिर्येन रणे कृतः । कस्तस्य मम पुत्रस्य सदृशोऽत्र नरो भुवि ॥ ६८ ॥
हा वत्स ! विनयाधार ! गुरुपूजनतत्पर ! जगत्सुंदर विख्यातगुण क्वासि गतो मम ॥ ६९ ॥
भवद्दुःखाग्निसंतप्तां मातरं मातृवत्सल ! । प्रतिवाक्यप्रदानेन कुरु शोकविवर्जितां ॥ ७० ॥
विलापमपि कुर्वाणां ताडयंतीं मुखं भृशं । सांत्वयन्वनितां कृच्छात्प्रह्लादः साश्रुलोचनः ॥७१॥
सर्वबंधुजनाकीर्णः कृत्वा प्रहसितं पुरः । निर्यातः स्वपुरात्पुत्रमुलब्धुं समुत्सुकः ॥ ७२ ॥

सर्वे चाह्वायिता तेन खगा द्विश्रेणिवासिनः । प्रीत्या ते तु समायाताः परिवारसमन्विताः ७३
खे पंथानमाश्रित्य भास्वद्विविधवाहनाः । अन्वेष्यंस्ते महीं यत्नाद्ददृहरन्यस्तलोचना ॥ ७४ ॥
प्रतिभानुरुदंतं तं ज्ञात्वा प्रह्लाददूततः । उद्वृहतं महाशोकमंजनायै न्यवेदयत् ॥ ७५ ॥
प्रथमादपि सा दुःखात्ततो दुःखेन भूयसा । अश्रुधौतमुखा चक्रे करणं परिदेवनं ॥ ७६ ॥
हा नाथ ! प्राणसर्वस्व मम मानसबंधन । क्व मां त्यक्त्वा प्रयातोऽसि क्लेशसंततिभागिनीं ॥७७॥
किंवाद्यापि न तं कोपं विमुंचसि पुरातनं । अदृश्यत्वं यदेतोसि सर्वविद्याभृतामपि ॥ ७८ ॥
अप्येकं प्रति वाक्यं मे नाथ यच्छामृतोपमं । नत्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवंति हि ॥७९॥
इयंतं धारिताः कालं भवद्दर्शनकांक्षया । प्राणा मयाधुना कार्यं किमेतैः पापकर्मभिः ॥ ८० ॥
समागममवाक्ष्यामि प्रियेणेति समं कृता । कथं मनोरथा भग्ना दैवेनाफलिता मम ॥ ८१ ॥
कृते मे मंदभाग्याया प्रियोवस्थांगतो भवेत् । तामिदं हृदयं क्रूरं यां समाशंकते मुहुः ॥ ८२ ॥
वसंतमालिके पश्य किमिदं वर्तते मम । असह्यविरहांगारपल्यंकपरिवर्तनं ॥ ८३ ॥
वसंतमालया चोक्ता देवि मैवममंगलं । व्यरंटीः सर्वथासौ ते भर्ता गोचरमेष्यति ॥ ८४ ॥
एष कल्याणि ते नाथ मानयाम्यचिरादिति । प्रतिसूर्यः समाश्वास्या कृच्छ्रेणांजनसुंदरीं ॥८५॥

मनोहरं समासद्य खगयानं मनोजवं । नभोमूर्धानमुत्पत्य वीक्षमाणःक्षितिं ययौ ॥ ८६ ॥
प्रतिभानुसमेतास्ते वैजयार्द्धा नभश्चराः । त्रैकूटाश्च प्रयत्नेन निरैक्षंत महीतलं ॥ ८७ ॥
अथ भूतरवाटव्यां ददृशे ते महाद्विपं । प्रावृषेण्यघनोदारसंघाताकारधारिणां ॥ ८८ ॥
अयं स कालमेघाख्यपवनाद्विप इत्यमी । अभ्यसासिषुरेनं च पूर्वदृष्टैरनेकशः ॥ ८९ ॥
अयमेष स हस्तीति जगदुश्च परस्परं । सर्वे विद्याधरा हृष्टा समं कृतमहारवः ॥ ९० ॥
नीलांजनगिरिच्छायः कुंदराशिसितद्विजः । युक्तप्रमाणहस्तोयं हस्ती यत्रावतिष्ठते ॥ ९१ ॥
पवनंजयवीरेण देशेत्र गतसंशयं । भवितव्यमयं तस्य मित्रवत्पार्श्वगोचरः ॥ ९२ ॥
वदंत इति ते याताः समीपं तस्य दंतिनः । निरंकुशतया तस्य मनाग्विव्रस्तमानसाः ॥ ९३ ॥
रवेण महता तेषां चुक्षोभ स महागजः । दुर्निवारश्चलद्धीमसमस्तांगो महाजवः ॥ ९४ ॥
मदक्लिन्नकपोलोसौ स्तब्धकर्णः सुगर्जितः । दिशं पश्यति यामेव तत्र क्षुभ्यंति खेचराः ॥९५॥
दृष्ट्वा जनसमूहं तं स्वामिरक्षणतत्परः । पवनंजयसामीप्यं न जहाति स वारणः ॥ ९६ ॥
मंडलेन भ्रमत्यस्य सलीलं भमयत्करं । दर्शनेवैव चंडेन त्रासयन् सर्वखेचरान् ॥ ९७ ॥
करिणीभिरथावृत्य द्विपं यत्नेन खेचराः । वशीकृत्य तमुद्देशमवतीर्णाः समुत्सुका ॥ ९८ ॥

उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि । कामिनीसंगमुज्झित्वा नापरं विद्यते परं ॥ ९९ ॥
अथेक्षांचक्रिरे वायुं विस्रस्तांगं नभश्चराः । पुस्तकर्मसमाकारं वाचंयमतया स्थितं ॥ १०० ॥
यथार्हमुपचारं ते चक्रुरस्य तथाप्यसौ । न प्रयच्छति चिंतास्थः प्रतिवाक्यं मुनिर्यथा ॥१०१॥
पुत्रप्रीत्या तमाघ्राय पितरौ मस्तके मुहुः । आलिंग्य च प्रमोदेन वाष्पस्थगितलोचनौ ॥१०२॥
ऊचतुर्वत्स संत्यज्य पितरौ कथमीदृशं । चेष्टितं क्रियते त्वं हि विनीतानां धुरिस्थितः ॥१०३॥
वरशय्योचितः कायस्त्वयाद्य विजने वने । संवाहितः कथं भीमे रात्रौ पादपगह्वरे ॥ १०४ ॥
इति संभाष्यमाणोऽपि नासौ वाचमुदाहरत् । मरणे निश्चितोऽस्मीति संज्ञयैव न्यवेदयत् १०५
व्रतमेतन्मयोपात्तं यदप्राप्य महेंद्रजां । न भुंजे न वदामीति तत्कथं भज्यतेधुना ॥ १०६ ॥
आस्तां तावत्प्रियासत्यव्रतं संरक्षता मया । गुरू प्रशासितावेतौ कथमित्याकुलोऽभवत् ॥१०७॥
ततस्तं नतमूर्धानं मौनव्रतसमाश्रितं । मरणे निश्चितं ज्ञात्वा जग्मुर्विद्याधराः शुचं ॥ १०८ ॥
समेतास्तत्पितृभ्यां ते विलेपुर्दीनमानसाः । संस्पृशंतः करैरस्य शरीरं स्वेदधारिभिः ॥ १०९ ॥
ततः स्मितमुखोऽवोचत्प्रतिसूर्यो नभश्चरान् । माभूत विक्लवा वायुमेष वो भाषयाम्यहं ॥११०॥
पवनं च परिष्वज्य जगादानुक्रमान्वितं । कुमार शृणु यद्वृत्तं कथयामि तवाखिलं ॥ १११ ॥

संध्याभ्रपर्वते रम्ये मुनेः कैवल्यमुद्गतं । अनंगवीचिसंज्ञस्य देवेंद्रक्षोभकारणं ॥ ११२ ॥
वंदित्वा तं प्रदीपेन रात्रावागच्छतया मया । रुदितध्वनिरश्रावि स्त्रैणस्तंत्रीस्वनोपमः ॥ ११३ ॥
अढौकत तमुद्देशं गिरेः ग्रस्थं समुन्नतं । पर्यंकनाम्नि दृष्टा च गुहायामंजना मया ॥ ११४ ॥
निर्वासकारणं चास्या विज्ञाय विनिवेदितं । मया प्राश्वासिता बाला रुदती शोकविह्वला ११५
तस्यामसूत सा पुत्रमन्वितं लक्षणैः शुभैः । यस्य भासा गुहा सासीत्सुवर्णेनैव निर्मिता ॥११६॥
तोषं च परमं प्राप्तः श्रुत्वा तां जातपुत्रिकां । ततस्तत इति क्षिप्रमपृच्छच्च सभीरणः ॥ ११७ ॥
अवोचत्स ततस्तस्याः सुतोऽसौ चारुचेष्टितः । विमाने स्थाप्यमानः सन् पतितः शैलगह्वरे ॥
अत्रांतरे पुनः प्राप्तो विषादं पवनंजयः । हाकारमुखरः सार्द्धं तया खेचरसेनया ॥ ११९ ॥
प्रतिभानुः पुनश्चोचे मागाः शोकं ततः । शृणु यद्वृत्तं तत्समस्तं ते वायोर्दुःखं हरिष्यति॥१२०॥
ततो हाकारशब्देन मुखरीकृतदिग्मुखः । अवतीर्यानघं बालमैक्षिष्महि नगांतरे ॥ १२१ ॥
चूर्णितश्च ततः शैलस्तेनासौ पतनात्तदा । श्रीशैल इति तेनासावस्माभिर्विस्मितैःस्तुतः ॥१२२॥
वसंतामालया साकं ततः पुत्रेण संयुता । विमानमंजनारोप्य मया नीता निजं पुरं ॥ १२३ ॥
ततो हनूरुहाभिख्ये पुरे संवर्द्धितः शिशुः । हनूमानिति तेनास्य द्वितीयं नाम निर्मितं ॥ १२४॥

एषा ते कथिता साकं पुत्रेणाद्भुतकर्मणा । मत्पुरे शीलसंपन्ना तिष्ठतीति विबुध्यतां ॥ १२५ ॥
पुरस्कृत्य ततो वायुं हृष्टा गगनचारिणः । क्षिप्रं हनूरुहं जग्मुरंजनादर्शनोत्सुकाः ॥ १२६ ॥
तेषां महोत्सवस्तत्र समागमकृतोऽभवत् । सुसंवेद्यस्तु दंपत्योर्दुराख्यानो विशेषतः ॥ १२७ ॥
तत्र मासद्वयं नीत्वा खेचराः प्रीतमानसाः । आमंत्र्य लब्धसन्माना ययुःस्थानं यथायथं ॥ १२८ ॥
चिरात्संप्राप्तपत्नीकः पवनोऽपि सुचेष्टितः । तत्र गीर्वाणवद्रेमे सुतचेष्टाभिनंदितः ॥ १२९ ॥
हनूमांस्तत्र संप्राप्य यौवनश्रियमुत्तमां । मेरुकूटसमानांगः स्तेनकः सर्वचेतसां ॥ १३० ॥
सिद्धविद्यः प्रभावाढ्यो विनयज्ञो महाबलः । सर्वशास्त्रार्थकुशलः परोपकृतिदक्षिणः ॥ १३१ ॥
नाकोपभुक्तपाकस्य पुण्यशेषस्य योजकः । रमतेस्म पुरे तत्र गुरुपूजनतत्परः ॥ १३२ ॥
श्रीशैलस्य समुद्भवेन सहितं वायोः समं कांतया । यो भावेन शृणोति संगममिमं नानारसैरद्भुतं ॥
जंतोस्तस्य समस्तसंसृतिविधिज्ञानेन लब्धात्मनो । बुद्धिर्नाशुभकर्मणि प्रभवति प्रारब्ध सत्कर्मणः ॥
आयुर्दीर्घमुदारविभ्रमयुतं कांतं वपुर्नीरजं । मेधां सर्वकृतांतपारविषयां कीर्तिं च चंद्रामलां ॥
पुण्यं स्वर्गसुखोपभोगचतुरं लोके च यद्दुर्लभं । तत्सर्वं सुकृदश्नुतेरविरिव स्फूतप्रभामंडलः १३६

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते पवनांजनासमागमाभिधानं नामाष्टादशं पर्व ।

अथैकोनविंशति पर्व ।

रावणोऽथ वहन्दीर्घं क्रोधमप्राप्तनिर्वृत्तिः । अडुढौकत्पुनः सर्वान् खेचरान् लेखहारिभिः ॥ १ ॥
किंकिंधेद्रस्तमभ्यागात्तथा दुंदुभिसंज्ञकः । अलंकाराधिपो यश्च रथनूपुरकस्तथा ॥ २ ॥
विजयार्द्धनगे ये च श्रेणिद्वयनिवासिनः । सर्वोद्योगेन ते सर्वे प्राप्ता रत्नश्रवःसुतं ॥ ३ ॥
अथो हनूरुहद्वीपं नरो मस्तकलेखकः । प्राप्तः पवनवेगस्य प्रतिसूर्यस्य चांतिकं ॥ ४ ॥
लेखार्थमभिगम्यैतौ प्रयाणन्यस्तमानसौ । श्रीशैलस्योद्यतौ कर्तुमभिषेकं नृपास्पदे ॥ ५ ॥
कृतस्तदर्थमाटोपः सूर्यशब्दादिको महान् । नराः कलशहस्ताश्च श्रीशैलस्य पुरास्थिताः ॥ ६ ॥
किमेतदिति तौ तेन पृष्टाविदमवोचतां । राज्यं हनूरुहद्वीपे वत्स त्वं पालयाधुना ॥ ७ ॥
युद्धे सहायतां कुर्तुमावामीशेन रक्षसां । आहूतौ तस्य कर्तव्यं प्रीत्यावाभ्यां यथोचितं ॥ ८ ॥
रसातलपुरे तस्य वरुणः प्रत्यवस्थितः । दुर्जयोऽसौ महासैन्यः पुत्रदुर्गबलोत्कटः ॥ ९ ॥
हनूमानेवमुक्तः सन् विययेनेदमब्रवीत् । मयि स्थिते न युक्तं वां गंतुमायोधनं गुरू ॥ १० ॥
अविज्ञातरणास्वादो वत्स त्वमिति भाषिते । जगाद किं शिवस्थानं कदाचिल्लभ्यमाप्यते ॥११॥

यदा निवार्यमाणोऽपि न स्थातुं कुरुते मनः । तदा ताभ्यामनुज्ञातः स युवा गमनं प्रति ॥१२॥
स्नात्वा भुक्त्वा स पूर्वाह्णे मंगलार्चितविग्रहः । कृतः प्रणामः सिद्धानामर्हतां च प्रयत्नतः ॥१३॥
पितरं मातरं मातुर्मातुलं च महाद्युतिः । प्रणम्याशेषवर्गं च संभाष्य विधिकोविदः ॥ १४ ॥
विमानं सूर्यसंकाशं समारूह्य दिशो दश । व्याप्य शस्त्रसमूहेन ययौ लंकापुरीं प्रति ॥ १५ ॥
त्रिकूटाभिमुखो गच्छन्विमानेसावराजत । मंदराभिमुखो यद्वदैशानस्त्रिदशाधिपः ॥ १६ ॥
जलवीचिगिरौ तस्य रविरस्तमुपागमत् । समुद्रवीचिसंतानचुंबितोरुनितंबके ॥ १७ ॥
तत्र रात्रिं सुखं नीत्वा कृतसद्भटसंकथः । महोत्साहेन सन्नह्य ययौ लंकाहितेक्षणाः ॥ १८ ॥
नानाजनपदान्द्वीपान्नगानुर्मिसमाहतान । ग्रहांश्च जलधौ पश्यन् रक्षःसैन्यमवाप सः ॥ १९ ॥
दृष्ट्वा हनूमतः सैन्यं पुरुराक्षसपुंगवाः । विस्मयं परमं जग्मुः श्रीशैलहितलोचनाः ॥ २० ॥
चूर्णितोऽनेन शैलोऽसौ सोयं भव्यजनोत्तमः । इतिशब्दमसौ शृण्वन् रावणस्य गतोंतिकं ॥२१॥
मारुतिं रावणो वीक्ष्य कुसुमैरभिपूरितात् । सौरभाकृष्टसंभ्रांतगुंजन्मत्तमधुव्रतात् ॥ २२ ॥
उपरिन्यस्तरत्नांशुछुरितावरमंडपात् । पर्यंतस्थितसामंतादभ्युत्तस्थौ शिलातलात् ॥ २३ ॥
परिष्वज्य हनूमंतं विनयानतविग्रहं । उपविष्टः समं तेन तत्र प्रीतिस्मिताननः ॥ २४ ॥

अन्योन्यं कुशलं दृष्ट्वान्योन्यस्य संपदं । रेमाते तौ महाभाग्यौ देवेंद्राविव संगतौ ॥ २५ ॥
अथावोचद्दशग्रीवः प्रमदान्वितमानसः । हनूमंतं मुहुः पश्यन्नत्यंतस्निग्धया दृशा ॥ २६ ॥
अहो संवर्द्धितं प्रेम वायुना मम साधुना । यदयं प्रेषितः पुत्रः प्रख्यातगुणसागरः ॥ २७ ॥
एनं प्राप्य महासत्त्वं तेजोमंगलभूषितं । नैव मे दुस्तरं किंचिद्भविष्यत्यत्र विष्टपे ॥ २९ ॥
गुणेषु भाष्यमाणेषु श्रीशैलो नतविग्रहः । सव्रीड इव संवृत्तः प्रायो वृत्तिरियं सतां ॥ ३० ॥
भविष्यतोऽथ संग्रामाद्भयेनेव दिवाकरः । अस्तं सेवितुमारेभे मंदारुणकरोत्करः ॥ ३१ ॥
संध्यास्य पृष्ठतो यांती वहंती रागमुत्कटं । शुशुभे प्राणनाथस्य विनीता रमणी यथा ॥ ३२ ॥
ततो निशावधू रेजे कृतचंद्रविशेषका । कुर्वाणानुगतिं भर्तुर्वासरस्य निरंतरं ॥ ३३ ॥
अन्येद्युर्भानुभिर्भानोरुज्वले भुवने कृते । दशग्रीवः सुसन्नद्धः समस्तबलमध्यगः ॥ ३४ ॥
आसन्नस्थहनूमत्कः कृतमंगलविग्रहः । विद्यया जलधिं भित्त्वा प्रयातो वरुणं पुरं ॥ ३५ ॥
प्रत्यरि व्रजतोऽमुष्य दीप्तिरासीदनुत्तमा । कुठारराममुद्दिश्य सुभूमस्येव चक्रिणः ॥ ३६ ॥
ज्ञात्वा दशाननं प्राप्य सैन्यनिस्वनसूचितं । संचुक्षोभ पुरं सर्वं वरुणस्य महारवं ॥ ३७ ॥
पातालपौंडरीकाख्यं तत्पुरं प्रवलध्वजं । सुरत्नतोरणं जातं सन्नाहरवसंकुलं ॥ ३८ ॥

तत्रासुरपुकारे पुरे सर्वमनोहरे । आसीच्चकितनेत्राणां स्त्रीणामाकुलता परा ॥ ३९ ॥
योधास्तत्र निराक्रामन् समा भवनवासिनां । चमरासुरतुल्यश्च वरुणः शौर्यगर्वितः ॥ ४० ॥
तस्य पुत्रशतं तावदुत्थितं योद्धुमुद्धतं । नाना प्रहरणव्रातरुद्धभास्करदर्शनं ॥ ४१ ॥
आपातमात्रकेणैव भग्नं तै राक्षसं बलं । असुराणामिवोदारैः कुमारैः क्षुद्रदैवतं ॥ ४२ ॥
अंतर्भ्रातृशतेनैतद्राक्षसानां बलं क्षतं । गोयूथवदरं चक्रे भ्रमणं भयसंकुलं ॥ ४३ ॥
चक्रचापघनप्राशशतघ्नीप्रभृतीनि च । शस्त्राणि रक्षसां पेतुः करात्प्रस्वेदपिच्छलात् ॥ ४४ ॥
ततस्तं शरजालेन समालोक्याकुलीकृतं । स्वसैन्यं वेगवद्वर्षहतोरुणकरोपमं ॥ ४५ ॥
विंशत्यर्द्धमुखः क्रुद्धो भित्त्वा रिपुबलं क्षणात् । प्रविष्टः पातयन्वीरान् गजेंद्र इव पादपान् ॥४६॥
ततोऽसौ युगपत्पुत्रैः वरुणस्य समावृतः । आदित्य इव गर्जद्भिः प्रावृषेण्यबलाहकैः ॥ ४७ ॥
तस्येषुभिर्वपुर्भिन्नं सर्वदिग्भ्यः समागतैः । तथापि मानिसिंहोऽसौ न मुंचति रणाजिरं ॥ ४८ ॥
भास्करश्रवणः श्रेष्ठो नृणामिंद्रजितस्तथा । अन्ये च रक्षसां नाथा वरुणेनाग्रतः कृताः ॥ ४९ ॥
ततो लक्षीकृतं दृष्ट्वा शराणां वरुणात्मजैः । रावणं शोणितश्रुत्या किंशुकोत्करसन्निभं ॥ ५० ॥
रथमाशु समासद्य महापुरुषमध्यगं । बंधुवत्प्रीतिचेतस्कः पराजिततमोरविः ॥ ५१ ॥

मारुतिर्मारुतं वेगाज्जयं जयकृतादरः । उद्यतः कालवद्योद्धुं रविमंडलभासुरः ॥ ५२ ॥
तेन वारुणयः सर्वे प्रेरिताः प्रपलायिताः । महारथसमीरेण घनसंघा इवोन्नता ॥ ५३ ॥
प्रविष्टः परसैन्यं स दृष्टोन्यत्र मुहुर्मुहुः । कदलीकाननच्छेदक्रीडां चक्रेऽरिमूर्तिषु ॥ ५४ ॥
कंचिल्लांगूलपाशेन विद्यारचितमूर्तिना । आकर्षत्परमं वीरं स्नेहेन सुहृदं यथा ॥ ५५ ॥
कंचिदुल्कासिघातेन मस्तकोपर्यताडयत् । हेतुमुद्गरघातेन मिथ्यादृष्टिरिवार्हतः ॥ ५६ ॥
क्रीडंतमिति तं दृष्ट्वा श्रीशैलं वानरध्वजं । अभ्याजगाम वरुणो कोपारुणनिरीक्षणः ॥५७॥
श्रीशैलाभिमुखं दृष्ट्वा वारुणं राक्षसाधिपः । धावमानं रुरोधारिं गिरिवान्निम्नगाजलं ॥ ५८ ॥
वरुणास्याभवद्युद्धं यावन्नाथेन रक्षसां । वाजिवारणपादातशस्त्रसंघातसंकुलं ॥ ५९ ॥
तावत्पुत्रशतं तस्य बद्धं पवनसूनुना । चिरंयुद्धसमद्भूतखेदं विहतसैनकं ॥ ६० ॥
श्रुत्वा पुत्रशतं बद्धं वरुणः शोकविह्वलः । विद्यास्मरणनिर्मुक्तो बभूव श्लथविक्रमः ॥ ६१ ॥
प्राप्यास्य रावणश्छिद्रं विद्यामुच्छिद्य योधिनीं । जीवग्राहमिमं क्षिप्रं जग्राह रणाकोविदः ।.६२॥
तदा वरुणयोधस्य भ्रष्टपुत्रकरः श्रियः । उदयेन विमुक्तस्य रावणो राहुतामगात् ॥ ६३ ॥
शस्त्रपंजरमध्यस्थो भग्नमानश्च सोऽर्पितः । सादरं कुंभकर्णस्य रक्षितुं विस्मयेक्षितः ॥ ६४ ॥

ततो विश्रमयत्सैन्यं रावणश्चरनिर्वृतः । उद्याने प्रवरे तस्थौ भवनोन्मादनामनि ॥ ६५ ॥
समुद्रासंगशीतेन वायुनास्य व्यनीयत । सैन्यस्य रणजः खेदो वृक्षच्छायानुवर्तिनः ॥ ६६ ॥
गृहीतं नायकं ज्ञात्वा वरुणस्याखिलं बलं । प्रविवेश पुरं भीतं पौंडरीकं समाकुलं ॥ ६७ ॥
तदेव साधनं तावत्त एव च महाभटाः । प्रधानस्य वियोगेन प्रापुर्व्यर्थशरीरतां ॥ ६८ ॥
पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्भवति । बहूनामुद्भवः पुंसां पतिते पतनं तथा ॥ ६९ ॥
अथ भास्करकर्णस्तं मध्नातिस्म पुरं रिपोः । विह्वलीभूतनिश्शेषजनसंघातसंकुलं ॥ ७० ॥
लुंटितं चात्र सकलं धनरत्नादिकं भटैः । अरातिपुरकोपेन नतु लोभकशस्थितैः ॥ ७१ ॥
रतिविभ्रमधारिण्यः स्रवदस्राकुलेक्षणाः । विलपंत्यो वराकाश्च गृह्यंतेस्म वरांगनाः ॥ ७२ ॥
स्तनावनम्रदेहास्ताश्चलत्पल्लवपाणयः । कूजंत्यो बांधवान् सर्वान् गृहीता निष्ठुरैर्नरैः ॥ ७३ ॥
विमानाभ्यंतरन्यस्ता काचिदेवमभाषत । सखीशोकग्रहग्रस्तसमस्तास्यनिशाकरा ॥ ७४ ॥
सखि शीलविनाशो मे यदि नाम भवेदिह । उल्लंब्यांशुकपट्टेन मरिष्यामि न संशयः ॥ ७५ ॥
संदिग्धमरणं काचिद् व्याहरंती मुहुः प्रियं । संस्मृत्य तद्गुणान् मूर्छामानर्छ म्लानलोचना ७६
मातरं पितरं कांतं भ्रातरं मातुलं सुतं । आह्वयंत्यः क्षरन्नेत्रास्ता मुनेरपि दुःखदाः ॥ ७७ ॥

काचिद्भास्करकिरणस्य शोभया हृतलोचना । जगादोपांशुविस्रंभात्सखीं कमललोचना ॥ ७८ ॥
सखि कापि ममोत्पन्ना दृष्टैतं मुनिपुंगवं । धृतिर्यया कृतेवाहं परायत्तशरीरिका ॥ ७९ ॥
इति शुद्धविरुद्धाश्च विकल्पास्तत्र योषितां । बभूवुः कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽयं चित्रचेष्टितः ॥ ८० ॥
कुबेर इव सद्भूतिः प्रवीरभटसेवितः । जयनिस्वानमुखरः कांतलीलासमन्वितः ॥ ८१ ॥
अवतीर्य विमानांताद्भास्करश्रवणो मुदा । पुरो राक्षसनाथस्य धूसरोष्टीरतिष्ठपत् ॥ ८२ ॥
ता विषादवती दृष्ट्वा वाष्पपूरितलोचनाः । बंधुभीरहिता नम्राः सवेपथुशरीरिका ॥ ८३ ॥
वदंती करुणं स्वैरं किमपि त्रपयान्विता । रावणःकरुणाविष्टो जगादेति सहोदरं ॥ ८४ ॥
अहोत्यंतमिदं बाल त्वया दुश्चरितं कृतं । कुलनार्यो यदानीता बंदीग्रहणपंजरं ॥ ८५ ॥
दोषः कोऽत्र वराकीणां नारीणां मुग्धचेतसां । खलीकारमिमा येन त्वयि का प्रापिता मुधा ८६
पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका । गुरु शुश्रूषिणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनां ॥८७॥
इत्युक्त्वा मोचितास्तेन क्षिप्रा ता ययुरालयं । आश्वासिता गिरा साध्व्यः सद्यः शिथिलसाध्वसा ८८
आनाय्य वरुणोऽवाचि रावणेनाथ सत्रपः । भटदर्शनमात्रेण कृतरक्षोनताननः ॥ ८९ ॥
प्रवीण माकृथाः शोकं युद्धग्रहणसंभव । ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणं ॥ ९० ॥

द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः । ग्रहणं मरणं वापि कातरैश्च पलायितुं ॥ ९१ ॥
पुरावदखिलं स त्वं राज्यं रक्ष निजे पदे । मित्रबांधवसंपन्नः सकलोपद्रवोज्झितं ॥ ९२ ॥
अथैवमुक्तो वरुणः स वीरं । कृत्वांजलिं प्रावददेतमेव ॥
विशालपुण्यस्य तवात्र लोके । मूढो जनो तिष्ठति वैरभावे ॥ ९३ ॥
अहो महद्धैर्यमिदं त्वदीयं । मुनेरिव स्तोत्रसहस्रयोग्यं ॥
विहाय रत्नानि पराजितोहं । त्वया यदभ्युन्नतशासनेन ॥ ९४ ॥
वायोःसुतस्यैव कथं प्रभावो । निगद्यतामद्भुतकर्मणोऽपि ॥
यतस्त्वदीयेन शुभेन साधो । समाहितः सोऽपि महानुभावः ॥ ९५ ॥
न कस्यचिन्नाम महीयमेतां । गोत्रक्रमाद्विक्रमकोशधारिता ॥
वीरस्य भोग्येयमसौ भवांश्च । तेषां स्थितो मूर्धनि साधि लोकं ॥ ९६ ॥
स्वामी त्वमस्माकमुदारकीर्ते । क्षमस्व दुर्वाक्यकृतं निकारं ॥
वक्तव्यमित्येव वदामि नाथ । क्षमा तु दृष्टैव तवात्युदारा ॥ ९७ ॥
तेन त्वया सार्धमहं विधाय । संबंधमत्युन्नतचेष्टितेन ॥

कृतार्थतामेमि ततो गृहण । तन्मे सुतां योग्यतमस्त्वमस्याः ॥ ९८ ॥
एवं विदित्वा तनुजां विनीतां । प्रकीर्तितां सत्यवतीति नाम्ना ॥
ललामरूपां जनितां सुदेव्या । समर्पयत्ताम्ररसाभवक्त्रां ॥ ९९ ॥
तयोर्महान् संवव्रते विवाहे । समुत्सवः पूजितसर्वलोकः ।
तयोर्हि निश्शेषसमृद्धिभाजो । रन्वेषणीयं न समस्ति किंचित् ॥ १०० ॥
सन्मानितस्तेन च मानितेन । कृतानुयानः कतिचिद्दिनानि ॥
सुतावियोगव्यथितांतरात्मा । स्वराजधानीं वरुणो विवेश ॥ १०१ ॥
कैलाशकंपोऽपि समेत्य लंकां । विधाय सन्मानमतिप्रधानं ॥
महाप्रभां चंद्रनखातनूजां । ददौ समीरप्रभवाय कन्यां ॥ १०२ ॥
अनंगपुष्पेति समस्तलोके । गतां प्रसिद्धिं गुणराजधानीं ॥
अनंगपुष्पायुधभूतनेत्रां । लब्ध्वा स तां तोषमुदारमार ॥ १०३ ॥
श्रियां च संपादिनि कर्णकुंडले । पुरेऽस्य चक्रे क्षितिपाभिषेचनं ॥
स्थितः स तत्रोत्तमभोगसंगतो । यथोर्द्धलोके भुवनस्य पालकः ॥ १०४ ॥

तथानलः किष्कुपुरे शरीरजां । प्रसिद्धिमेतां हरिमालिनीं श्रुतिं ॥
श्रियं जयंतीमपि रूपसंपदा । ददौ विभूत्या परया हनूमते ॥ १०५ ॥
पुरे तथा किन्नरगीतसंज्ञके । स लब्धवान् किन्नरकन्यकाशतं ।
इति क्रमेणास्य बभूव योषितां । परं सहस्राद्गणनं महात्मनः ॥ १०६ ॥
भ्रमन्नसौ येन महीधरेऽस्थात् । श्रीशैलसंज्ञोऽत्र समीरसूनुः ॥
श्रीशैल इत्यागतवानसौ तत् । ख्यातिं पृथिव्यामिति रम्यसानुः ॥ १०७ ॥
तदास्ति किष्किंधपुरे महात्मा । सुग्रीवसंज्ञः पुरखेचरेशः ॥
तारेति तारापतिकांतिवक्त्रा । बभूव रामास्य रतेः समाना ॥ १०८ ॥
तयोस्तनूजा नवपद्मरागा । गुणैः प्रतीता भुवि पद्मरागा ॥
पद्मेव रूपेण विशालनेत्रा । भामंडलप्रावृतवक्त्रपद्मा ॥ १०९ ॥
महेभकुंभोन्नतपीवरस्तनी । सुरेंद्रशस्त्रग्रहणोपमोदरी ॥
विशाललावण्यतडागमध्यगा । मलिम्लुचा सर्वजनांतरात्मनां ॥ ११० ॥
विचिंतयंतौ पितरौ च तस्या । योग्यं वरं शोभनविभ्रमायाः ॥

नक्तं न निद्रां सुखतो लभेतां । दिवा तु नैव प्रविकीर्णचित्तौ ॥ १११ ॥
ततः पटेष्विंद्रजितप्रधाना । विद्याधराः सूचितशीलवंशाः ॥
चित्रीकृता चित्रगुणा दुहित्रे । प्रदर्शिताश्चारुरुचः पितृभ्यां ॥ ११२ ॥
अनुक्रमात्साथ निरीक्ष्यमाणा । मुहुर्मुहुः संहृतनेत्रकांतिः ॥
सद्यः समाकृष्टविचेष्टदृष्टिर्बाला हनूमत्प्रतिमां ददर्श ॥ ११३ ॥
दृष्ट्वा च तं वायुसुतं पटस्थं । सादृश्यनिर्मुक्तसमस्तदेहं ॥
अताडयतासौ मदनस्य बाणैः । सुदुस्सहैः पंचभिरेककालं ॥ ११४ ॥
तत्रानुरक्तामधिगम्य वाढमेतामुवाचेति सखी गुणज्ञा ॥
अयं स बाले पवनंजयस्य । श्रीशैलनामा तनयः प्रतीतः ॥ ११५ ॥
गुणस्तवास्य प्रथिता पुरैव । शोभा तु दृग्गोचरतां प्रयाता ॥
एतेन सार्धं भज कामभोगान् । पित्रोः प्रयच्छातिचिरेण निद्रां ॥ ११६ ॥
अहो पुनश्चित्रगतेन तेन । मनोविकारो जनितो हनूमता ॥
सखीं वदंतीमिति लज्जया नता । जघान लीलाकमलेन कन्यका ॥ ११७ ॥

ततो विदित्वा जनकेन तस्या । हृतं मनो मारुतनंदनेन ॥
परः समारूढसुताशरीरः । संप्रेषितो वायुसुताय शीघ्रं ॥ ११८ ॥
दूतो युवा श्रीनगरं समेत्य । जातः प्रविष्टो विहितप्रणामः ॥
हनूमते दर्शयतिस्म बिंबं । तारात्मजायाः पटमध्ययातं ॥ ११९ ॥
सत्यं शराः पंच मनोभवस्य । स्युर्यद्यमुष्मिन् जगति प्रसिद्धाः ॥
कन्यालियुक्तैः कथमेककालं । ततः शतैर्वायुसुतं जघान ॥ १२० ॥
अजातएवास्मि न यावदेनां । प्राप्नोमि कन्यामिति जातचित्तः ॥
समीरसुनुर्विभवेन युक्तः । क्षणेन सुग्रीवपुरं जगाम ॥ १२१ ॥
श्रुत्वा तमासन्नतरं प्रहृष्टः । सुग्रीवराजोभ्युदियाय सद्यः ॥
प्रयुज्यमानोऽर्धशतैर्हनूमान् । पुरं प्रविष्टः श्वसुरेण सार्धं ॥ १२२ ॥
तस्मिंस्तदा राजगृहं प्रयाति । प्रासादमालामणिजालकस्थाः ॥
तद्दर्शनव्याकुलनेत्रपद्माः । मुक्तान्यचेष्टा ललना बभूवुः ॥ १२३ ॥
गवाक्षजालेन निरीक्षमाणा । सुग्रीवजा वायुसुतस्य रूपं ॥

कामप्यवस्थां मनसा प्रपन्ना । स्ववेदनीयां सुकुमारदेहा ॥ १२४ ॥
अयं स नायं पुरुषोऽपरोयं । कोप्येष सोऽसौ सखि सोयमेव ॥
इत्यंगनाभिः परितर्क्यमाणो । विवेश सुग्रीवपुरं हनूमान् ॥ १२५ ॥
तयोर्विवाहः परया विभूत्या । विनिर्मितः संगतसर्वबंधुः ॥
तौ दंपती योग्यसमागमेन । प्राप्तौ प्रमोदं परमं सुरूपौ ॥ १२६ ॥
जगाम बध्व्या सहितो हनूमान् । स्थानं निजं निर्वृतचित्तवृत्तिः ॥
कृत्वा सशोकौ श्वसुरौ स्ववर्गौ । सुतावियोगात्स्ववियोजनाच्च ॥ १२७ ॥
तस्मिंस्तथा श्रीमति वर्तमाने । सुते समस्तक्षितियातकीर्तौ ॥
महासुखास्वादसमुद्रमध्ये । ममज्ज वायुः क्षितिपोंजना च ॥ १२८ ॥
श्रीशैलतुल्यैरथ खेचरेशैः । सन्मान्यमानो बहुमानधारी ॥
अभूद्दशास्यः क्षतसर्वशत्रुः । त्रिखंडनाथो हरिकंठतुल्यः ॥ १२९ ॥
लंकानगर्यां स विशालकांतिः । सुखेन रेमे पृथुभोगजेन ॥
समस्तलोकस्य धृतिं प्रयच्छन् । यथा सुरेंद्रः सुरलोकपुर्यां ॥ १३० ॥

महानुभावः प्रमदाजनस्य । स्तनेष्वसौ लालितरक्तपाणिः ॥
विवेद नो दीर्घमपि व्यतीतं । कालं प्रियावक्त्रतिरिंगिछभृंगः ॥ १३१ ॥
एकापि यस्येह भवेद्विरूपा । नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा ॥
रतेः पतित्वं स नरः करोति । स्थितः सुखे संसृतिधर्मजाते ॥ १३२ ॥
युक्तः प्रियाणां दशभिः सहस्रैः । तथाष्टभिः श्रीजनितोपमानां ॥
महाप्रभावः किमुतैष राजा । खंडत्रयस्यानुपमानकांतिः ॥ १३३ ॥
एवं समस्तखगपैरभिनूयमानः । संभ्रांतसन्नतपरांगधृतानुशिष्टिः ॥
खंडत्रयाधिपतिताविहिताभिषेकः । साम्राज्यमाप जनताभिनुतं दशास्यः ॥ १३४ ॥
विद्याधराधिपतिपूजितपादपद्मः । श्रीकीर्तिकांतिपरिवारमनोज्ञदेहः ॥
सर्वग्रहैः परिवृतो दशवक्त्रराजा । जातः शशांक इव कस्य न चित्तहारी ॥ १३५ ॥
चक्रं सुदर्शनममोघममुष्य दिव्यं । मध्याह्नभास्करकरोपममध्यजालं ॥
उद्वृत्तशत्रुनृपवर्गविनाशदक्षं । रेजेऽरिदृष्टमतिभासुररत्नचित्रं ॥ १३६ ॥
दंडश्च मृत्युरिव जातशरीरबंधो । दुष्टात्मनां भयकरः स्फुरितोग्रतेजाः ॥

उल्कासमूह इव संगतवान् प्रचंडो । जज्वाल शस्त्रभवने प्रतिपन्नपूजः ॥ १३७ ॥
सोयं स्वकर्मवशतः कुलसंक्रमेण । संप्राप्य राक्षसपुरीं पुरुचारुकीर्तिः ॥
ऐश्वर्यमद्भुततरं च समंतभद्रं । रक्षःपतिः परमसंस्तुतिसौख्यमेतः ॥ १३८ ॥
सद्दृष्टिबोधचरणप्रतिपत्तिहेतौ । दूरं गतेथ मुनिसुव्रतनाथतीर्थे ॥
अत्यंतमूढकविभिः परमार्थदूरैः । लोकेऽन्यथैव कथितः पुरुषः प्रधानः ॥ १३९ ॥
विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधैः । कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तैः ॥
कुरचितगरहेतुग्रंथवाग्वागुराभिः । प्रगुणजनमृगौघो बध्यते मंदभाग्यः ॥ १४० ॥
इति विदितयथावद्वृत्तवस्तुप्रपंचः । क्षतकुमतजनोक्तग्रंथपंकप्रसंगः ॥
भज सुरपतिवंद्यं शास्त्ररत्नं जिनानां । रविसमधिकतेजः श्रेणिक श्रीविशालः ॥१४१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते रावणसाम्राज्यभिधानं नामैकोनविंशतितमं पर्व विद्याधरकांडं समाप्तं ।

विंशतितमं पर्व ।

अथैवं श्रेणिकः श्रुत्वा विनीतात्मा प्रसन्नधीः । प्रणम्य गणिनः पादौ पुनरूचे सविस्मयः ॥१॥
प्रसादात्तव विज्ञातः प्रतिशत्रोः समुद्भवः । अष्टमस्य तथाभेदः कुलयोः कपिरक्षसां ॥ २ ॥
सांप्रतं श्रोतुमिच्छामि चरितं जिनचक्रिणां । नाथ पूर्वभवैर्युक्तं बुद्धिशोधनकारणं ॥ ३ ॥
अष्टमो यश्च विख्यातो हली सकलविष्टपे । वंशे कस्य समुद्भूतः किंवा तस्य विचेष्टितं ॥ ४ ॥
अमीषां जनकादीनां तथा नामानि सन्मुने । जिज्ञासितानि मे नाथ तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
इत्युक्तः स महासत्वः परमार्थविशारदः । जगाद गणभृद्वाक्यं चारुप्रश्नाभिनंदितः ॥ ६ ॥
शृणु श्रेणिक वक्ष्यामि जिनानां भवकीर्तनं । पापविध्वंसकरणं त्रिदशेंद्रनमस्कृतं ॥ ७ ॥
ऋषभोऽजितनाथश्च संभवश्चाभिनंदनः । सुमतिः पद्मनाभश्च सुपार्श्वः शशिभृत्प्रभुः ॥ ८ ॥
सुविधिः शीतलः श्रेयान् वासपूज्योऽमलप्रभुः । अनंतो धर्मशांती च कुंथुदेवो महानरः ॥ ९ ॥
मल्लिः सुव्रतनाथश्च नमिर्नेमिश्च तीर्थकृत् । पार्श्वोयं पश्चिमो वीरो शासनं यस्य वर्तते ॥ १० ॥
नगरी परमोदारा नामतः पुंडरीकिणी । सुसीमेत्यपरा ख्याता क्षेमेत्यन्यातिशोभना ॥ ११ ॥

तथा रत्नवरैर्दीप्ता रत्नसंचयनामिका । चतस्रः परमोदारा सुव्यवस्था इमा पुरः ॥ १२ ॥
वासुपूज्यजिनांतानां जिनानामृषभादितः । आसन् पूर्वभवे रम्या राजधान्यः सदोत्सवाः ॥१३॥
सुमहानगरं चारु तथारिष्टपुरं वरं । सुमाद्रिका च विख्याता तथासौ पुंडरीकिनी ॥ १४ ॥
सुसीमा सीमसंपन्ना क्षेमा च क्षेमकारिणी । व्यतीतशोकनामा च चंपा च विदिता भुवि॥१५॥
कौशांबी च महाभोगा तथा नागपुरं पृथु । साकेता कांतभवना छत्राकारपुरं तथा ॥ १६ ॥
अनुक्रमेण शेषाणां जिनानां पूर्वजन्मनि । राजधान्य इमा ज्ञेयाः पुर्यः स्वर्गपुरीसमाः ॥ १७ ॥
वज्रनाभिरिति ख्यातस्तथा विमलवाहनः । अन्यश्च विपुलख्यातिः श्रीमान् विपुलवाहनः ॥१८॥
महाबलोऽपरः कांतस्तथातिबलकीर्तनः । अपराजितसंज्ञश्च नंदिषेणाभिधोऽपरः ॥ १९ ॥
पद्मश्चान्यो महापद्मस्तथा पद्मोत्तरो भुवि । नाथः पंकजगुल्माख्य पंकजप्रतिमाननः ॥ २० ॥
विभुर्नलिनगुल्मश्च तथा पद्मासनः सुखी । स्मृतः पद्मरथो नाथः श्रीमान् दृढरथोऽपरः ॥२१॥
महामेघरथो नाम शूरः सिंहरथाभिधः । स्वामी वैश्रवणो धीमान् श्रीधर्मोन्यो महाधनः ॥२२॥
अप्रतिष्ठः सुरश्रेष्ठः सिद्धार्थः सिद्धशासनः । आनंदो नंदनीयोऽन्यः सुनंदश्चेति विश्रुतः ॥ २३ ॥
पूर्वजन्मनि नामानि जिनानामिति विष्टपे । प्रख्यातानि मयोक्तानि क्रमेण मगधाधिप ॥२४॥

वज्रसेनो महातेजास्तथा वीरो रिपुंदमः । अन्य स्वयंप्रभाभिख्यः श्रीमान् विमलवाहनः ॥ २५ ॥
गुरुः सीमंधरो ज्ञेयो नाथश्च पिहितास्रवः । महातपस्विनावन्यावरिंदमयुगंधरौ ॥ २६ ॥
तथा सर्वजनानंदः सार्थकाभिख्ययान्वितः । अभयानंदसंज्ञश्च वज्रदत्तोऽपरः प्रभुः ॥ २७ ॥
वज्रनाभिश्च विज्ञेयः सर्वगुप्तिश्च गुप्तिमान । चिंतारक्षप्रसिद्धिश्च पुनर्विपुलवाहनः ॥ २८ ॥
मुनिर्धनरवो धीरः संवरः साधुसंवरः । वरधर्मस्त्रिलोकीयः सुनंदो नंदनामभृत् ॥ २९ ॥
व्यतीतशोकसंज्ञश्च डामिलः प्रोष्ठिलस्तथा । क्रमेण गुरवो ज्ञेया जिनानां पूर्वजन्मनि ॥ ३० ॥
सर्वार्थसिद्धिसंशब्दो वैजयंतः सुखावहः । ग्रैवेयको महामासः वैजयंतः स एव च ॥ ३१ ॥
ऊर्ध्वग्रैवेयको ज्ञेयो मध्यमश्च प्रकीर्तितः । वैजयंतो महातेजा अपराजितसंज्ञकः ॥ ३२ ॥
आरणश्च समाख्यातस्तथा पुष्पोत्तराभिधः । कापिष्टः पुर शुक्रश्च सहस्रारो मनोहरः ॥ ३३ ॥
त्रिपुष्पोत्तरसंज्ञोतो मुक्तिस्थानधरस्थितः विजयाख्यस्तथा श्रीमानपराजितसंज्ञकः ॥ ३४ ॥
प्राणतोऽनंतरातीतो वैजयंतो महाद्युतिः । पुष्पोत्तर इति ज्ञेयो जिनानाममरालयाः ॥ ३५ ॥
जिनानां जन्मनक्षत्रं मातरं पितरं पुरं । चैत्यवृक्षं तथा मोक्षस्थानं ते कथयाम्यतः ॥ ३६ ॥
विनीता नगरी नाभिर्मरुदेव्युत्तरा तथा । आषाढा वटवृक्षश्च कैलाशः प्रथमो जिनः ॥ ३७ ॥

साकेता विजया नाथो जितशत्रुर्जिनोत्तमः । रोहिणी सप्तपर्णश्च मंगलं श्रेणिकास्तु ते ॥ ३८ ॥
सेना जितारिराजश्च श्रावस्तीसंभवो जिनः । ऐंद्रमृक्षं ततः शालः परमं तेस्तु मंगलं ॥ ३९ ॥
सिद्धार्था संवरोऽयोध्या सरलश्च पुनर्वसुः । अभिनंदननाथश्च भवंतु तव मंगलं ॥ ४० ॥
सुमंगला प्रियंगुश्च मघा मेघप्रभा पुरी । साकेता सुमतिर्नाथो जगदुत्तममंगलं ॥ ४१ ॥
सुसीमा वत्सनगरी च चित्रधरणशब्दितः । पद्मप्रभः प्रियंगुश्च भवंतु तव मंगलं ॥ ४२ ॥
सुप्रतिष्ठः पुरी काशी विशिखा पृथिवी तथा । शिरीषश्च सुपार्श्वश्च राजन् परममंगलं ॥ ४३ ॥
नागवृक्षोऽनुराधर्क्षं महासेनश्च लक्ष्मणः । ख्याता चंद्रपुरी चंद्रप्रभश्च तव मंगलं ॥ ४४ ॥
काकंदी सुविधिर्मूलं रामा सुग्रीवपार्थिवः । सालस्तरुश्च ते संतु चित्तपावनकारणं ॥ ४५ ॥
प्लक्षो दृढरथो राजा भद्रिका शीतलो जिनः । सुनंदा प्रथमाषाढा संतु ते मंगलं परं ॥ ४६ ॥
विष्णुश्रीः श्रमणो विष्णुः सिंहनादश्च तिंदुकः । सततं नु जिनः श्रेयान् श्रेयः कुर्वंतु ते नृप ४७
पाडला वसुपूज्यश्च जया शतभिषं तथा । चंपा च वासुपूज्यश्च लोकपूजां दिशंतु ते ॥ ४८ ॥
कापिल्यं कृतवर्मा च शर्मा प्रोष्ठुपदोत्तरा । जंबूर्विमलनाथश्च कुर्वंतु त्वां मलोज्झितं ॥ ४९ ॥
अश्वस्थः सिंहसेनश्च विनीता रेवती तथा । श्लाघ्या सर्वयशा नाथोंनंतश्च तव मंगलं ॥ ५० ॥

धर्मो रत्नपुरी भानुर्दीधिपर्णश्च सुव्रता । पुष्पश्च तव पुष्णातु श्रियं श्रेणिक धर्मिणीं ॥ ५१ ॥
भरणी हास्तिपस्थानमैराणी नंदपादपः । विश्वसेननृपः शांतिः शांतिं कुर्वंतु ते सदा ॥ ५२ ॥
सूर्यो गजपुरं कुंथुस्तिलकः श्रीश्च कृत्तिका । भवंतु तव राजेंद्र पापद्रवणहेतवः ॥ ५३ ॥
मित्रा सुदर्शनश्चूतो नगरं पूर्वकीर्तितं । रोहिण्यरजिनेंद्रश्च नाशयंतु रजस्तव ॥ ५४ ॥
रक्षिता मिथिला कुंभो जिनेशो मल्लिरश्विनी । अशोकश्च तवाशोकं मनः कुर्वंतु पार्थिव ॥ ५५ ॥
पद्मावती कुशाग्रं च सुमित्रः स्रवणस्तथा । चंपकः सुव्रतेशश्च व्रजंतु तव मानसं ॥ ५६ ॥
विजेया मिथिला वप्रा बकुलो नमितीर्थकृत् । अश्विनी च प्रयच्छंतु तव धर्मसमागमं ॥ ५७ ॥
समुद्रविजयश्चित्रा नेमिः शौरिपुरं शिवा । ऊर्जयंतश्च ते मेषशृंगश्चास्तु सुखप्रदः ॥ ५८ ॥
वाराणसी विशाखा च पार्श्वो वर्माधवोंघ्रिपः । अश्वसेनश्च ते राजन् दिशंतु मनसो धृतिं ॥५९॥
शालः कुंडपुरं पावासिद्धार्थः प्रियकारिणी । हस्तोत्तरं महावीरं परमं तव मंगलं ॥ ६० ॥
चंपैव वासुपूज्यस्य मोक्षस्थानमुदाहृतं । पूर्वमुक्तं त्रयाणां तु शेषाः सम्मेदनिर्वृताः ॥ ६१ ॥
शांतिः कुंथुररश्चेति राजानश्चक्रवर्त्तिनः । संतस्तीर्थकरा जाता शेषाः सामान्यपार्थिवाः ॥ ६२ ॥
चंद्राभश्चंद्रसंकाशः पुष्पदंतश्च कीर्तितः । प्रियंगुमंजरीवर्णः सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ ६३ ॥

अपक्कशालिसंकाशः पार्श्वो नागाधिपस्तुतः । पद्मगर्भसमच्छायः पद्मप्रभजिनोत्तमः ॥ ६४ ॥
किंशुकोत्करसंकाशो वासुपूज्यः प्रकीर्तितः । नीलांजनगिरिच्छायो मुनिसुव्रततीर्थकृत् ॥ ६५ ॥
मयूरकंठसंकाशो जिनो यादवपुंगवः । सुतप्तकांचनच्छायाः शेषा जिनवराः स्मृताः ॥ ६६ ॥
वासुपूज्यो महावीरो मल्लिः पार्श्वो यदूत्तमः । कुमारा निर्गता गेहात्पृथिवीपतयोऽपरे ॥ ६७ ॥
एते सुरासुराधीशैः प्रणताः पूजिताः स्तुताः । अभिषेकं परं प्राप्ता नगपार्थिवमूर्धनि ॥ ६८ ॥
सर्वकल्याणसंप्राप्तिकारणीभूतसेवनाः । जिनेंद्रा पांतु वो नित्यं त्रैलोक्यपरमाद्भुताः ॥ ६९ ॥
आयुःप्रमाणबोधार्थं गणेश मम सांप्रतं । निवेदय परं तत्त्वं मनःपावनकारणं ॥ ७० ॥
यश्च रामोत्तरे यस्य जिनेंद्रस्योपपद्यते । तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि प्रतीक्ष त्वत्प्रसादतः ॥ ७१ ॥
इत्युक्तो गणभृत्सौम्यः श्रेणिकेन महादरात् । निवेदयांबभूवासौ क्षीरोदामलमानसः ॥ ७२ ॥
संख्याया गोचरं योर्थो व्यतिक्रम्य व्यवस्थितः । बुद्धौ कल्पितदृष्टांतः कथितोऽसौ महात्मभिः ॥
योजनप्रतिमं व्योम सर्वतो भित्तिवेष्टितं । अवेः प्रजातमात्रस्य रोमाग्रैः परिपूरितं ॥ ७४ ॥
द्रव्यपल्यमिदं गाढमाहत्य कठिनीकृतं । कथिते कल्पितं कस्य व्यापारोयं मुधा भवेत् ॥ ७५ ॥
तत्र वर्षशतेतीते एकैकस्मिन् समुद्धृते । क्षीयते येन कालेन कालपल्यं तदुच्यते ॥ ७६ ॥

कोटीकोट्यो दशैतेषां कालो रत्नाकरोपमः । सागरोपमकोटीनां दशकोट्योऽवसर्पिणी ॥ ७७ ॥
उत्सर्पिणी च तावंत्यस्ते सितासितपक्षवत् । सततं परिवर्तेते राजन् कालस्वभावतः ॥ ७८ ॥
प्रत्येकमेतयोर्भेदाः षडुद्दिष्टा महात्मभिः । संसर्गवस्तुवीर्यादिभेदसंभववृत्तयः ॥ ७९ ॥
अत्यंतः सुषमः कालः प्रथमः परिकीर्तितः । कोटीकोटयश्चतस्रोस्य सामुद्रोन्मानमुच्यते ॥८०॥
कीर्तितः सुषमस्तिस्रो द्वयं सुषमदुःषमः । वक्ष्यमाणद्विकालाब्दैरूना दुःषमसत्समः ॥ ८१ ॥
उक्तो वर्षसहस्राणामेकविंशतिमानतः । प्रत्येकं दुःषमोत्यंतदुःषमश्च जिनाधिपैः ॥ ८२ ॥
पंचाशदब्धिकोटीनां लक्षाः प्रथममुच्यते । त्रिंशदशनवैतासां परिपाट्या जिनांतरं ॥ ८३ ॥
नवतिश्च सहस्राणि नव चासां व्यवस्थितः । शतानि च नवैतासां नवतिस्तास्तथा नव ॥८४॥
सयुद्रशतहीनैका कोटीं दशममंतरं । चतुर्भिः सहिता ज्ञेया पंचाशत्सागरास्ततः ॥ ८५ ॥
त्रिंशन्नवाथ चत्वारः सागराः कीर्तितास्ततः । पल्यभोगत्रयन्यूनं ततोरत्नाकरत्रयं ॥ ८६ ॥
पल्यार्धं शोडशं प्रोक्तं चतुर्भागोऽस्य तत्परं । न्यूनः कोटिसहस्रेण वर्षाणां परिकीर्तितः । ८७॥
समाः कोटिसहस्रं च तत्परं गदितं बुधैः । चतुःपंचाशदाख्यातं समालक्षस्तु तत्परं ॥ ८८ ॥
षड्लक्षा उत्तरं तस्मात्ततः पंच प्रकाशितं । सहस्राणि त्र्यशीतिस्तु सार्धाष्टमशतं परं ॥ ८९ ॥

शतान्यर्धतृतीयानि समानां कीर्तितं ततः । वर्द्धमानजिनेंद्रस्य धर्मः सस्पृष्टदुःषमः ॥ ९० ॥
निर्वृते तु महावीरे धर्मचक्रे महेश्वरे । सुरेंद्रमुकुटच्छायापयोधौ तत्क्रमद्वये ॥ ९१ ॥
देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते । प्रनष्टकेवलोत्पादे ललिचक्रधरोज्झिते ॥ ९२ ॥
भवद्विधमहाराजगुणसंघातरिक्तके । भविष्यंति प्रजा दुष्टा वंचनोद्यतमानसाः ॥ ९३ ॥
निश्शीला निर्व्रता प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः । मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यंत्यसुधारिणः॥
अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमा वृष्टिरीतयः । विविधाश्च भविष्यंति दुस्सहाः प्राणधारिणां ॥ ९५ ॥
मोहकादंबरीमत्ता रागद्वेषात्ममूर्तयः । नतिंभ्रूकराः पापाः मुहुर्गर्वस्मिता नराः ॥ ९६ ॥
कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः । विचरिष्यंति खद्योता रात्राविव महीतले ॥ ९७ ॥
गोदंडपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयं । कुधर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यंति दुर्जनाः ॥ ९८ ॥
अपकारे समासक्ता परस्य स्वस्य चानिशं । ज्ञास्यंति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः ॥९९॥
कुशास्त्रमुक्तहुंकारैः कर्मम्लेच्छैर्मदोद्धतैः । अनर्थजनितोत्साहैर्मोहसंतमसावृतैः ॥ १०० ॥
छेत्स्यंते सततोद्युक्तैर्मदा कालानुभावतः । हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतरजिनांघ्रिपाः ॥ १०१ ॥
आदावरत्नयः सप्त जनानां दुःखमे स्मृताः । प्रमाणं क्रमतो हानिस्ततस्तेषां भविष्यति ॥१०२॥

द्विहस्तसम्मिता मर्त्या विंशत्यब्दायुषस्ततः । भविष्यंति परे हस्तमात्रोत्सेधाः सुदुष्षमे ॥१०३॥
आयुः षोडशवर्षाणि तेषां गदितमुत्तमं । वृत्त्या सरीसृपाणां ते जीविष्यत्यंतिदुःखिताः ॥ १०४ ॥
ते विरूपसमस्तांगा नित्यं पापक्रियारताः । तिर्यंच इव मोहार्ता भविष्यंति रुजार्दिताः ॥१०५॥
न व्यवस्था न संबंधा नेश्वरा नच सेवकाः । न धनं न गृहं नैव सुखमेकांतदुःखमे ॥ १०६ ॥
कामार्थधर्मसंगमारहेतुभिः परिचेष्टितैः । शून्याः प्रजा भविष्यंति पापपिंडचिता इव ॥ १०७ ॥
कृष्णपक्षे क्षयं याति यथा शुक्ले च वर्धते । इंदुस्तथैतयोरायुरादीनां हानिवर्धने ॥ १०८ ॥
उत्सवादिप्रवृत्तीनां रात्रिवासरयोर्यथा । हानिवृद्धी च विज्ञेये कालयोस्तद्वदेतयोः ॥ १०९ ॥
येनावसर्पिणीकाले क्रमेणोदाहृतः क्षयः । उत्सर्पिण्यामनेनैव परिवृद्धिः प्रकीर्तिता ॥ ११० ॥
जिनानामंतरं प्रोक्तमुत्सेधं शृण्वतः परं । क्रमतः कीर्तयिष्यामि राजन्नवहितो भव ॥ १११ ॥
शतानि पंच चापानां प्रथमस्य महात्मनः । उत्सेधो जिननाथस्य वपुषः परिकीर्तितः ॥११२॥
पंचाशच्चापहान्यातः प्रत्येकं परिकीर्तितं । शीतलात्प्राग्जिनेंद्राणां नवतिः शीतलस्य च ॥११३॥
ततो धर्मजिनात्पूर्वं दशचापपरिक्षयः । प्रत्येकं धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सपंचिका ॥ ११४ ॥
ततः पार्श्वजिनात्पूर्वं प्रत्येकं पंचभिः क्षयः । नवरत्निमितः पार्श्वो महावीरो द्विवर्जितः ॥११५॥

पल्योपमस्य दशमो भाग आद्यस्य कीर्तितं । मित्याकुलकरस्यायुर्लोकालोकावलोकिभिः॥११६॥
दशमो दशमो भागः पौरस्त्यस्य ततः स्मृतः । प्रमाणमायुषो राजन् शेषाणां कुलकारिणां ११७
चतुर्भिरधिकाशीतिः पूर्वलक्षाः प्रकीर्तिताः । प्रथमस्य जिनेंद्रस्य, द्वितीयस्य द्विसप्ततिः ॥११८॥
षष्टिश्च पंचसु ज्ञेयः क्रमेण दशभिः क्षयः । विज्ञेये पूर्वलक्षे द्वे तथैकं परिकीर्तितं ॥ ११९ ॥
चतुर्भिरधिकाशीतिरब्दाः लक्षाः द्विसप्ततिः । षष्टिस्त्रिंशद्दशैका च समा लक्षाः प्रकीर्तिताः १२०
नवतिः पंचभिः सार्धमशीतिश्चतुरुत्तराः । पंचाशत्पंचभिर्युक्तास्त्रिंशद्दश च कीर्तिताः ॥ १२१ ॥
एकं चाब्दं सहस्राणां संख्येयं परिकीर्तिताः । वर्षाणां च शतं द्वाभ्यामधिका सप्ततिस्तथा १२२
क्रमेणेति जिनेंद्राणामायुः श्रेणिक कीर्तितं । शृणु सम्प्रति यो यत्र जातश्चक्रधरान्तरे ॥ १२३ ॥
ऋषभेण यशोवत्यां जातो भरतकीर्तितः । यस्य नाम्ना गतं ख्यातिमेतद्वास्यं जगत्त्रये ॥१२४॥
अभूद्यः पुंडरीकिन्यां पीठः पूर्वत्र जन्मनि । सर्वार्थसिद्धिमैत्कृत्वा कुरुसेनस्य शिष्यतां ॥१२५॥
लोचनांतरमुत्पाद्य महासंवेगयोगतः । सर्वावभासनं ज्ञानं निर्वाणं स समीयिवान् ॥ १२६ ॥
बभूव नगरे राजा पृथिवीपुरनामनि । विजयो नाम शिष्योऽभूद्यशोधरगुरोरसौ ॥ १२७ ॥
स मृत्वा विजयं गत्वा भुक्त्वा भोगमनुत्तमं । विनीतायामिह च्युत्वा विजयस्याऽऽप्य पुत्रतां १२८

सौमंगलो बभूवासौ चक्री सगरसंज्ञितः । भुक्त्वा भोगं महासारं सुरपूजितशासनः ॥ १२९ ॥
प्रबुद्धः पुत्रशोकेन प्रव्रज्य जिनशासने । उत्पाद्य केवलं नाथः सिद्धानामालयं गतः ॥ १३० ॥
शशिभः पुंडरीकिन्यां शिष्योऽभूद्विमले गुरौ । गत्वा ग्रैवेयकं भुक्त्वा संसारसुखमुत्तमं ॥१३१॥
च्युत्वा सुमित्रराजस्य भद्रवत्यामभूत्सुतः । श्रावस्त्यां मघवा नाम चक्रलक्ष्मीलतातरुः ॥१३२॥
श्रामाण्यव्रतमास्थाय धर्मशांतिजिनांतरे । समाधानानुरूपेण गतं सौधर्मवासितां ॥ १३३ ॥
सनत्कुमारचक्रेशे स्तुते मगधपुंगवः । ब्रवीति केन पुण्येन जातोऽसाविति रूपवान् ॥ १३४ ॥
तस्मै समासतोवोचत् पुराणार्थं महामुनिः । यन्न वर्षशतेनापि सर्वं कथयितुं क्षमं ॥ १३५ ॥
तिर्यग्नरकदुःखानि कुमानुषभवांस्तथा । जीवः प्रपद्यते तावद्यावन्नायाति जैनतां ॥ १३६ ॥
अस्ति गोवर्धनाभिख्यो ग्रामो जनसमाकुलः । जिनदत्ताभिधानोऽत्र बभूव गृहिणां वरः ॥१३७॥
यथा सर्वांबुधानानां सागरो मूर्द्धनि स्थितः । भूधराणां च सर्वेषां मंदरश्चारुकंदरः ॥ १३८ ॥
गृहाणां हरिदश्वश्च तृणानामिक्षुरर्चितः । तांबूलाख्या च वल्लीनां तरूणां हरिचंदनं ॥ १३९ ॥
कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणां कुलं स्तुतं । आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परं ॥ १४० ॥
स गृही तत्र जातः सन् कृत्वा श्रावकचेष्टितं । गुणभूषणसंपन्नः प्रशस्तामाश्रितो गतिं ॥१४१॥

भार्या विनयवत्यस्य तद्वियोगेन दुःखिता । शीलशेखरसद्गंधा गृहधर्मपरायणा ॥ १४२ ॥
स्वनिवेशे जिनेंद्राणां कारयित्वा वरालयं । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा जगाम गतिमर्चितां ॥ १४३ ॥
तत्रैवान्योऽभवद्रामे हेमबाहुर्महागृही । आस्तिकः परमोत्साहो दुराचारपराङ्मुखः ॥ १४४ ॥
तया विनयवत्यासौ कारितं जैनमालयं । अनुमोद्य महापूजां यक्षीभूदायुषः क्षये ॥ १४५ ॥
चतुर्विधस्य संघस्य निरतः पर्युपासने । सम्यग्दर्शनसंपन्नो जिनवंदनतत्परः ॥ १४६ ॥
ततः सुमानुषो देव इति त्रिःपरिवर्तनं । कुर्वन्नसौ महापुर्यामासीद्धर्मरुचिर्नृपः ॥ १४७ ॥
यस्य सानत्कुमारस्य पितासीत्सुप्रभाह्वयः । वरस्त्रीगुणमंजूषा माता तिलकसुंदरी ॥ १४८ ॥
कृत्वा सुप्रभशिष्यत्वं महाव्रतधरस्ततः । महासमितिसंपन्नश्चारुगुप्तिसमावृतः ॥ १४९ ॥
आत्मनिंदापरो धीरः स्वदेहेऽत्यंतनिस्पृहः । दयादमपरो धीमान् शीलवैवाधिकः परः ॥ १५० ॥
शंकादिदृष्टिदोषाणामतिदूरव्यवस्थितः । साधूनां सततं सक्तो वैयावृत्ये यथोचिते ॥ १५१ ॥
संयुक्तः कालधर्मेण माहेंद्रं कल्पमाश्रितः । अवाप परमान् भोगान् देवीनिवहमध्यगः ॥१५२॥
च्युतो नागपुरे जातः साहदेवः स वैजयी । सनत्कुमारशब्देन ख्यातश्चक्रांकशासनः ॥ १५३ ॥
संकथानुक्रमाद्यस्य सौधर्मेंद्रेण कीर्तितं । रूपं द्रष्टुं समाजग्मुः सुरा विस्मयकारणं ॥ १५४ ॥

कृतश्रमः स तैर्दृष्टो भूरजोभूसरद्युतिः । गंधामलकपंकेन दिग्धमौलिर्महातनुः ॥ १५५ ॥
स्नानैकशाटकः श्रीमान् स्थितः स्नानोचितासने । नानावर्णपयःपूर्णकुंभमंडलमध्यगः ॥ १५६ ॥
उक्तः स तैरहो रूपं साधु शक्रेण वर्णितं । मानुषस्य सतो देवचित्ताकर्षणकारणं ॥ १५७ ॥
तेनोक्तास्ते कृतस्नानं भुक्तवंतं सभूषणं । सुरा द्रक्षथ मां स्तोकां वेलामत्रैव तिष्ठत ॥ १५८ ॥
एवमित्युदिते कृत्वा यः समस्तं यथोचितं । स्थितः सिंहासने रत्नशैलकूटसमद्युतिः ॥ १५९ ॥
दृष्ट्वा तस्य पुनारूपं निर्निदुर्नाकवासिनः । असारां धिगिमां शोभां मर्त्यानां क्षणिकामिति १६०
प्रथमे दर्शने यास्य यौवनेन समन्विता । सेयं क्षणात्कथं ह्रासं प्राप्ता सौदामिनीत्वरी ॥१६१॥
विज्ञाय क्षणिकां लक्ष्मीं सुरेभ्यो रागवर्जितः । श्रमणत्वं परिप्राप्य महाघोरतपोन्वितः ॥ १६२ ॥
अधिसह्य महारोगान् महालब्धियुतोऽपि सन् । सनत्कुमारमारूढः स्वध्यानस्थितियोगतः १६३
बभूव पुंडरीकिन्यां नाम्ना मेघरथो नृपः । सर्वार्थसिद्धिमेतोऽसौ शिष्यो घनरथस्य सन् ॥१६४॥
च्युत्वा नागपुरे विश्वसेनस्यैराशरीरजः । तनयः प्रथितो जातः शांतिः शांतिकरो नृणां॥१६५॥
जातमात्रोऽभिषेकं यः सुरेभ्यः प्राप्य मंदिरे । अभूच्चक्रांकभोगस्य नाथोऽसाविंद्रसंस्तुतः ॥१६६॥
विहाय तृणवद्राज्यं प्राव्राज्यं समश्रियत् । चक्रिणां पंचमो भूत्वा जिनानां षोडशोऽभवत् १६७

कुंथ्वरौ परतस्तस्य संजातौ चक्रवर्तिनौ । जिनेंद्रत्वं च संप्राप्तौ पूर्वसंचितकारणौ ॥ १६८ ॥
सनत्कुमारराजोभूद्धर्मशांतिजिनांतरे । निजमेवांतरं ज्ञेयं त्रयाणां जिनचक्रिणां ॥ १६९ ॥
कनकाभ इति ख्यातो नाम्ना धान्यपुरे नृपः । विचित्रगुप्तशिष्यः सन् स जयंतं समाश्रयत् १७०
ईशावत्यां नरेंद्रस्य कार्तवीर्यस्य भामिनी । तारेति तनयस्तस्यामभून्नाकादुपागतः ॥ १७१ ॥
सुभूम इति चाख्यातश्चक्रांकायाः श्रियः पतिः । येनेयं शोभना भूमिः कृत्वा परमचेष्टिना १७२
पितुर्यो वधकं युद्धे जामदग्न्यममीमरत् । भुंजानः पायसं पात्र्या चक्रत्वपरिवृत्तया ॥ १७३ ॥
जामदग्न्याहतक्षात्रदंता एवास्य पायसं । सत्रे किलाश्रतो जाता नैमित्तोक्तं समंततः ॥ १७४ ॥
सप्तवारान् कृता क्षत्रारिपूर्णा किल भूरिति । चक्रे त्रिसप्तवारान् यः क्षितिं निष्कंठसूत्रिकां १७५
अत्युग्रशासनात्तस्माद्विप्रा प्राप्य महाभयं । कुलेषु रजकादीनां क्षत्रिया इव लिल्यिरे ॥ १७६ ॥
अरमल्यंरे चक्री भोगादविरतात्मकः । कालधर्मेण संयुक्तः सप्तमीं क्षितिमाश्रितः ॥ १७७ ॥
नगर्यां वीतशोकायां चिंताहः पार्थिवोऽभवत् । भूत्वा सुप्रभशिष्योसौ ब्रह्माहं कल्पमाश्रित १७८
च्युतो नागपुरे पद्मरथस्य धरणीपतेः । मयूर्यां तनयो जातो महापद्मः प्रकीर्तितः ॥ १७९ ॥
अष्टौ दुहितरस्तस्य रूपातिशयगर्विताः । नेच्छंति भुवि भर्तारं हृता विद्याधरैरिमा ॥ १८० ॥

उपलभ्य ताः समानीता निर्वेदिन्य प्रवव्रजुः । समाराधितकल्याणा देवलोकं समाश्रिताः॥१८१॥
तेप्यष्टौ तद्वियोगेन मव्रज्यां व्योमचारिणः । चक्रुर्विचित्रसंसारदर्शनत्रासमागताः ॥ १८२ ॥
हेतुना तेन चक्रेशः प्रतिबुद्धो महागुणः । सुते न्यस्य श्रियं पद्मे निष्क्रांतो विष्णुना समं ॥१८३॥
महापद्मस्तपः कृत्वा परं संप्राप्तकेवलः । लोकप्राग्भारमारुक्षदरिमल्लिजिनान्तरे ॥ १८४ ॥
महेंद्रदत्तनामासीत्पुरे विजयनामनि । कृत्वा नंदनशिष्यत्वं महेंद्रं कल्पमुद्ययौ ॥ १८५ ॥
कांपिल्यनगरे च्युत्वा वप्रायां हरिकेतुतः । हरिषेण इति ख्यातो जज्ञे चक्रांकितेशतः ॥ १८६ ॥
स कृत्वा धरणीं सर्वां निजां चैत्यविभूषणाम् । तीर्थे सुव्रतनाथस्य सिद्धानां पदमाश्रितः ॥१८७॥
असिताह्वोऽभवद्राजा पुरे राजपुराभिधे । सुधर्ममित्रशिष्यत्वं कृत्वा ब्रह्मालयं ययौ ॥ १८८ ॥
ततश्च्युतो यशोवत्यां जातस्तत्रैव वैजयिः । जयसेन इति ख्यातश्चक्रचुंबितशासनः ॥ १८९ ॥
परित्यज्य महाराज्यं दीक्षां दैगंबरीमितः । रत्नत्रितयमाराध्य सैद्धं पदमाशिश्रियत् ॥ १९० ॥
स्वतंत्रलिंगसंज्ञस्य संभूतः प्राप्य शिष्यतां । काश्यां कमलगुल्माख्यं विमानं समुपाश्रितः॥१९१॥
च्युतो ब्रह्मरथस्याभूत् पुरे कांपिल्यनामनि । चूलाहासंभवः पुत्रो ब्रह्मदत्तः प्रकीर्तितः ॥१९२॥
चक्रचिह्नामसौ भुक्त्वा श्रियं विरतिवर्जितः । सप्तमीं क्षितिमश्लिक्षन्नेमिपार्श्वजिनांतरे ॥ १९३ ॥

एते षट्खंडभूनाथाः कीर्तिता मगधाधिप । गतिर्न शक्यते येषां रोद्धुं देवासुरैरपि ॥ १९४ ॥
प्रत्यक्षमक्षमुक्तं च फलमेतच्छुभाशुभं । श्रुत्वानुभूय दृष्ट्वा च युक्तं न क्रियते कथं ॥ १९५ ॥
न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिदच्छति । लोकांतरं न चायाति किंतु तत्सुकृतेतरं ॥ १९६ ॥
कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु । यद्वसंति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजं ॥ १९७ ॥
शीतोष्णवातयुक्तेषु कुगृहेषु वसंति यत् । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलं ॥ १९८ ॥
विंध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजंति यत् । नरेंद्राश्चामरोद्भूताः पुण्यशालेरिदं फलं ॥ १९९ ॥
तुरंगैर्यदलं स्वंगैर्गम्यते चलचामरैः । पादांतमध्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितं ॥ २०० ॥
कल्पप्रासादसंकाशं रथमारुह्य यज्वनाः । व्रजंति पुण्यशैलेंद्राच्छ्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झरः ॥ २०१ ॥
स्फुटिताभ्यां पदांघ्रिभ्यां मलग्रस्तपटच्चरैः । भ्रम्यते पुरुषैः पापविषवृक्षस्य तत्फलं ॥ २०२ ॥
अन्नं यदमृतं प्रायं हेमपात्रेषु भुज्यते । स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायनः ॥ २०३ ॥
देवाधिपतिता चक्रचुंबिता यच्च राजिता । लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तदहिंसालताफलं ॥ २०४ ॥
रामकेशवयोर्लक्ष्मी लभ्यते यच्च पुंगवैः । तद्धर्मफलमुन्नेष्ये तत्कीर्तनमथाधुना ॥ २०५ ॥
हास्तिनं नगरं रम्यं साकेता केतुभूषिता । श्रावस्ती वरविस्तीर्णा कौशांबी भासितांबरा ॥२०६॥

पोदनं शैलनगरं तथा सिंहपुरं पुरं। कौशांबी हास्तिनं चेति क्रमेण परिकीर्तिता ॥ २०७ ॥
सर्वद्रवणसंपन्ना भयसंपर्कवर्जिता। नगर्यो वासुदेवानामिमाः पूर्वत्र जन्मनि ॥ २०८ ॥
विश्वनंदी महातेजास्ततः पर्वतकाभिधः। धनमित्रस्ततो ज्ञेयस्तृतीयश्चक्रधारिणां ॥ २०९ ॥
ततः सागरदत्ताख्यःक्षुब्धसागरनिस्वनः। विकटः प्रियमित्रश्च तथा मानसचेष्टितः ॥ २१० ॥
पुनर्वसुश्च विज्ञातो गंगदेवश्च कीर्तितः। उक्तान्यमूनि नामानि कृष्णानां पूर्वजन्मनि ॥ २११ ॥
नैधिकी यातनं युद्धं विजया प्रमदाहृतिः। उद्यानारण्यं भरणं वनक्रीड़ाभिकांक्षिणः ॥ २१२ ॥
अत्यंतविषयासंगो विप्रयोगस्तनूनपात्। दौर्भाग्यं प्रेत्य हेतुभ्य एतेभ्यो हरयोऽभवन् ॥ २१३ ॥
विरूपा दुर्भगाः संतः सनिदानतपोधनाः। तत्त्वविज्ञाननिर्मुक्ता संभवंति बलानुजाः ॥ २१४ ॥
सनिदानं तपस्तस्माद्वर्जनीयं प्रयत्नतः। तद्धि पश्चान्महाघोरदुःखदानसुशिक्षितं ॥ २१५ ॥
संभूततपसो मूर्तिः सुभद्रो वसुदर्शनः। श्रेयांसभूतिसंज्ञश्च वसुभूतिश्च कीर्तितः ॥ २१६ ॥
घोषसेनपरांभोधिनामानौ च महामुनी। द्रुमसेनश्च कृष्णानां गुरवः पूर्वजन्मनि ॥ २१७ ॥
महाशुक्राभिधः कल्पः प्राणतो लांतवस्तथा। सहस्रारे परो ब्रह्मनामा माहेंद्रसंज्ञितः ॥ २१८ ॥
सौधर्मश्च समाख्यातः कल्पः सच्चेष्टितालयः। सनत्कुमारनामा च महाशुक्राभिधोऽपरः ॥२१९॥

एतेभ्यः प्रच्युताः संतः प्राप्तपुण्यफलोदयाः । पुण्यावशेष्वतो जाता वासुदेवा नराधिपाः ॥२२०॥
पौदनं द्वापुरी हास्तिनगरं तत्पुनः स्मृतं । तथा चक्रपुरं रम्यं कुशाग्रं मिथिलापुरी ॥ २२१ ॥
विनीता मथुरा चेति माधवोत्पत्तिभूमयः । समस्तधनसंपूर्णाः सदोत्सवसमाकुलाः ॥ २२२ ॥
आद्यः प्रजापतिर्ज्ञेयो ब्रह्मभूतिरतोऽपरः । रौद्रनादस्तथा सोमः प्रख्यातश्च शिवाकरः ॥ २२३ ॥
समस्तमूर्द्धन्यिनादश्च ख्यातो दशरथस्तथा । वसुदेवश्च कृष्णानां पितरः परिकीर्तिताः ॥२२४॥
आद्या मृगावती ज्ञेया माधवी पृथिवी तथा । सीतांबिका च लक्ष्मीश्च केशिनी कैकयी शुभा ॥
देवकी चरमा ज्ञेया महासौभाग्यसंयुता । उदाररूपसंपन्ना कृष्णानां मातरः स्मृताः ॥ २२६ ॥
सुप्रभा प्रथमा देवी रूपिणी प्रभवा परा । मनोहरा सुनेत्रा च तथा विमलसुंदरी ॥ २२७ ॥
तथानंदवती ज्ञेया कीर्तिता च प्रभावती । रुक्मिणी चेति कृष्णानां महादेव्यः प्रकीर्तिताः २२८
प्रकांडपांडुरोगारा नगरी पुंडरीकिनी । पृथिवीवसुविस्तीर्णा द्वितीया पृथिवी पुरी ॥ २२९ ॥
अन्यानंदपुरी ज्ञेया तथानंदपुरी स्मृता । पुरी व्यतीतशोकाख्या पुरं विजयसंज्ञितं ॥ २३० ॥
सुसीमा च तथा क्षेमा हास्तिनं च प्रकीर्तितं । एतानि बलदेवानां पुराणि गतजन्मनि ॥२३१॥
बलो मारुततेजश्च नंदिमित्रो महाबलः । पुरुषर्षभसंज्ञश्च तथा षष्ठः सुदर्शनः ॥ २३२ ॥

वसुंधरश्च विज्ञेयः श्रीचंद्रः सखिसंज्ञकः । ज्ञेयान्यमूनि नामानि रामाणां पूर्वजन्मनि ॥ २३३ ॥
अमृतारो मुनिः श्रेष्ठः महासुव्रतसुव्रतौ । वृषभोऽथ प्रजापालस्तथा दमवराभिधः ॥ २३४ ॥
सुधर्मोऽर्णवसंज्ञश्च तथा विद्रुमसंज्ञितः । अमी पूर्वभवे ज्ञेया गुरवः शीरधारिणां ॥ २३५ ॥
विवासोऽनुत्तरा ज्ञेयास्त्रयाणां हलधारिणां । सहस्रारस्त्रयाणां च द्वयोर्ब्रह्मनिवासिता ॥ २३६ ॥
महाशुक्राभिधानश्च कल्पः परमशोभनः । एभ्यश्च्युत्वा समुत्पन्ना रामाः साधुसुचेष्टिताः ॥२३७॥
भद्रांभोजा सुभद्रा च सुवेषा च सुदर्शना । सुप्रभा विजया चान्या वैजयंती प्रकीर्तिता ॥२३८॥
महाभागा च विज्ञेया महाशीलापराजिता । रोहिणी चेति विज्ञेया जनन्यः शीरधारिणां ॥२३९॥
श्रेय आदीन् जिनात् पंच तृपृष्ठाद्या बलानुजाः । क्रमेण पंच वंदंते तत्परावरतः परौ ॥ २४० ॥
नमिसुव्रतयोर्मध्ये लक्ष्मणः परिकीर्तितः । वंदको नेमिनाथस्य कृष्णोऽभूदद्भुतक्रियः ॥ २४१ ॥
अलकं विजयं ज्ञेयं नंदनं पृथिवीपुरं । तथा हरिपुरं सूर्यसिंहशब्दपरे पुरे ॥ २४२ ॥
लंकाराजगृहं चान्यक्रमेण प्रतिचक्रिणां । स्थानान्यमूनि वेदानि दीप्तानि मणिरश्मिभिः ॥२४३॥
अश्वग्रीव इति ख्यातस्तारको मेरकस्तथा । मधुकैटभसंज्ञश्च निशुंभश्च तथा बलिः ॥ २४४ ॥
प्रह्लादो दशवक्त्रश्च जरासंधश्च कीर्तितः । क्रमेण वासुदेवानां विज्ञेया प्रतिचक्रिणः ॥ २४५ ॥

सुवर्णकुंभः सत्कीर्तिः सधर्मोऽथ महामुनिः । मृगांकः श्रुतिकीर्तिश्च सुमित्रो भुवनश्रुतः ॥ २४६ ॥
सुव्रतश्च सुसिद्धार्था रामाणां गुरवः स्मृताः । तपःसंभारसंजातकीर्तिवेष्टितविष्टपाः ॥ २४७ ॥

दृग्ध्वा कर्मोरुकक्षं क्षुभित बहुविधव्याधिसंभ्रांतसत्त्वं ।
मृत्युर्व्याघ्रातिभीमं भवविपुलसमं तुंगवृक्षोरुखंडं ॥
याता निर्वाणमष्टौ हलधरविभवं प्राप्य संविग्नभावाः ।
संप्राप ब्रह्मलोकं चरमहलधरः कर्मबंधावशेषात् ॥ २४८ ॥
आदौ कृत्वा जिनेंद्रान् भरतजयकृतान् केशवानां बलाना-
मेतत्ते पूर्वजन्मप्रभृतिनिगदितं वृत्तमत्यंतचित्रं ॥
केचिद्ग्राम्यंति मोक्षं कृतयुततपसः स्तोकपंकाश्च केचि-
त्केचिद्गच्छंति भूयो बहुभवगहनां संसृतिं निर्विरामाः ॥ २४९ ॥
एतज्ज्ञात्वा विचित्रं कलिकलुषमहासागरावर्तमग्नं ।
संसारप्राणजातं विरसगतिमहादुःखवह्निप्रतप्तं ॥

कष्टं नेच्छंति केचित्सुकृतपरिचयं कर्तुमन्यस्तु कश्चित् ।
कृत्वा मोहावसानं रविरिव विमलं केवलज्ञानमेति ॥ २५० ॥

इत्यर्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते तीर्थंकरादिभवानुकीर्तनं नाम विंशतितमं पर्व ।

एकविंशतितमं पर्व ।

श्रृण्वतोऽष्टमरामस्य संबंधार्थं वदामि ते । वंशानुकीर्तनं किंचिन्महापुरुषसंभवं ॥ १ ॥
जिनेंद्रे दशमे नीते राजासीत्सुमुखश्रुतिः । कौशांब्यामपरोऽत्रैव वणिजो वीरकश्रुतिः ॥ २ ॥
हृत्वा तद्दयितां राजा श्रित्वा कामं यथेप्सितं । दत्वा दानं विरागाणां पुरे हरिपुरसंज्ञके ॥ ३ ॥
उत्पन्नौ दंपती क्रीडां कृत्वा रुक्मगिरिं ययौ । तत्रापि दक्षिणश्रेण्यां भोगभूमिमशिश्रियत् ॥४॥
दयिताविरहांगारदग्धदेहस्तु वीरकः । तपसा देवतां प्राप देवीनिवहसंकुलं ॥ ५ ॥
विदित्वावधिना देवो वैरिणं हरिसंभवं । भरतेऽतिष्ठपद्यातं दुर्गतिं पापधीरिति ॥ ६ ॥
यतोऽसौ हरितःक्षेत्रादानीतो भार्यया समं । ततो हरिरिति ख्यातिं गतः सर्वत्र विष्टपे ॥ ७ ॥

नाम्ना महागिरिस्तस्य सुतो हिमगिरिस्ततः । ततो वसुगिरिर्जातो बभूवेंद्रगिरिस्ततः ॥ ८ ॥
रत्नमालोथ संभूतो भूतदेवो महीधरः । इत्याद्याः शतशोतीता राजानो हरिवंशजाः ॥ ९ ॥
वंशे तत्र महासत्वः सुमित्र इति विश्रुतः । बभूव परमो राजा कुशाग्राख्ये महापुरे ॥ १० ॥
त्रिदशेंद्रसमो भोगैः कांत्या जितनिशाकरः । जितप्रभाकरो दीप्त्या प्रतापानतशात्रवः ॥११॥
पद्मावतीति जायास्य पद्मनेत्रा महाद्युतिः । शुभलक्षणसंपूर्णा पूर्णसर्वमनोरथा ॥ १२ ॥
सुप्तासौ भुवने रम्ये रात्रौ तल्पे सुखावहे । अद्राक्षीत्पश्चिमे यामे स्वप्नान् षोडश पूजितान्॥१३॥
द्विरदं शात्करं सिंहमभिषेकं श्रियस्तथा । दामनी शीतगुं भानुं झषौ कुंभं सरोजवत् ॥ १४ ॥
सागरं सिंहसंयुक्तमासनं रत्नचित्रितं । विमानं भवनं शुभ्रं रत्नराशिं हुताशनं ॥ १५ ॥
ततो विस्मितचित्ता सा विबुद्धा बुद्धिशालिनी । कृत्वा यथोचितं याता विनीता भर्तुरंतिकं॥१६॥
कृतांजलिश्च पप्रच्छ स्वप्नार्थं न्यायवेदिनी । भद्रासने सुखासीना स्फुरद्वदनपंकजा ॥ १७ ॥
दयितोऽकथयद्यावत्तस्यै स्वप्नफलं शुभं । अपप्तद्गगनात्तावद्वृष्टी रत्नप्रसूतिनी ॥ १८ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च वसुनोऽस्य दिने दिने । भवने मुदितो यक्षो ववर्ष सुरपाज्ञया ॥ १९ ॥
मासाः पंचदशाऽखंडं पतंत्या वसुधारया । तया रत्नसुवर्णादिमयं तन्नगरं कृतं ॥ २० ॥

तस्याः कमलवासिन्यो जिनमातुः प्रतिक्रियां । समस्तामादृता देव्यश्चक्रुः सपरिवारिकाः ॥२१॥
जातमात्रमथो संतं जिनेंद्रं क्षीरवारिणा । लोकपालैः समं शक्रो मेरावस्नपयच्छ्रिया ॥ २२ ॥
संपूज्य भक्तितः स्तुत्वा प्रणम्य च सुराधिपः । मातुरंके पुनः प्रीत्या जिननाथमतिष्ठिपत् ॥२३॥
आसीद्गर्भस्थिते यस्मिन् सुव्रता जननी यतः । विशेषेण ततः कीर्तिं गतोऽसौ सुव्रताख्यया २४
अंजनाद्रिप्रकाशोऽपि स जिनो देहतेजसा । जिगाय तिग्मगुं पूर्णनिशाकरनिभाननः ॥ २५ ॥
दधता परमं तेन भोगमिंद्रेण कल्पितं । अहमिंद्रसुखं दूरमधरीकृतमूर्जितं ॥ २६ ॥
हाहाहूहूश्रुती तस्य तुंबुरू नारदस्तथा । विश्वावसुश्च गायंति किंनर्योऽप्सरसो वराः ॥ २७ ॥
वीणावेण्वादिवादेन तत्कृतेन सुचारुणा । स्नानादिविधिमाप्नोति देवीजनितवर्तनः ॥ २८ ॥
स्मितलज्जितदंभेर्ष्याप्रासादादिसुविभ्रमाः । यौवनेऽरमयद्रामाः सोभिरामो यथेप्सितं ॥ २९ ॥
शरदंभोदविलयं स दृष्ट्वा प्रतिबुद्धवान् । स्तुतो लौकांतिकैर्देवैः प्रवित्रजिषयान्वितः ॥ ३० ॥
दत्त्वा सुव्रतसंज्ञाय राज्यं पुत्राय निस्पृहः । प्रणताशेषसामंतमंडलं सुखपालनं ॥ ३१ ॥
निर्गतः सौरभव्याप्तदशदिक्चक्रवालतः । दिव्यानुलेपनोदारसुकांतमकरंदतः ॥ ३२ ॥
सौरभाकृष्टसंभ्रांतभ्रमरीपृथुवृंदतः । हरिण्मणिविभाचक्रपालाशचयसंकुलात् ॥ ३३ ॥

दंतपंक्तिसितच्छायाविश्वजालसमाकुलात् । नानाविभूषणध्वानविहगारावपूरितात् ॥ ३४ ॥
वलीतुरंगसंपृक्तात् स्वनचक्राहशोभितात् । राजहंसः सितः कीर्त्या दिव्यस्त्रीपद्मखंडतः ॥ ३५ ॥
देवमानवराजोढां शिविकामपराजितां । आरुह्य विपुलोद्यानं ययौ चूडामणिर्नृणां ॥ ३६ ॥
अवतीर्य ततो राज्ञां सहस्रैर्बहुभिः समं । दधौ जैनेश्वरीं दीक्षां हरिवंशविभूषणः ॥ ३७ ॥
षष्ठोपवासयुक्ताय तस्मै राजगृहे ददौ । भक्त्या वृषभदत्ताख्यः परमान्नेन पारणं ॥ ३८ ॥
असमाचारवृत्त्यर्थं मुक्तिश्च विभुना कृता । प्राप्तो वृषभदत्तश्च पंचातिशयपूजनम् ॥ ३९ ॥
अधश्चंपकवृक्षस्य शुक्लध्यानमुपेयुषः । उत्पन्नं घातिकर्मांते केवलं परमेष्ठिनः ॥ ४० ॥
ततो देवाः समागत्य सेंद्रा स्तुत्वा प्रणम्य च । संजातगणिनस्तस्माच्छुश्रुवुर्धर्ममुत्तमं ॥ ४१ ॥
सागारं च निरागारं बहुभेदं यथाविधि । श्रुत्वा ते विमलं धर्मं नत्वा जग्मुर्यथायथं ॥ ४२ ॥
मुनिसुव्रतनाथोऽपि धर्मतीर्थप्रवर्तनं । कृत्वा सुरासुरैर्नम्रैः स्तूयमानःप्रमोदिभिः ॥ ४३ ॥
गणनाथैर्महासत्त्वैर्गणपालनकारिभिः । अन्यैश्च साधुभिर्युक्तो विहृत्य वसुधातलं ॥ ४४ ॥
सम्मेदगिरिमूर्धानं समारुह्य चतुर्विधं । विधूय कर्म संप्राप लोकचूडामणिस्थितं ॥ ४५ ॥
मुनिसुव्रतमाहात्म्यमिदं येऽधीयते जनाः । शृण्वंति वा सुभावेन तेषां नश्यति दुष्कृतिः ॥४६॥

भूयश्च बोधिमागत्य ततः कृत्वा सुनिर्मलं । गच्छंति परमं स्थानं यतो नागमनं पुनः ॥ ४७ ॥
अथासौ सुव्रतः कृत्वा चिरं राज्यं सुनिश्चलं । दक्षं तत्र विनिक्षिप्य प्रव्रज्य प्राप निर्वृतिं ॥४८॥
दक्षात्समभवत्सूनुरिलावर्धनसंज्ञितः । ततः श्रीवर्धनो जज्ञे श्रीवृक्षाख्यस्ततोऽभवत् ॥ ४९ ॥
संजयंतो बभूवास्मादुदभूत्कुणिमस्ततः । महारथः पुलोमा चेत्येवमाद्या नरेश्वराः ॥ ५० ॥
सहस्रशः समुत्पन्ना हरीणामन्वये शुभे । संप्रापुर्निर्वृतिं केचित्केचिन्नाकनिवासितां ॥ ५१ ॥
एवं क्रमात्प्रयातेषु पार्थिवेषु च भूरिषु । नृपो वासवकेत्वाख्यःकुलेऽस्मिन्मैथिलोऽभवत् ॥ ५२ ॥
विपुलेति महादेवी तस्यासीद्विपुलेक्षणा । परमश्रीरपि प्राप्ता या मध्येन दरिद्रतां ॥ ५३ ॥
तस्य जनकनामाभूत्तनयो नयकोविदः । हितं यः सततं चक्रे प्रजानां जनको यथा ॥ ५४ ॥
एवं जनकसंभूतिः कथिता ते नराधिप । शृणु संप्रति यद्वंशे नृपो दशरथोऽभवत् ॥ ५५ ॥
इक्ष्वाकूनां कुले रम्ये निर्वृत्ते नाभिजे जिने । भरते भास्करे सोमे व्यतीते वंशभूषणे ॥ ५६ ॥
संख्यातीतेन कालेन कुले तत्र निराधिपाः । अतिक्रामंति कुर्वंतस्तपः परमदुश्चरं ॥ ५७ ॥
क्रीडंति भोगनिर्मग्नाः शुष्यंत्यकृतपुण्यकाः । लभंते कर्मणः स्वस्य विपाकमशुभारिणः ॥ ५८ ॥
चक्रवत्परिवर्तंते व्यसनानि महोत्सवैः । शनैर्मायादयो दोषाः प्रयांति परिवर्द्धनं ॥ ५९ ॥

क्लिश्यंते द्रव्यनिर्मुक्ता म्रियंते वा लतासु च । पूर्वोपात्तायुषि क्षीणे हेतुना चोपसंहृते ॥ ६० ॥
नाना भवंति तिष्ठंति निघ्नते शोचयंति च । रुदंत्यदंति वाधंते विवदंति पठंति च ॥ ६१ ॥
ध्यायंति यांति वल्गंति प्रभवंति वहंति च । गायंत्युपासतेऽश्नंति दरिद्रति नदंति च ॥ ६२ ॥
जयंति रांति मुंचंति राजंते विलसंति च । तुष्यंति शासति क्षांति स्पृहयंति हरंति च ॥ ६३ ॥
त्रपंति द्रांति सज्जंति द्रूयंते कूटयंति च । मार्गयंतेऽभिधावंते कुहयंते सृजंति च ॥ ६४ ॥
शीडंति स्यंति यच्छंति शीलयंति वसंति च । लुच्यंति भांति सीदंति क्रुध्यंति विचलंति च ६५
स्तुत्यंत्यर्चंति वंचंति सात्वयंति विदंति च । मह्यंत्यवंति नृत्यंति स्निह्यंति विनयंति च ॥६६॥
नुदंत्यंच्छंति कर्षंति भृज्जंति विनमंति च । दीव्यंति दांति सीव्यंति जुह्वत्यंगंति जाग्रति ॥६७॥
स्वपंति विभ्यतींगंति श्यंति ध्मंति रुदंति च । प्रांति सुन्वंति रुन्वंति रुत्वंति विरुवंति च ॥६८॥
सीव्यंत्यवंति जीर्यंति पिबंति रचयंति च । वृण्वते परिमृह्णंति विसृणन्ति पृणंति च ॥ ६९ ॥
मीमांसंते जुगुप्संते कामयंते तरंति च । चिकित्स्यंत्यनुमन्यंते वारयंति गृणन्ति च ॥ ७० ॥
एवमादिक्रियाजालसंततव्याप्तमानसाः । शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामंति मानवाः ॥ ७१ ॥
इति चित्रपटाकारचेष्टिताखिलमानवे । कालेऽवसर्पिणीनाम्नि प्रयाति विलयं शतैः ॥ ७२ ॥

जाते विंशतिसंख्याने वर्तमानजिनांतरे । देवागमनसंयुक्ते विनीतायामुरौ पुरि ॥ ७३ ॥
विजयो नाम राजेंद्रो विजिताखिलशात्रवः । सौंर्यप्रतापसंयुक्तः प्रजापालनपंडितः ॥ ७४ ॥
संभूतो हेमचूलिन्यां महादेव्यां सुतेजसि । सुरेंद्रमन्युनामाभूत्सूनुस्तस्य महागुणः ॥ ७५ ॥
तस्य कीर्तिसमाख्यायां जायायां तनयद्वयं । चंद्रसूर्यसमच्छायं जातं गुणसमर्चितं ॥ ७६ ॥
वज्रबाहुस्तयोराद्यो द्वितीयश्च पुरंदरः । अन्वर्थनामयुक्तौ तौ रेमाते भुवने सुखं ॥ ७७ ॥
इभवाहननामासीत्तस्मिन् काले नराधिपः । रम्ये नागपुरे तस्य नाम्ना चूडामणिः प्रिया ॥७८॥
तयोर्दुहितरं चार्वीं ख्यातां नाम्ना मनोदयां । वज्रबाहुकुमारोऽसौ लेभे श्लाघ्यतमो नृणां ॥७९॥
तत्कन्यासोदरो नेतुमागादुदयसुंदरः । सार्धं तेनोच्छ्रिता श्रीमान्सितातपनिवारणः ॥ ८० ॥
कन्यां तां रूपतः ख्यातां सकले वसुधातले । मानसेनवहन्भूत्या प्रतस्थे श्वाशुरं पुरं ॥ ८१ ॥
अथास्य व्रजतो दृष्टिर्वसंतकुसुमाकुले । गिरौ वसंतसंज्ञाके निपपात मनोहरे ॥ ८२ ॥
यथा यथा समीपत्वं तस्य याति गिरेरसौ । तथा तथा परां लक्ष्मीं पश्यन् हर्षमुपागमत् ॥८३॥
पुष्पधूलीविमिश्रेण वायुना स सुगंधिना । समालिंग्यत मित्रेण संप्राप्तेन चिरादिव ॥ ८४ ॥
पुंस्कोकिलकलालापैर्जयशब्दमिवाकरोत् । वातकंपितवृक्षाग्रो वज्रबाहोर्धराधरः ॥ ८५ ॥

वीणाझंकाररम्येण भृंगाणां मंदशालिनां । नादेन श्रवणौ तस्य मानसेन समं हृतौ ॥ ८६ ॥
चूतोयं कर्णिकारोयं लोध्रोयं कुसुमान्वितः । प्रियालोयं पलाशोयं ज्वलत्पावकभासुरः ॥ ८७ ॥
व्रजंतीति क्रमेणास्य दृष्टिर्निश्चलपक्ष्मिका । संदिग्धमानुषाकारे पपात मुनिपुंगवे ॥ ८८ ॥
स्थाणुः स्याच्छ्रमणोयं नु शैलकूटमिदं भवेत् । इति राज्ञो वितर्कोऽभूत्कायोत्सर्गास्थिते मुनौ ८९
ततो नेदीयसं मार्गं प्रयातस्यास्य निश्चयः । उदयादिमहायोगी देहावंदनतत्परः ॥ ९० ॥
उच्चावचशिलाजालविषमेऽवस्थितं स्थिरं । दिवाकरकराश्लिष्टाम्लानवक्त्रसरोरुहं ॥ ९१ ॥
प्रलंबितमहाभोगिभोगभासुरसद्भुजं । शैलेंद्रतटसंकाशपीवरोदारवक्षसं ॥ ९२ ॥
दिग्नागबंधनस्तंभस्थिरभास्वद्वरोरुकं । तपसापि कृशं कांत्या दृश्यमानं सुपीवरं ॥ ९३ ॥
नासिकाग्रनिविष्टातिसौम्यनिश्चलचक्षुषं । मुनिं ध्यायंतमैकाग्र्यं दृष्ट्वा राजेत्यचिंयत् ॥ ९४ ॥
अहो धन्योयमत्यंतं प्रशांतो मानवोत्तमः । यद्विहायाखिलं संगं तपस्यति मुमुक्षया ॥ ९५ ॥
विमुक्त्यानुगृहीतोयं कल्याणाभिनिविष्टधीः । परपीडानिवृत्तात्मा मुनिर्लक्ष्मीपरिष्कृतः ॥ ९६ ॥
समः सुहृदि शत्रौ च रत्नराशौ तृणे तथा । मानमत्सरनिर्मुक्तः सिद्ध्यालिंगनलालसः ॥ ९७ ॥
वशीकृतहृषीकात्मा निष्प्रकंपो गिरींद्रवत् । श्रेयो ध्यायति नीरागः कुशलस्थितमानसः ॥ ९८ ॥

फलं पुष्कलमेतेन लब्धं मानुषजन्मनः । अयं न वंचितः क्रूरैः कषायाख्यैर्मलिम्लुचैः ॥ ९९ ॥
अहं नु वेष्टितः पापः कर्मपाशैरनंतरं । आशीविषैर्महानागैर्यथा चंदनपादपः ॥ १०० ॥
प्रमत्तचेतसं पापं धिग्मां निश्चेतनोपमं । योहं निद्रामि भोगाद्रिमहाभृगुशिरस्थितः ॥ १०१ ॥
यदि नाम भजेये माममवस्थामस्य योगिनः । भवेयं लब्धलब्धव्यस्ततो मानुषजन्मनि ॥१०२॥
इति चिंतयतस्तस्य राज्ञो निर्ग्रंथपुंगवे । दृष्टिस्तंभनिबद्धेव बभूवात्यंतनिश्चला ॥ १०३ ॥
एवं निश्चलपक्ष्माणं निरीक्ष्योदयसुंदरः । कुर्वन्नर्म जगादैवं वज्रबाहुं कृतस्मितः ॥ १०४ ॥
चिरं निरीक्षितो देवस्त्वयैष मुनिपुंगवः । वृणीषे किमिमां दीक्षां रागवानत्र दृश्यसे ॥ १०५ ॥
वज्रबाहुरथोवोचत्कृतभावनिगूहनः । वर्तते कः पुनर्भावस्तवोदय निवेदय ॥ १०६ ॥
अंतर्विरक्तमज्ञात्वात्तमाहोदयसुंदरः । परिहासानुरागेण दंतांशुच्छुरिताधरः ॥ १०७ ॥
दीक्षामिमां वृणीषे चेत्ततोहमपि ते सखा । अहो विराजसेऽत्यर्थं कुमारः श्रमणश्रिया ॥ १०८ ॥
अस्त्वेवमिति भाषित्वा युक्तो वैवाहभूषणैः । अवारोहदसौ नागादारोहद्धरणीधरं ॥ १०९ ॥
ततो वरांगनास्तारं रुरुदुरुरुलोचनाः । छिन्नमुक्तकलापाभस्थूलनेत्रांबुबिंदवः ॥ ११० ॥
व्यज्ञापयत्स बाष्पाक्षस्तमथोदयसुंदरः । प्रसीद देव नर्मेदं कृतं किमनुतिष्ठसि ॥ १११ ॥

उवाच वज्रबाहुस्तं मधुरं परिसांत्वयन् । कल्याणाशय कूपेहं पतन्नुत्तारितस्त्वया ॥ ११२ ॥
भवता सदृशं मित्रं नास्ति मे भुवनत्रये । जातस्य सुंदरावश्यं मृत्युः प्रेतस्य संभवः ॥ ११३ ॥
मृत्युजन्म घटीयंत्रमेतद्भ्राम्यत्यनारतं । विद्युत्तरंगदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चंचलं ॥ ११४ ॥
जगतो दुःखमग्नस्य किन्न पश्यसि जीवितं । स्वप्नभोगोपमाभोगा जीवितं बुद्बुदोपमं ॥ ११५ ॥
संध्यारागोपमः स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमं । परिहासोऽपि ते भद्र मम जातोऽमृतोपमः ॥ ११६ ॥
परिहासेन किं पीतमौषधं हरते विषं । सत्वमेषोद्यमे बंधुर्यः सुश्रेयः प्रवृत्तये ॥ ११७ ॥
संसाराचारसक्तस्य प्रतिपन्नोऽसि हेतुतां । एषोहं प्रव्रजाम्यद्य कुरु त्वं स्वमनीषितं ॥ ११८ ॥
गुणसागरनामानं तमुपेत्य तपोधनं । प्रणम्य चरणानूचे विनीतो रचितांजलिः ॥ ११९ ॥
स्वामिन् भवत्प्रसादेन पवित्रीकृतमानसः । अद्य निष्क्रमितुं भीमादिच्छामि भवतारकात् १२०
ततः समाप्तयोगेन गुरुणेत्यनुमोदितः । महासंवेगसंपन्नस्त्यक्तवस्त्रविभूषणः ॥ १२१ ॥
पर्यंकासनमास्थाय रभसान्वितमानसः । केशापनयनं कृत्वा पल्लवारुणपाणिना ॥ १२२ ॥
जानानः प्रलघुं देहमुल्लाघमिव तत्क्षणं । दीक्षां संचक्ष्य वैवाहीं मोक्षदीक्षामशिश्रियत् ॥ १२३ ॥
त्यक्तरागमदद्वेषा जातसंवेगरंहसः । सुंदरप्रमुखा वीराः कुमारामारविभ्रमाः ॥ १२४ ॥

परमोत्साहसंपन्नाः प्रणम्य मुनिपुंगवं । षड्विंशतिरमा तेन राजपुत्राः प्रवव्रजुः ॥ १२५ ॥
तमुदंतं परिज्ञाय सोदरस्नेहकातरा । वहंती पुरुसंवेगमदीक्षिष्ट मनोदया ॥ १२६ ॥
सितांशुकपरिच्छन्नविशालस्तनमंडला । अल्पोदरी मलच्छन्ना जाता सातितपस्विनी ॥ १२७ ॥
बिजयस्यंदिनो वार्तां विदित्वा वज्रवाहवीं । शोकार्दितो जगादैवं सभामध्यव्यवस्थितः १२८
चित्रं पश्यत मे नप्ता वयसि प्रथमे स्थितः । विषयेभ्यो विरक्तात्मा दीक्षां दैगंबरीमितः ॥१२९॥
मादृशोऽपि सुदुर्मोचैर्वर्षीयान् प्रवणीकृतः । भोगैर्यैस्ते कथं तेन कुमारेण विवर्जिताः ॥ १३० ॥
अथवानुगृहीतोसौ भाग्यवान् मुक्तसंपदा। भोगान् यस्तृणवत्त्यक्त्वा शीतीभावे व्यवस्थितः १३१
मंदभाग्योधुना चेष्टां कां व्रजामि जरार्दितः । सुचिरं वंचितः पापैर्विषयैर्मुखसुंदरैः ॥ १३२ ॥
इंद्रनीलांशुसंघातसंकाशो योऽभवत्कथं । केशभारः स मे जातः काशराशिसमद्युतिः ॥ १३३ ॥
सितासितारुणच्छाये नेत्रे ये जनहारिणी । जाते संप्रति ते सुभ्रूवलीछन्नसुवर्त्मनी ॥ १३४ ॥
प्रभासमुज्वलः कायो योयमासीन्महाबलः । जातः संप्रत्यसौ वर्षाहतचित्रसमच्छविः॥ १३५ ॥
अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिताः । जरापरीतकायस्य दुष्कराः प्राणधारिणः ॥१३६॥
धिग्मामचेतनं पापं दुराचारं प्रमादिनं । अलीकबांधवस्नेहसागरावर्तवर्तिनं ॥ १३७ ॥

इत्युक्त्वा बांधवान् सर्वानापृच्छ्य विगतस्पृहः । दत्वा पुरंदरे राज्यं राजा जर्जरविग्रहः १३८
पार्श्वनिर्वाणघोषस्य निर्ग्रंथस्य महात्मनः । सुरेंद्रमन्युना सार्धं प्रवव्राज महामनाः ॥ १३९ ॥
पुरंदरस्य तनयमसूत पृथिवीमती । भार्या कीर्तिधराभिख्यं विख्यातगुणसागरं ॥ १४० ॥
क्रमेण स परिप्राप्तो यौवनं विनयाधिकः । एधयन् सर्वबंधूनां प्रसादं चारुचेष्टया ॥ १४१ ॥
कौशलस्थनरेंद्रस्य वृता तस्मै शरीरजा । सुतमुद्वाह्य तां गेहान्निश्चक्राम पुरंदरः ॥ १४२ ॥
क्षेमंकरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्य गुणभूषणः । तपः कर्तुं समारेभे कर्मनिर्जरकारणं ॥ १४३ ॥
कुलक्रमागतं राज्यं पालयन् जितशात्रवः । रेमे देवोत्तमैर्भोगैः सुखं कीर्तिधरो नृपः ॥ १४४ ॥

अथान्यदा कीर्तिधरः क्षितीश्वरः । प्रजासु बंधुः कृतभीररातिषु ॥
सुखासनस्थो भवने मनोरमे । विराजमानो नलकूवरो यथा ॥ १४५ ॥
निरीक्ष्य राहुक्षयनीलतेजसा । तिरोहितं भास्करभासमंडलं ॥
अचिंतयत्कष्टमहो न शक्यते । विधिर्निनेतुं प्रकटीकृतोदयः ॥ १४६ ॥
उत्सार्य यो भीषणमंधकारं । करोति निष्कांतिकमिंदुबिंबं ॥
असौ रविः पद्मवनप्रबोधः । स्वभानुमुत्सारयितुं न शक्तः ॥ १४७ ॥

तारुण्यसूर्योप्ययमेवमेव । प्रणश्यति प्राप्तजरोपरागः ॥
जंतुर्वराको वरपाशबद्धो । मृत्योरवश्यं मुखमभ्युपैति ॥ १४८ ॥
अनित्यमेतज्जगदेष मत्वा । सभासमेतानगदीदमात्यान् ॥
ससागरां रक्षत भो धरित्रीं । अहं प्रयाम्येष विमुक्तिमार्गं ॥ १४९ ॥
इत्युक्तमात्रे बुधबंधुपूर्णा । सभा विषादं प्रगता तमूचे ॥
राजंस्त्वमस्याः पतिरद्वितीयो । विराजसे सर्ववसुंधरायाः ॥ १५० ॥
त्यक्ता वशस्था धरणी च येयं । न राजते निर्जितशत्रुपक्षा ॥
नवे वयस्युन्नतवीर्यराज्यं । कुरुष्व तावत्सुरनाथतुल्यं ॥ १५१ ॥
जगाद राजा भववृक्षसंकटां । जरावियोगारतिवह्निदीपितां ॥
निरीक्ष्य दीर्घां व्यसनाटवीमिमां । भयं ममात्यंतमुरु प्रजायते ॥ १५२ ॥
तन्निश्चितं मंत्रिजनोऽवगत्य । विख्यातमंगारचयं महांतं ॥
आनाय्य मध्येस्य मरीचिरम्यं । वैडूर्यमस्थापयदत्युदारं ॥ १५३ ॥
पुनस्तदुद्वृत्य जगाद राजन् । यथामुना रत्नवरेण हीनः ॥

न शोभतेऽगारकलाप एष । त्वया विनेदं भुवनं तथैव ॥ १५४ ॥
नाथ त्वयेमा विकला विनाथा । प्रजा विनश्यंत्यखिला वराक्यः ॥
प्रजासु नष्टासु तथैव धर्मो । धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टं ॥ १५५ ॥
तस्माद्यथा ते जनकः प्रजाभ्यो । दत्वा भवंतं परिपालनाय ॥
तपोऽकरोन्निर्वृतिदानदक्षं । तथा भवान् रक्षतु गोत्रधर्मं ॥ १५६ ॥
अथैवमुक्तः कुशलैरमात्यै-रवग्रहं कीर्तिधरश्चकार ॥
श्रुत्वा प्रजातं तनयं प्रपश्ये । ध्रुवं मुनीनां पदमप्युदारः ॥ १५७ ॥
ततः स शक्रोपमभोगवीर्यः । स्फीतां व्यवस्थामहतीं धरित्रीं ॥
सुखं शशासाखिलभीतिमुक्तां । स भूरिकालं सुसमाहितात्मा ॥ १५८ ॥
चिरं ततः कीर्तिधरेण साकं । सुखं भजंती सहदेववेदी ॥
क्रमेण संपूर्णगुणं प्रसूता । सुतं धरित्रीधरणे समर्थं ॥ १५९ ॥
समुत्सवस्तत्र कृतो न जाते । मागाद्धरित्रीपतिकर्णजाहं ॥
वार्तेति कांश्चिद्दिवसान्निगूढः । कालः कथंचित्प्रसवस्य जातः ॥ १६० ॥

ततः समुद्यद्दिवसप्रभूपम–श्रिरं स शक्यः कथमेव गोपितुं ॥
निवेदितो दुर्विधिनातिदुःखिना । नृपाय केनापि नरेण निश्चितः ॥ १६१ ॥
तस्मै नरेंद्रो मुकुटादिदृष्टो । विभूषणं सर्वमदान्महात्मा ॥
घोषाख्यशाखानगरं च रम्यं । महाधनग्रामशतेन युक्तं ॥ १६२ ॥
पुत्रं समानाय्य च पद्मजातं । स्थितं महातेजसि मातुरंके ॥
अतिष्ठिपत्तुंगविभूतियुक्तं । निजे पदे पूजितसर्वलोकः ॥ १६३ ॥
जाते यतस्तत्र बभूव रम्या । पुरी विभूत्या किल कोशलाख्या ॥
सुकोशलख्यां स जगाम तस्मा–द्बालः समस्ते भुवने सुचेष्टः ॥ १६४ ॥
ततो विनिष्क्रम्य निवासचारका–दशिश्रियत्कीर्तिधरस्तपोवनं ॥
तपोभवेनैष रराज तेजसा । घनागमोन्मुक्ततनुर्यथा रविः ॥ १६५ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते सुव्रतवज्रबाहुकीर्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशतितमं पर्व ।

द्वाविंशतितमं पर्व ।

अथ घोरतपोधारी धरातुल्यः क्षमः प्रभुः । मलकंचुकसंवीतवीतमानो महामनाः ॥ १ ॥
तपः शोषितसर्वांगो धीरो लुंचविभूषणः । प्रलंबितमहाबाहुर्युगाध्वन्यस्तलोचनः ॥ २ ॥
स्वभावान्मत्तनागेंद्रं मंथरायणविभ्रमः निर्विकारः समाधानी विनीतो लोभवर्जितः ॥ ३ ॥
अनुसूत्रसमाचारो दयाविमलमानसः । स्नेहपंकविनिर्मुक्तः श्रमणश्रीसमन्वितः ॥ ४ ॥
गृहपंक्तिक्रमप्राप्तं भ्राम्यन्नात्मवरं गृहं । मुनिर्विवेश भिक्षार्थं चिरकालोपवासवान् ॥ ५ ॥
निरीक्ष्य सहदेवी तं गवाक्षनिहितेक्षणा । परमं क्रोधमायाता विस्फुरल्लोहिताननां ॥ ६ ॥
प्रतीहारगणानूचे कुंचितोष्ठी दुराशया । श्रमणो गृहभंजोऽयमाशु निर्वास्यातामिति ॥ ७ ॥
मुग्धः सर्वजनप्रीतः स्वभावमृदुमानसः । यावन्निरीक्ष्यते नैनं कुमारः सुकुमारकः ॥ ८ ॥
अन्यानपि यदीक्षे तु भवने नग्नमानवान् । निग्रहं वः करिष्यामि प्रतीहारा न संशयः ॥ ९ ॥
परित्यज्य दयामुक्तो गतोऽसौ शिशुपुत्रकं । यतः प्रभृति नामीषु तदारभ्य धृतिर्मम ॥ १० ॥
राज्यश्रियं द्विषंत्येते महाशूरनिषेवितां । नयंत्यत्यंतनिर्वेदं महोद्योगपरान्नरान् ॥ ११ ॥

क्रूरैरित्युदितैः क्षिप्रं दुर्वाक्यजनितानतैः । दूरं निर्वासितो योगी वेशग्राहितपाणिभिः ॥ १२ ॥
अन्येऽपि लिंगिनः सर्वे पुरान्निर्वासितस्तदा । कुमारो धर्मशब्दं माश्रौषीदिति नृपास्पदे॥१३॥
इति संतक्ष्यमाणं तं वाग्वास्या मुनिपुंगवं । श्रुत्वा दृष्ट्वा च संजातप्रत्यग्रौदारशोकिका ॥ १४ ॥
स्वामिनं प्रत्यभिज्ञाय भक्ता कीर्तिधरं चिरात् । धात्रीसौकोशली दीर्घमरोदीन्मुक्तकंठिका ॥१५॥
श्रुत्वा तां रुदतीमाशु समागत्य सुकोशलः । जगाद सांत्वयन् मातः केन तेऽपकृतं वद ॥१६॥
गर्भधारणमात्रेण जनन्या समनुष्ठितं । त्वत्पयोमयमेत्तत्तु शरीरं जातमीदृशं ॥ १७ ॥
सा मे त्वं जननीतोऽपि परं गौरवमाश्रिता । वदापमानिता केन मृत्युवक्त्रं विविक्षुणा ॥ १८ ॥
अद्य मे त्वं जनन्यापि परिभूता भवेद्यदि । करोम्यविनयं तस्या जंतोरन्यस्य किं पुनः ॥ १९ ॥
ततस्तस्मै समाख्यातं वसंतलतया तया । कृच्छ्रेण विरलीकृत्य नेत्रांबुप्लवसंततिं ॥ २० ॥
आभिषिच्य शिशुं राज्ये भवंतं यस्तपोवनं । प्रविष्टस्ते पिता भीतो भवव्यसनपंजरात् ॥ २१ ॥
भिक्षार्थमागतः सोद्य प्रविष्टो भवतो गृहं । जनन्यास्ते नियोगेन प्रतिहारैर्निराकृतः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा निर्धार्यमाणं तं जातशोकोरुवेलया । रुदितं मयका वत्स शोकं धर्तुमशक्तया ॥ २३ ॥
भवद्गौरवदृष्टायाः कुरुते कः पराभवं । मम कारणमेतत्तु कथितं रुदितस्य ते ॥ २४ ॥

प्रसादस्तेन नाथेन तदास्माकमकारि यः । स्मर्यमाणः शरीरं स दहत्येष निरंकुशः ॥ २५ ॥
धृतमेतदपुण्यैर्मे शरीरं दुःखभाजनं । वियोगे तस्य नाथस्य ध्रियते यदयोमयं ॥ २६ ॥
निर्ग्रंथं भवतो दृष्ट्वा माभून्निर्वेदधीरिति । तपस्विनां प्रवेशोऽस्मिन्नगरेऽपि निवारितः ॥ २७ ॥
गोत्रे परंपरायातो धर्मोऽयं भवतां किल । राज्ये यत्तनयं न्यस्य तपोवननिषेवणं ॥ २८ ॥
किंनास्मादपि जानासि मंत्रिणां संप्रधारणं । न कदाचिदतो गेहाल्लभसे यद्विनिर्गमं ॥ २९ ॥
एतस्मात्कारणात्सर्वं वाह्यालीभ्रमणादिकं । अमात्यैः कृतमत्रैव भवने नयशालिभिः ॥ ३० ॥
ततो निशम्य वृत्तांतं सकलं तन्निवेदितं । अवतीर्य त्वरायुक्तः प्रासादाग्रात्सुकोशलः ॥ ३१ ॥
परिशिष्टातपत्रादिपृथिवीपतिलांछनः । पद्मकोमलकांतिभ्यां चरणाभ्यां श्रियान्वितः ॥ ३२ ॥
इतो वरमुनिर्दृष्टो भवद्भिरिति नादवान् । परमोत्कंठया युक्तः संप्रापयितुरंतिकं ॥ ३३ ॥
अस्यानुपदवीभूता महासंभ्रमसंगताः । छत्रधारादयः सर्वे व्याकुलीभूतचेतसः ॥ ३४ ॥
निविष्टं प्रासुकोदारे प्रवरेऽमुं शिलातले । वाष्पाकुलविशालाक्षास्त्रिः परीत्य सुभावनः ॥ ३५ ॥
करयुग्मांतिकं कृत्वा मूर्द्धानं स्नेहनिर्भरः । ननाम पादयोर्जानुमस्तकस्पृष्टभूतलः ॥ ३६ ॥
कृतांजलिरथोवाच विनयेन पुरस्थितः । व्रीडामिव परिप्राप्तो मुनेर्गेहादपाकृतेः ॥ ३७ ॥

अग्निज्वालाकुलागारे सुप्तः कश्चिन्नरो यथा । बोध्यते पटुनादेन समूहेन पयोमुचां ॥ ३८ ॥
तद्वत्संसारगेहेहं मृत्युजन्माग्निदीपिते । मोहनिद्रापरिष्वक्तो बोधितो भवता प्रभो ॥ ३९ ॥
प्रसादं कुरु मे दीक्षां प्रयच्छ स्वयमाश्रितां । मामप्युत्तरयामुष्माद्भवव्यसनसागरात् ॥ ४० ॥
ब्रवीति यावदेतावन्नतवक्त्रः सुकोशलः । तावत्सामंतलोकोऽस्य समस्तः समुपागतः ॥ ४१ ॥
कृच्छ्रेण दधती गर्भमंतःपुरसमन्विता । प्राप्ता वसंतमालाख्या देवी चास्य विषादिनी ॥ ४२ ॥
तं दीक्षाभिमुखं ज्ञात्वा भृंगझंकारकोमलः । अंतःपुरात्समुत्तस्थौ समं रुदितनिस्वनः ॥ ४३ ॥
स्याच्चेद्विचित्रमालाया गर्भोयं तनयस्ततः । राज्यमस्मै मया दत्तमिति संभाष्य निस्पृहः ॥४४॥
आशापाशं समुच्छिद्य निर्दह्य स्नेहपंजरं । कलत्रनिगडं भित्वा त्यक्त्वा राज्यं तृणं यथा ॥४५॥
अलंकारान्समुत्सृज्य ग्रंथमंतर्बहिः स्थितं । पर्यंकासनमास्थाय लुंचित्वा केशसंचयं ॥ ४६ ॥
महाव्रतान्युपादाय गुरोर्गुरुविनिश्चयः । पित्रा साकं प्रशांतात्मा विजहार सुकोशलः ॥ ४७ ॥
कुर्वन्निव वलिं पद्मैः पादारुणमरीचिभिः । संभ्राम्यन् धरणीं योग्यां विस्मितैरीक्षितो जनैः ४८
आर्तध्यायेन संपूर्णा सहदेवी मृता सती । तिर्यग्योनौ समुत्पन्ना दुर्दृष्टिः पापतत्परा ॥ ४९ ॥
तयोर्विहरतोर्युक्तं यत्रास्तमितशायिनोः । कृष्णीकुर्वन् दिशां चक्रमुपतस्थौ घनागमः ॥ ५० ॥

नभः पयोमुचां व्रातैरनुलिप्तमिवासितैः । वलाकाभिः क्वचिच्चक्रे कुमुदोघैरिवार्चनं ॥ ५१ ॥
कदंबस्थूलमुकुलः क्वणद्भृंगकदंबकः । पयोदकालराजस्य यशोगानमिवाकरोत् ॥ ५२ ॥
नीलांजनचयैर्व्याप्तं जगत्तुंगनगैरिव । चंद्रसूर्यौ गतौ क्वापि तैर्जिताविव गर्जितैः ॥ ५३ ॥
अच्छिन्नजलधाराभिर्द्रुवतीव नभस्तलं । तोषादिवोत्तमान्मह्यां शव्यकंचुकमावृतं ॥ ५४ ॥
जनितं जलपूरेण समं सर्वं नतोन्नतं । अतिवेगप्रवृत्तेन प्रस्खलस्येव चेतसा ॥ ५५ ॥
भूमौ गर्जति तोयौघा विहायसि घनाघनाः । अन्विष्यंत इवारातिं निदाघसमयं द्रुतं ॥ ५६ ॥
कंदलैर्निविडैश्छिन्ना धरानिर्झरशोभिनः । अत्यंतजलभारेण पतिता जलदा इव ॥ ५७ ॥
स्थलीदेशेषु दृश्यंते स्फुरंतः शक्रगोपगाः । घनचूर्णितसूर्यस्य खंडा इव महीं गताः ॥ ५८ ॥
चचार वैद्युतं तेजो दिक्षु सर्वासु सत्वरं । पूरितापूरितं देशं पश्यच्चक्षुरिवांबरं ॥ ५९ ॥
मंडितं शक्रचापेन गगनं चित्रतेजसा । अत्यंतोन्नतियुक्तेन तोरणेनेव चारुणा ॥ ६० ॥
कूलद्वयनिपातिन्यो भीमावर्ता महाजवाः । वहंति कलुषा नद्यः स्वच्छंदप्रमदा इव ॥ ६१ ॥
घनाघनरवत्रस्ता हरिणी चाकितेक्षणा । आलिलिंगुर्द्रुतं स्तंभान्नार्यः प्रोषितभर्तृकाः ॥ ६२ ॥
गर्जितेनातिरौद्रेण जर्जरीकृतचेतनाः । प्रेषिता विह्वलीभूता प्रमदाशाहितेक्षणाः ॥ ६३ ॥

अनुकंपापराः शांता निर्ग्रंथमुनिपुंगवाः । प्रासुकस्थानमासाद्य चातुर्मासीव्रतं श्रिताः ॥ ६४ ॥
गृहीतं श्रावकैः शक्त्या नानानियमकारिभिः । दिग्विरामश्रितं साधुसेवातत्परमानसैः ॥ ६५ ॥
एवं महति संप्राप्ते समये जलदाकुले । निर्ग्रंथौ तौ पितापुत्रौ यथोक्ताचारकारिणौ ॥ ६६ ॥
वृक्षांधकारगंभीरं बहुव्यालसमाकुलं । गिरिपादमहादुर्गं रौद्राणामपि भीतिदं ॥ ६७ ॥
कंकगृध्रर्क्षगोमायुरवपूरितगह्वरं । अर्धदग्धशवस्थानं भीषणं विषमावनिं ॥ ६८ ॥
शिरः कपालसंघातैः क्वचित्पांडुरितक्षितिः । वसातिविस्रगंधोग्रवेगवाहिसमीरणं ॥ ६९ ॥
साट्टहासभ्रमद्भीमरक्षोवेतालसंकुलं । तृणगुच्छलताजालपरिणद्धोरुपादपं ॥ ७० ॥
पृथुप्रेतवनं धीरा वर्षाढ्यं शुचिमानसौ । यदृच्छया परिप्राप्तौ विहरंतौ तपोधनौ ॥ ७१ ॥
चतुर्मासोपवासं तौ गृहीत्वा तत्र निस्पृहौ । वृक्षमूले स्थितौ यत्र संगप्रासुकितांभसि ॥ ७२ ॥
पर्यंकासनयोगेन कायोत्सर्गेण जातुचित् । वीरासनादियोगेन निन्ये ताभ्यां घनागमः ॥ ७३ ॥
ततः शरदृतुः प्राप सोद्योगाखिलमानवः । प्रत्यूष इव निश्शेषजगदालोकपंडितः ॥ ७४ ॥
सितच्छायाघना क्वापि दृश्यंते गगनांगणे । विकासकाशसंघातसंकाशा मंदकंपिताः ॥ ७५ ॥
घनागमविनिर्मुक्ते भाति खे पद्मबांधवः । गते सुदुःषमाकाले भव्यबंधुर्जिनो यथा ॥ ७६ ॥

तारानिकरमध्यस्थो राजते रजनीपतिः । कुमुदाकरमध्यस्थो राजहंसयुवा यथा ॥ ७७ ॥
ज्योत्स्नया प्लावितो लोकः क्षीराकूपारकल्पया । रजनीषु निशानाथप्रणालमुखमुक्तया ॥ ७८ ॥
नद्यः प्रसन्नतां प्राप्तास्तरंगांकितसैकताः । क्रौंचसारसचक्राह्वा नादसंभाषणोद्यताः ॥ ७९ ॥
उन्मज्जंति चलद्भृंगा सरःसु कमलाकराः । भव्यसंघा इवोन्मुक्तमिथ्यात्वमलसंचया ॥ ८० ॥
तलेषु तुंगहर्म्याणां पुष्पप्रकरचारुषु । रमंते भोगसंपन्ना नरा नक्तं प्रियान्विताः ॥ ८१ ॥
सन्मानितसुहृद्बंधुजनसंघा महोत्सवाः । दंपतीनां वियुक्तानां संजायंते समागमाः ॥ ८२ ॥
कार्तिक्यामुपजातायां विहरंति तपोधनाः । जिनातिशयदेशेषु महिमोद्यतजंतुषु ॥ ८३ ॥
अथ तौ पारणाहेतोः समाप्तनियमौ मुनी । निवेशं गंतुमारब्धौ गत्या समयदृष्टया ॥ ८४ ॥
सहदेवीचरी व्याघ्री दृष्ट्वा तौ क्रोधपूरिता । शोणितारुणसंकीर्णधुतकेसरसंचया ॥ ८५ ॥
दंष्ट्राकरालवदना स्फुरत्पिंगनिरीक्षणा । मस्तकोर्ध्ववलत्पुच्छा नखक्षतवसुंधरा ॥ ८६ ॥
कृतगंभीरहुंकारा मारीवोपात्तविग्रहा । लसल्लोहितजिह्वाग्रा विस्फुरद्देहधारिणी ॥ ८७ ॥
मध्याह्नरविसंकाशा कृत्वा क्रीड़ां विलंबितां । उत्पपात महावेगाल्लक्ष्यीकृत्य सुकोशलं ॥ ८८ ॥
उत्पतंतीं तु तां दृष्ट्वा तौ मुनी चारुविभ्रमौ । सालंबभयनिर्मुक्तौ कायोत्सर्गेण तस्थतुः ॥८९॥

सुकोशलमुनेरुर्द्धं मूर्द्धप्रभृतिनिर्दया । दारयंती नखैर्देहं पतिता सा महीतले ॥ ९० ॥
तयासौ दारितो देहे विमुंचन्नस्रसंहतीः । बभूव विगलद्धातुवारिनिर्झरशैलवत् ॥ ९१ ॥
ततस्तस्य पुरः स्थित्वा कृत्वा नानाविचेष्टितं । पापा खादितुमारब्धा मुनिमारभ्य पादतः ९२
पश्य श्रेणिक संसारे संमोहस्य विचेष्टितं । यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥९३॥
किमतोन्यत्परं कष्टं यज्जन्मांतरमोहिताः । बांधवा एव गच्छंति वैरितां पापकारिणः ॥ ९४ ॥
ततो मेरुस्थिरस्यास्यशुक्लध्यानावगाहिनः । उत्पन्नं केवलज्ञानं देहमुक्तेरनंतरं ॥ ९५ ॥
आगत्य च सहेंद्रेण प्रमोदेन सुरासुराः । चक्रुर्देहार्चनं तस्य दिव्यपुष्पादिसंपदा ॥ ९६ ॥
व्याघ्री कीर्तिधरेणापि सुवाक्यैर्बोधिता सती । सन्यासेन शुभं कालं कृत्वा स्वर्गमुपागता ९७
ततः कीर्तिधरस्यापि केवलज्ञानमुद्गतं । यत्रासैकैव देवानां जाता महिमकारिणां ॥ ९८ ॥
महिमानं परं कृत्वा केवलस्य सुरासुराः । पादौ केवलिनो नत्वा ययुः स्थानं यथायथं ॥९९॥
सुकोशलस्य महात्म्यमधीते यः पुमानिति । उपसर्गविनिर्मुक्तः सुखं जीवत्यसौ चिरं ॥१००॥
देवी विचित्रमालाथ संपूर्णे समये सुखं । प्रसूता तनयं चारुलक्षणांकितविग्रहं ॥ १०१ ॥
हिरण्यरुचिरा माता तस्मिन् गर्भस्थिते भवेत् । यतो हिरण्यगर्भाख्यामतोसौ सुंदरोऽगमत् १०२

नाभेयसमयस्तेन गुणैः पुनरिवाहृतः । हरेः स तनयां लेभे नाम्नामृतवतीं शुभां ॥ १०३ ॥
सुहृद्बांधवसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः । अक्षीणद्रविणः श्रीमान् हेमपर्वतसन्निभः ॥ १०४ ॥
परानुभवन् भोगानन्यदासौ महामनाः । मध्ये भृंगाभकेशानां पलितांकुरमैक्षत ॥ १०५ ॥
दर्पणस्य स्थितं मध्ये दृष्ट्वा तं पलितांकुरं । मृत्योर्दूतसमाहूतमात्मानं शोकमाप्तवान् ॥ १०६ ॥
अचिंतयच्च हा कष्टं बलादंगानि मे तया । शक्तिकांतिविनाशिन्या व्याप्यंते जरसाधुना ॥१०७॥
चंदनद्रुमसंकाशकायोयमधुना मम । जराज्वलननिर्दग्धोंगारकल्पो भविष्यति ॥ १०८ ॥
तर्कयंती रुजा छिद्रं या स्थिता समयं चिरं । पिशाचीवाधुना सा मे शरीरं बाधयिष्यति ॥१०९॥
चिरं बद्धक्रमो योस्थाद् व्याघ्रवद्ग्रहणोत्सुकः । मृत्युः स मेधुना देहं प्रसभं भक्षयिष्यति ॥११०॥
कर्मभूमिमिमां प्राप्य धन्यास्ते युगपुंगवाः । व्रतपोतं समारुह्य तरुर्ये भवसागरं ॥ १११ ॥
इति संचिंत्य विन्यस्य राज्येऽमृतवतीसुतं । नघुषाख्यं प्रवव्राज पार्श्वे विमलयोगिनः ॥ ११२ ॥
न बोधितं यतस्तस्मिन् गर्भस्थेप्यशुभं भुवि । नघुषोऽसौ ततः ख्यातो गुणनामितविष्टपे ११३
स जायां सिंहिकाभिख्यां स्थापयित्वा पुरे ययौ । उत्तरां ककुभं जेतुं सामंतान् प्रत्यवस्थितान् ॥
दूरीभूतं नरं ज्ञात्वा दाक्षिणात्या नराधिपाः । पुरी गृहीतमाजग्मुर्विनीता भूरिसाधनाः ॥११५॥

रणे विजित्य तान् सर्वान् सिंहिकातिप्रतापिनी । स्थापयित्वा दृढं स्थाने रक्षमाप्ततरं नृपं ११६
सामंतैर्निर्जितैः सार्द्धं जेतुं शेषान्नराधिपान् । जगाम दक्षिणामाशां शस्त्रशास्त्रकृतश्रमाः ॥ ११७ ॥
प्रतापेनैव निर्जित्य सामंतान् प्रत्यवस्थितान् । आजगाम पुरीं राज्ञी जयनिस्वनपूरिता ॥११८॥
नघुषोप्युत्तरामाशां वशीकृत्य समागतः । कोपं परममापन्नः श्रुतदारपराक्रमः ॥ ११९ ॥
अविखंडितशीलाया नेदृग्धीर्ह्यकुलस्त्रियः । भवतीति विनिश्चित्य सिंहिकायां व्यरज्यत ॥ १२० ॥
महादेवीपदात्साथ च्यावित्रा साधुचेष्टिता । महादरिद्रतां प्राप्ता कालं कंचिदवस्थिता ॥१२१॥
अन्यदाथ महादाहज्वरोभूत्पृथिवीपते । सर्ववैद्यप्रयुक्तानामौषधीनामगोचरः ॥ १२२ ॥
सिंहिका तं तथाभूतं ज्ञात्वा शोकसमाकुला । स्वं च शोधयितुं साध्वी क्रियामेतां समाश्रिता ॥१२३॥
समाहूयाखिलान् बंधून् सामंतान् प्रकृतीस्तथा । करे कोशं समादाय वारिदत्तं पुरोधसा॥१२४॥
जगाद यदि मे भर्ता नान्यश्चेतस्यपि स्थितः । ततः सिक्तोंबुनानेन राजास्तु विगतज्वरः ॥१२५॥
ततोऽसौ सिक्तमात्रेऽस्मिन् तत्करोदकशीकरे । दंतवीणाकृतस्थानो हिममग्न इवाभवत् ॥ १२६ ॥
साधु साध्विति शब्देन गगनं परिपूरितं । अदृष्टजननिर्मुक्तैर्दृष्टं सुमनसां चयैः ॥ १२७ ॥
इति तां शीलसंपन्नां विज्ञाय नरपुंगवः । महादेवीपदे भूपः कृतपूजामतिष्ठिपत् ॥ १२८ ॥

अनुभूय चिरं भोगान तया सार्धमकंटकः । निश्शोषपूर्वजाचारं कृत्वा मनसि निस्पृहः ॥१२९॥
संभूतं सिंहिकादेव्यां सुतं राज्ये नियाय स । जगाम पदवीं धीरो जनकेन निषेवितां॥ १३० ॥
नघुषस्य सुतो यस्मात्सुदासीकृतविद्विषः । सौदास इति तेनासौ भुवने परिकीर्तितः ॥ १३२ ॥
तस्य गोत्रे दिनान्यष्ट चतुर्वासीसमाप्तिषु । भुक्तं न केनचिन्मांसमपि मांसैधितात्मना ॥१३२॥
कर्मणस्त्वशुभस्यास्य कस्यापि समुदीरणात् । बभूव खादितुं मासं तेष्वेव दिवसेषु धीः ॥१३३॥
ततोनेन समाहूय सूदः स्वैरमभाष्यत । मांसमत्तुं समुत्पन्ना मम भद्राद्य धीरिति॥ १३४ ॥
तेनोक्तो देव जानासि दिनेष्वेतेष्वमारणं । जिनपूजासमृद्धेषु समस्तायामपि क्षितौ ॥ १३५ ॥
नृपेणोचे पुनः सूदो म्रियेद्य यदि नाद्य तत् । इति निश्चित्य यद्युक्तं तदाचर किमुक्तिभिः॥१३६॥
तदवस्थं नृपं ज्ञात्वा पुरात्सूदो बहिर्गतः । ददर्श मृतकं बालं तद्दिने परिखोज्झितं ॥ १३७ ॥
तं वस्त्रावृत्तमानीय संस्कृत्य स्वादुवस्तुभिः । नरेंद्राय ददावत्तुं मन्यसे मुख्यगोचरं ॥ १३८ ॥
महामांसरसास्वादनितांतप्रीतमानसः । भुक्त्वोत्थितो मिथः सूदं स जगाद सविस्मयः ॥१३९॥
वद भद्र कुतः प्राप्तं मांसमेतत्त्वयेदृशं । अनास्वादितपूर्वोयं रसो यस्यातिपेशलः ॥ १४० ॥
सोऽभयं मार्गयित्वास्मै यथावद्विन्यवेदयत् । ततो राजा जगादेदं सर्वथा क्रियतामिति ॥१४१॥

सूदोथ दातुमारब्धः शिशुवर्गाय मोदकान् । शिशवस्तत्प्रसंगेन प्रत्यहं तं समाययुः ॥ १४२ ॥
गृहीत्वा मोदकान् यातान् शिशूनां पश्चिमं ततः । मारयित्वा ददौ सूदो राज्ञे संस्कृत्य संततं ॥१४३॥
प्रत्यहं क्षीयमाणेषु पौरवालेषु निश्चितः । सूदेन सहितो राजा देशात्पौरैर्निराकृतः ॥ १४४ ॥
कनकाभासमुत्पन्नस्तस्य सिंहरथः सुतः । राज्येऽवस्थापितः पौरैः प्रणतः सर्वपार्थिवैः ॥१४५॥
महामांसरसासक्तः सौदासो जग्ध सूदकः । बभ्राम धरणीं दुःखी भक्षयन्बुज्झितान् शवान्॥१४६॥
सिंहस्येव यतो मांसमाहारोऽस्याभवत्ततः । सिंहसौदासशब्देन भुवने ख्यातिमागतः ॥ १४७ ॥
दक्षिणापथमासाद्य प्राप्यानंबरसंश्रयं । श्रुत्वा धर्मं बभूवासावणुव्रतधरो महान् ॥ १४८ ॥
ततो महापुरे राज्ञि मृते पुत्रविवर्जिते । स्कंधमारोपितः प्राप राज्यं राजद्विपेन सः ॥ १४९ ॥
व्यसर्जयच्च पुत्रस्य नतये दूतमूर्जितः । सोऽलिखत्तव गर्हस्य न नमामीति निर्भयः ॥ १५० ॥
तस्योपरि ततो याति सौदासे विषयोखिलः । प्रपलायितुमारेभे भक्षणत्रासकंपितः ॥ १५१ ॥
स्वजित्वा तनयं युद्धे राज्ये न्यस्य पुनः कृती । महासंवेगसंपन्नः प्रविवेश तपोवनं ॥ १५२ ॥
ततो ब्रह्मरथो जातश्चतुर्वक्त्रस्ततोभवत् । तस्माद्वेमरथो जज्ञे जातः शतरथस्ततः ॥ १५३ ॥
उदपादि पृथुस्तस्मादजस्तस्मात्पयोरथः । बभूवेंद्ररथोऽमुष्मादिननाथरथस्ततः ॥ १५४ ॥

मांधाता वीरसेनश्च प्रतिमन्युस्ततः क्रमात् । नाम्ना कमलबंधुश्च दीप्त्या कमलबांधवः ॥१५५॥
प्रतापेन रवेस्तुल्यः समस्तस्थितिकोविदः । रविमन्युश्च विज्ञेयो वसंततिलकस्तथा ॥ १५६ ॥
कुवेर दत्तनामा च कुंथुभक्तिश्च कीर्तिमान् । शरभद्विरदौ प्रोक्तौ रथशब्दोत्तरश्रुती ॥ १५७ ॥
मृगेशदमनाभिख्यो हिरण्यकशिपुस्तथा । पुंजस्थलककुस्थश्च रघुः परम विक्रमः ॥ १५८ ॥
इतीक्ष्वाकुकुलोद्भूताः कीर्तिता भुवनाधिपाः । भूरिशोऽत्र गता मोक्षं कृत्वा दैगंबरं व्रतं ॥१५९॥
आसीत्ततो विनीतायामनरण्यो महानृपः । अनरण्यः कृतो येन देशो वासयता जनं ॥ १६० ॥
पृथिवीमत्यभिख्यास्य महादेवी महागुणा । कांतिमंडलमध्यस्था सर्वेंद्रियसुखावहा ॥ १६१ ॥
द्वौ सुतावुदपत्स्यातां तस्यामुत्तमलक्षणौ । ज्येष्ठोऽनंतरथो ज्ञेयः ख्यातो दशरथोऽनुजः ॥१६२॥
सहस्ररश्मिसंज्ञस्य राज्ञो माहिष्मतीपतेः । अजर्यमनरण्येन साकमासीदनुत्तमं ॥ १६३ ॥
अन्योन्यगतिसंवृद्धप्रेमाणौ तौ नरोत्तमौ । सौधर्मैशानदेवेंद्राविवास्थातां स्वधामनि ॥ १६४ ॥
रावणेन जितो युद्धे सहस्रांशुर्विबुद्धवान् । दीक्षां जैनेश्वरीमाप विभ्रत्संवेगमुन्नतं ॥ १६५ ॥
दूतात्तत्प्रेषिताज् ज्ञात्वा तद्वृत्तांतमशेषतः । मासजाते श्रियं न्यस्य नार्पी दशरथे भृशं ॥१६६॥
सकाशेऽभयसेनस्य निर्गंथस्य महात्मनः । राजानंतरथेनामा प्रवव्राजातिनिस्पृहः ॥ १६७ ॥

अनरण्योऽगमन्मोक्षमनंतस्यंदनो महीं । सर्वसंगविनिर्मुक्तो विजहार यथोचितं ॥ १६८ ॥
अत्यंतदुस्सहैर्योगी द्वाविंशतिपरीषहैः । न क्षोभितस्ततोनंतवीर्याख्यां स क्षितौ गतः ॥ १६९ ॥
वपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूषितं । शैलकूटमिवोत्तुंगं नानाकुसुमशोभितं ॥ १७० ॥
अथामृतप्रभावायामुत्पन्ना वरयोषिति । दर्भस्थलपुरेशस्य चारुविभ्रमधारिणः ॥ १७१ ॥
राज्ञः सुकोशलाख्यस्य तनयामपराजितां । उपयेमे स रत्यापि स्त्रीगुणैरपराजितां ॥ १७२ ॥
पुरमस्ति महारम्यं नाम्ना कमलसंकुलं । सुबंधुस्तिलकस्तस्य राजा मित्रास्य भामिनी ॥ १७३ ॥
दुहिता कैकयी नाम तयोः कन्या गुणान्विता । मुंडमाला कृता यस्य नेत्रेंदीवरमालया ॥ १७४ ॥
मित्राया जनिता यस्मात्सुचेष्टा रूपशालिनी । सुमित्रेति ततः ख्यातिं भुवने स समुपागता ॥
महाराज सुतामन्यां प्रापासौ सुप्रभाश्रुतिं । लावण्यसंपदं बालां जनयंतीं श्रियस्त्रपां ॥ १७६ ॥
स सम्यग्दर्शनं लेभे राज्यं च परमोदयं । आद्ये रत्नमतिस्तस्य चरमे तृणसेमुखी ॥ १७७ ॥
अधोगतिर्यतोराद्यादत्यक्तादुपजायते । सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्द्धमसंशया ॥ १७८ ॥
येभरताद्यैर्नृपतिभिरुर्द्धाः । कारितपूर्वा जिनवरवासाः ॥
भंगमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् । सोनयदेतानभिनवभावान् ॥ १७९ ॥

इंद्रनुतानां स्वयमपि रम्यान् । तीर्थकराणां परमनिवा सान् ।
रत्नसमूहैः स्फुरदुरुभासः । संततपूजामघटयदेषः ॥ १८० ॥
अन्यभवेषु प्रथितसुधर्माः । प्राप्य सुराणां श्रियमतिरम्यां ।
ईदृशजीवा पुनरिहलोके यांति समृद्धिरविर्रुचिता सा ॥ १८१ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सुकोशलमाहात्म्ययुक्तदशरथोत्पत्त्यभिधानं नाम द्वाविंशतितमं पर्व ।

त्रयोविंशतितमं पर्व ।

अन्यदाथ सुखासीनं सभायां पुरुतेजसं । जिनराजकथासक्तं सुरेंद्रसमविभ्रमं ॥ १ ॥
सहसा जनितालोको गगने देहतेजसा । समाययाववद्वारः शिष्टो दशरथं सुधीः ॥ २ ॥
कृत्वाभ्युत्थानमासीनमासने तं सुखावहे । दत्ताशीर्वचनं राजा पप्रच्छ कुशलं कृती ॥ ३ ॥
निवेद्य कुशलं तेन क्षेमं पृष्टो महीपतिः । सकलं क्षेममित्युक्त्वा पुनरेवमभाषत ॥ ४ ॥
आगम्यते कुतः स्थानाद्भगवन् विहृतं क्वच । किमु दृष्टं श्रुतं किंवा न ते देशोस्त्यगोचरः ॥ ५ ॥

ततो मनस्थजैनेंद्रवर्णनोद्भूतसम्मदः । उन्नतं पुलकं बिभ्रदित्यभाषत नारदः ॥ ६ ॥
विदेहं नृप यातोहं मासं चारु जिनेहितं । जिनेंद्र भवनाधारभूरिशैलविभूषितं ॥ ७ ॥
तत्र निष्क्रमणं दृष्टं मया सीमंधराईतः । नगर्यां पुंडरीकिण्यां नानारत्नोरुतेजसि ॥ ८ ॥
विमानैर्विविधच्छायैः केतुच्छत्रविभूषितैः । यानैश्च विविधैर्दृष्टं देवागमनमाकुलं ॥ ९ ॥
मुनिसुव्रतनाथस्य यथेह सुरपैः कृतं । तथाभिषेचनं मेरौ मया तस्य मुने श्रुतं ॥ १० ॥
सुव्रतस्य जिनेंद्रस्य वाच्यमानं श्रुतं यथा । तथा मे चरितं तस्य तत्र गोचरितं दृशा ॥ ११ ॥
नानारत्नप्रभाढ्यानि तुंगानि विपुलानि च । दृष्टानि तत्र चैत्यानि कृतपूजान्यनारतं ॥ १२ ॥
विचित्रमणिभक्तीनि हेमपीठानि पार्थिव । दृष्टान्यत्यंतरम्याणि वनचैत्यानि नंदने ॥ १३ ॥
चामीकरमहास्तंभयुक्तेषु स्फुरितांशुषु । भास्करालयतुल्येषु हारतोरणचारुषु ॥ १४ ॥
रत्नदामसमृद्धेषु महावैदिकभूमिषु । द्विपसिंहादिरूपाढ्यवैडूर्योदारभित्तिषु ॥ १५ ॥
कृतसंगीतदिव्यस्त्रीजनपूरितकुक्षिषु । अमरारण्यचैत्येषु जिनार्चाः प्रणता मया ॥ १६ ॥
चैत्यप्रभाविकासाढ्यं कृत्वा मेरुं प्रदक्षिणं । पयोदपटलं भित्त्वा समुल्लंघ्योन्नतं नभः ॥ १७ ॥
वास्यांतरगिरींद्राणां शिखरेषु महाप्रभाः । चैत्यालया जिनेंद्राणां प्रणता बहवो मया ॥ १८ ॥

सर्वेषु तेषु चैत्येषु जिनानां प्रतियातनाः । अकृत्रिममहाभासो मया पार्थिव वंद्यते ॥ १९ ॥
इत्युक्ते देवदेवेभ्यो नम इत्युद्गतध्वनिः । प्रणतं करयुग्मं च चक्रे दशरथः शिरः ॥ २० ॥
संज्ञया नारदेनाथ चोदिते जगतीपतिः । जनस्योत्सारणं चक्रे प्रतीहारेण सादरं ॥ २१ ॥
उपांशुनारदेनाथ जगदे कोशलाधिपः । शृणुष्वावहितो राजन् सद्भावं कथयामि ते ॥ २२ ॥
गतस्त्रिकूटशिखरं वंदारुरहमुत्सुकः । वंदितं शांतिभवनं मया तत्र मनोरमं ॥ २३ ॥
भवत्पुण्यानुभावेन मया तत्र प्रधारणं । श्रुतं विभीषणादीनां लंकानाथस्य मंत्रिणां ॥ २४ ॥
नैमित्तेन समादिष्टं तेन सागरबुद्धिना । भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथिः किल ॥ २५ ॥
दुहिता जनकस्यापि हेतुत्वमुपयास्यति । इति श्रुत्वा विषण्णात्मा निश्चित्वाप विभीषणः ॥२६॥
जायते यावदेवास्य प्रजा दशरथस्य न । जनकस्य च तावत्तौ मारयामीति सादरः ॥ २७ ॥
पर्यटच्च चिरं क्षोणीं तच्चरेण निवेदितौ । भवंतौ कामरूपेण स्थानरूपादिलक्षणैः ॥ २८ ॥
मुनिविस्रंभतस्तेन पृष्टोहमपि भो यते । कंचिद्दशरथं वेत्सि जनकं च क्षितावितिं ॥ २९ ॥
अन्विष्य कथयामीति मया चोपात्तमुत्तरं । आकूतं दारुणं तस्य पश्यामि नरपुंगव ॥ ३० ॥
तत्ते यावदयं किंचिन्न करोति विभीषणः । निगूह्य तावदात्मानं क्वचित्तिष्ठ महीपते ॥ ३१ ॥

सम्यग्दर्शनयुक्तेषु गुरुपूजनकारिषु । सामान्येनैव मे प्रीतिस्त्वद्विधेषु विशेषतः ॥ ३२ ॥
सत्वं युक्तं कुरु स्वस्ति भूयात्तेहं गतोऽधुना । इमां वेदयितुं वार्तां क्षिप्रं जनकभूभृतः ॥ ३३ ॥
कृतानतिर्नृपेणेव मुक्त्वात्यंतनभस्तलं । अवद्धारयतिर्वेगान्मिथिलाभिमुखं ययौ ॥ ३४ ॥
जनकायापि तेनेदमशेषं विनिवेदितं । भव्यजीवा हि तस्यासन् प्राणेभ्योप्यतिवल्लभाः ॥ ३५ ॥
अवद्धारयतौ याते मरणांशंकिमानसः । समुद्रहृदयामात्यमाकारयदिलापतिः ॥ ३६ ॥
श्रुत्वा राजमुखान्मंत्री समभ्यर्णं महाभयं । जगदे गदतां श्रेष्ठः स्वामिभक्तिपरायणः ॥ ३७ ॥
जीवितायाखिलं कृत्यं क्रियते नाथ जंतुभिः । त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि वद तेनोज्झितस्य कः ३८
तस्माद्यावदरातीनां व्यसनं रचयाम्यहं । तावदज्ञातरूपस्त्वं विकृती विहरावनिं ॥ ३९ ॥
इत्युक्ते तत्र निक्षिप्य कोशं देशं पुरं जनं । निष्क्रामत्पुराद्राजा सह्यस्य सुपरीक्षितः ॥ ४० ॥
गते राजन्यमात्येन लेख्यं दाशरथं वपुः । कारितं मुख्यवपुषो भिन्नं चेतनयैकया ॥ ४१ ॥
लाक्षादिरसयोगेन रुधिरं तत्रनिर्मितं । मार्दवं च कृतं तावद्यावत्पत्यासुधारिणः ॥ ४२ ॥
वरासननिविष्टं तं वेश्मनः सप्तमे तले । युक्तं पुरैव सर्वेण परिवर्गेण बिंबकं ॥ ४३ ॥
स मंत्री लेप्यकारश्च कृत्रिमं सृजतुर्नृपं । भ्रांतिर्हि जायते तत्र पश्यतोरुभयोरपि ॥ ४४ ॥

अयमेव च वृत्तांतो जनकस्यापि कल्पितः । उपर्युपरि हि प्रायश्चलंति विदुषां धियः ॥ ४५ ॥
मद्यां तौ क्षितिपौ नष्टौ भुवनस्थितिकोविदौ । आपत्काले यथेंद्रर्कौ समये जलदायिनां ॥ ४६ ॥
यौ पुरा वरनारीभिर्महाप्रासादवर्तिनौ । उदारभोगसंपन्नौ सेवितौ मगधाधिप ॥ ४७ ॥
इतराविव तौ कौचिदसहायौ नरोत्तमौ । चरणाभ्यां महीं कष्टं भ्रमंतौ धिग्तवस्थितिं ॥ ४८ ॥
इति निश्चित्य जंतुभ्यो यो ददात्यभयं नरः । किं न तेन भवेद्दत्तं साधूनां धुरि तिष्ठता ॥४९॥
दृष्टौ तौ तत्र तत्रेति चरवर्गेण वेदितौ । अनुजेन दशास्यस्य प्रेषिता बधका भृशं ॥ ५० ॥
ते शस्त्रपाणयः क्रूरा दृष्ट्वा गोचरविग्रहा । दिवा नक्तं च नगरीं भ्रमंति चलचक्षुषः ॥ ५१ ॥
प्रासादं हीनसत्वास्ते प्रवेष्टुं न सहा यदा । चिरायंते तदा यासीत्स्वयमेव विभीषणः ॥ ५२ ॥
अन्विष्य गीतशब्देन प्रविश्य गतविभ्रमः । ददर्शांतःपुरांतस्थं व्यक्तं दशरथं विभीः ॥ ५३ ॥
विद्युद्विलसितो नाम चोदितस्तेन खेचरः । निकृत्य तस्य मूर्धानं स्वामिने दर्शयन् मुदा ॥५४॥
श्रुतांतःपुरजाक्रंदो निक्षिप्यैतच्छिरोऽबुधौ । जनकेऽपि तथा चक्रे निर्दयं स विचेष्टितं ॥५५॥
ततः कृतिनमात्मानं कृत्वा सोदरवत्सलः । ययौ विभीषणो लंकां प्रमोदपरिपूरितः ॥ ५६ ॥
विप्रलापं परं कृत्वा विदित्वा पुस्तकर्म च । धृतिं दाशरथः प्राप परिवर्गः सविस्मयः ॥ ५७ ॥

विभीषणोऽपि संप्राप पुरीमशुभशान्तये । दानपूजादिकं चक्रे कर्म संजनितोत्सवं ॥ ५८ ॥
बभूव च मतिस्तस्य कदाचिच्छांतचेतसः । कर्मणामिति वैचित्र्यात्पश्चात्तापमुपेयुषः ॥ ५९ ॥
असत्यभीत्या क्षितिगोचरौ तौ । निरर्थकं प्रेतगतिं प्रणीतौ ॥
आशीविषांगप्रभवोऽपि सर्प–स्तार्क्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुं ॥ ६० ॥
सुलेशशौर्यौ क्षितिगोचरौ क । क रावणः शक्रसमानशौर्यः ॥
केभः सशंको मदमंदगामी । क्व केसरी वायुसमानवेगः ॥ ६१ ॥
यद्यत्र यावच्च यतश्च येन । दुःखं सुखं वा पुरुषेण लभ्यं ॥
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन । संप्राप्यते कर्मवशानुगेन ॥ ६२ ॥
सम्यग्निमित्तं यदि वेत्ति कश्चि–च्छ्रेयो न कस्मात्कुरुते निजस्य ॥
येनेह लोके लभतेऽति सौख्यं । मोक्षे च देहत्यजनात्पुरस्तात् ॥ ६३ ॥
राज्ञोस्तयोः प्राणवियोजनेन । नैमित्तमूढत्वमितं विवेकं ॥
दुःशिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये । प्रवर्तते जंतुरसारबुद्धिः ॥ ६४ ॥
अस्यांबुनाथस्य पुरी स्थितेयं । प्रभिन्नपातालतलस्य मध्ये ॥

कथं सुराणामपि भीतिदक्षा । गम्यत्वमायात् क्षितिगोचराणां ॥ ६५ ॥
कृतं मयात्यंतमिदं न योग्यं । करोमि नैवं पुनरप्रधार्यं ॥
इति प्रधार्योत्तमदीप्तियुक्तो । रविर्यथास्वे निलये स रेमे ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते विभीषणव्यसनवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमं पर्व ।

चतुर्विंशतितमं पर्व ।

यदथ भ्राम्यतो वृत्तमनरण्यतनूभुवः । तत्ते श्रेणिक वक्ष्यामि शृणु विस्मयकारणं ॥ १ ॥
इतोऽस्त्युत्तरकाष्ठायां नाम्ना कौतुकमंगलं । नगरं चास्य शैलाभप्राकारपरिशोभितं ॥ २ ॥
राजा शुभमतिर्नाम यत्रासीत्सार्थकश्रुतिः । पृथुश्री वनिता तस्य योषिद्गुणविभूषणा ॥ ३ ॥
कैकया द्रोणमेघश्च पुत्रावभवतां तयोः । गुणैरत्यंतविमलैः स्थितौ यौ व्याप्य रोदसी ॥ ४ ॥
तत्र सुंदरसर्वांगा चारुलक्षणधारिणी । नितरां केकया रेजे कलानां परमागता ॥ ५ ॥
अंगहाराश्रयं नृत्तं तथाभिनयसंश्रयं । व्यायामिकं च साज्ञासीत्तत्प्रभेदैः समन्वितं ॥ ६ ॥

तुल्यार्थतैकशब्देन बहर्थप्रतिपादनं । भाषापलक्षणम्लेच्छानियमाच्त्रिविधा स्मृता ॥ ३३ ॥
पद्यव्यवहृतिर्लेख एवमाद्यास्तु जातयः । व्यक्तवाग्लोकवाग्मार्ग व्यवहारश्च मातरः ॥ ३४ ॥
एतेषामपि भेदानां ये भेदा बुद्ध्यगोचरा । सर्वैरेभिः समायुक्तं सात्यवैदुक्तिकौशलं ॥ ३५ ॥
शुष्कचित्रं द्विधा प्रोक्तं नाना शुष्कं च वर्तिजं । आर्द्रचित्रं पुनर्नाना चंदनादिद्रवोद्भवं ॥ ३६ ॥
कृत्रिमाकृत्रिमैरंगैर्भूजलांबरगोचरं । वर्णकः श्लेष्मसंयुक्तं सा विवेदाखिलं शुभा ॥ ३७ ॥
पुस्तकर्म त्रिधा प्रोक्तं क्षयोपचयसंक्रमैः । तक्षणादिक्रमोद्भूतं काष्ठादौ क्षयसंस्मृतं ॥ ३८ ॥
उपचित्या मृदादीनामुपचेयं तु कथ्यते । संक्रांतं तु यदाहृत्य प्रतिबिंबं विभाव्यते ॥ ३९ ॥
यंत्रनिर्यंत्रसच्छिद्रनिच्छिद्रादिभिरन्वितं । सा जज्ञे तद्यथा भद्रा लोकेभ्यो दुर्लभस्तथा ॥ ४० ॥
वुष्किमं छिन्नमच्छिन्नं पत्रच्छेद्यं त्रिधोदितं । सूचीदंतादिभिस्तत्र निर्मितं वुष्किमं स्मृतं ॥ ४१ ॥
कर्तरीछेदनोद्भूतं छिन्नं संबंधसंयुतं । विच्छिन्नं तु तदुद्भूतं संबंधपरिवर्जितं ॥ ४२ ॥
पत्रवस्त्रसुवर्णादिसंभवं स्थिरचंचलं । निर्णिन्ये सा परं चार्वी संवृतासंवृतादिजं ॥ ४३ ॥
आर्द्रशुष्कं तदुन्मुक्तं मिश्रं चेति चतुर्विधं । माल्यं तत्रार्द्रपुष्पादिसंभवं प्रथमं मतं ॥ ४४ ॥
शुष्कपत्रादिसंभूतं शुष्कमुक्तं तदुप्सितं । मिश्रतुकादिसमुद्भूतं संकीर्णं तु त्रिसंकरात् ॥ ४५ ॥

रणप्रबोधनव्यूहसंयोगादिभिरन्वितं । तद्विधातुमलं प्राज्ञा साज्ञासीत्पूरणादिजं ॥ ४६ ॥
योनिद्रव्यमधिष्ठानं रसो वीर्यं च कल्पना । परिकर्म गुणा दोषा युक्तिरेषा तु कौशलं ॥ ४७ ॥
योनिविशिष्टमूलादि द्रव्यं तु तगरादिकं । यद्वर्णवर्तिकाद्येतदधिष्ठानं प्रकीर्तितं ॥ ४८ ॥
कषायो मधुरस्तिक्तः कटुकाम्लश्च कीर्तितः । रसः पंचविधो यस्य निर्हारेण विनिश्चयः ॥४९॥
द्रव्याणां शीतमुष्णं च वीर्यं तत्र द्विधा स्मृतं । कल्पनात्र विवादानुवादसंवादयोजनं ॥ ५० ॥
परिकर्म पुनः स्नेहशोधनक्षालनादिकं । ज्ञानं च गुणदोषाणां पाटवादीतरात्मनां ॥ ५१ ॥
स्वतंत्रानुगताख्येन तां भेदेन समन्वितां । गंधयुक्तिमसौ सर्वामजानद्युक्तविभ्रमा ॥ ५२ ॥
भक्ष्यं भोग्यं च पेयं च लेह्यं चूष्यं च पंचधा । आस्वाद्यं तत्र भक्ष्यं तु कृत्रिमाकृत्रिमं स्मृतं ५३
भोग्यं द्विधा यवाग्वादिविशेषाश्चोदनादयः । शीतयोगो जलं मद्यमिति पेयं त्रिधोदितं ॥ ५४ ॥
रागखांडवलेह्याख्यं लेह्यं त्रिविधमुच्यते । कृत्रिमाकृत्रिमं चूष्यं द्विविधं परिकीर्तितं ॥ ५५ ॥
पाचनच्छेदनोष्णत्वशीतत्वकरणादिभिः । युक्तमास्वाद्यविज्ञानमासीत्तस्या मनोहरं ॥ ५६ ॥
वज्रमौक्तिकवैडूर्यसुवर्णरजतायुधं । वस्त्रसंख्यादि चावेदीत्सा रत्नं लक्षणादिभिः ॥ ५७ ॥
तंतुसंतानयोगं च वस्त्रस्य बहुवर्णकं । रागाधानं च सा चारु विवेदातिशयान्विता ॥ ५८ ॥

लोहदंतजतुक्षारशिलास्तत्रादिसंभवं । तथोपकरणं कर्तुं ज्ञातमत्यंतमुद्यया ॥ ५९ ॥
मेयदेशतुलाकारभेदान्मानं चतुर्विधं । तत्र प्रस्थादिभिर्भिन्नं मेयमानं प्रकीर्तितं ॥ ६० ॥
दिशमानं वितस्त्यादि तुलामानं पलादिकं । समयादि तु यन्मानं तत्कालस्य प्रकीर्तितं ॥ ६१ ॥
तच्चारोहपरीणाहतिर्यग्गौरवभेदतः । क्रियातश्च समुत्पन्नं साध्यगात्मानमुत्तमं ॥ ६२ ॥
भूतिकर्म निधिर्ज्ञानं रूपज्ञानं वणिग्विधिं । अन्यथा जीवविज्ञानमासीत्तस्याविशेषवत् ॥ ६३ ॥
मानुषद्विपगोवाजिप्रभृतीनां चिकित्सितं । सा निदानादिभिर्भेदं युक्तं ज्ञातवती परं ॥ ६४ ॥
मायाकृतं त्रिधा पीडा शक्रजालं विमोहनं । मंत्रौषधादिभिर्जातं तच्च सर्वं विवेद सा ॥ ६५ ॥
समयं च समीज्यादिपाखंडपरिकल्पितं । चारित्रेण पदार्थैश्च विवेद विविधैर्युतं ॥ ६६ ॥
चेष्टोपकरणा वाणी कलाव्यत्यसनं तथा । क्रीडा चतुर्विधा प्रोक्ता तत्र चेष्टा शरीरजा ॥६७॥
कंदुकादिति विज्ञेयं तत्रोपकरणं बहु । वाक्क्रीडनं पुनर्नाना सुभाषितसमुद्भवं ॥ ६८ ॥
नाना दुरोदरन्यासं कलव्यत्यसनं स्मृतं । क्रीडायां बहुभेदायामस्यां सात्यंतकोविदा ॥ ६९ ॥
आश्रिताश्रयतो भिन्नो लोको द्विविध उच्यते । आश्रिता जीवनिर्जीवा पृथिव्यादिस्तदाश्रया ७०
तत्र नानाभवोत्पत्तिःस्थितिर्नश्वरता तथा । ज्ञायते यदिदं प्रोक्तं लोकज्ञत्वं सुदुर्गमं ॥ ७१ ॥

पौर्वापर्याधरस्तुर्यद्वीपदेशादिभेदतः । स्वभावावस्थिते लोके बभूवास्यास्तदुत्तमं ॥ ७२ ॥
संवाहनकला द्वेधा तत्रैका कर्मसंश्रया । शयोपचारिका चान्या प्रथमा तु चतुर्विधा ॥ ७३ ॥
त्वङ्मांसास्थिमनःसौख्यादेते त्वासामुपाक्रमाः । सम्पृष्टं च गृहीतं च भुक्तितं जलितं तथा ७४
आहतं भंगितं विद्धं पीडितं भिन्नपाटितं । मृदुमध्यप्रकृष्टत्वात्तत्पुनर्भिद्यते त्रिधा ॥ ७५ ॥
त्वक्सुखं सुकुमारं तु मध्यमं मांससौख्यकृत् । उत्कृष्टमस्थिसौख्याय मृदुगीति मनःसुखं ॥७६॥
दोषास्तस्या प्रतीयं यल्लोम्नामुद्वर्तनं तथा । निर्मांसपीडितं वाढं केशाकर्षणमद्भुतं ॥ ७७ ॥
भ्रष्टप्राप्तममार्गेण प्रघातमतिभुग्नकं । आदेशाहतमत्यर्थमवसुप्तप्रतीपकं ॥ ७८ ॥
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सुकुमारमतीव च । योग्यदेशप्रसुप्तं च ज्ञाताकूतं च शोभनं ॥ ७९ ॥
करणैर्विविधैर्यातु जन्यते चित्तसौख्यदा । संवाहनावगम्या सा शय्योपचरणात्मिका ॥ ८० ॥
संवाहनकलामेतामंगप्रत्यंगगोचरां । अवैदसौ यथा कन्या नान्या नारी तथा घनं ॥ ८१ ॥
शरीरवेषसंस्कारकौशलं च कला परा । स्नानमूर्द्धजवासादि निरचैषीदिमां च सा ॥ ८२ ॥
एवमाद्याः कलाश्चारुशीला लोकमनोहराः । अदीधरत्समस्ताः सा विनयोत्तमभूषणाः ॥ ८३ ॥
कलागुणाभिरूपं च समुद्भूता त्रिविष्टपे । अद्वितीया बभौ तस्याः कीर्तिराकृष्टमानसा ॥ ८४ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन शृणु राजन् समासतः । तस्य वर्षशतेनापि दुश्शक्यं रूपवर्णनं ॥ ८५ ॥
पित्रा प्रधारितं तस्या योग्यः कोस्या भवेद्वरः । स्वयं रुचितमेवेयं गृह्णात्विति विसंशयं ॥८६॥
यदर्थं पार्थिवाः सर्वे वसुमत्यामुपाहृताः । हरिवाहननामाद्याः पुरोविभ्रमभूषिताः ॥ ८७ ॥
गतो दशरथोप्यस्य जनकेन सह भ्रमन् । स्थितं स तादृशोप्येतान् लक्ष्या प्रच्छाद्य भूपतीन् ८८
मंचेषु सुप्रपंचेषु निविष्टान् वसुधाधिपान् । प्रत्येकमीक्षितोदारान् प्रतीहार्या निवेदितान् ॥८९॥
भ्राम्यंती सा ततः साध्वी नरलक्षणपंडिता । कंठे दाशरथे न्यास दृष्टिनीलोत्पलस्रजं ॥ ९० ॥
भूपालनिवहस्थं तं सा ययौ चारुविभ्रमा । राजहंसं यथा हंसी वकवृंदव्यवस्थितं ॥ ९१ ॥
भावमालागृहीतेऽस्मिन् न्यस्ता या द्रव्यमालिका । पौनरुक्त्यं प्रपेदेसौ लोकाचारकृतास्पदा ९२
केचित्तत्र जगुस्तारं प्रसन्नमनसो नृपाः । अहो योग्यो वृतः कोऽपि पुरुषोऽयं सुकन्यया ॥९३॥
केषांचित्त्वतिवैलक्ष्यात्स्वदेशगमनं प्रति । विरमातिदूरेण मनोवैवर्ण्यमीयुषां ॥ ९४ ॥
केचिदत्यंतधृष्टत्वात्परमं कोपमागताः । युद्धं प्रति मनश्चक्रुः कृतकोलाहला भृशं ॥ ९५ ॥
जगुश्च ख्यातसद्वंशान् महाभोगसमन्वितान् । त्यक्त्वातो गृह्णतीमेतमज्ञातकुलशीलिनं ॥ ९६ ॥
असुं कमपि वैदेशं दुरभिप्रायकारिणीं । गृहीतमूर्द्धजाकृष्टां प्रसभं दुष्टकन्यकां ॥ ९७ ॥

इत्युक्त्वा ते सुसन्नद्धाः समुद्यतमहायुधाः। नृपा दशरथं तेन चलिताः क्षुद्रचेतसः ॥ ९८ ॥
ततः समाकुलीभूतो वरं शुभमतिर्जगौ। भद्र यावन्नृपानेतान् सुक्षुब्धान्वारयाम्यहं ॥ ९९ ॥
रथमारोप्य तावत्त्वं कन्यामंतर्हितो भव। कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां मूर्द्धनि स्थितं ॥ १०० ॥
एवमुक्तो जगादासौ स्मितं कृत्वातिधीरधीः। विस्रब्धो भव माम त्वं पश्यैतान् कांदिशीकृतान्॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य संयुक्तं प्रौढवाजिभिः। भृशं संववृते भीमः शरन्मध्याह्नभानुभं ॥ १०२ ॥
उत्तार्य केकया चाशु रथवाहं रणांगणे। तस्थौ पौरुषमालंब्य तोत्रप्रग्रहधारिणी ॥ १०३ ॥
उवाच च प्रयच्छाज्ञां नाथ कस्योपरि द्रुतं। चोदयामि रथं पश्य मृत्युरद्यातिवत्सलः ॥ १०४ ॥
जगादासौ किमत्रान्यैर्वराकैर्निहतैर्नरैः। मूर्द्धानमस्य सैन्यस्य पुरुषं पातयाम्यहं ॥ १०५ ॥
यस्यैतत्पांडुरच्छत्रं विभाति शशिविभ्रमं। एतस्याभिमुखं कांते रथं चोदय पंडिते ॥ १०६ ॥
एवमुक्ते तयात्यंतं धीरया वाहितो रथः। समुच्छ्रितसितच्छत्रस्तरंगितमहाध्वजः ॥ १०७ ॥
केतुच्छायामहाज्वाले तत्र दंपतिदेवते। रथाग्नौ योधशलभा दृष्टा नष्टाः सहस्रशः ॥ १०८ ॥
दशस्यंदननिर्मुक्तैर्नाराचैरर्दिता नृपाः। क्षणात्परांमुखीभूताः परस्परविलंघिनः ॥ १०९ ॥
ततो हेमप्रभेणैते चोदिता लज्जिता जिताः। निवृत्य पुनरारब्धं हंतुं दाशरथं रथं ॥ ११० ॥

वाजिभिः स्यंदनैर्नागैः पादातैश्च नृपाहृताः । कृतसूरमहानादा घनसंघातवर्तिनः ॥ १११ ॥
तोमराणि शरान् पाशांश्चक्राणि कनकानि च । तमेकं नृपमुद्दिश्य चिक्षिपुश्च समुद्यताः ॥११२॥
चित्रमेकरथो भूत्वा तदा दशरथो नृपः । जातः शतरथः शक्त्या निःसंख्यानरथोऽथवा ॥११३॥
विचिच्छेद स नाराचैः समं शस्त्राणि विद्विषां । अदृष्टाकर्षसंधानैश्चक्रीकृतशरासनः ॥ ११४ ॥
छिन्नध्वजातपत्रः सन् विह्वलीकृतवाहनः । शरैर्हेमप्रभस्तेन क्षणेन विरथीकृतः ॥ ११५ ॥
स रथांतरमारुह्य भयाव्याततमानसः । द्रुतं पलायनं चक्रे कृष्णीकुर्वन्निजं यशः ॥ ११६ ॥
ररक्ष स्वं च जायां च शत्रूनस्त्राणि चाच्छिनत् । एको दशरथः कर्म चक्रेऽनंतरथोचितं ॥ ११७ ॥
दृष्ट्वा दशरथं सिंहं विधूतशरकेसरं । दुद्रुवुर्योधसारंगाः परिगृह्य दिगष्टकं ॥ ११८ ॥
अहो शक्तिर्नरस्यास्य हि चित्रं कन्यया कृतं । इति नादः समुत्तस्थौ महान् स्वपरसेनयोः १२१
वंदिघोषितशब्देन शक्त्या वानन्यतुल्यया । जनैर्दशरथो जज्ञे प्रतापं विभ्रदुन्नतं ॥ १२० ॥
ततः पाणिगृहस्तेन कृतःकौतुकमंगले । कन्यायाः परलोकेन कृतःकौतुकमंगलं ॥ १२१ ॥
महता भूतिभारेण वृतोपयमनोत्सवः । ययौ दशरथोऽयोध्यां मिथिलां जनको तथा ॥ १२२ ॥
पुनर्जन्मोत्सवं तस्य तस्यां चक्रेऽतिसम्मदः । पुनर्नृपाभिषेकं च परिवर्गो महर्द्धिभिः ॥ १२३ ॥

अशेषभयनिर्मुक्तो रेमे तत्र स पुण्यवान् । आखंडल इव स्वर्गे प्रतिमानितशासनः ॥ १२४ ॥
तत्र प्रत्यक्षमन्यासां पत्नीनां भूभृतां तथा । अभ्यधायि नरेंद्रेण केकयासन्नवर्तिनी ॥ १२५ ॥
पूर्णेंदुवदने ब्रूहि यत्ते वस्तु मनीषितं । इह संपादयाम्यद्य प्रसन्नोऽस्मि तव प्रिये ॥ १२६ ॥
चोदयेन्नादिविज्ञानाद्यदि नाम तथा रथं । कथं क्रुद्धारिसंघातं विजयेहं सहोत्थितं ॥ १२७ ॥
अवस्थितं जगद्व्याप्यं नुदेदर्कः कथं तमः । संवेष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥ १२८ ॥
गुणग्रहणसंघातव्रीडाभारनतानना । मुहुः प्रचोदितोवाच कथंचिदिति केकया ॥ १२९ ॥
नाथ न्यासोयमास्तां मे त्वयि वांछितयाचनं । प्रार्थयिष्ये यदा तस्मिन् काले दास्यसि निर्वचाः ॥
इति प्रोक्तमात्रे जगौ भूमिनाथः । समग्रेंदुनाथ प्रतिस्पर्द्धिवक्त्रः ॥
भवत्वेवमुद्ये पृथुश्रोणिसौम्ये । त्रिवर्णातिकांतप्रसन्नोरुनेत्रे ॥ १३१ ॥
अहो बुद्धिरस्या महीगोत्रजाया । नयाढ्या नितांतं कलापारगायाः ॥
समस्तोपभोगैरलं संगताया । कृतं न्यासभूतं मनःप्रार्थनं यत् ॥ १३२ ॥
समस्तोऽपि तस्यास्तदाभीष्टवर्गः । प्रयातः प्रमोदं प्रकृष्टं नितांतं ॥
विचिंत्य प्रधानं शुभा कंचिदर्थं । शनैर्मार्गयिष्यत्यहो केकयेति ॥ १३३ ॥

मतेर्गोचरत्वं मया तावदेत—त्प्रणीतं सुवृत्तं धरित्रीपते ते ॥
समुत्पत्तिमस्मान्महामानवानां । शृणु द्योतकानामुदारान्वयस्य ॥ १३४ ॥
समासेन सर्वं वदाम्येष तेहं । त्रिलोकस्य वृत्तं किमत्र प्रपंचैः ॥
दुराचारयुक्ताः परं यांति दुःखं । सुखं साधुवृत्ता रविप्रख्यभासः ॥ १३५ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्म-चरिते केकयावरप्रदानं नाम चतुर्विंशतितमं पर्व ।

पंचविंशतितमं पर्व ।

अथापराजिता देवी सुखं सुप्ता वरालये । शयनीये महाकांते रत्नोद्योतशिरस्थिते ॥ १ ॥
रजन्याः पश्चिमे यामे महापुरुषवेदिनः । नितांतं परमान् स्वप्नानैक्षिताशयिता यथा ॥ २ ॥
शुभ्रं स्तंबेरमं सिंहं पद्मिनीबांधवं विधुं । दृष्ट्वा विबोधमायाता तूर्यमंगलनिस्वनैः ॥ ३ ॥
ततः प्रत्यंगकार्याणि कृत्वा विस्मितमानसा । दिवाकरकरालोकमंडिते भुवने सती ॥ ४ ॥
सा विनीतांतिकं भर्तुर्गत्वात्यंतसमाकुला । सखीभिरावृता भद्रपीठभूषणकारिणी ॥ ५ ॥

कृतांजलिर्जगौ स्वप्नान् किंचिद्विनतविग्रहा । स्वामिने सावधानाय यथा दृष्टान्मनोहरान् ॥६॥
ततो निखिलविज्ञानपारदृश्वा नराधिपः । बुधमंडलमध्यस्थः स्वप्नानामभ्यधात्फलं ॥ ७ ॥
परमाश्चर्यहेतुस्ते कांते पुत्रो भविष्यति । अंतर्बहिश्च शत्रूणां यः करिष्यति शातनं ॥ ८ ॥
एवमुक्ते परं तोषं हस्तस्पृष्टोदरी ययौ । मुखकेसरसंरुद्धमुखपद्मापराजिता ॥ ९ ॥
चकार च समं भर्त्रा परं प्रमदमीयुषा । जिनेंद्रवेश्मसुस्फीतां पूजां पूजितभावना ॥ १० ॥
ततः प्रभृतिकांत्यासौ सुतरां स्मावगाह्यते । बभूव चेतसश्चास्याः शांतिः कापि महौजसः ॥११॥
सुमित्रानंतरं तस्या ईक्षांचक्रेऽतिसुंदरी । विस्मिता पुलकोपेता स्वप्नान् साधुमनोरथा ॥ १२ ॥
सिच्यमानं मृगाधीशं लक्ष्म्या कीर्त्या च सादरं । कलशैश्चवमानास्य कमलैश्चारुवारिभिः ॥१३॥
आत्मानं चातितुंगस्य भूभृतो मूर्धनि स्थितं । पश्यंतं मेदिनीं स्फीतां निम्नगापतिमेखलां ॥१४॥
स्फुरत्किरणजालं च दिवसाधिपविभ्रमं । नानारत्नोचितं चक्रं सौम्यं कृतविवर्तनं ॥ १५ ॥
वीक्ष्य मंगलनादेन तथैव कृतबोधना । विनीताऽकथयत्पत्ये नितांतं मधुरस्वना ॥ १६ ॥
सूनुर्युगप्रधानं ते शत्रुचक्रक्षयावहः । भविष्यति महातेजाश्चित्रचेष्टो वरानने ॥ १७ ॥
इत्युक्ता सा सती पत्या संमदाक्रांतमानसा । ययौ निजास्पदं लोकं पश्यंतीवाधरास्थितं ॥१८॥

अथानेहसि संपूर्णे पूर्णेंदुरिव पूर्वदिक् । असूत तनयं कांत्या विशालमपराजिता ॥ १९ ॥
दिष्ट्या वर्धनकारिभ्य प्रयच्छन् वसु पार्थिवः । बभूव चामरच्छत्रपरिधानपरिच्छदः ॥ २० ॥
जन्मोत्सवं महानस्य चक्रे निश्शेषबांधवैः । महाविभवसंपन्नैरुन्मत्तीभूतविष्टपः ॥ २१ ॥
तरुणादित्यवर्णस्य पद्मालिंगितवक्षसः । पद्मनेत्रस्य पद्माख्या पितृभ्यां तस्य निर्मिता ॥ २२ ॥
सुमित्रापि ततः पुत्रमसूत परमद्युतिं । छायादिगुणयोगेन सद्रत्नं रत्नभूरिव ॥ २३ ॥
पद्मजन्मोत्सवस्यानुसंधानमिव कुर्वता । जनितो बंधुवर्गेण तस्य जन्मोत्सवः परः ॥ २४ ॥
उत्पाता जज्ञिरेऽरातिनगरेषु सहस्रशः । आपदां सूचका बंधुनगरेषु च संपदां ॥ २५ ॥
प्रौढेंदीवरगर्भाभः कांतिवारिकृतप्लवः । सुलक्ष्म्या लक्ष्मणाख्यायां पितृभ्यामेव योजितः ॥२६॥
बालौ मनोज्ञरूपौ तौ विद्रुमाभरदच्छदौ । रक्तोत्पलसमच्छायपाणिपादौ सुविभ्रमौ ॥ २७ ॥
नवनीतसुखस्पर्शौ जातिसौरभधारिणौ । कुर्वाणौ शैशवीं क्रीडां चेतः कस्य न जह्रतुः ॥ २८ ॥
चंदनद्रवदिग्धांगौ कुंकुमस्थासकांचितौ । सुवर्णरससंपृक्तरजतांजनकोपमौ ॥ २९ ॥
अनेकजन्मसंवृद्धस्नेहान्योन्यवशानुगौ । अंतःपुरगतौ सर्वबंधुभिः कृतपालनौ ॥ ३० ॥
विच्छर्दमिव कुर्वाणावमृतेन कृतस्वनौ । मुखपंकेन लिंपंताविव लोकं विलोकनात् ॥ ३१ ॥

छिंदताविव दारिद्र्यमाहूतागमकारिणौ । तर्पयंताविव स्वांतं सर्वेषामनुकूलतः ॥ ३२ ॥
प्रसादसम्मदौ साक्षादिव देहमुपागतौ । रेमाते तौ सुखं पुर्यां कुमारौ कृतरक्षणौ ॥ ३३ ॥
विजयश्च तृपिष्टश्च यथापूर्वं बभूवतुः । तत्तुल्यचेष्टितावेवं कुमारौ तावशेषतः ॥ ३४ ॥
तनयं केकयासूत दिव्यरूपसमन्वितं । यो जगाम महाभाग्यो भुवने भरतश्रुतिं ॥ ३५ ॥
सुषुवे सुप्रभा पुत्रं सुंदरं यस्य विष्टपे । ख्यातेः शत्रुघ्नशब्देन सकलेऽपि वर्तते ॥ ३६ ॥
बलनामापरं मात्रा पद्मस्येति विनिर्मितं । सुमित्रया हरिर्नाम तनयस्य महेच्छया ॥ ३७ ॥
कृतोर्ध्वचक्रिनामायां मात्रेति भरताभिधां । दृष्ट्वा चक्रिणि संपूर्णे केकया प्रापयत्सुतं ॥ ३८ ॥
चक्रवर्तिध्वनिं नीतो मात्रायामिति सुप्रजाः । तनयस्यार्हतो नाम शत्रुघ्न इति निर्ममे ॥ ३९ ॥
समुद्रा इव चत्वारः कुमारास्ते नया इव । दिग्विभागा इवोदारा बभूवुर्जगतः प्रियाः ॥ ४० ॥
ततः कुमारकान् दृष्ट्वा विद्यासंग्रहणोचितान् । दध्यौ योग्यमुपाध्यायं पितैषां मनसाकुलः ॥४१॥
अथास्ति नगरं नाम्ना कांपिल्यमिति सुंदरं । भार्गवोऽत्र शिखी ख्यातस्तस्येषुरिति भामिनी ४२
एरिरूढिस्तयोः पुत्रो दुर्विनीतो विलालितः । उपालंभसहस्राणां कारणीभूतचेष्टितः ॥ ४३ ॥
द्रविणोपार्जनं विद्याग्रहणं धर्मसंग्रहः । स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे सिद्धमश्नुते ॥ ४४ ॥

पितृभ्यां भवनादेष निर्विण्णाभ्यां निराकृतः । ययौ राजगृहं दुःखी वसानः कर्पटद्वयं ॥ ४५ ॥
तत्र वैवस्वतो नाम धनुर्वेदातिपंडितः । युक्तः सहस्रमात्रेण शिष्याणामभियोगिनां ॥ ४६ ॥
यथावत्तस्य पार्श्वेसौ धनुर्विद्यमुपागमत् । जातः शिष्यसहस्राच्च दूरेणाधिककौशलः ॥ ४७ ॥
श्रुतं कुशाग्रराजेन मत्सुतेभ्योऽपि कौशलं । वैदेशे कापि विन्यस्तमिति ज्ञात्वा रुषं गतः ॥४८॥
श्रुत्वा च स्वामिनं क्रुद्धमस्त्राचार्येण शिष्यतः । एवमेरो यथा राज्ञः पुरः कुंठो भविष्यति ॥४९॥
स समाहूयितः शिष्यैः सूतोऽसौ विभुना नृणां । शिक्षां पश्यामि सर्वेषां छात्राणामिति चोदितः५०
ततोऽतेवासिनस्तेन क्रमेण शरमोचनं । कारिता लक्षपातं च सर्वे चक्रुर्यथायथं ॥ ५१ ॥
अथैरोऽपि स निर्युक्तः शरान् चिक्षेप तादृशान । दुःशिक्षित इति ज्ञातो विभुना तेन यादृशैः ५२
विदित्वा वितथां सर्वां राज्ञा संप्रेषितो गतः । अस्त्राचार्यः स्वकं धाम शिष्यमंडलमध्यगः ॥५३॥
वैवस्वतसुतामैरः स्वीकृत्य गुरुसम्मतां । रात्रौ पलायनं कृत्वा प्राप दाशरथीं पुरीं ॥ ५४ ॥
ढौकितश्चानरण्ये स्वं कौशलं च न्यवेदयत् । राज्ञा समर्पिता तस्मै तुष्टेन तनुसंभवाः ॥ ५५ ॥
तेष्वस्त्रकौशलं तस्य संभ्रांतं स्फीततां गतं । सरःसु सुप्रसन्नेषु चंद्रबिंबमिवागतं ॥ ५६ ॥
अन्यानि च गुरुप्राप्त्या विज्ञानानि प्रकाशितां । यातानि तेषु रत्नानि पिधानापगमादिव ५७

दृष्ट्वा विज्ञानमेषामतिशयसहितं सर्वशास्त्रेषु राजा ।
संप्राप्तस्तोषमग्र्यं सुतनयविनयोदारचेष्टाहृतात्मा ॥
चक्रे पूजासमेतं गुरुषु गुणगणज्ञानपांडित्ययुक्तो ।
यातं त्युत्क्रम्य वांछाविभवमतितरां दानविख्यातकीर्तिः ॥ ५८ ॥
ज्ञानं संप्राप्य किंचिद् व्रजति परमतां तुल्यमन्यत्र यातं ।
तावत्त्वेनापि नेति क्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ॥
अत्यंतं स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे ।
यात्येकांतेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृंदं खगौघैः ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते चतुर्भ्रातृसंभवाभिधानं नाम पंचविंशतितमं पर्व ।

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

132

क्रम संख्या 22402
काल नं०
खण्ड

पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची

[प्रत्येक ग्रन्थ लागत मात्र मूल्य पर बेचा जाता है ।]

१	[illegible] (न्याय)	।-)	१० आचारसार	।≈)	२१ [illegible]	१॥)
२	सागारधर्मामृत	।≋)	११ त्रिलोकसार सटीक	१।।।)	२२ [illegible]	१।।।)
३	विक्रान्त-कौरवीय (नाटक)	।≈)	१३ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह	।।।≈)	२३ मूलाचार सटीक ([illegible])	१॥)
४	पार्श्व[illegible] (काव्य)	॥)	१४ अनगारधर्मामृत	३॥)	२४ रत्नकरण्ड [illegible]	[illegible]
५	[illegible] (नाटक)	।)	१५ [illegible]	[illegible]	२५ पंचसंग्रह	।।।-)
६	आराधनासार	।)॥	१६ नयचक्रसंग्रह	।।।≋)	२६ लाटीसंहिता	॥)
७	जिनदत्तचरित (काव्य)	।)॥	१७ षट्प्राभृतादिसंग्रह	३)	२७ पुरुदेवचम्पू	।।।)
८	प्रद्युम्नचरित ,,	॥)	१८ प्रायश्चित्तसंग्रह	१≈)	२८ प्राचीन शिलालेखसंग्रह	२)
९	चारित्रसार	।≈)	१९ मूलाचार सटीक ([illegible])	२॥)	२९ पद्मपुराण (प्रथमखंड)	१॥)
१०	[illegible] निर्णय (न्याय)	।-)	२० भावसंग्रहादि	२।)		